संघवाद और संघात्मक शासन

हिन्दी समिति, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

संघवाद और संघात्मक शासन

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला--११५

संघवाद और संघात्मक शासन

लेखक

डा० बी. एम. शर्मा

डी० लिट्

हिन्दी समिति, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश, लखनऊ

प्रथम संस्करण
१९६५

मूल्य
आठ रु० पच्चास पैसे

मुद्रक
लीडर प्रेस, प्रयाग

विषय-सूची

प्रकाशकीय

आधुनिक शासन प्रणालियों में संघात्मक शासन प्रणाली का विशेष महत्व है। इसमें संघवाद के सिद्धान्तों को विविध ढंग से समाविष्ट किया गया है। प्राचीन तथा मध्य युग में संघ बनाने की प्रथा थी, किन्तु वर्तमान युग में तो वह विशेष रूप से व्यापक और लोकप्रिय हुई है। संघवाद में निहित सिद्धान्तों के प्रयोग एवं अनुकरण से सहयोग एवं सहकारिता की भावना में परिवृद्धि होती है, आधुनिक समस्याओं का समाधान होता है तथा समाज के विभिन्न हितों की रक्षा होती है। "संघवाद और संघात्मक शासन" में इसी संघात्मक शासन प्रणाली के ऐतिहासिक एवं आधुनिकतम परिवेश का विशद अध्ययन है। इसके विद्वान लेखक डा० बी० एम० शर्मा ने संघवाद की वृद्धि और विकास, संघवाद का इतिहास, आधुनिक संघों का इतिहास, भारत एवं पाकिस्तान के संघ, संघ शासन में शक्ति वितरण, संघीय संस्थाएँ, वित्तीय पद्धतियाँ, संघवाद तथा अल्पसंख्यकों के हित, भारतीय संघवाद, संघीय संविधानों की संशोधन विधियाँ, संघवाद का भविष्य जैसे सम्बद्ध विषयों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करके इस पुस्तक को सर्वांगीण रूप से उपयोगी बनाने का श्रेयस्कर प्रयास किया है।

आशा है, राजनीति के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक उपयोगी तो सिद्ध होगी ही, इस विषय से अभिरुचि रखनेवाले तथा इससे व्यावहारिक रूप से सम्बन्धित अन्य पाठकों का यह अपेक्षित मार्ग-दर्शन भी करेगी।

सुरेन्द्र तिवारी
सचिव, हिन्दी समिति

संघवाद और संघात्मक शासन

अध्याय १

संघवाद और उसका क्षेत्र

इतिहास इस बात का प्रमाण है कि मानव-जाति, अपनी वर्तमान स्थिति पर पहुँचने से पहले, अनेक प्रकार की सफलताओं और विफलताओं के क्रम से गुज़र चुकी है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि मानव-व्यवहार और प्रगति में अनेक क्रियाएँ और उपक्रियाएँ हो चुकी हैं। मानव-जाति निरंतर प्रगतिशील रही है, प्रगतिशील है और रहेगी। इस प्रगतिशीलता का आधार मानव की बुद्धि है जिसके बल और तर्क से मनुष्य ने अपने जीवन को निरंतर सभ्य, सुखी और अधिक सम्पन्न बनाने का प्रयास किया है, अपने मार्ग की कठिनाइयों को दूर किया है, और बदलते हुए वातावरण में अपनी नित नई आवश्यकताओं की पूर्ति की है। यहाँ हमें अरस्तू का यह कथन कि 'मनुष्य एक सामाजिक और राजनीतिक प्राणी है', यह स्मरण कराता है कि सहस्रों वर्षों के इतिहास में मनुष्य ने अपने विभिन्न पहलुओं को तरह तरह के समुदाय बना कर ज़ाहिर किया है। अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य ने अनेक समुदाय बनाये हैं और संस्थाओं तथा संवासों की स्थापना की है। परन्तु राजनीतिक संगठन में (जिसे राज्य की संज्ञा दी गई है) मनुष्य के कौशल्य और चतुरता की पराकाष्ठा हो गई है।

राज्य की सर्वोच्चता—राज्य के विकास का इतिहास भी बड़ा रोमांचकारी है। विभिन्न दार्शनिकों ने राज्य की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। किन्तु वे सभी यह बात स्वीकार करते हैं कि राज्य की उत्पत्ति का मुख्य कारण मनुष्य की आवश्यकताएँ थीं। एक बात और भी इन दार्शनिकों के विचारों से सिद्ध होती है, जिसका समर्थन इतिहास से तथा पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसंधानों से होता है, और वह यह है कि राज्य के वर्तमान रूप का विकास सहस्रों वर्षों का परिणाम है। इस लंबे काल में मनुष्य कई प्रकार के जीवन-प्रयोग कर चुका है। आरम्भ में घुमक्कड़ टोलियों (Nomadic hordes), पशु-पालक जातियों (Pastoral tribes), पारिवारिक जीवन और ग्रामीण अथवा सामूहिक जीवन से निकलकर आधुनिक राजनीतिक जीवन के चरण तक पहुँचा है। सुसंगठित राज्य (State) में

ही व्यक्ति अपने सर्वोत्तम 'अहं' की प्राप्ति का साक्षात्कार समझता है। और इसी प्रकार के जीवन में ही वह उन लोगों का भी हित साधन कर सकता है जिनके साथ वह रक्त, भाषा, भेष, भाव, धर्मोपासना, और आर्थिक तथा सामाजिक एकता के कारण बंधा हुआ है। एक सुसंगठित राज्य में ही रह कर मनुष्य अपनी सभ्यता और विज्ञान की प्रगति, कलाओं की वृद्धि, सिद्धान्तों का प्रतिपादन, साम्पत्तिक उन्नति, नैतिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है। राज्य में ही रहकर मनुष्य के अधिकारों की रक्षा सम्भव है। इसलिए राज्य ही मनुष्य के निर्मित संवासों अथवा सामाजिक संस्थाओं में सर्वोच्च है।

राज्य में संविधान की आवश्यकता—राज्य का वर्तमान स्वरूप इतना जटिल है कि उसको सुसंगठित रखने और सुचारु रूप से चलाने के लिये संविधान की आवश्यकता है। राजनीतिक संगठन सदा एक-सा नहीं रहा। जैसे-जैसे मनुष्य के जीवन का वातावरण बदलता गया, उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती गईं, राज्य और व्यक्ति के सम्बन्ध भी बदलते गये, और राज्य के ध्येय तथा कर्तव्यों, अधिकारों तथा कार्य-क्षेत्र में भी परिवर्तन होता गया। प्राचीन काल में राज्य का कार्य-क्षेत्र सीमित था; राज्य का मुख्य ध्येय शान्ति की स्थापना और नागरिकों के झगड़ों का निपटाना ही मुख्य समझा जाता था। सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ आवश्यकताएँ बढ़ीं तो राज्य के कार्य-क्षेत्र में भी वृद्धि हुई। अतएव आधुनिक राज्य के कार्यों का आदर्श उस समाज से बिलकुल भिन्न है जो शताब्दियों पहले था। वर्तमान विचारधारा के अनुसार राज्य "एक समाज सेवी" अथवा "कल्याणकारी राज्य" (Welfare State) है जिसका कर्तव्य नागरिकों के अनेक हितों की (राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक) रक्षा करना है। राज्य अपने कर्तव्य पालन के लिये किस प्रकार विधि (Law) का निर्माण करे, प्रशासन का क्या ढंग हो, न्याय व्यवस्था किस प्रकार की हो, इन सभी बातों के क्रम और प्रक्रिया का वर्णन संविधान में किया जाता है। विभिन्न युगों में विभिन्न राज्यों ने अपनी भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों में अपने-अपने संविधान बनाये, और क्योंकि सभी राज्यों की परिस्थितियाँ एकसम न थीं, उनके संविधान भी विभिन्न प्रकार के बने जिसके कारण शासन का स्वरूप भी विभिन्न प्रकार का रहा। इस सबसे संसार के भिन्न-भिन्न भागों और राज्यों में रहनेवाले लोगों में राजनैतिक व्यवस्थाओं तथा शासनों में भेद का कारण स्पष्ट हो जाता है। किसी भी राज्य की समृद्धि उसके शासन के रूप पर निर्भर है। बर्क (Burke) ने ठीक ही कहा है "सरकार मानव की आवश्यकता की पूर्ति के लिये मानवीय बुद्धि का एक आविष्कार है। मनुष्यों का यह अधिकार है कि यह बुद्धि उनकी आव-

श्यकताओं की पूर्त्ति करे[1]। इसलिये कॉज़िन (Cousin) ने ठीक ही कहा है, "आप लोगों की सेवा करके ही उन पर शासन कर सकते हैं।"[2] मनुष्य अपने हितों की रक्षा स्वयं ही कर सकता है। प्रगतिशील और कल्याणकारी राज्य वही हो सकता है जिसका संविधान नागरिकों की आवश्यकताओं की पूर्त्ति का ध्यान रखते हुए निर्माण किया गया है। इससे यह परिणाम निकलता है कि शासन के विभिन्न अंगों पर नागरिकों का नियंत्रण होना आवश्यक है। इस नियंत्रण का आधार ही लोक-संप्रभुता (Popular Sovereignty) है। इस सिद्धान्त के अनुसार वैधानिक शासन वह है जिसमें विधि अथवा कानून का ही राज है, किसी व्यक्ति विशेष का नहीं।

आधुनिक विधानों का परीक्षण करने से पता चलता है कि इन विधानों में शासकों और शासितों के सम्बन्धों, सरकार के विभिन्न अंगों की शक्तिओं और अधिकारों तथा उनकी रचना और पारस्परिक सम्बन्धों की दृष्टि से, इन विधानों का कई प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है। प्राचीन काल में संविधानों अथवा शासनों का वर्गीकरण सर्वप्रथम यूनानी दार्शनिक अरस्तू (Aristotle) ने किया था। उस वर्गीकरण का मुख्य दृष्टिकोण यह था कि शासन-सत्ताधिकारी एक ही व्यक्ति है, अथवा अनेक कुलीन व्यक्ति हैं, अथवा शासितों की बहुसंख्या है। इसी आधार पर उसने शासन को राजतंत्र, कुलीनतंत्र तथा लोकतंत्र की संज्ञा दी। पिछले सहस्रों वर्षों में मानव समाज बिलकुल बदल गया है। आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक ढाँचे पहले की अपेक्षा अब कुछ और ही हो गये हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव-जीवन और विचारों में बड़ा भारी परिवर्तन कर दिया है। पूर्वजों के राजनैतिक विचार कुछ और ही थे, हमारे राजनैतिक विचार दूसरे ही हैं। इनके अनुसार आधुनिक संविधानों का निर्माण नवीन दृष्टि और नवीन ढंग से किया जाता है। इसी कारण इन विधानों के अध्ययन में उनका वर्गीकरण भी और ही दृष्टि से किया जाता है। आज के संसार की शासन प्रणालियाँ मध्यकालीन तथा प्राचीन शासन प्रणालियों से अनेक प्रकार भिन्न हैं।

संघात्मक शासन प्रणाली

आधुनिक शासन प्रणालियों में संघात्मक शासन प्रणाली का विशेष स्थान और महत्व है। इसमें संघवाद (Federalism) के सिद्धान्तों का विभिन्न प्रकार से अनु-

---

1. "Government is a contrivance of human wisdom to provide for human wants. Men have a right that these wants be provided for by this wisdom."

2. "You can only govern people by serving them."

करण किया गया है। यों तो संघ बनाने की प्रथा प्राचीन तथा मध्य युग में भी थी और राजनीतिक ही नहीं, वरन् आर्थिक और सामाजिक जीवन में भी विभिन्न व्यक्ति तथा मंडल और समुदाय अपने हितों और अधिकारों की रक्षा के निमित्त संघ बनाते थे, किन्तु वर्तमान युग में संघ-प्रथा विशेषतया व्यापक और लोकप्रिय हो गई है। इसका मुख्य कारण है संघवाद के कुछ सिद्धान्तों की उपयोगिता। इन सिद्धान्तों का प्रयोग और अनुकरण करने से आधुनिक समस्याएँ सुलझ जाती हैं और अशांति का भय दूर हो जाता है। साथ ही साथ ये सिद्धान्त विभिन्न हितों की रक्षा करते हुए एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करते हैं जिसमें सहयोग और सहकारिता की भावना बढ़ जाती है। प्राचीन यूनान में छोटे-छोटे नगर-राज्य थे जो अपने अस्तित्व की रक्षा करना और अन्य राज्यों से सर्वथा स्वतंत्र रहना राजनैतिक जीवन की चरम सीमा समझते थे। आगे चलकर उन्होंने भी संघों की स्थापना की। रोम ने अपने उन्नत युग में दूरस्थ देशों पर विजय पाकर एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना की जिसमें अनेक संस्थाओं को जन्म दिया और विभिन्नता होते हुए भी रोम-साम्राज्य के प्रदेशों में एकता स्थापित करने का प्रयास किया गया। उस समय आदर्श राज्य यूनानी नगर-व्यवस्था न रहकर साम्राज्य माना जाने लगा।

पूर्वी संसार में (Grient) भी साम्राज्य स्थापना को अन्तिम उद्देश्य मान कर मिस्र, भारत और चीन में बड़े-बड़े सम्राट् राज्य करने लगे। इन साम्राज्यों में स्थानीय शासकों को अपने अधिकृत प्रदेशों में बहुत कुछ स्वतंत्रता थी। भारतीय साम्राज्यों में चक्रवर्ती राजा के प्रति छोटे-छोटे राज्यों के शासकों को श्रद्धा की शपथ लेनी पड़ती थी। रामायण और महाभारत काल में इस प्रकार के साम्राज्य थे। उस काल के पश्चात् सामन्तवाद तथा चक्रवर्ती साम्राज्यवाद की प्रथा अपनाई गई। बौद्ध धर्म ने संघवाद के कुछ अंशों का प्रयोग किया।

मध्यकालीन योरुप में राष्ट्रीय राज्यों की (National States) की स्थापना हुई और ईसाई संसार (Christendom) के टुकड़े होने लगे, रोम के पोप का आधिपत्य धार्मिक मामलों तक ही सीमित रहा।

पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक योरुपीय जातियों ने पहले तो व्यापार के लिये और तत्पश्चात् राजनीतिक दृष्टि से औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर अफ्रीका, एशिया, अमरीका और आस्ट्रेलिया के महाद्वीपों में अपना शासन स्थापित कर एक नई शासन-व्यवस्था स्थापित की। अमरीका के उपनिवेशों में स्थानीय स्वतंत्रता की भावना जाग्रत हुई और उपनिवेशवाद के विरुद्ध आंदोलन हुआ। इसी के फलस्वरूप संयुक्त राज्य अमरीका का जन्म हुआ जहाँ संघवाद के सिद्धान्तों का पूर्ण-

तया अनुकरण कर आधुनिक संसार का प्रथम संघात्मक संविधान बनाया गया। योरुप के अन्य देशों में राजतंत्र के विभिन्न रूप अपनाये गये जहाँ विभिन्न प्रकार के संविधानों का प्रादुर्भाव हुआ।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् विजेता राज्यों ने राष्ट्र-संघ (League of Nations) की स्थापना की और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन मिला। कुछ लोग इस संघ के प्रति यह आशा प्रकट करने लगे कि वह विश्व संघ का रूप (World Federation) धारण कर लेगा। परन्तु बीस वर्ष के भीतर ही दूसरा विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया और राष्ट्रसंघ की पूर्ण असफलता सिद्ध हो गई। किन्तु विश्व के प्रमुख नेता यह अनुभव करने लगे कि बिना किसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के न तो विश्व-शांति ही रहेगी और न विभिन्न राष्ट्रों की संप्रभुता पर कोई अंकुश लगाया जा सकेगा। फलतः संयुक्त राष्ट्र (United Nations) की स्थापना १९४५ में हुई जिसके संविधान में संघवाद के कुछ सिद्धान्तों को अपनाया गया।

वर्तमान शताब्दी में संघवाद अत्यन्त लोकप्रिय हो गया है। बीसवीं शताब्दी का श्रीगणेश ही नवीनतम संघात्मक शासन की स्थापना से हुआ। रानी विक्टोरिया ने १ जनवरी १९०१ को एक घोषणा द्वारा 'कामनवेल्थ आॅफ़ आस्ट्रेलिया' नामक संघात्मक राज्य आस्ट्रेलिया महाद्वीप में स्थापित किया। इस राज्य के संविधान को बीसवीं शताब्दी का प्रथम शिशु संबोधित कर राजनीतिज्ञों ने उसका स्वागत किया और उसकी सफलता की कामना की। उसके पश्चात् दक्षिणी अफ्रीका, मेक्सिको, साम्यवादी रूस, प्रथम युद्धोपरान्त जर्मनी,[1] यूगोस्लाविया, चीन, भारत, जर्मनी के संघात्मक (पश्चिमी) गणराज्य आदि में भी संघवाद के सिद्धान्तों के अनुसार लोकतंत्रीय शासन-विधान अपनाये गये।

सभी महाद्वीपों में अनेक राज्यों में संघात्मक शासन-प्रणाली अपनाई गई है, और अब यह सबसे अधिक व्यापक प्रणाली है। इसका मुख्य कारण यह है कि राजनीतिक क्षेत्र में दिन प्रतिदिन आने वाली समस्याओं का हल इसी प्रणाली के प्रयोग से हो जाता है। संसार की वर्तमान प्रगति बड़े से बड़े राज्यों के निर्माण की ओर है। संसार के विभिन्न देश अपने जीवन में एक दूसरे पर निर्भर और आश्रित होते चले जा रहे हैं।

---

१. वीमार (Weimar) के संविधानानुकूल जर्मनी में १९१९ में संघीय गणराज्य स्थापित हुआ; हिटलर ने अप्रैल १९३४ में उसको केन्द्रित तानाशाही शासन में बदल दिया। द्वितीय महासमर में इसका अन्त हुआ और जर्मन राज्य के दो भाग पश्चिमी और पूर्वी जर्मनी हो गये।

संसार के आधुनिक संघ-राज्य

संघ राज्य का नाम	सहस्त्रों में जनसंख्या (वर्ष सहित)	क्षेत्रफल	संघ-विधान की तिथि
संयुक्तराज्य अमरीका	१७९,३२३ (१९६० में)	३,५५३,८९० व० मी०	१७ सितम्बर १७८७
कनाडा	१८,२३८ (१९६१ जून)	३,५६०,२३८ व० मी०	१ जुलाई १८६७
स्विट्ज़रलैंड	५,४२९ (१९६० में)	४१,२८८ व० कि० मी०	२९ मई १८७४
आस्ट्रेलिया (कामनवेल्थ)	१०,५०८ (३० जून १९६१)	२,९७१,०८१ व० मी०	१ जनवरी १९०१
दक्षिणी अफ्रीका	१५,८४१ (१९६० में)	४७२,३५९ व० मी०	३१ मई १९१०
मेक्सिको	३४,९२३ (१९६० में)	१,९२३,८९० व० कि० मी०	५ फरवरी १९१७
रूस (यू० एस० एस० आर०)	२०,८८,०० (१९५९ में)	२,२४,०००,००० व.कि.मी.	५ दिसम्बर १९३६
यूगोस्लाविया	१८,५१२ (१९५८ में)	२५५,८०५ व० कि० मी०	३१ जनवरी १९४६
ब्राजिल का संयुक्त राज्य	७०,५२९ (१९६१ में)	८,५११,९६५ व० कि० मी०	१८ सितम्बर १९४६
साम्यवादी चीन	६०१,९५४ (१९६१ में)	९,७३६,००० व० कि० मी०	२५ दिसम्बर १९४७
मलाया का संघ	६,९०९ (१९६० में)	५०,७०० व० मी०	१ फरवरी १९४८
जेकोस्लोवाकिया	१३,६७५ (१९५७ में)	१२७,८६३ व० कि० मी०	९ जून १९४८
इन्डोनेशिया	९५,८८९ (१९६० में)	१९,००,००० व० कि० मी०	६ मार्च १९६०
भारत का गणराज्य	४३६,४२४ (१९६१ में)	१,२५९,७९७ व० मी०	२६ नवम्बर १९४९
फेडरल जर्मनी (पश्चिमी)	५३,७५६ (१९५० में)	९४,५८७ वर्ग मील	२१ मई १९६०

कोई भी राज्य अथवा देश सर्वथा स्वावलंबी नहीं रह सकता। प्रकृति ने भी कुछ ऐसा ही रचा है कि विभिन्न भूखंडों में प्राकृतिक पदार्थ अधिकता से तो मिलते हैं, परन्तु सभी आवश्यक पदार्थ एक ही भूखंड अथवा देश में परियाप्त मात्रा में नहीं मिलते। अतएव आर्थिक दृष्टि से ही विभिन्न राज्यों में पारस्परिक व्यापार द्वारा घनिष्ठता और निर्भरता की वृद्धि हो रही है। वैज्ञानिक अनुसंधानों ने दूरस्थ देशों के बीच याता-यात के ऐसे साधन उपलब्ध कर दिये हैं कि उनमें व्यापारिक, सांस्कृतिक और राज-नैतिक सहयोग बढ़ता जा रहा है। इसी सहयोग से अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में नवीन विचार उत्पन्न होते जा रहे हैं। अणुशक्ति के क्रियात्मक प्रयोग से भी यही आशा की जाती है कि राज्यों में सहयोग बढ़ेगा और संघवाद के सिद्धान्तों का भी और अधिक सहारा लिया जायगा। सिजविक की भविष्यवाणी को सत्यता सिद्ध हो रही है। उसने कहा था "जब हम भूत से भविष्य की ओर दृष्टि डालते हैं तो संघवाद का विस्तार ही मुझे सरकार के रूप के विषय में सबसे अधिक संभावित राजनैतिक भविष्यवाणी मालूम होती है"[1]।

आज का व्यक्ति संकुचित क्षेत्र में रहकर अपना जीवन अपूर्ण और परिमित होने का अनुभव करता है। वह अपनी अनेक प्रवृत्तियों को जाग्रत और क्रियात्मक देखना चाहता है। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, संस्कृतिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में उसके ज्ञान की वृद्धि हो रही है और उसी ज्ञान के आधार पर अपने कुटुम्ब, जाति, गाँव, ज़िला, प्रदेश, राज्य और सारे संसार के प्रति उसके विचारों और सम्बन्धों में भी परिवर्तन हो रहा है। इसी परिवर्तन के फलस्वरूप और उसकी रचनात्मक बुद्धि के कारण वह अपने जीवन का विकास कर रहा है। वह पशुओं की भाँति स्थावर नहीं है जो सदा से एक-सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वह तो अपने वातावरण को बदल रहा है और अपनी आन्तरिक प्रेरणा का पूर्ण विकास कर अपने 'अहं' का विकास करने पर उतारू है। लास्की का कथन सत्य ही है कि "मानव की शक्ति प्रगतिशील है, और नये-नये हल नवीन समस्याएँ उत्पन्न कर रहे हैं।" इसलिए यह आवश्यक है कि मनुष्य सामाजिक जीवन में विभिन्न संवासों के साथ अपने सम्बन्धों में परिवर्तन करे। बहुलवाद

---

1. "When we turn our gate from the past to the future" an extension of federalism seems to me to be the probable of the political prophecies relative to the form of government."

H. Sicgwick, **The Development of European Potity,** p. 439.

का सिद्धान्त इस अंश में तो सत्य ही है कि मानव-जीवन का पूर्ण विकास विभिन्न प्रकार की संस्थाओं में रहकर ही हो सकता है। लास्की के कथन की सत्यता प्रकट होती है, जब उसने कहा था, 'समाज का ढाँचा संघात्मक होना चाहिए यदि वह संतोषपूर्ण होना है। उस ढाँचे की मुख्य समस्या केवल व्यक्ति और राज्य, अथवा व्यक्ति और उसका जाति-समूह, किन्तु यह सब और इनके पारस्परिक सम्बन्ध भी हैं।' अतएव आधुनिक प्रगतिशील, लोकतंत्रात्मक राज्य ऐकिक सर्वशक्ति सम्पन्न राज्य नहीं, वह तो बहुलवादी राज्य (Pluralistic State) है जो सफल होने के लिए संघात्मक रूप का ही हो सकता है। किन्तु इस प्रकार का संघात्मक ढाँचा राज्य तक ही सीमित नहीं रह सकता है। इसका क्षेत्र प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है, क्योंकि आर्थिक समस्याएँ और राजनैतिक परिस्थितियाँ विभिन्न प्रभुता सम्पन्न राज्यों को एक दूसरे के निकट ला रही हैं। आज के विश्व में औद्योगिक और सामाजिक क्रान्ति इतने बड़े क्षेत्र में हो रही है कि कोई भी राज्य इसके परिणामों से अप्रभावित नहीं रह सकता। वायु मार्गों, तार रेडियो, बेतार द्वारा सम्पर्क बढ़ने से पृथ्वी सिकुड़-सी गई है, जिसके कारण विभिन्न राज्यों को अपनी प्रभुसत्ता का थोड़ा अंश बलिदान कर अन्य राज्यों के साथ आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक सहयोग बढ़ाना ही पड़ रहा है। कोई भी राज्य 'कूप मण्डूक' की भाँति अपना अस्तित्व नहीं रख सकता। जिस दिन सन् १९४५ में हिरोशिमा नगर पर अणुबम गिराया गया था जिसके कारण सहस्रों स्त्री-पुरुष और बच्चे मारे गये थे तभी से वैज्ञानिकों के आविष्कारों से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भाव जाग्रत होने लगे हैं। मानव के सर्वनाश के शस्त्र आज दो महान् देशों के पास इतनी संख्या में हैं कि यदि दुर्भाग्यवश कहीं युद्ध छिड़ गया तो मानव-जाति, सभ्यता और पृथ्वी का नाश ही हो जायगा।

छोटे-छोटे राज्यों के अस्तित्व का प्रश्न आज संसार में जितना महत्वपूर्ण हो गया है, उतना पहले कभी न था। वे अपनी रक्षा नहीं कर सकते, उनके पास अधिक सम्पन्न और समृद्धिशाली बनने के साधन नहीं, वे संसार में अन्य देशों की अपेक्षा आदर नहीं पा सकते। अतएव उन्हें उन्नतिशील बनने और अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए आपस में मिलकर राजनैतिक सहयोग स्थापित करना पड़ता है, जिसमें संघवाद के सिद्धान्तों को अपनाना ही सरल उपाय है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि छोटे राज्यों ने आपस में मिलकर अनेक प्रकार और रूप के राजनैतिक समुदाय अथवा संघ बनाये हैं। वे न तो एकसम थे और न उनके शासन में एकरूपता हो सकती। उनके भेद उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा सामयिक समस्याओं की छाया कहे जा सकते हैं।

राजनैतिक समुदायों और संघों के रूप

विभिन्न युगों और परिस्थितियों में राज्यों के मिलने से जो संघ बने उनका परीक्षण करने से उनके विशेष लक्षणों और रूपों का अध्ययन हम कर सकते हैं। इस अध्ययन से हम चार प्रकार के संघ पाते हैं।

(१) **व्यक्तिगत संघ** (Personal Unions)—ऐसे संघ का उदाहरण आधुनिक काल में सन् १७१४ से १८३७ तक इंगलैंड और हेनोवर का था। विलियम तृतीय और रानी मेरी की मृत्यु के पश्चात् सन् १७०२ में इंगलैंड के राजसिंहासन का प्रश्न उठा क्योंकि ये दोनों शासक निःसंतान थे। पार्लियामेंट ने एक कानून द्वारा रानी ऐन (Anne) को उत्तराधिकारी बनाया, परन्तु जब सन् १७१४ में वह भी निःसंतान मर गई तो राजवंश के निकटतम सम्बन्धी जार्ज को, जो जेम्स प्रथम की सबसे छोटी प्रपुत्री सोफिया का पुत्र और उस समय अपनी पैतृक सम्पत्ति हेनोवर का शासक (Elector of Hanover) था, इंगलैंड का शासक बनाया। जार्ज प्रथम सर्वांश में जर्मन था, केवल जर्मन भाषा जानता था, जर्मन पोशाक पहनता था और हेनोवर के प्रति अधिक प्रेम रखता था। वह इंगलैंड और हेनोवर दोनों का शासक रहा, किन्तु इन दोनों राज्यों में केवल एक ही शासक होने के अतिरिक्त और कोई राजनैतिक सम्बन्ध न था। जार्ज प्रथम के पश्चात् उसके तीन उत्तराधिकारी जार्ज द्वितीय (१७२७-१७६०), जार्ज तृतीय (१७६०-१८२०), जार्ज चतुर्थ (१८२०-१८३०) और विलियम (१८३०-१८३७) तक दोनों राज्यों, इंगलैंड और हेनोवर का, व्यक्तिगत संघ रहा केवल एक शासक होने के नाते के कारण, किन्तु अन्य सभी प्रकार वे पृथक् पृथक् रहे। न तो आन्तरिक शासन नीति में और विदेशीय नीति में उनका किसी प्रकार भी मेल हुआ। इस बड़े काल में इंगलैंड की उन्नति की सीमा न रही, उसके उपनिवेश सभी महाद्वीपों में स्थापित हो गये, व्यापार, उद्योग आदि में भी वह योरुपीय साम्राज्यवादी राज्यों में अग्रगण्य हो गया और उसकी ख्याति बढ़ गई। दूसरी ओर, हेनोवर का महत्व पहले की अपेक्षा घट गया। फ्रांस की राज्य-क्रांति, नेपोलियन के युद्धों तथा हेंज़ियाटिक संघ (Hanseatic League) के छिन्न-भिन्न होने से हेनोवर की जागीर एक साधारण नगर रह गई। जार्ज तृतीय, जार्ज चतुर्थ और विलियम इंगलैंड की भाषा, भेष और शासन में अपने जर्मन रक्त को भूल गए और इंगलैंड को ही अपना देश समझने लगे। अतएव जब सन् १८३७ में विलियम चतुर्थ की मृत्यु हो गई तो रानी विक्टोरिया इंगलैंड के राजसिंहासन पर बैठीं और विलियम के भाई, कम्बरलैंड के ड्यूक को हेनोवर की जागीर दे दी गई। इस प्रकार इंगलैंड और हेनोवर के बीच व्यक्तिगत राजनैतिक बन्धन का अन्त हो गया।

(२) वास्तविक मेल और एकता (Real Union)—यह दूसरी प्रकार का राजनैतिक मेल और संघ होता है जिसमें सम्मिलित होने वाले राज्य अपने पृथक् अस्तित्व को त्याग कर सर्वांश में एक ही राज्य बन जाते हैं, अर्थात् एक नया नाम धारण कर एक ही शासन में विलीन हो जाते हैं। ऐसे रूप का प्रज्वलंत उदाहरण इंगलैंड और स्काटलैंड के सन् १७०७ में मिल जाने का है। जब सन् १६०३ में रानी एलिज़ा-बेथ की मृत्यु हुई, तो इंगलैंड के राजसिंहासन के उत्तराधिकार का प्रश्न उठा। उस समय इंगलैंड के राजवंश का निकटतम सम्बन्धी स्काटलैंड का राजा जेम्स षष्ठ था, और क्योंकि रानी एलिजाबेथ ने मृत्युशैया पर ही जेम्स को अपना उत्तराधिकारी बनाये जाने की स्वीकृति दे दी थी, इंगलैंड की पार्लियामेंट ने जेम्स को इंगलैंड के राज-सिंहासन पर बैठने के लिये आमंत्रित किया और इस प्रकार जेम्स ही इंगलैंड का राजा जेम्स प्रथम के नाम से बनाया गया। साथ ही साथ जेम्स ने स्काटलैंड का शासन भी जारी रखा। किन्तु दोनों राज्यों में पृथक् पृथक् पार्लियामेंट रहीं, दोनों की विदेशीय नीति भी मिश्रित न होकर पृथक् रही, दोनों के कानून, सिक्के, बाट आदि भी पृथक् रहे, दोनों की शासन पद्धति भी पहले की भाँति ज्यों की त्यों रही। केवल मेल इतना ही रहा कि दोनों का शासक राजा एक ही व्यक्ति था। सारांश यह है कि सन् १६०३ में इंगलैंड और स्काटलैंड का व्यक्तिगत संघ बना। सन् १६२५ में जेम्स की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र चार्ल्स प्रथम ने इंगलैंड का राजमुकुट धारण किया। यद्यपि स्काट-लैंड में भी चार्ल्स राजा रहा किन्तु उसने आठ वर्ष तक स्काटलैंड नहीं गया। सन् १६३३ में वह स्काटलैंड की राजधानी एडिनबरा गया और बड़ी धूमधाम के साथ उसका राजतिलक (Coronation) हुआ। इस प्रकार इंगलैंड और स्काटलैंड विभिन्न राज्य रहे, उनका शासन, कानून आदि भी पृथक् रहे, केवल एक ही व्यक्ति दोनों का शासक रहा। सन् १७०७ तक इंगलैंड और स्काटलैंड का व्यक्तिगत राजनैतिक मेल और संघ रहा जो प्रायः इंगलैंड और हैनोवर के १७१४-१८३७ तक के व्यक्तिगत संघ के समान था। सन् १७०७ में इंगलैंड और स्काटलैंड की पार्लियामेंटों ने निश्चय किया कि दोनों राज्यों को एक ही राज्य में विलीन होकर एक ही बड़ा राज्य बन जाना चाहिए। इस प्रकार विलियम तृतीय के शासनकाल में सन् १७०७ में दोनों देशों में समझौता हुआ जिसमें यह निश्चय हुआ कि (१) दोनों राज्यों को 'ग्रेट ब्रिटेन' नाम के एक ही राज्य में मिल जाना चाहिए; (२) हैनोवर की एलेक्ट्रेस सोफिया (Sop-hia) और उसके उत्तराधिकारियों को, यदि वे प्रोटेस्टेंट मत के अनुयायी हों, इस नवीन राज्य का राजसिंहासन दिया जावे; (३) सभी ब्रिटिश उपनिवेशों और ब्रिटिश बंदरगाहों में स्काच निवासियों को अंग्रेजों के समान सुविधा और अधिकार मिलेंगे;

(४) सम्मिलित ब्रिटिश पार्लियामेंट में स्काटलैंड के १६ पीयर्स प्रत्येक पार्लियामेंट द्वारा निर्वाचित हाउस ऑफ़ लार्ड्स में रहेंगे, और जनता द्वारा निर्वाचित ४५ सदस्य हाउस ऑफ़ कामन्स में रहेंगे; (५) स्काटलैंड प्रेसबीटेरियन चर्च कायम रहेगा, और स्काटलैंड के न्यायालय अपरिवर्तित रहेंगे; (६) स्काटलैंड की भेड़ें, पशु, कोयला और कपड़ा इंगलैंड से पृथक् रहेंगे जिससे स्काटलैंड के हित सुरक्षित रहें।

इस प्रकार सन् १७०७ के 'एक्ट आफ यूनियन' (Act of Union of England and Scotand) द्वारा इन दोनों राज्यों को सर्वथा मिलाकर 'ग्रेट-ब्रिटेन' नाम का एक वास्तविक सम्मिलित राज्य स्थापित हुआ जो एक ही पार्लियामेंट, एक ही कार्यपालिका तथा एक ही व्यापारिक नीति से शासित होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि जहाँ स्काटलैंड अधिक समृद्धिशाली, धनी और उन्नत होने लगा, संसार में ग्रेट ब्रिटेन की शक्ति बढ़ गई और अन्य देशों की दृष्टि में ग्रेट ब्रिटेन के प्रति अधिक श्रद्धा हो गई।

इन दो ऐतिहासिक उदाहरणों से सिद्ध होता है कि जब दो स्वतंत्र राज्यों का व्यक्तिगत संघ अथवा मेल होता है तो उनका भविष्य विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। स्काटलैंड और इंगलैंड दोनों एक दूसरे के निकटतम पड़ोसी हैं। दोनों के आर्थिक हितों में बहुत कुछ एकता है। बाह्य आक्रमणों से रक्षा करने में दोनों ही का हित-साधन रहा था। दोनों ही योरुपीय राजनैतिक झंझटों से बचना चाहते थे। एक दूसरे में सम्पर्क बढ़ना और वास्तविक एकीकरण होना स्वाभाविक था। अतः १६०३-१७०७ तक के सहयोग में उनके हित लगभग एकसम हो गये, एकता को प्रोत्साहन मिला, अन्त में उनका राजनैतिक एकीकरण ही हो गया, यह सब उनके बीच केन्द्रा-भिसारी शक्ति के सबल होने का परिणाम था।

जब उसी काल में केवल सात वर्ष पश्चात् लगभग एकसी ही परिस्थिति में जार्ज प्रथम के अंग्रेजी राजसिंहासन पर आरूढ़ होने पर इंगलैंड के राज्य का हेनोवर की जागीर से व्यक्तिगत गठ बंधन हुआ (१७१४ में) तो यह मेल एक हाथी और बछड़े के मेल के समान था। कहाँ इंगलैंड का बड़ा राज्य जो ग्रेट ब्रिटेन बन गया था, और कहाँ मध्य योरुप में दूरस्थ स्थित हेनोवर नगर की जागीर जो चारों ओर बड़े-बड़े राज-शृंखला से पूर्ण प्रशिया, फ्रांस, आस्ट्रिया आदि से घिरे हुए भूखण्ड में थी? न तो दोनों की कोई तुलना थी और न उस जागीर पर अपना अधिकार बनाये रखने में किसी प्रकार भी इंगलैंड का हित था, बल्कि इसी जागीर की रक्षा के लिए इंगलैंड को नेपोलियन के युद्धों में भाग लेना पड़ा था। जार्ज प्रथम का तो, जर्मन होने के कारण हेनोवर के प्रति भावनात्मक आकर्षण था, किन्तु उसके उत्तराधिकारी हेनोवर के

प्रति अधिक श्रद्धा न रख अंग्रेजी भावों से ओतप्रोत हो गये और सन् १८३७ में इंगलैंड ने अपने राजनीतिक उत्तरदायित्व से पीछा छुड़ाया, हेनोवर की जागीर से सम्बन्ध तोड़ दिया, १२३ वर्ष के व्यक्तिगत मेल का अन्त हो गया क्योंकि इंगलैंड और केंद्र पसारी शक्ति (Centrifugal Force) प्रबल थी। फिर सन् १८६७ में उत्तरी जर्मन साम्राज्य की स्थापना होने पर हेनोवर भी उसी में विलीन सा ही हो गया, क्योंकि उसी राज्य के साथ उसके हित सम्बद्ध थे।

(३) **समूह शासन अथवा अस्थायी अनुसंघ** (Confederacy or temporary Alliance)—तीसरे प्रकार का राजनैतिक बंधन वह है जो दो या दो से अधिक पूर्णतया स्वतंत्र राज्यों में, अस्थायी तौर से अपने आर्थिक अथवा राजनैतिक अथवा अन्य प्रकार के स्पष्टतया वर्णित हितों की सामूहिक रक्षा करने के लिये एक लिखित समझौते या संधि द्वारा स्थापित किया जाता है। ऐसे रूप के मेल को अनुसंघ अथवा अस्थायी संघ कहा जाता है। इस प्रकार के सम्मिलित संघ में प्रत्येक सदस्य-राज्य अपने पृथक् व्यक्तित्व या अस्तित्व को तो बनाये रखता है, किन्तु कुछ वर्णित कार्यों या हितों को मिलकर सुरक्षित रखने के लिये आवश्यक संस्थायें अथवा मशीन स्थापित कर दूसरे सदस्यों के साथ एकता या सहयोग कर लेता है। किन्तु यह बंधन स्पष्टतया वर्णित समय या अवधि के लिये होता है। जिन नई स्थापित संयुक्त संस्थाओं द्वारा उन हितों की रक्षा होती है, उनकी संख्या परिमित और शक्ति अथवा अधिकार क्षेत्र सीमित होता है। इन संस्थाओं के निर्णय भी सदस्य राज्यों को संस्तुति (Recommendation) के रूप में भेजे जाते हैं, अनिवार्य रूप से उन पर स्वतः लागू नहीं होते। इस प्रकार के राजनैतिक बंधनों के तीन उदाहरण आधुनिक काल में मिलते हैं, अमरीका का अनुसंघ (१७७६-१७८९), स्विस अनुसंघ (सन् १८७४ तक) और आस्ट्रो-जर्मन अनुसंघ (सन् १८६७ तक) आस्ट्रो- हंगेरियन अनुसंघ (१८६७-१९१९)। इन चारों का वर्णन आगे किया गया है। ऐसे अनुसंघ बाहरी रूप में, अर्थात् अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तो एक ही राज्य के समान दिखाई देते हैं और क्रिया भी करते हैं, किन्तु उन्हें बद्ध रखने और एक ही रहने की शक्ति इतनी निर्बल होती है कि वे आन्तरिक रूप से भिन्न होते हुए अपनी बाहरी अभिन्नता को अधिक समय तक बनाये रखने में असमर्थ होते हैं और किसी महत्वपूर्ण राजनैतिक घटना से उत्पन्न समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ हो जाते हैं। ऐसे बन्धन का या तो विघटन हो जाता है, जैसे आस्ट्रो हंगे-रियन अनुसंघ (१८६७-१९१९) का विघटन प्रथम विश्व-युद्ध की टक्कर न सहने से हो गया था, अन्यथा आवश्यक परिस्थितियों के दबाव से वे संघवाद के सिद्धान्तों

की शरण लेकर संघ-राज्य (Federation) स्थापित कर लेते हैं जैसे स्विस अनुसंघ ने १८७४ और अमरीकी अनुसंघ ने १७८९ में किया था।

(४) **संघात्मक राज्य** (Federation)—चौथी प्रकार का राजनैतिक बन्धन संघात्मक बन्धन है जिसके फलस्वरूप दो या अधिक स्वतंत्र राज्य आपस में मिलकर, स्वेच्छा से, अपनी स्वतंत्र शक्ति का कुछ भाग त्याग कर एक नये स्थापित शासन को सौंप कर अपने ऊपर एक नवीन संविधान द्वारा, एक केन्द्रीय सरकार स्थापित कर लेते हैं, इस शासन अथवा सरकार की शक्तियाँ वा अधिकार संविधान में स्पष्ट कर दिये जाते हैं और वह सरकार उनका प्रयोग कर नवीन निर्मित संघात्मक राज्य पर शासन कर सदस्य-राज्यों के हितों की समदृष्टि से रक्षा करती है। इस प्रकार संघात्मक बन्धन से संघीय राज्य का नवनिर्माण होता है जिसकी शक्ति कानून निर्माण, कानून को लागू करना, न्याय करना, अपने आय के लिये अपने कर लगाना और अपने प्रशासन के लिये आवश्यक कर्मचारियों की भर्ती करना, सभी कुछ शामिल होता है। केन्द्रीय सरकार और सदस्य राज्यों अथवा संघ में सम्मिलित राज्यों की सरकारें सह-अस्तित्व के सिद्धान्त पर अपने अपने अधिकार क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक शासन करती हैं; ऐसे ही संघ-राज्य में संघवाद के सिद्धान्तों का पालन होता है और संघात्मक शासन व्यवस्था का प्रायोगिक रूप देखने में आता है। आधुनिक युग में सबसे प्रथम ऐसे संघ-राज्य की स्थापना सन् १७८७ में बनाये गये संविधान के अनुकूल ४ मार्च १७८९ को संयुक्त राज्य अमरीका के नाम से हुई थी जिसकी सफलता देख कर कनाडा (१८६७), स्विट्जरलैंड (१८७४), आस्ट्रेलिया, (१९०२) ने भी संघात्मक शासन प्रणाली को अपनाया। प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् तो संघवाद की लोकप्रियता बहुत बढ़ गई और इसके फलस्वरूप आज संसार में अनेक संघ-राज्य दिखाई देते हैं जिन्होंने संघवाद के विकास में अपने अनुभव की देन दी है।

अनुसंघीय राज्य और संघ-राज्य में भेद

संघ-राज्य (Federation) अनुसंघीय राज्य (Confederation) में बहुत भेद है। यह भेद उनके रूपों, अधिकारों, उद्देश्यों, निर्माणविधि, उनके पारस्परिक सम्बन्धों, प्रशासकीय प्रणालियों और उनके आधारभूत सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं में होता है, यद्यपि वे दोनों संघवाद के सिद्धान्तों के अनुकूल बनते हैं। संघ-राज्य में तो संघवाद का पूरा प्रयोग होता है किन्तु अनुसंघीय राज्य में यह सिद्धान्त एक बहुत परिमित सीमा तक ही लागू होता है।

अनुसंघीय राज्य अथवा कान्फेडेरेशन एक ऐसा राज्य है जिसके निर्माण

असाधारण परिस्थितियों में होता है। जब दो अथवा अधिक स्वतंत्र राज्यों को अपनी स्वतंत्रता पर बाहिरी शक्तियों के अतिक्रमण से आघात पहुँचने का भय होता है तो वे तत्कालीन अतिक्रमण के भय से अपनी रक्षा करने के लिये एक ऐसा सम्बन्ध स्थापित करते हैं जिसमें उनकी रक्षा हो जाती है। इस निमित्त से वे एक समझौता या संधि करते हैं और उसकी शर्तों के अनुसार कुछ संस्थायें स्थापित कर लेते हैं जो संस्थायें उनके सहयोग को बढ़ाकर अनुसंघ को बली बना देती हैं। साथ ही साथ वे राज्य अपने पृथक् व्यक्तित्व को ज्यों का त्यों रहने देते हैं, केवल उस क्षेत्र में जिसमें वे आपसी हितों की रक्षा के लिये मिल कर काम करना चाहते हैं, एकमत होकर निश्चित नीति अपना लेते हैं और इस नीति का संचालन उन संस्थाओं द्वारा होता है जिनको वे इसी हेतु स्थापित करते हैं। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि में तो वे अनुसंघ के रूप में एक ही राज्य समझे जाते हैं किन्तु सभी आन्तरिक शासन में अपना व्यक्तित्व भिन्न रखते हैं। आधुनिक काल में ऐसा अनुसंघ थोड़े ही काल के लिये सफल हो सकता है। इसके विपरीत अथवा इससे रूप में भिन्न एक संघीय राज्य है जिसकी स्थापना दो या अधिक स्वतंत्र राज्य अपने अधिकार क्षेत्र का कुछ भाग एक ऐसे शासन को सौंप देते हैं जो एक संविधान द्वारा, स्थायी रूप से शासन के विभिन्न अंगों, विधान मंडल, कार्यपालिका, न्यायपालिका, स्वतंत्र आय के स्रोत, निजी कर्मचारियों का वर्ग, सभी राज्य-सम्बन्धी संस्थाओं द्वारा सम्पन्न होता है। ऐसा संघात्मक राज्य प्रभु सत्ताधारी होता है। इसमें सदस्य इकाइयों अथवा सम्मिलित राज्यों की स्वतंत्रता बहुत परिमित हो जाती है क्योंकि वे राज्य संघ स्थापित करते समय एक नवीन शासन पद्धति अर्थात् संघात्मक शासन को अंगीकृत कर एक ऐसी केन्द्रीय सरकार की व्यवस्था करते हैं जिसके अधिक सम्पूर्णतया संविधान में वर्णित तथा उसी स्रोत से प्राप्त होते हैं। उस केन्द्रीय सरकार को ही अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में मान्यता मिलती है। ऐसे संघ में राज्यों (उप-राज्यों) को संघ में केन्द्रीय शासन के प्रति बहुत श्रद्धा होती है, और केन्द्रीय सरकार तथा उपराज्य की सरकार के सम्बन्ध, अनुसंघ की अपेक्षा, अधिक घनिष्ठ होते हैं, उनमें अधिकतम सहयोग होता है।

अनुसंघ में सम्मिलित होने वाले स्वतंत्र राज्य अपने व्यक्तित्व को अविछिन्न रखते हैं, वे केवल उन्हीं न्यूनतम अधिकारों को अनुसंघीय सरकार को देते हैं जिनको देने के लिये सामयिक बाह्य परिस्थितियाँ उन्हें मजबूर करते हैं। वे राज्य अनुसंघ केवल इसीलिये बनाते हैं कि उनका संकट दूर हो अथवा भावी विपत्ति अथवा आगे आनेवाले संकट की संभावना न रहे। ऐसे राज्यों में सहयोग की भावना बहुत

सीमित, और वह भी परिस्थितियों से उत्पन्न भय से उत्पन्न होती है। वे अपनी स्वतंत्रता पर केवल उतना ही बन्धन लगाते हैं जो उस समय की परिस्थिति में परमावश्यक होता है, अतएव अनुसंघीय सरकार अथवा संस्थाओं की शक्ति परिमित होती और उसके बढ़ने की संभावना नहीं होती। इस शक्ति का स्पष्ट वर्णन उस समझौते (Agreement) अथवा सन्धि (Treaty) में कर दिया जाता है जिसके अनुसार अनुसंघ की स्थापना की जाती है। संघात्मक राज्य (Federation) में शामिल होने वाले राज्य एक स्थायी संविधान द्वारा एक नये राज्य की स्थापना करते हैं। जिसमें केन्द्रीय (संघीय) सरकार के अधिकार बहुत विस्तृत होते हैं। संघ-राज्य में सम्मिलित हुए राज्यों में सहयोग की इच्छा कहीं अधिक होती है; वे अपना अस्तित्व रखते हैं, न तो संघ में विलीन ही हो जाते हैं और न संघ की केन्द्रीय सरकार के अधिकारों को इतनी कठोरता से सीमित करते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर उनमें वृद्धि हो ही न सके। संघ में दोनों ही स्तरों के शासन (केन्द्रीय तथा प्रांतीय अथवा उपराज्यीय) अपने अपने अधिकार क्षेत्र में स्वतंत्र और एक दूसरे के अतिक्रमण से सुरक्षित रहते हैं क्योंकि संविधान दोनों स्तरों के शासनों को वैधानिक दृष्टि से उनके वर्णित क्षेत्रों में समान प्रभुत्व देता है। संघीय राज्य में दोनों स्तरों की सरकारों का नागरिकों पर सीधा अंकुश होता है, किसी माध्यम अथवा मध्यस्थ द्वारा नहीं।

उद्देश्य की दृष्टि से भी अनुसंघों और संघों में बड़ा भेद है। अनुसंघ इस उद्देश्य से बनाया जाता है कि उसमें शामिल होने वाले राज्य एक वर्णित समय तक जिसको समझौता अथवा संधि में या तो स्पष्ट ही कर दिया जाता है और या यह कह दिया जाता है कि जब तक उसमें सम्मिलित राज्यों की इच्छा है तब तक यह सहयोग व्यवस्था जारी रहेगी, अर्थात् अनुसंघी स्थायी नहीं होता। इसके विपरीत संघ-राज्य का निर्माण इसलिये किया जाता है कि सम्मिलित उपराज्यों को स्थायी तौर पर एक ऐसे राज्य में रहना अधिक लाभदायक और हितकारी मालूम होता है जो उनके स्वेच्छा से शासन की सभी प्रकार की शक्तियों से सुसज्जित उनके कुछ हितों की सदा ही रक्षा करता रहे, इसलिये संघात्मक राज्य स्थायी होता है और उसके विघटन की कोई संभावना, वैधानिक दृष्टि से नहीं रह जाती। यही कारण है कि अनुसंघों का कालान्तर में या तो विघटन (Dissolution) हो जाता है जैसे नीदरलैंड्स के अनुसंघ का, और आस्ट्रो-हंगेरियन साम्राज्य का १९२९ में हुआ था, जिसके फलस्वरूप प्रत्येक राज्य अनुसंघ बनाने के पूर्व की दशा के अनुसार पूर्ण स्वतंत्रता फिर से प्राप्त कर लेता है; अथवा अनुसंघ में सहयोग बढ़ने

से वह पूर्णरूपेण संघ-राज्य में परिणत हो जाता है जैसे १८७४ में स्विस अनुसंघ और १७८९ में अमरीकी अनुसंघों ने किया था। सारांश यह है कि अनुसंघ का उद्देश्य अस्थायी व्यवस्था है और संघ का उद्देश्य स्थायी शासन व्यवस्था है।

अनुसंघों और संघों की निर्माण विधियों में भी भेद होता है। स्वतंत्र राज्य जब अनुसंघ बनाते हैं तो आपस में समझौता या सन्धि कर लेते हैं जिसमें वे सभी शर्तें भी वर्णित होती हैं जिन पर वे एकमत हो कर अपना अस्थायी राजनैतिक सहयोग करते हैं और अनुसंघ के कार्य-क्षेत्र तथा उस कार्य को पूरा करने के लिये स्थापित संस्थाओं के अधिकारों का वर्णन होता है। इस समझौते की शर्तों को बदलने का अधिकार अथवा अनुसंघ के विघटन करने की अवस्था भी स्पष्ट कर दी जाती है। ऐसे अनुसंघ में राज्यों के अधिकार समान होना आवश्यक नहीं होता। किन्तु संघ-राज्य की स्थापना राज्यों में हुए अनुबन्ध के अनुसार होती है। यह अनुबंध एक सम्पूर्ण संविधान होता है, जो एक नवीन सरकार की स्थापना करता है, जो केन्द्रीय तथा उपराज्यों की सरकार के कार्यक्षेत्रों को स्पष्ट करता है और दोनों स्तरों के शासनों के अधिकारों की रक्षा के निमित्त एक न्यायालय स्थापित करता है। वही न्यायालय संविधान की सर्वोच्च सत्ता को रक्षित करता है। ऐसे संघ-राज्य को एक बार स्थापित कर सदस्य-राज्य उसका विघटन नहीं कर सकते क्योंकि वह राज्य स्थायी है जिसके विघटन की माँग करना एक राजनैतिक विद्रोह है जिसे दबाने का पूरा-पूरा अधिकार संघ की केन्द्रीय सरकार को संविधान में ही प्राप्त होता है। फिर बदलती हुई परिस्थितियों में उस संविधान में संशोधन भी उसके अन्तर्गत वर्णित प्रक्रिया द्वारा हो सकता है। इस प्रकार संघराज्य प्रगतिशील होकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता हुआ स्थायी रहता है। अनुसंघ की शक्ति और अधिकारों का आधार एक समझौता है, उसके सदस्य स्वतंत्र राज्यों की जनता नहीं है, किन्तु संघ के अधिकारों का आधार संविधान है जो संघ की जनता द्वारा अंगीकृत होता है। अतएव अनुसंघ के निर्णय उसमें सम्मिलित राज्यों की सरकारों पर लागू होते हैं और उनके द्वारा वहाँ की जनता पर। इसके विपरीत संघ-सरकार के निर्णय सारे संघ की जनता पर स्वतः लागू होते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि अनुसंघ स्वतंत्र राज्यों की सरकारों की इच्छा पर कायम रहता है किन्तु संघ, संविधान से प्राप्त अधिकारों के कारण, संघ की जनता से सीधा सम्बन्धित होता है।

अनुसंघ के अधिकार सीमित रहते हैं, उन अधिकारों को कार्यान्वित करने के लिये जो संस्थायें स्थापित होती हैं उनके निर्णय राज्यों की सरकारों को स्तुतियों के

रूप में भेजे जाते हैं। उन पर विचार करने के पश्चात् ही ये सरकारें अपने विधान मंडलों द्वारा विधि बनाकर (यदि विधि की आवश्यकता होती है) या कार्यपालिका की स्वीकृति लेकर, लागू करती है, अर्थात् ऐसे निर्णयों का लागू किया जाना राज्यों की सरकारों की इच्छा पर निर्भर रहता है। किन्तु संघ-राज्य में संघ की सरकार स्वतंत्र रूप से अपने विधान मंडल द्वारा आवश्यक विधि बनाती है, अपनी कार्यपालिका द्वारा प्रशासकीय आज्ञाएँ जारी करती और उनको लागू करने का प्रबन्ध अपने कर्मचारियों द्वारा करती है। अनुसंघ अपने अधिकार में प्राप्त विषयों जैसे देश की रक्षा के लिये सेना का रखना, तथा वैदेशिक नीति और सम्बन्धों को कार्यान्वित करने के लिये उचित कदम उठाना आदि में जो धन की आवश्यकता होती है उसके लिये या तो राज्यों से धन की माँग करती है या उन सीमित करों और आय के साधनों द्वारा जो अनुसंघ के समझौते या संधि में उसे दिये गये हैं, धन का प्रबन्ध करती और घाटे को पूरा करने के लिये राज्यों से धन की माँग करती है। इसके विपरीत संघ की केन्द्रीय सरकार के अधिकार, अधिक विस्तृत होते हैं, उसे धन के लिये उपराज्यों का मुँह नहीं ताकना पड़ता है क्योंकि आय के साधन उसको इतनी मात्रा में प्राप्त होते है कि वर्तमान अनुभव यही कहता है कि वह उपराज्यों की सरकारों को उलटी अपनी ओर से आर्थिक सहायता देती है। अनुसंघों में राज्यों के सम्बन्ध अनुसंघ से बहुत संकुचित और सीमित रहते हैं। संघ में उपराज्यों के केन्द्रीय सरकार के बीच विधायिनी, प्रशासकीय, आर्थिक तथा सभी प्रकार के क्षेत्र में बढ़ते ही जाते हैं। इन उपराज्यों की सरकारों और केन्द्रीय सरकार के सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ, बहुत विस्तृत और अधिकाधिक सहयोग के आधार पर बढ़ते रहते हैं जिससे संघ का शासन अधिक सफलता के साथ चलता है।

अनुसंघों और संघों की शासन प्रणालियों में भी भेद होता है। किसी भी अनुसंघ में सम्मिलित राज्य अपनी शासन व्यवस्था और प्रणाली को पूर्ववत् रखते हैं, उनकी प्रभुसत्ता भी अविछिन्न रहती है, राज्य और उसके नागरिकों के सम्बन्ध और शक्ति तथा अधिकार भी अनुसंघ की स्थापना के पहले की भाँति ही रहते हैं, केवल जिन हितों की रक्षा के लिये वे राज्य सहयोग स्थापित करते हैं, उन्हीं के क्षेत्र में शासन की व्यवस्था की प्रक्रिया बदल जाती है। वह प्रक्रिया और व्यवस्था आपस में हुए निर्णय के अनुसार होती है जिसमें राज्यों के नागरिकों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, क्योंकि वे तो केवल अपने राज्य के ही नागरिक रहते हैं, उसी के कानूनों का पालन करते, उसी के कर्मचारियों से शासित तथा उसी के न्यायालयों से न्याय प्राप्त करते हैं। किन्तु संघ में सम्मिलित राज्यों की शक्ति और अधिकारों का

बटवारा नई स्थापित केंद्रीय सरकार तथा पूर्व राज्य की सरकार में हो जाता है। अर्थात् संघ में सम्मिलित राज्यों के नागरिकों के ऊपर दो सरकारें, केंद्रीय सरकार और राज्य की सरकार का अधिकार स्थापित हो जाता है, वह केंद्रीय सरकार के अधिकृत क्षेत्र में केंद्रीय सरकार के कानूनों, प्रशासकीय आज्ञाओं और न्यायालयों के निर्णयों से उतना ही बाध्य हो जाता है जितना की राज्य की सरकार के क्षेत्र में राज्य के कानूनों, प्रशासकीय आज्ञाओं, न्याय-व्यवस्था तथा करों से बाध्य रहता है। और क्योंकि यह शासन व्यवस्था एक स्थायी रूप की हो जाती है, नागरिक के ऊपर दो सरकारों का अधिकार होने के कारण उसकी राजनैतिक स्थिति, अनुसंघ के नागरिक से, बहुत भिन्न हो जाती है ।

अनुसंघों और संघों की शासकीय प्रक्रियायों में भी विभिन्नता होती है । अनुसंघ का शासन उसके विभिन्न राज्यों की शासन-पद्धतियों के अनुसार चलते रहने के कारण ऐसा संभव हो सकता है कि अनुसंघ में सम्मिलित कुछ राज्यों में राजतंत्रीय शासन प्रणाली हो, अर्थात् वहाँ की शासन व्यवस्था में एक राजा ही राज्य-सत्ताधारी हो, कुछ में कुलीन तंत्र हो और कुछ में लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था हो, क्योंकि अनुसंघ के सामूहिक हित केवल विदेशीय नीति, बाह्य आक्रमणों से तथा कुछ में व्यापार तक ही परिमित रहते हैं । उन्नीसवीं शताब्दी तक संघों में भी इस प्रकार राज्यों की शासन-पद्धतियाँ भिन्न प्रकार की, सैद्धान्तिक दृष्टि से, हो सकती थी, यद्यपि उस शताब्दी में प्रायोगिक क्षेत्र में ऐसे किसी संघ का निर्माण नहीं हुआ था। किन्तु आधुनिक काल के किसी संघ के सदस्य-राज्यों में विभिन्न शासन-सिद्धान्तों पर आधारित शासन प्रणालियाँ नहीं हो सकती। संघों का आधुनिक रूप केवल लोकतंत्र के सिद्धांतों पर ही आधारित हैं । लोकतंत्र का मूलभूत सिद्धान्त है शक्ति का प्रसार अथवा विकेन्द्रीकरण जिसमें अधिक से अधिक लोगों को शासननीति निर्धारित करने, प्रशासन में भाग लेने तथा धींगाधींगी से बचने का अवसर मिले । आधुनिक संघों के संविधानों का परीक्षण करने से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उन संविधानों का स्रोत संघ का लोकमत है और नागरिकों द्वारा ही संघीय सरकार को शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान की प्रस्तावना कहती है, "हम संयुक्त राज्य अमरीका के लोग, अधिक पूर्ण मेल (संघ) निर्माण करने, न्याय स्थापित करने, घरेलू शान्ति को स्थायी बनाने, देश की रक्षा करने, सामान्य हित को बढ़ाने और अपने तथा आगे आने वाली पीढ़ियों को स्वतंत्रता के लाभ देने के निमित्त इस संविधान को निर्धारित तथा स्थापित करते हैं।" किन्तु, १७७६ से १७८७ तक के अमरीकी अनुसंघ के समझौते की शक्ति और अधिकारों

का स्रोत अनुसंघ में सम्मिलित तेरह स्वतंत्र राज्य (अर्थात् वे तेरह उपनिवेश जिन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य से सम्बन्ध तोड़ने का निर्णय कर अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी) थे। अनुसंघ की एकमात्र संस्था वहाँ की वह कांग्रेस थी जिसमें उपनिवेशों के प्रतिनिधि अपने स्वतंत्र राज्यों के सामान्य हितों की रक्षा करने के लिये अपनी अपनी सरकार की राय को प्रकट करते थे, वहाँ की जनता से उनका कोई सम्बन्ध न था। किन्तु १७८९ में १७८७ के संघात्मक संविधान के अनुसार संयुक्त राज्य अमरीका में संघ की स्थापना हो गई तो संघ के विधान मंडल में (जिसका नाम, पूर्ववत्, कांग्रेस ही रहा) निचले सदन में जनता के प्रतिनिधि पहुँच गये और संघीय (केंद्रीय) शासन तथा उपराज्यों के शासन का आधारभूत सिद्धान्त ही बदल गया।

अनुसंघ की शासन प्रतिक्रिया यह है कि वहाँ की संस्था (जिसमें सम्मिलित राज्यों की विभिन्न सरकारों के प्रतिनिधि होते हैं) जिन निर्णयों पर पहुँचती है, निर्णय विभिन्न राज्यों की सरकारों के पास संस्तुति (Recommendation) के रूप में भेज दिये जाते हैं। वे सरकारें अपने विधान मंडलों अथवा कार्यपालिकाओं के सामने (निर्णयों की प्रकृति के अनुसार) विचारार्थ रखती हैं। फिर ये ही सरकारें अपने कर्मचारियों द्वारा इन निर्णयों को यथासम्भव कार्यान्वित करती हैं। इसके विपरीत संघ की केंद्रीय सरकार अपने कानूनों, शासन नीति तथा प्रशासकीय आज्ञाओं को अपने ही कर्मचारियों द्वारा नागरिकों पर कार्यान्वित करती है। अनुसंघ अपने सामान्य व्ययों के लिये राज्यों से पूर्वनिर्धारित अनुपात के अनुसार धन की माँग करती हैं जो उन राज्यों की ओर से अनुदान (Grant) का रूप होता है, किन्तु संघ की केन्द्रीय सरकार के पास संविधान से प्राप्त वित्तीय स्रोत और शक्ति होती है जिसका प्रयोग कर वह नागरिकों से वह अपने लागू किये करों को वसूल कर पर्याप्त मात्रा में धन प्राप्त कर अपना शासन कार्य चलाती हैं; उन्हें राज्यों की सरकारों से अनुदान प्राप्ति के लिये प्रार्थना नहीं करनी पड़ती। इन आधारित सैद्धान्तिक भेदों के कारण संघ एक सबल, शक्तिपूर्ण, स्थायी केंद्रीय सरकार के आधीन रहता, किन्तु अनुसंघ निर्बल, अस्थायी तथा शक्ति शून्य संस्था द्वारा चलाया जाता है।

प्रायः अनुसंघ उपरोक्त कारणों से अस्थायी ही सिद्ध हुए हैं। उनका विघटन किसी विशेष परिस्थिति में हो गया है। किन्तु जहाँ किसी अनुसंघ को सफलता प्राप्त हुई है तो वह अधिक बली, शक्तिशाली तथा राज्यों के हितों का अधिक आवश्यक और अनिवार्य सहयोग का वाहक सिद्ध हुआ है तो पूर्ण संघ (Full Federation) में परिणत हो गया।

किसी अनुसंव के सफल सिद्ध होकर संघ में परिवर्तित हो जाने का प्रज्ज्वलन्त उदाहरण संयुक्त राज्य अमरीका (१७७६-१७८९) के वैधानिक विकास से स्पष्ट हो जाता है, जिसका यहाँ वर्णन करना संघवाद के सिद्धान्तों को पूर्णतया समझने के लिये आवश्यक है। जब ४ जुलाई १७७६ को अटलांटिक तटस्थ तेरह उपनिवेशों ने ब्रिटेन से शासन-सम्बन्ध तोड़कर अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी तो उन्होंने उक्त घोषणा में निम्न अन्तिम शब्दों द्वारा अपना निश्चित निर्णय प्रकट किया :

"अतएव संयुक्त राज्य अमरीका के हम प्रतिनिधि इस सामान्य महासभा (कांग्रेस) में समवेत......सत्यनिष्ठा से प्रकाशित और घोषित करते हैं कि ये एकत्रित उपनिवेश अपने अधिकार से स्वतंत्र और बंधनयुक्त राज्य हैं और होने चाहिये; कि वे ब्रिटिश राजमुकुट के प्रति समस्त निष्ठा से निर्मुक्त किये जाते हैं, और उनके तथा ग्रेट ब्रिटेन के राज्य का पारस्परिक सारा राजनैतिक सम्बन्ध पूर्णतया विघटित किया जाता है और विघटित रहना चाहिये; और यह कि स्वाधीन और स्वतंत्र राज्यों की भाँति उन्हें युद्ध करने, शान्ति (संधि) करने, मैत्री सम्बन्ध करने, व्यापार स्थापित करने, और वे सभी कृत्य और विषय करने का जो स्वतंत्र राज्य साधिकार करते हैं, पूर्ण अधिकार (सत्ता) है।"

उपनिवेशों ने अपने पूर्णतया निर्मुक्त और स्वतंत्र राज्य हो जाने, तथा सभी प्रगणित कृत्यों तथा विषयों के करने की, जो स्वतंत्र राज्य स्वाधिकार से करते हैं, करने के स्वाधिकारी होने की घोषणा कर दी। इस घोषणा के शब्दों से यह निश्चित है कि प्रत्येक उपनिवेश को व्यक्तिगत रूप में पूर्ण स्वतंत्र राज्य होने का संकेत है। और इसी साधिकार से उन्होंने अगले वर्ष १५ नवंबर १७७७ प्रसंधान के अनुच्छेदों (Articles of Confederation) का निर्माण किया। इन अनुच्छेदों का ध्येय नवस्वतंत्र राज्यों का शाश्वत संघ (Perpetual Union) स्थापित करना था, जिसमें तेरहों राज्यों को नामांकित किया गया था। प्रथम अनुच्छेद में कहा गया है "इस प्रसंधि का नाम 'संयुक्त राज्य अमरीका है'। यद्यपि यहाँ पर सम्मिलित राज्य को प्रसंधि (अथवा अनुसंधीय राज्य) से संबोधित किया गया है किन्तु अगले अनुच्छेदों से स्पष्ट है कि नवराज्य का ध्येय शाश्वत संघ था। दूसरे अनुच्छेद के अनुसार प्रत्येक राज्य को अपनी व्यक्तिगत प्रभुता, स्वतंत्रता और स्वाधीनता, और प्रत्येक शक्ति, राज्यक्षेत्र और अधिकार जो इस प्रसंधान से संयुक्त राज्य अमरीका की महासभा को स्पष्टतया प्रत्यायुक्त नहीं किये गये हैं, स्वयं रखने का अधिकार है"। तीसरे परिच्छेद में और भी स्पष्ट कर दिया गया था कि ये विभिन्न राज्य "अनेक होते हुए मैत्री के दृढ़ संघ में एक दूसरे के साथ संबद्ध होते हैं, अपनी सार्वजनिक रक्षा, अपनी

स्वतंत्रताओं को सुनिश्चित रखने और पारस्परिक सामान्य हितों के निमित्त"।

इन अनुच्छेदों के अनुसार एक सार्वजनिक संस्था जिसका नाम "महासभा में एकत्रित संयुक्त राज्य"[1] रखा गया था जिसके सदस्यों को विभिन्न राज्य अपने नियुक्त प्रतिनिधियों के रूप में भेजते थे। इन प्रतिनिधियों की राज्यों की जनसंख्या के अनुसार प्रत्येक राज्य से २ से ७ तक थी, किन्तु महासभा (कांग्रेस) में प्रतिनिधियों की संख्या कुछ भी हो प्रत्येक राज्य को एक ही मत (वोट) देने का अधिकार था, अर्थात् प्रसंधान के सार्वजनिक निर्णयों में सभी राज्यों को समान अधिकार था। कांग्रेस के मध्यावकाश में एक समिति, जिसमें प्रत्येक राज्य का एक सदस्य होता था, कार्य-सम्पादन करती थी। जब कभी दो अथवा अधिक राज्यों के बीच, सीमा संबंधी, अथवा राज्य क्षेत्र संबंधी, अन्यथा किसी अन्य कारण से मतभेद वा झगड़ा होता था तो उसका निपटारा कांग्रेस करती थी। कांग्रेस के निर्णय के लिये कम से कम नौ राज्यों की अनुमति आवश्यक थी। ये निर्णय सभी राज्यों पर बंधनकारी थे। तेरहें अनुच्छेद में कहा गया था कि "इस प्रसंधान के अनुच्छेद अनतिक्रम्य रूप से प्रत्येक राज्य को पालनीय होंगे, और संघ शाश्वत रहेगा; आगे इन परिच्छेदों में किया गया कोई भी संशोधन तब तक न होगा जब तक प्रस्तावित संशोधन पर कांग्रेस की अनुमति और प्रत्येक राज्य के विधान मंडल की स्वीकृति प्राप्त न हो जायगी।" इस प्रकार यह प्रसंधान वा संघ शाश्वत, अनिवर्तनीय था जिसमें कोई भी परिवर्तन राज्यों की सर्वसम्मति से ही हो सकता था।

सैद्धान्तिक दृष्टि से 'कांग्रेस में एकत्रित संयुक्त राज्य' की शक्तियाँ विस्तार और क्षेत्र में तो पर्याप्त थीं। नवें अनुच्छेद में इन शक्तियों की प्रगणना इस प्रकार की गई थी :

"कांग्रेस में एकत्रित संयुक्त राज्य को ही शांति और युद्ध का अन्तिम निर्णय करने का, अनुच्छेद में वर्णित दशा में नहीं, राजदूत भेजने और प्राप्त करने, संधियाँ और मैत्रीय संबंध.....(व्यापार संधियों पर कुछ शर्तों सहित) स्थापित करने का एकमात्र और अनन्य अधिकार होगा।"

'कांग्रेस में एकत्रित संयुक्त राज्य को अपनी और राज्यों की आज्ञानुकूल ढाले गये सिक्के की मिश्र धातु और मूल्य को विनियमित करने; समस्त संयुक्त राज्य का माप और तौल का स्तर निश्चित करने; किसी भी राज्य अनिवासी इण्डियनों से व्यापार और संबंधों का विनियमन करने (इस शर्त पर कि किसी राज्य के अपने क्षेत्र में प्राप्त अधि-

1. United States Congress assembled.

कारों पर अतिक्रमण न हो) सारे संयुक्त राज्य में एक राज्य से दूसरे राज्य में डाक ले जाने का तथा उस डाक पर मुद्रांक निश्चित करने (उक्त कार्यालय के व्यय के लिये) ; संयुक्त राज्य की सेवा संलग्न भूमि-सेना सभी पदाधिकारियों (महावायिनी के पदाधिकारियों को छोड़कर) की नियुक्ति करने; जल-सेना के समस्त पदाधिकारियों की नियुक्ति, संयुक्त राज्य की सेवा में संलग्न समस्त पदाधिकारियों की भर्ती करने, उपरोक्त भूमि और जल सेना के अनुशासन और नियमन तथा उनके संकार्यों के निमित्त सभी नियम बनाने का भी एकमात्र और अनन्य अधिकार होगा।

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि कांग्रेस में एकत्रित संयुक्त राज्य की विधायिनी शक्तियों का जो विस्तार बहुत था, परन्तु वे निरर्थक थीं क्योंकि इस संस्था की कार्यपालिका शक्ति सहविस्तृत न हो कर बहुत संकुचित थी, उसके पास ऐसे साधन पर्याप्त न थे जिनके द्वारा वह अपनी शक्ति का प्रयोग कर सके। सैद्धान्तिक दृष्टि से तो यह प्रसंधान सशक्त और बली था क्योंकि वह अविखण्डनीय और शाश्वत (Irrevocable and Perpetual) था, किन्तु संस्थाओं की दृष्टि से वह निर्बल था, उसका शासन अशक्त था। प्रसंधान का न तो कोई विधान मंडल था जो सार्वजनिक विषयों पर कानून बनाता और न उसके पास कोई कार्य पालिका संस्था थी जो शासन को बल दे कर संघ के राज्यों की निष्ठा प्राप्त करती। जैसे जैसे समय बीतता गया, विभिन्न राज्य एक दूसरे से अलग होते गये। राष्ट्रीय एकता को ठेस पहुँचती गई। योग्य नेताओं ने कांग्रेस का सदस्य होना अस्वीकृत किया, इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १७८६-८७ में कांग्रेस की बैठकें कई मास तक गणपूर्ति (Quorum) भी उपलब्ध न हुई।[1] यद्यपि कांग्रेस के निर्णय सिद्धान्ततः आज्ञारूपी (समाज्ञापक) थे, किन्तु वे सिफारिश के तौर पर राज्यों की सरकारों को भेजे जाते थे, वहाँ की जनता को नहीं। फलतः उन निर्णयों के पालन में ढीलढाल होती थी, क्योंकि प्रसंधान की अपनी सरकार न थी जो उसके निर्णयों को संयुक्त राज्य के नागरिकों पर स्वतंत्र शासन करती और उनकी निष्ठा प्राप्त कर सकती। प्रसंधान का रूप स्वतंत्र राज्यों के मैत्री संघ (League of Friendship) का जैसा था। फिर आश्चर्य क्या था कि कभी-कभी उसके निर्णयों के समय कांग्रेस में २०प्रतिशत ही सदस्य उपस्थित रहते थे। सन् १७८६ में वाशिंगटन ने इन शब्दों में अपना विचार प्रकट किया।[2]पूर्ववत्, पृष्ठ "मेरे विचार से तो जब तक हम यह व्यवस्था न करें कि संघ में कहीं ऐसी

1.Faulkner, H. U.—**A Short History of the American People,** pp. 118-19.

2. पूर्ववत पृष्ठ ११९

शक्ति रख दी जाय जो सारे संघ में अपनी शक्ति को इतने ही बल से जितने से राज्यों की सरकारें अपने क्षेत्र में प्रयोग करती हैं, व्यापक कर सके, हम एक राष्ट्र के रूप में न रह सकेंगे।" सन् १७८७ में हेमिल्टन ने भी कुछ ऐसे ही विचार और भी अधिक बलपूर्वक प्रगट किये थे, "शायद ही हम किसी ऐसी बात का अनुभव न करते हों जो किसी स्वतंत्र राज्य के स्वाभिमान को चोट न पहुँचाती हो अथवा हमारे चरित्र को न गिराती हो ... राज्य के अपचारों ने राष्ट्रीय सरकार के पहियों की गति रोक दी है ... इसकी कमज़ोर इमारत अब गिरना ही चाहती है, जो हमें अपने खंडहरों के नीचे नष्ट कर देगी।" इस निर्बलता का कारण कांग्रेस के पास शक्तियों का अभाव अथवा कमी न था; उसके पास वे साधन थे जिनके द्वारा अपनी शक्ति को कार्यान्वित करती। उसका सम्बन्ध राज्यों की सरकारों से था, वहाँ की जनता से कोई सम्पर्क न था। प्रसंधान के अनुच्छेदों ने राज्यों के ऊपर कोई सरकार स्थापित नहीं की थी जो अपनी शक्ति द्वारा संयुक्त राज्य को बलवान बनाती; उनके द्वारा स्वतंत्र राज्यों का कतिपय स्पष्टतया गिनाये गये हेतुओं के लिए एक अबद्ध और शिथिल संघ स्थापित हुआ, कोई नवीन सरकार का जन्म नहीं हुआ था। प्रसंधान द्वारा एक अशक्त मशीन की स्थापना हुई थी जिसको सार्वजनिक कार्यों का संचालन सौंपा गया।

जब यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस में एकत्रित संयुक्त राज्य एक शक्तिहीन संस्था है तो अमरीका के विचारशील नेताओं ने उन साधनों को खोजना आरम्भ किया जिनके द्वारा उस समय की असुविधाओं और कष्टों का निवारण हो सके। ये कष्ट तीन प्रकार के थे; प्रथम उन बाह्य आक्रमणों का भय था जो ब्रिटेन के साथ पुनः युद्ध होने की आशंका से, तथा स्पेन के द्वारा मिसिसिपी की घाटी में अतिक्रमण से उत्पन्न हो रहा था; द्वितीय, विभिन्न राज्यों में कर वसूली और न्याय स्थापना के विरुद्ध होते हुए सशस्त्र आदोलनों से था जिनसे संयुक्त राज्य में अनुशासनहीनता और अराजकता फैल रही थी, तृतीय आर्थिक आपदा बढ़ती जा रही थी क्योंकि सिक्के (चलार्थ) का अवमूल्यन (Depreciation) होने से विदेशों से व्यापार में साख कम हो रही थी और सामान्य विश्वास के घटने से सभी उद्यमों में रुकावट हो रही थी। इन्हीं कष्टों का निवारण करने के लिये सभी राज्यों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन अन्नापोलिस में सन् १७८७ में बुलाया गया कि वह अनुच्छेदों में उचित संशोधन कर प्रसंधान को सशक्त बनावे।

इसी सम्मेलन में कुछ प्रतिनिधियों ने सबसे प्रथम 'फेडरल' (Federal) शब्द का प्रयोग कर संघात्मक शासन की स्थापना करने की ओर संकेत किया था। निस्सन्देह उपनिवेश निवासियों की १७७६ में इच्छा तो यही थी कि एक स्थायी संघ की स्थापना

हो "परन्तु संविधान के अनुच्छेद बनाये गये उनसे राज्यों का वास्तविक एकीकरण नहीं हुआ; आरम्भ से ही वे बालू की रस्सी के समान जिससे कोई नहीं बाँधा जा सकता था. .. । वे केवल अंतर्राष्ट्रीय समझौते के समान थे।"[1] कांग्रेस केवल सम्मति दे सकती थी । वह राज्यों से धन की माँग तो कर सकती थी, किन्तु उसके पास कोई ऐसा साधन न था जिससे वह अपनी माँग को पूरा करा सके; वह संधि व समझौता कर सकती थी पर उसकी शर्तों का पूरा करना राज्यों पर छोड़ना पड़ता था; वह ऋण ले सकती थी किन्तु उसे चुकाने के लिये राज्यों पर निर्भर रहना पड़ता था । स्वतंत्रता के युद्ध के पश्चात् वह राज्यों को एकसूत्र में बाँधने में असफल रही । इसलिए अन्नापोलिस के सम्मेलन में केवल पाँच राज्यों के प्रतिनिधि ही आने पाये थे कि उन्होंने आपस में बात-चीत आरम्भ कर दी और वे इस परिणाम पर पहुँचे कि संयुक्त राज्य के सामने जो राजनैतिक और आर्थिक समस्याएँ हैं वे इतनी गहरी, गम्भीर और व्यापक हैं कि केवल अनुच्छेदों में जहाँ तहाँ संशोधन करने से न सुलझ सकेंगी, उनको सुलझाने के लिये एक नया संविधान बनाकर ही एक सशक्त शासन स्थापित हो सकेगा और अन्य राज्यों के प्रतिनिधियों के आने पर यह प्रस्ताव किया कि सभी राज्य अपने निर्वाचित प्रति-निधि भेज कर फिलेडेलफिया (Philadelphia) में संविधान द्वारा एक नया संविधान बनाने का विचार करें, अन्यथा राज्यों में शान्ति और सहयोग असम्भव हो जायगा। तदनुसार फिलेडेलफिया सम्मेलन ने कई मास के विचार विमर्श के पश्चात् एक संविधान तैयार किया, जिसके २१ जून १७८७ को स्वीकृत होने पर शक्तहीन प्रसंधान के स्थान पर संयुक्त राज्य अमरीका का संघीय शासन की स्थापना हुई जिसके विधान मंडल (कांग्रेस) का पहला अधिवेशन ४ मार्च १७८९ को हुआ । वही संविधान आज उस महान् देश में कुछ संशोधनों सहित आज तक संघ का आधार है । इस संघीय विधान के अनुसार केंद्रीय सरकार को विधायिनी शक्ति कांग्रेस द्वारा, कार्यपालिका शक्ति एक निर्वाचित राष्ट्रपति (President) द्वारा और न्यायपालिका शक्ति उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) द्वारा प्रयोग करने का अधिकार है, जिसके निमित्त उसे वित्तीय अधिकार तथा अपने कर्मचारियों द्वारा अपने निर्णयों को कार्यान्वित करने का पूरा-पूरा अधिकार है । यह है संयुक्त राज्य अमरीका के प्रसंधान के संघीय राज्य में परिणत होने की संक्षिप्त कहानी ।

इस प्रकार स्थापित संघ की शक्ति का आधार वहाँ के नागरिक हैं जिनके ऊपर दो सरकारें (केंद्रीय तथा राज्य की) सह-अस्तित्व, सहयोग और नागरिकों का हित

---

1. Newton, A. P., **Federal and Unified Constitutions**, p. 22.

साधन करती हैं। प्रत्येक का राज्य क्षेत्र स्पष्टतया वर्णित है, दोनों के पास अपने कार्य संपादन के लिये उपयुक्त साधन है। भविष्य में उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों में वह संविधान संशोधित हो सकता है।

यहाँ पर हम संक्षेप में एक अनुसंघ अथवा प्रसंधान (Confederation) और संघ (Federation) का भेद इस प्रकार कर सकते हैं : (क) अनुसंघ सम्मिलित राज्यों के ऊपर एक अबद्ध अथवा शिथिल संघ है, किन्तु संघ एक सशक्त और स्वाधिकारी शासन है जिसको नागरिकों से शक्ति प्राप्त होती हैं और उन्हीं से उसका सीधा सम्बन्ध है; (ख) अनुसंघ की स्थापना एक ऐसे समझौते वा संधि के द्वारा होती है जो एक निश्चित समय के लिये की जाती है और यदि सदा के लिये भी हो तो उसकी शर्तें समयानुकूल बदली जा सकती हैं, किन्तु संघ की स्थापना एक शाश्वत मेल के आधार पर संविधान द्वारा होती हैं, जो संविधान केंद्रीय तथा राज्यों की सरकारों की शक्तियों का स्रोत है, अतः कोई सरकार दूसरे के राज्य क्षेत्र पर अतिक्रमण नहीं कर सकती; (ग) अनुसंघ (प्रसंधान) में सार्वजनिक संस्था की शक्तियाँ बहुत परिमित और संकुचित होती हैं और उनको लागू करने के लिये उसे राज्यों पर निर्भर रहना पड़ता है, किन्तु संघ में केंद्रीय सरकार के अधिकार और शक्तियाँ अधिक विस्तृत होते हैं जिन पर उसका स्वाधिकार होता है और जिन्हें वह अपने विभिन्न साधनों द्वारा लागू कर सकती है; (घ) अनुसंघ में एकत्रित राज्यों का प्रसंधि से पृथक् होकर पूर्ववत् स्वतंत्रता प्राप्त करने का अधिकार होता है, किन्तु संघ की स्थापना हो जाने पर कोई भी राज्य संघ से निकलकर अपनी स्वतंत्रता की घोषणा नहीं कर सकता, ऐसा करना संघ के खिलाफ़ विद्रोह करना है और ऐसी दशा में केंद्रीय सरकार अपनी पूरी शक्ति का उपयोग कर विद्रोह का दमन करने और विद्रोही राज्य को संघ में रहने के लिये बाध्य करने का अधिकार रखती है; (ङ) अनुसंघ वा प्रसंधान में एकत्रित राज्य अपनी प्रभुता (Sovereignty) पूर्ववत् रखते हैं, किन्तु संघ में राज्यों की सरकार प्रभुत्वपूर्ण नहीं रहती; (च) अनुसंघ में सार्वजनिक संस्था एकत्रित राज्यों के अधीन अथवा मातहत होती है, किन्तु संघ में राज्य की सरकार और केंद्रीय सरकार सह-अस्तित्व रखती हुई एक दूसरे से स्वतंत्र होती हैं। इस प्रकार संघ एक शाश्वत मेल है और अनुसंघ एक अवसरानुकूल अस्थायी मेल अथवा मैत्री है जिसमें एकत्रित राज्य अपनी पूर्ण स्वतंत्रता रखते हुए कुछ समय के लिये, कतिपय थोड़े से सार्वजनिक हितों की रक्षा करने के लिये सहयोग करते हैं।

इस प्रकार के भेद की आलोचना करते हुए, संयुक्त राज्य अमरीका के सम्बन्ध में ह्वीअर (Wheare) का कहना है कि, "तथ्य तो यह है कि १७८७ तक 'फेडरल'

शब्द का अर्थ यह था कि वह विभिन्न पक्षों की शुभ भावना पर निर्भर राज्यों का संघ (League) था, और यही प्रसंधान के अनुच्छेदों का प्राकृतिक वर्णन था। वास्तव में 'दी फेडरेलिस्ट' (The Federalist) के लेखकों का यह कहना सत्य न था कि १७८७ के संविधान ने एक अदक्ष संघ के स्थान पर एक दक्ष संघ की स्थापना की थी। साथ ही साथ जिस नये संविधान का उन्होंने समर्थन किया था उसके द्वारा, उन्हीं के विचार में, एक भिन्न और नव-सिद्धान्त पर आधारित शासन (सरकार) की स्थापना की थी, जिस सिद्धान्त के अनुसार केंद्रीय (सामान्य) सरकार और क्षेत्रीय सरकारों में शक्ति-विभाजन हो गया और वे एक दूसरे से स्वतंत्र थीं।"[1] यही बात कुछ हेर-फेर के साथ अन्य स्थानों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती हैं, जहाँ भी अनुसंघ (प्रसंधान) और संघ में भेद किया जाता है। अनुसंघ और संघ, दोनों ही, में शासन की शक्ति का विभाजन होता है। कुछ शक्तियाँ सामान्य सरकार को मिलती हैं और कुछ क्षेत्रीय सरकारों के पास रहती हैं, भेद इतना है कि अनुसंघ की सामान्य सरकार क्षेत्रीय सरकारों के (जो पूर्ववत् प्रभुसत्ताधारी बनी रहती हैं) अधीन रहती है, किन्तु संघ की सामान्य (केंद्रीय) सरकार राज्यों की सरकारों से स्वतंत्र रहती है और वह उन शक्तियों का स्वाधिकार से उपभोग करती है जिनको राज्यों से स्थायी रूप से, उनकी प्रभुसत्ता को कम कर, ले लिया जाता है। किन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि संघ की केंद्रीय सरकार संविधान से अपनी शक्ति पाकर राज्यों की सरकारों से किसी प्रकार अधिक उच्चतर हो जाती है; दोनों ही स्तरों (केन्द्र तथा राज्य) की सरकारें अपने-अपने राज्य क्षेत्र में पूर्णतया स्वतंत्र होती हैं। सारभूत बात यह नहीं है कि शक्ति विभाजन इस प्रकार होता है कि राज्यों (क्षेत्रों) की सरकारें संविधान में अवशिष्ट अनुरिक्थ-ग्राही (Residuary Legatees) हो जाती हैं; किन्तु यह कि शक्ति का विभाजन इस प्रकार किया जाता है कि अवशिष्ट शक्तियाँ किसी को भी मिलें, दोनों सरकारों में कोई भी एक दूसरे के अधीन नहीं होती। यह सत्य है कि अविशेष शक्तियाँ कहाँ पर रहें, क्योंकि इसी पर संघ में शक्ति का संतुलन निर्भर है। जब पूर्व स्वतंत्र राज्य मिलकर अपने स्वेच्छा से सार्वजनिक हितों की रक्षा के निमित्त सारे संघ के ऊपर एक केंद्रीय शासन स्थापित करते हैं तो उसको केवल गिनायी हुई शक्तियाँ ही देते हैं और शेष शक्तियाँ अपने अधिकार में रखते हैं। आगे चलकर अपने अनुभव के अनुसार शक्तियों के विभाजन में संविधान के संशोधन द्वारा अथवा अन्य व्यावहारिक तरीकों से दोनों स्तरों की सरकारों में शक्ति-संतुलन होता रहता है।

---

1. Wheare, K. C., **Federal Government**, p. 11

उपरोक्त से यह स्पष्ट होता है कि संघ में दोनों सरकारों का सह-अस्तित्व रहता है; अनुसंघ में एकत्रित स्वतंत्र राज्यों की प्रभुसत्ता अविछिन्न रहती है, वास्तविक ऐक्यों (Real Unions) में राज्यों का सम्पूर्णतया विलयन हो जाता है; व्यक्तिगत ऐक्यों (Personal Unions) में राज्य सर्वथा स्वतंत्र रहते हुए एक शासक से शासित होते हैं।

संघवाद की परिभाषा

जब दो या अधिक राज्य मिल कर एक ऐसी नई राज्य व्यवस्था (शासन) स्थापित करते हैं जिसमें कुछ सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिये गिनी हुई शक्तियाँ एक नवीन सरकार को सौंप कर शेष शक्तियाँ अपने पास रख लेते हैं, तो वे एक संघ का निर्माण करते हैं। अतएव संघवाद के सिद्धान्तों के अनुसार स्थापित संघ में राज्य क्षेत्र दो समानाधिकारी संस्थाओं (केंद्रीय सरकार तथा राज्य की सरकार) में बट जाता है जिनमें प्रत्येक एक नवीन संविधान द्वारा नियमित होती है। हर्मन फाइनर (Herman Finer) के अनुसार "संघ-राज्य वह है जिसमें राज्य की शक्ति और अधिकार तो स्थानीय क्षेत्रों की सरकार के पास रहते हैं और अन्य शक्ति और अधिकार एक केंद्रीय संस्था वा सरकार के पास रहते हैं।" आचार्य डायसी (Dicey) ने कहा है कि "संघवाद का अर्थ है राज्य की शक्ति का विभाजन ऐसी समन्वयी संस्थाओं में जिनकी शक्ति का स्रोत एक ही संविधान होता है जो उनके कार्यों पर नियंत्रण रखता है।[1]" ऐसे संघ-राज्य में केंद्रीय तथा राज्यों की सरकारों का सह-अस्तित्व और सहयोग रहता है क्योंकि दोनों ही नागरिक के संगठित जीवन को सफल बनाने का प्रयत्न करती हैं। अतएव संघवाद के अनुसार संघ में सम्मिलित होने वाले राज्यों की सरकारों की शक्तियों में कुछ कमी हो जाती है और वे संप्रभुत्तापूर्ण नहीं रहतीं क्योंकि वे कुछ गिनायी हुई शक्तियाँ केंद्र की सरकार को स्वेच्छा से देती हैं। जिस व्यवस्था में एकत्रित राज्य अपनी संप्रभुता को ज्यों का त्यों रखते हैं उसे हम संघ न कहकर केवल अनुसंध ही कहेंगे। संघ में केंद्रीय और राज्य की सरकारों की शक्तियाँ संघ के संविधान में वर्णित रहती है, और प्रत्येक सरकार संघ के संविधान द्वारा नियंत्रित रहती हुई अपनी शक्ति का अपने राज्य-क्षेत्र में उपभोग करती है। संघ में सम्मिलित राज्यों की सरकारें अपना

---

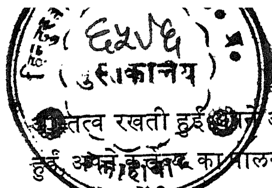
1. **Law of the Constitution,** (8th edition), p. 153.
Encyclopaedia Britannica, Ed. XIII, Vol. X, p. 233.
Newton, A. P., **Federal and Unified Constitutions,** 1923 Edition, p. 2.

विलयन नहीं करतीं, वरन् वे राज्य कुछ राज्य-क्षेत्र में एकता स्थापित करते हैं और इसलिए अपनी शासन शक्ति का एक स्पष्टतया वर्णित भाग एक केंद्रीय सरकार को सौंपते हुए, शेष भाग अपने पास रख कर अपना पृथक् व्यक्तित्व कायम रखते हैं। जिन शर्तों पर वे ऐसे संघ-शासन की स्वेच्छा से (किसी के दवाब से नहीं) स्थापना करते हैं वे एक अनुबंध के रूप में संघ के संविधान में वर्णन कर दी जाती हैं। यह संविधान उन राज्यों का वह पवित्र राजनैतिक अनुबंध (Contract) हो जाता है जो उन राज्यों की शक्तियों का स्रोत तथा उनके ऊपर नियंत्रण रखनेवाला यंत्र तथा उनके अस्तित्व का आधार होता है। यद्यपि ऐसे संघ में सम्मिलित होने वाले राज्यों की पूर्व स्वतंत्रता में कुछ घाटा अवश्य हो जाता है, किन्तु उन्हें संघ की शक्ति का बल मिल जाने से लाभ अधिक होता है। इसी लाभ से ही आकर्षित होकर वे संघ बनाते हैं। फ्रीमेन (Freeman) के अनुसार इस विस्तृत अर्थ में "संघात्मक शासन की संज्ञा एक ऐसे राजनैतिक मेल को दे सकते हैं जो ऐसी कई इकाइयों के एकत्रित होने से उत्पन्न होता है, जिसमें एकता का स्तर केवल मैत्री से अधिक होता है और साथ ही साथ प्रत्येक इकाई की स्वतंत्रता वा शक्ति नगरपालिकीय स्वतंत्रता से अधिक होती है।[१]" अतएव किसी संघ के निर्माण के लिये दो लक्षण आवश्यक हैं; प्रथम तो उस संघ के सदस्य-राज्य अपने अपने उस राज्य क्षेत्र में स्वतंत्र हों जो उनके लिये निर्धारित किया गया है; द्वितीय वे सब उस सार्वजनिक शक्ति अथवा शासन के नियंत्रण के अधीन हों जो उनके सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिये, केंद्रीय सरकार के रूप में स्थापित की गई है। सारांश यह है कि संघात्मक संविधान वह है जो राज्य की शक्ति को जो सार्वजनिक हित के लिये आवश्यक है, एक केंद्रीय सरकार को देता है और उस शक्ति को जो प्रत्येक ज़िले, प्रदेश वा देश के भाग के हित में आवश्यक है, उसे स्थानीय सरकार को देता है जो भाग पर शासन करती है। संघात्मक संविधान और ऐकिक अथवा एकात्मक संविधान में यही भेद है, कि संघात्मक संविधान एक राजनैतिक अनुबंध जो राज्य की शासन शक्तियों को दो भागों में विभाजित कर दो सरकारों में बाँटता है, केंद्रीय सरकार जो सारे संघ पर शासन करती है और सदस्य राज्य वा इकाई की सरकार जो केवल स्थानीय क्षेत्र पर शासन करती है, किन्तु एकात्मक संविधान राज्य की सारी शक्ति एक ही सरकार को देता है जो उस एकात्मक राज्य पर पूर्णतया शासन करती है।

संघ में दोनों स्तरों की सरकारें (केंद्रीय सरकार और राज्य की सरकार) सह-

---

1. Freeman, **History of Federal Government,** Vol. I, pp. 2-3.



अस्तित्व रखती हुई अपने अपने निर्दिष्ट क्षेत्र में एक दूसरे के हस्तक्षेप से मुक्त रहती हुई, अपने कर्तव्य का पालन करती हैं। संघ में रहनेवाला निवासी दोनों के प्रति निष्ठा रखता है। केंद्रीय सरकार का राज्य क्षेत्र सारा देश है, कि तु सदस्य-राज्य की सरकार का राज्य-क्षेत्र केवल वही भूखण्ड है जो पहले से उसके पास था; वे दोनों सरकारें अपने-अपने राज्य क्षेत्र पर शासन करती हैं और एक दूसरे के अधिकार में हस्तक्षेप नहीं कर सकतीं। क्योंकि दोनों सरकारों की शक्तियाँ स्पष्टतया वर्णित होती हैं वे शांतिपूर्वक शासन करती हैं; दोनों का उद्देश्य नागरिकों की सेवा करना है।

संघ का सारा क्षेत्रफल कई प्रान्तों (Provinces) अथवा राज्यों (States) अथवा गणों (Republics) में विभक्त रहता है। विभिन्न संघ-राज्यों में सदस्य-राज्यों का जो संघ बनाते हैं, विभिन्न नामों से संबोधित किया गया है। संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और भारत में उन्हें राज्यों (States) की संज्ञा दी गई है; कैनाडा में वे प्रांत (Provinces) कहलाते हैं; साम्यवादी रूस में गण-राज्य (Republics) और स्विट्ज़रलैंड में केन्टन कहे जाते हैं। केंद्र की सरकार सारे क्षेत्रफल पर शासन करती है, केवल उन विषयों में जो उसे संविधान द्वारा दिये गये हैं; परन्तु राज्यों की सरकारें अपने-अपने सीमित क्षेत्रफल पर शासन करती हैं, उन विषयों में जो उन्हें संविधान से प्राप्त हैं। इन दो प्रकार और स्तरों की सरकारों के शासन की स्थिति और उनका सम्बन्ध इस चित्र से स्पष्ट हो जाता है।

अ ब (top corners); द स (bottom corners)

क	ख	ग
घ	च	छ

अ ब स द किसी संघ-राज्य (Federation) के अधीन देश है, जिसमें छः उपराज्य अथवा प्रान्त क, ख, ग, घ, च और छ सम्मिलित हैं। केंद्रीय सरकार सारे संघ पर राज्य करती है, उसके कानून, आदेश तथा न्यायिक निर्णय सारे देश अ, ब, स,द पर लागू होते हैं; किन्तु प्रत्येक प्रांत की सरकार का शासन अपने अधीन क्षेत्रफल पर ही होता है। उदाहरणार्थ, क प्रांत का निवासी दो सरकारों के प्रति निष्ठा रखता है, केंद्रीय सरकार के प्रति जो अपनी निर्दिष्ट राज्य-शक्ति सारे देश पर रखती है और प्रांतीय सरकार के प्रति जिसकी राज्य-शक्ति क प्रांत के क्षेत्रफल पर उन विषयों में रहती है जो उसे संविधान से प्राप्त हैं। भेद केवल इतना ही है कि दोनों शासनों के अधीन विषय पृथक्-पृथक् होते हैं, जिनका उल्लेख संविधान में स्पष्ट रूप से कर दिया जाता है। ये दोनों सरकारें अपना कार्य प्रत्येक समय करती रहती हैं। फ्रीमेन ने ठीक कहा है, "हम एक यथार्थ और पूर्ण संघ को राज्यों का संग्रह कह सकते हैं जिसमें राज्यों के आन्तरिक विधि निर्माण वा विधान में केंद्रीय सरकार का हस्तक्षेप उतना

अवैध होगा जितना राज्य सरकार का विदेशों से राजनयिक सम्बन्ध रखना।"[1]

संघात्मक संविधान के सारभूत लक्षण

संघात्मक तथा एकात्मक संविधान का अध्ययन करने से हमें संघात्मक संविधान के ऐसे अत्यावश्यक अथवा सारभूत लक्षणों का पता चलता है जो उसकी विशेषताएँ हैं और उसके एकात्मक संविधान से भिन्न करती हैं। ये लक्षण इस प्रकार हैं : संघात्मक संविधान में दोनों स्तरों की सरकारों के बीच विधायिनी शक्ति और शासनाधिकारों का विभाजन, उप-राज्यों का संघ-विधान-मंडल में प्रतिनिधित्व; दो शासनाधिकारी शक्तियों का सह-अस्तित्व; संविधान की अनम्यता अथवा कठोरता; आय सम्बन्धी विशेष प्रबन्ध; न्यायपालिका का विशेष (महत्वपूर्ण) स्थान; राज्य की नागरिकता अथवा राज्य के प्रतिनिष्ठा; सम्बन्ध विच्छेद के सिद्धान्त का अभाव।

दो सरकारों का सह-अस्तित्व (Coexistence of two Governments)—संघानीय शासन में दो सरकारें, केंद्रीय सरकार तथा उपराज्यों की सरकारें, सान्निध्य में रहती हैं। इन दोनों की शक्तियों का विभाजन संविधान में कर दिया जाता है, इसलिए वे स्वतंत्र रूप से अपने शासन क्षेत्र में एक दूसरे के न तो अधीन होती हैं और न उनमें कोई उच्च और कोई निम्न होती है। दोनों अपने-अपने राज्य क्षेत्र में स्वाधिकारी होते हैं; दोनों का वास्तविक उद्देश्य सारे राज्य के नागरिकों का हित साधन होता है; उनमें प्रतिद्वन्द्विता का अभाव और सहयोग की भावना होती है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के कई सेवकों का जिनके कर्तव्य और कार्यक्षेत्र निर्दिष्ट कर दिये गये हों, अपने स्वामी के सेवा में संलग्न रहते हैं और आपस में सहयोग रखें, उसी प्रकार नागरिक की आवश्यकताओं की पूर्ति संघ की केंद्रीय सरकार और उपराज्य की सरकार अपने अपने निर्दिष्ट राज्य-क्षेत्र में अपने कर्तव्य पालन द्वारा करती हैं; वे दोनों संपूरक होती हैं, प्रतिद्वंद्वी नहीं। प्रत्येक सरकार को अपने राज्य क्षेत्र में निर्दिष्ट कार्य के निमित्त कानून बनाने, कानून की आज्ञानुसार प्रशासन करने तथा अपने व्यय के लिये वित्तीय अधिकार संविधान से प्राप्त होते हैं और इनको पूरा करने के लिये साधन भी दिये जाते हैं। नागरिक दोनों सरकारों के कानूनों का समदृष्टि से पालन करता है, उनके द्वारा लगाये करों को देता है और दोनों से प्राप्त सुविधाओं और अधिकारों से लाभ उठाता है। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमरीका में न्यूयार्क का निवासी न्यूयार्क की सरकार के कानूनों का शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विषयों में पालन करता है, और देश की रक्षा, विदेशों से व्यापार, मुद्रा आदि विषयों में संयुक्त राज्य की सरकार के कानूनों

---

1. **History of Federal Government,** Vol. I, p. 10.

का पालन करता है। भारत में उत्तर प्रदेश का निवासी उत्तर प्रदेश के विधानमंडल द्वारा तथा भारतीय संसद के बनाये कानूनों का पालन करता है और क्योंकि दोनों ही सरकारें एक दूसरे की संपूरक हैं और अपने अपने क्षेत्र में समान शक्तिवाली हैं, उनमें उच्च और निम्न का प्रश्न ही नहीं उठाया जा सकता।

केंद्र की सरकार का अधिकार और नागरिकों से सीधा सम्पर्क उसी प्रकार होता है जिस प्रकार राज्य अथवा प्रांत की सरकार का होता है, क्योंकि संघ की स्थापना संविधान से होती है और संविधान सभी सदस्य राज्यों के नागरिकों की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त सम्मति से बनाया जाता है। संघात्मक संविधान का निर्माण किसी संविधान सभा द्वारा होता है जिसमें नागरिकों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। और संविधान की स्वीकृति या तो नागरिकों की ओर से उनके सभा में भेजे प्रतिनिधि ही करते हैं, जैसा कि भारत के संविधान की २६ नवम्बर १९४९ को उस संविधान की प्रस्तावना इन शब्दों द्वारा वर्णित हुई थी "हम, भारत के लोग, भारत को एक **सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिये, तथा उसके समस्त नागरिकों को **दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान-सभा** में आज तारीख २६ नवम्बर १९४९ ई० (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छः विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते।**" अथवा वह संविधान संविधान सभा से स्वीकृत होकर उपराज्यों के नागरिकों की सीधी स्वीकृति के लिये भेज दिया जाता है, जैसा आस्ट्रेलिया के संविधान को वहाँ के उपराज्यों में भेजा गया था। संयुक्त राज्य अमरीका के संघानीय विधान की अन्तिम स्वीकृति एक अन्य प्रकार से लोकतंत्रात्मक क्रिया द्वारा हुई थी, इस प्रक्रिया को, फिलेडेल्फिया की संविधान सम्मेलन ने संविधान को अन्तिम रूप देकर उसके साथ संलग्न निम्न प्रस्ताव में निर्धारित कर दिया था, "कि पूर्वगत संविधान कांग्रेस में एकत्रित संयुक्त राज्य के समक्ष रखा जावे, और इस सम्मेलन की राय है, कि तत्पश्चात् प्रत्येक राज्य के नागरिकों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के (प्रत्येक राज्य के) सम्मेलन में, उस राज्य के विधानमंडल की सिफ़ारिश से, उसकी अनुमति और अनुसमर्थन के लिये उसके सामने रखा जावे; और प्रत्येक सम्मेलन अपनी अनुमति और अनुसमर्थन की सूचना कांग्रेस में एकत्रित संयुक्त राज्य को दे।[1] जब नौ राज्यों की अनुमति और अनु-

---

1. **Resolved,** that the preceding Constitution be laid before the United States in Congress assembled, and that it is the opinion of this convention, that it should afterwards be submitted to a convention of delegates, chosen in each State by the people there of

समर्थन की सूचना मिल गई तो वह संविधान लागू कर दिया गया। इन तीनों ही प्रक्रियाओं से लोकतंत्रात्मक अनुमति का भान होता है जो यह सिद्ध करता है कि संविधान नागरिकों की इच्छा से निर्माण हुआ और नागरिक ही उस संविधान की शक्ति के स्रोत हैं, केंद्रीय तथा उपराज्य की सरकारों की शक्तियों का आधार और स्रोत नागरिक हैं, दोनों सरकारों का सम्बन्ध सीधा नागरिकों से है, वे दोनों सरकारें संविधान द्वारा निर्धारित राज्य-क्षेत्र में एक दूसरे से स्वतंत्र हैं।

संघ की केंद्रीय सरकार नागरिकों पर अपना शासन सीधा चलाती है, संघवाद का यह प्रमुख सिद्धान्त है जिसका प्रतिपादन सभी ने किया। अंग्रेजी विश्वकोष (Encyclopaedia Britannica) के अनुसार 'संघीय (केंद्रीय) सरकार अपनी स्पष्टतया वर्णित शक्तियों की, केवल उपराज्यों पर ही नहीं, वरन् प्रत्येक नागरिक पर, सीधी क्रिया चलाती है.... फलतः संघ के नागरिकों की दो निष्ठायें होती हैं, एक तो उपराज्य की सरकार के प्रति, और दूसरी संघीय (केंद्रीय) सरकार के प्रति। वे दो कानून-समूहों के नीचे निर्वाह करते हैं, राज्य-सरकार के कानून और संघीय सरकार के कानून।'[1] ब्राइस (Bryce) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि जिन राज्यों को हम उन्हीं राज्यों को उपयुक्त संघ-राज्य कह सकते हैं 'जिन राज्यों में केंद्रीय सरकार विभिन्न संघटक राज्यों के नागरिकों पर अपना प्राधिकार सीधा प्रयोग करती है।'[2] आगे चलकर वह कहता है, 'अत्यावश्यक स्वरूप है प्रत्येक नागरिक पर दो प्राधिकारों का अस्तित्व, प्रदेश राज्य का, या कैंटन का (जैसे कि स्विट्ज़रलैंड में) या प्रांतों का (जैसे कैनाडा में), जिसका वह निवासी है, और राष्ट्र का, जिसमें सारे प्रदेश-राज्य सम्मिलित हैं, और वह (प्राधिकार) सभी नागरिकों पर समानतया चालू होता है। इस प्रकार प्रत्येक नागरिक की निष्ठा दोहरी होती है, अपने प्रदेश के प्रति और अपने राष्ट्र के प्रति। वह दो विधि-समूहों के अधीन रहता है, अपने प्रदेश

---

under the recommendation of its legislature, for their assent and ratification, and that each convention assenting to, and ratifying the same shold give notice there of to the United States in Congress assembled.

1. **Encyclopaedia Britannica,** Vol. X, p. 233.

और भी; Newton, A. P., **Federal and Unified Constitutions,** (1923), p. 5.

Bryce, J., **Studies in History and Jurisprudence,** Vol. II, p. 490.

2. **Constitutions,** p. 27.

की विधियाँ और राष्ट्र की विधियाँ। वह अधिकारियों के दो समूहों की आज्ञाओं का पालन करता है, अपने प्रदेश के अधिकारी और राष्ट्र के अधिकारी, और करों के दो गटों की अदायगी करता है, इनके अतिरिक्त अपने नगर अथवा काउन्टी द्वारा लगाये कर भी देता है।'[1] इस प्रकार की द्वि-नागरिकता उन सभी संघीय संविधानों में मान ली गई है जिनका निर्माण पूर्व-स्वतंत्र राज्यों के मिलने से (एकीकरण की प्रक्रिया) हुआ था। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान का चौदहवाँ अनुच्छेद निर्धारित करता है कि "सभी लोग जो संयुक्त राज्य में जन्मे अथवा देशीयकृत हैं, और उनके अधिकार क्षेत्र में हैं, संयुक्त राज्य के तथा जिस प्रदेश में रहते हैं उसके नागरिक हैं . . . ।"[2]

संघनीय राज्य को दोनों स्तरों की सरकारों, केन्द्रीय तथा प्रदेशीय, का आधार उस संघ का संविधान है जो उनके बीच हुए बंधन को स्थिर रखता हुआ एक पवित्र संविदा है जिसके द्वारा दोनों सरकारों के राज्यक्षेत्र को पृथक् पृथक् निर्धारित किया गया। प्रत्येक सरकार अपने निर्धारित राज्यक्षेत्र में अपनी शक्ति नागरिक पर चालू करती है। प्रदेशों की सरकारों के अधिकार विशेषतया वे हैं जो या तो स्थानीय महत्व के है, जैसे स्वास्थ्य, सार्वजनिक व्यवस्था, न्याय प्रशासन, स्वच्छता, चिकित्सालय आदि, अथवा वे हैं जिन्हें वे सरकारें अधिक सफलता से प्रशासित कर सकती हैं जैसे कृषि, वन, आरक्षी, उद्योग, सिंचाई, संचार आदि। केंद्रीय सरकार का राज्यक्षेत्र सारे संघ के शासन में एकता रखने की आवश्यकता से सम्बन्धित विषयों का होता है, जैसे संघ की बाह्य आक्रमणों से रक्षा, सेना, नौसेना, विमान बल, विदेशी सम्बन्ध, युद्ध, शान्ति, प्रत्यर्पण, डाक, तार, चलार्थ, टंकण, विदेशीय विनिमय आदि। प्रत्येक सरकार अपने निर्धारित राज्यक्षेत्र में पूर्णतया स्वतंत्र, स्वाधिकारी और प्रभुत्व सम्पन्न है। फ्रीमेन ने इस स्थिति को इन शब्दों में स्पष्ट किया है, "संघ (केंद्र) अपने विभाग में उतना ही प्रभुत्व सम्पन्न है जितना प्रदेश अपने विभाग में। संघ की सरकार के वैध आदेशों का प्रतिरोध ऐसा ही विद्रोह जैसा किसी राजा की वैध आज्ञाओं का प्रतिरोध। (संघ में) एक प्रदेश द्वारा दूसरे प्रदेश का अपकार अथवा दूसरे प्रदेश के नागरिक का अपकार अन्तर्राष्ट्रीय अपकृत्य का विषय नहीं है, वह तो केवल शांति-भंग है जिसका परिशोधन संघ-न्यायालय कर सकता है, अथवा, यदि आवश्यक हो तो, संघ के सैनिक

१. पूर्वोक्त, पृ० २८८।

2. "All persons born or naturalited in the United States, and subject to the jurisdiction thereof, are citizens of the United States and of the State wherein they reside...."

बल से उसका दण्ड-बोधन किया जा सकता है। सिद्धान्त एक ही है... ।"[1] आधुनिक राज्यों में एकात्मक राज्य की शक्ति का भी विकेंद्रीकरण हो रहा है और स्थानीय स्वशासन का महत्व किसी भी लोकतंत्रात्मक शासन में सहायक होता हुआ, नागरिकों को सुविधाजनक सिद्ध हो रहा है। इसी प्रकार संघ की दो सरकारों के पृथक् पृथक् राज्यक्षेत्र में अधिकारों के अधीन रहने से नागरिक को किसी प्रकार असुविधा नहीं होती। दो सरकारों का इस प्रकार का सह-अस्तित्व संघात्मक शासन की विशेषता है। संविधान की विशेष अनम्यता और सर्वोच्चता—संघात्मक संविधान की दूसरी विशेषता है उसकी अनम्यता अथवा काठिन्य और इसी से उत्पन्न उस संविधान की सर्वोच्चता। सामान्यतः सभी संविधान , चाहे वे एकात्मक हों अथवा संघात्मक, राज्य की सर्वोच्च विधि ही होते हैं और जब तक उनमें संशोधन नहीं होता, वे न्यायालयों, पदाधिकारियों तथा विधानमंडलों पर बाध्य अथवा अनिवार्यतया लागू होते हैं। किन्तु संघात्मक संविधान विशेषतः सर्वोच्च विधि हैं इसके कई कारण हैं। यह वर्णन किया जा चुका है कि स्वतंत्र राज्य जब सम्मिलित होकर अपने सार्वजनिक हितों की रक्षा के निमित्त संघ की स्थापना करते हैं तो वे बहुत विचार, वाद-विवाद तथा गम्भीर परिस्थितियों के सुलझाने के पश्चात् ही ऐसा संविधान स्वीकार करती है जिसमें उनकी पूर्व शक्तियों और प्रभुसत्ता में कमी हो जाती है क्योंकि उनकी कुछ गिनायी शक्तियाँ और अधिकार नव-निर्मित केंद्रीय सरकार को सौंप दिये जाते हैं और इस प्रकार केंद्रीय सरकार का राज्यक्षेत्र पृथक् हो जाता है जिसमें प्रदेश सरकारों का हस्तक्षेप, अनाधिकार चेष्टा अथवा अतिक्रमण समझा जाता है जो संविधान की दृष्टि में अवैध होता है। जिन शर्तों पर संघ की स्थापना होती है वे लेखबद्ध कर दी जाती हैं, इसलिए संघात्मक संविधान लिखित होता है। यह सच है कि आज कल लिखित विधान की प्रवृति है, चाहे राज्य ऐकिक (Unitary State) हो या संघात्मक हो (Federal); पर संघात्मक संविधान का लिखित होना अनिवार्य है, वह एक संविदा है जिसके द्वारा कई राज्य सम्मिलित होकर अपने ऊपर एक ऐसी केन्द्रीय सरकार स्थापित करते हैं जो शक्ति का निर्धारित भाग अपने अधीन कर लेती है जिसको संविधान में लिखित रूप दिया जाता है। यह संविदा या अनुबन्ध बड़ा नाजुक होता है क्योंकि उसमें दोनों स्तरों की सरकारों की शक्तियों का संतुलन रहता है। दो व्यक्तियों में भी यदि कोई संविदा या करार होता है तो उसकी शर्तों को लेखबद्ध कर स्पष्ट और संदेहरहित करने का प्रयास किया जाता है कि भविष्य में उन दोनों को अपने अपने अधिकारों के

1. **History of Federal Government,** Vol. I., pp. 102-103.

सम्बन्ध में भ्रांति न हो। यही बात उस पेचीदा, स्थायी तथा आने वाली पीढ़ियों के राजनैतिक जीवन में बद्ध करनेवाले संघात्मक संविधान की है जो प्रदेश राज्यों के अधिकार क्षेत्रों को स्पष्ट करता है, उनकी शक्तियों की मर्यादा स्थिर करता है। अतएव संघ-सरकार या प्रांतीय सरकार द्वारा निर्मित विधि को अथवा उसके कृत्यों को तभी वैध समझा जाता है जब वे संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति के अनुकूल हो। संघों में विभिन्न सरकारों में शक्ति अथवा अधिकार के उपभोगों के वारे में आये दिन मतभेद होता है और आपसी झगड़े खड़े हो जाते हैं। इन का निपटारा करने के लिये संविधान की लिखित शर्तें एक कसौटी का काम करती है, यदि वे लिखित न हो तो संघ में विभिन्न राज्यों में सहयोग की भावना के स्थान में संघर्ष होना स्वाभाविक हो जायगा। किन्तु ऐकिक राज्य में एक ही शासन-शक्ति, राज्य की सरकार होती है वहाँ इस प्रकार का संघर्ष उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि शासन की सारी शक्ति, अविभाज्य है और उसी सरकार के अधिकार में है। उदाहरणार्थ, इंगलैंड एकात्मक राज्य है, वहाँ एक ही सरकार है, एक ही विधान मंडल (संसद) है जिसकी विधायिनी शक्ति असीमित तथा व्यापक है और उसके द्वारा किसी भी विधि की अवैधता का प्रश्न ही नहीं उठ सकता, वहाँ एक ही कार्यपालिका है, अतएव वहाँ का संविधान प्राय: अलिखित होता हुआ भी शासन व्यवस्था में कठिनाइयाँ उपस्थित नहीं करता है। दूसरी ओर संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान संघात्मक है, वहाँ प्रत्येक नागरिक को दो विधि समूहों का पालन करना पड़ता है जिनमें संघ की कांग्रेस द्वारा अपने राज्य क्षेत्र सम्बन्धी कानून होते हैं और प्रदेश के विधान मंडल द्वारा राज्यीय राज्यक्षेत्र सम्बन्धी कानून होते हैं। विधि निर्माण के समय प्रत्येक सरकार को संविधान की शर्तों और उसके द्वारा निर्धारित राज्यक्षेत्र का ध्यान रखना पड़ता है, यदि कोई कानून उस राज्य क्षेत्र का उल्लंघन करता है तो वह अवैध है। अतएव ऐसी शासन व्यवस्था में संविधान का लिखित होना अत्यावश्यक और अनिवार्य है।

संघ-राज्य में यह भी आवश्यक है कि जिन शर्तों के अनुसार संघ का निर्माण हुआ है उनका संशोधन सरलता से न हो, अन्यथा संघीय संविदा की स्थिरता नहीं रहेगी। फिर भी मानव समूहों की प्रगतिशीलता, भविष्य में उत्पन्न होने वाली अदृश्य परिस्थितियों और अंतर्राष्ट्रीयता के बढ़ते वेग में, यह आवश्यक है कि संविधान में वे परिवर्तन या संशोधन कर दिये जावें जो उन परिस्थितियों-में अत्यावश्यक हैं। यही कारण है कि संविधान निर्माता संघात्मक संविधान में अत्यावश्यक संशोधन करने के लिये एक प्रक्रिया को स्पष्टतया लेखबद्ध कर देते

हैं, जिसके अनुसार भविष्य में संविधान में संशोधन हो सके ।

एकात्मक राज्य में जो सरकार होती है उसकी विधायिनी शक्ति अपरिमित होती है । ऐसे राज्य का विधान सरलता से संशोधनीय होता है, और संशोधन की प्रक्रिया प्रायः वही होती है जिसके द्वारा सामान्य विधि बनाई जाती है । उदाहरणार्थ, इंगलैंड का शासन विधान अत्यन्त नम्य अर्थात् लचीला है । यह लचीलापन दो प्रकार से प्रगट होता है, वहाँ का संविधान साधारण विधि निर्माण प्रणाली से बदला जा सकता है और बदली परिस्थितियों में संविधान में आमूल परिवर्तन किया जा सकता है, केवल देश के नागरिकों का विरोध न हो । पार्लियामेंट राजतंत्र को, हाउस ऑफ़ लार्ड्स को, अपने संगठन को, उसी प्रकार बदल सकती है जिस प्रकार वह सड़क की चौकी सम्बन्धी विधि निर्माण करती है और उसकी किसी भी विधि की वैधता का प्रश्न न्यायालय में नहीं उठाया जा सकता । सन् १६३२, १८६७, १८८४, १९११ और १९२८ के सुधार-विधेयक तथा १९३१ का वेस्ट मिंस्टर स्टेट्यूट तथा १९४७ का भारतीय स्वतंत्रता का विधेयक उसी प्रक्रिया से पारित किये गये थे जिस प्रकार कोई भी साधारण विधेयक पारित किया जाता है । सन् १९३६ दिसम्बर का राज्य-त्याग विधेयक उपस्थित होने के आध घंटे के भीतर ही पारित हो गया और राजा के हस्ताक्षर किये जाने पर वह विधि (Abdication Act) लागू हो गई जिस से एडवर्ड अष्टम का राज्य त्याग वैध घोषित कर जार्ज षष्ठ को राजा बना दिया गया । किसी अन्य देश में ऐसा परिवर्तन करने के लिये एक बड़ी क्रान्ति की आवश्यकता पड़ती । सर जॉन होल्ट ने ठीक ही कहा है कि पार्लियामेंट कोई अपकृत्य (Wrong) नहीं कर सकती, भले ही उसके बहुत से कृत्य असाधारण दिखाई दे ।[1] अन्य एकात्मक संविधान भी बहुत कुछ इसी प्रकार नम्य होते हैं ।

इसके विपरीत संघात्मक संविधान अनम्य वा कठोर होते हैं क्योंकि उनके स्थायित्व पर ही उपराज्यों के शासन की सुरक्षा निर्भर रहती है । अतएव प्रगतिशील रहने तथा भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये केवल अत्यावश्यक संशोधन करने की प्रक्रिया साधारण विधि निर्माण की प्रक्रिया से भिन्न तथा विशिष्टतया कठिन कर दी जाती है । इंगलैंड तथा ऐकात्मक राज्य फ्रांस आदि की संशोधन प्रक्रिया से भिन्न तथा विशिष्ट प्रक्रिया स्विट्जरलैंड, आस्ट्रेलिया, भारत तथा संयुक्त

---

1. City of London Vs. Wood (1700) 12 Mod. 669, pp. 687-88 के निर्णय में ।

राज्य अमरीका के संविधानों के संशोधन की प्रक्रियाएँ हैं। संयुक्त राज्य अमरीका का संघात्मक संविधान सबसे अधिक अनम्य तथा क्लिष्ट अथवा अपरिवर्तनीय है, क्योंकि इसमें संशोधन करने की प्रक्रिया बहुत कठिनाई से पूरी हो सकती है। यही कारण है कि पिछले पौने दो सौ वर्षों में लगभग दो हजार बार संशोधन करने की कोशिश की गई किन्तु २२ ही संशोधन अब तक हुए हैं। इन में से दस संशोधन, जो वास्तव में नागरिकों के मूलाधिकार हैं, १७९१ में हुए। सन् १८०४ से १८६५ तक कोई संशोधन नहीं हुआ, १८७० और १९१३ के बीच और १९२१-१९३२ के बीच कोई भी संशोधन न हो सका। सभी संघात्मक संविधान एक से ही अनम्य नहीं होते। भारत का संविधान बहुत कम अनम्य है, यही कारण है अब तक १२ वर्षों के भीतर इसमें १४ संशोधन हो चुके हैं और इनमें कई संशोधन वैधानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं जैसे कि १९५६ का सातवाँ संशोधन और १९६२ का चौदहवाँ संशोधन। संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान अन्य संघात्मक संविधानों की अपेक्षा अत्यन्त अनम्य है, जैसा कि निम्न संशोधन प्रक्रिया से स्पष्ट हो जाता है।

अमरीकी संघात्मक संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया उक्त संविधान के पाँचवें अनुच्छेद में दी गई है, जो इस प्रकार है, "कांग्रेस जब कभी उसके दोनों सदन आवश्यक समझेंगे, इस संविधान को संशोधन का प्रस्ताव रखेगी, अथवा, विभिन्न उपराज्यों के विधान मंडलों की प्रार्थना पर संशोधन प्रस्तुत करने के लिये एक सभा (कन्वेंशन) बुलावेगी। ये संशोधन, कैसे भी प्रस्तुत हुए हों, तभी सर्व-प्रकार मान्य और वैध होंगे जब उनका अनुसमर्थन तीन-चौथाई उपराज्यों के विधान मंडलों अथवा तीन-चौथाई उपराज्यों में (इसी हेतु बुलाई गई) सभाओं (Conventions) द्वारा हो जावेगा। यह बात कांग्रेस निश्चित करेगी कि किस प्रकार अनुसमर्थन (विधान मंडलों अथवा सभाओं द्वारा) हो; परन्तु सन् १८०८ के पूर्व किया गया कोई भी संशोधन प्रथम अनुच्छेद के खण्ड ९ के पहले और चौथे उपखण्ड में परिवर्तन न करेगा, और न किसी उपराज्य को, उसकी सहमति के बिना, सीनेट में समान मताधिकार से वंचित किया जावेगा।"

उपरोक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संशोधन प्रक्रिया की दो अवस्थायें हैं, एक तो संविधान में संशोधन प्रस्तुत करना, दूसरी उस संशोधन का अनुसमर्थन पहली अवस्था, अर्थात् संशोधन का प्रस्ताव प्रस्तुत करना, को निम्न दो प्रकारों में से किसी भी प्रकार से किया जा सकता है; (१) कांग्रेस स्वयं अपने ही अधिकार से संशोधन का प्रस्ताव कर सकती है; यदि दोनों सदनों में पृथक् पृथक् दो तिहाई बहुमत उस संशोधन को स्वीकार करता हो। (२) दो तिहाई उपराज्यों के विधान-

मंडल कांग्रेस से संशोधन,की प्रार्थना कर सकते हैं; ऐसा किया जाने पर इन संशोधनों का प्रस्ताव करने के लिये कांग्रेस एक (राष्ट्रीय) सभा बुलाती है जो प्रस्ताव तैयार करती है ।

संशोधन प्रक्रिया की दूसरी अवस्था है संशोधन का अनुसमर्थन होना उपरोक्त दोनों में से किसी भी प्रकार संशोधन को प्रस्तुत किया गया हो, उसका समर्थन तभी वैध और लागू होता है जब या तो तीन चौथाई उपराज्यों के विधान मंडलों द्वारा वह अनुसमर्थित हो जावे, या तीन-चौथाई उपराज्यों, इस हेतु बुलाई गई सभायें उस को स्वीकार कर लें। जब इन दोनों में से किसी भी विधि से अनुसमर्थन हो जाता है तो उक्त प्रस्ताव अन्तिम रूप से स्वीकृत तथा मान्य समझा जाता है और लागू कर दिया जाता है ।

संशोधन की इस प्रक्रिया में संघ-सरकार तथा उपराज्यों, दोनों ही का हाथ रहता है । यह संशोधन प्रक्रिया सहज साध्य नहीं है । यही कारण है कि अब तक केवल २२ संशोधन हुए हैं । यद्यपि वैधानिक दृष्टि से हम अमरीकी संविधान की अनम्यता को 'परम' कह सकते हैं, किन्तु व्यवहार में यह अनम्यता घट जाती है । संयुक्त राज्य के एक राष्ट्रपति वहाँ के संविधान की अनम्यता प्रगट करते हुए कहा था कि वह संविधान ऐसा ही है जैसे किसी व्यक्ति के अंग पर एक बहुत छोटा कोट; यदि वह सामने से बटन लगा देता है तो वह पीछे खुल जाता है । किन्तु व्यवहार में यह वर्णन ठीक नहीं क्योंकि एक अधिनियमित संविधान को समय और परिस्थितियों के अनुकूल बनाने, विधिवत् संशोधन ही एकमात्र तरीका नहीं है । न्यायालय द्वारा की गई संविधान के विविध भागों की व्याख्याओं तथा अमरीका के रीति-रिवाजों और संवैधानिक परम्पराओं से भी वहाँ के संविधान में परिवर्तन और संशोधन हो गया है । ऐसी अनेक परम्परायें स्थापित हो गई हैं जिनके फल-स्वरूप संघ-सरकार और उपराज्यों की सरकारों के सम्बन्ध ऐसे हो गये हैं जो संविधान की लिखित धाराओं से भिन्न है। अमरीका के उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों ने भी संविधान में महत्वपूर्ण व्यवहारिक परिवर्तन कर दिया है । संघात्मक संविधान अपनी प्रकृति से ही लिखित तथा अनम्य अनुबंध है, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर विशेष शैली से उस में संशोधन हो सकता है ।

परम अनम्यता वांछनीय नहीं होती । सन् १७८७ में संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान निर्माण के समय उपराज्यों को केंद्रीय सरकार का अविश्वास था, अतएव उन्होंने केन्द्र को बहुत कम अधिकार देकर शेष अधिकार स्वयं रखे और साथ ही साथ संविधान में संशोधन की विधि बहुत कठिन रखी। किन्तु अनुभव ने यह सिद्ध कर

दिया कि संघ-राज्य की केंद्रीय सरकार तथा उपराज्यों की सरकारों में प्रतिद्वन्द्विता नहीं है, वरन् वे एक दूसरे के सहयोग से ही शासन संचालन करती हैं। बीसवीं शताब्दीं में जो संघ बने उनके संविधान अमरीकी संविधान की भाँति परम अनम्य नहीं है। परिस्थिति बदलने पर नयी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उनमें संशोधन विशेष किन्तु कम अनम्य शैली से हो सकता है, इसलिये हम कह सकते हैं कि संविधानों की अनम्यता सापेक्ष है। भारतीय गणराज्य के संघात्मक संविधान की संशोधन प्रक्रिया साधारण विधि निर्माण की प्रक्रिया से भिन्न, विशेष प्रकार की तो है किन्तु इतनी क्लिष्ट नहीं जैसी अमरीकी संविधान संशोधन की है। भारतीय संविधान की संशोधन शैली उक्त संविधान के अनुच्छेद ३६८ में इस प्रकार वर्णित है :

इस संविधान के संशोधन का सूत्रपात उस प्रयोजन के लिये विधेयक को संसद के किसी सदन में पुरः स्थापित करके ही किया जा सकेगा तथा जब प्रत्येक सदन द्वारा उस सदन की समस्त सदस्य-संख्या के बहुमत से तथा उस सदन के उपस्थित और मतदान करनेवाले सदस्यों के दो-तिहाई से अन्यून बहुमत से वह विधेयक पारित हो जाता है तब वह राष्ट्रपति के समक्ष उसकी अनुमति के लिये रखा जायेगा तथा विधेयक को ऐसी अनुमति दी जाने के पश्चात् विधेयक के निबन्धनों के अनुसार संविधान संशोधित हो जायेगा :

परन्तु यदि ऐसा कोई संशोधनः—

(क) अनुच्छेद ५४, अनुच्छेद ५५, अनुच्छेद ७३, अनुच्छेद १६२ या अनुच्छेद २४१ में , अथवा

(ख) भाग ५ के अध्याय ४, भाग ६ के अध्याय ५ या भाग ११ के अध्याय १ में, अथवा

(ग) सातवीं अनुसूची की सूचियों में से किसी में, अथवा

(घ) संसद में राज्यों की सूचियों में से किसी में, अथवा

(ङ) इस अनुच्छेद के उपबन्धों में,

कोई परिवर्तन करना चाहता है तो ऐसे उपबन्ध करने वाले विधेयक को राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिये उपस्थित किये जाने के पहिले उस संशोधन के लिये (२) ···· राज्यों में से कम से कम आधों के विधान-मंडलों का उस प्रयोजन के लिये उन विधान-मंडलों से पारित संकल्पों द्वारा अनुसमर्थन भी आपेक्षित होगा।

किन्तु जम्मू और काश्मीर राज्य को लागू होने में अनुच्छेद ३६८ में निम्न

परन्तुक जोड़ दिया जाएगा, अर्थात् "परन्तु यह और भी कि कोई ऐसा संशोधन जम्मू और काश्मीर राज्य के सम्बन्ध में तब तक प्रभावी न होगा जब तक कि वह अनुच्छेद ३७० की धारा (१) के अधीन राष्ट्रपति के आदेश द्वारा लागू न किया जाए।"

भारतीय संविधान के संशोधन की प्रक्रिया अनुच्छेदों १०७,११२ में वर्णित सामान्य विधान प्रक्रिया से भिन्न और विशेष इस प्रकार है कि सामान्यत: कोई भी विधेयक संसद के दोनों सदनों में सापेक्ष बहुमत से पारित होने के पश्चात् राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने पर संघ में लागू विधि बन जाता है ; किन्तु संविधान में संशोधन करने वाला विधेयक तभी लागू विधि बनता है जब वह संसद के प्रत्येक सदन में "उस सदन द्वारा उस सदन की समस्त सदस्य के बहुमत से तथा उस सदन के उपस्थित और मतदान करनेवाले सदस्यों के दो-तिहाई से अन्यून बहुमत से वह विधेयक पारित हो जाता है" और तत्पश्चात् वह राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर लेता है। और भी, ऐसा कोई भी विधेयक जिसका सम्बन्ध अनुच्छेद ३६८ के खण्ड क, ख, ग, घ, ङ, में वर्णित अनुच्छेदों तथा भागों से है, राष्ट्रपति की अनुमति के लिये तभी रखा जाता है जब वह संसद द्वारा (निर्धारित बहुमत से) पारित होकर राज्यों के विधान मंडलों की अनुमति के लिये भेजे जाने पर वह कम से कम आधे राज्यों के विधान मंडलों द्वारा अनुमति प्राप्त कर चुका हो; फिर भी, ऐसा संशोधन जम्मू और काश्मीर राज्य के सम्बन्ध में तब तक प्रभावी न होगा जब तक राष्ट्रपति, अनुच्छेद ३७० की धारा (१) के अधीन, अपने आदेश द्वारा लागू न करे। इससे स्पष्ट है कि भारत का संविधान यदि परम अनम्य नहीं है फिर भी वह कई सम्बन्धों में कम से कम आधे राज्यों के विधान मंडलों द्वारा प्राप्त अनुमति से ही संशोधित हो सकता है।

स्विट्जरलैंड के संघात्मक संविधान की संशोधन प्रक्रिया भी सामान्य विधान-प्रक्रिया से भिन्न है। किसी समय भी संविधान का पूर्ण अथवा आंशिक संशोधन हो सकता है। फेडेरल असेम्बली का कोई सदन जब संविधान को पूरी तरह से संशोधन करने का प्रस्ताव पारित कर दे और उस प्रस्ताव को दूसरा सदन स्वीकार न करे तो यह प्रश्न लोक निर्णय के लिये भेज दिया जाता है। पूर्ण संशोधन का प्रस्ताव संघ के ५०,००० मतधारकों द्वारा भी भेजे जाने पर लोक निर्णय को भेजा जाता है। दोनों अवस्थाओं में यदि मतधारकों का बहुमत संशोधन के पक्ष में होता है तो फेडेरल कौंसिल के दोनों सदनों का विघटन कर नया निर्वाचन होता है, फिर इस नवनिर्मित विधान-मंडल को पूर्ण संशोधन का कार्य सौंप दिया जाता है, जो नये

संविधान का प्रारूप तैयार करता है। आंशिक संशोधन का प्रस्ताव दो प्रकार हो सकता है : (१) जब संशोधन ५०,००० मतधारक आंशिक संशोधन की इच्छा, अथवा संशोधन का पूरा मसविदा तैयार करके उपस्थित करें। संशोधन की इस माँग को जब फेडेरल असेम्बली सामान्य ढंग से स्वीकार कर लेती है तो वह उस संशोधन का मसविदा तैयार करना आरम्भ कर देती है, अथवा यदि असेम्बली संशोधन की माँग के विरुद्ध होती है तो संशोधन का प्रश्न लोक निर्णय को भेज देती है। ५०,००० मतधारकों द्वारा भेजा पूरा मसविदा, और यदि उसके स्थान पर असेम्बली अपना बनाया मसविदा चाहे तो दोनों को लोक निर्णय के लिये भेजती है। (२) असेम्बली का एक अथवा दोनों सदन साधारण संघ विधेयकों की प्रक्रिया के अनुसार, आंशिक संशोधन का प्रस्ताव कर सकते हैं।

उपर्युक्त दोनों ही अवस्थाओं, पूर्ण संशोधन तथा आंशिक संशोधन, में संशोधन का मसविदा लोकनिर्णय के लिये अनिवार्य रूप से भेज दिया जाता है। कैंटनों में लोकनिर्णय का मत लिया जाता है। यदि संशोधन का मसविदा कैंटनों के मताधिक्य (२२ केन्टनों में कम से कम ११½ कैंटनों में स्वीकृत होने पर) तथा साथ ही साथ सारे स्विट्जरलैंड में मत देनेवाले मतधारकों के बहुमत से स्वीकृत हो जाता है, तो वह संशोधन लागू कर दिया जाता है। लोकनिर्णय में पूरे प्रत्येक कैंटन का, (वहाँ १९ पूरे कैंटन और ६ अर्धकैंटन हैं) एक मत और प्रत्येक अर्धकैंटन का आधा मत समझा जाता है। इस से स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ संविधान संशोधन के लिये लोकनिर्णय अनिवार्य है; और संशोधन तभी लागू होता है जब कैंटनों की बहुसंख्या में तथा समस्त स्विट्ज़रलैंड में मतधारकों के महुमत से वह स्वीकृत हो जाता है। अब तक लगभग १०५ संशोधन लोक निर्णय के लिये भेजे गये हैं जिनमें ४५ को छोड़कर सभी स्वीकृत हुए हैं। इनमें से १५ मतधारकों के उपक्रम (Initiative) से प्रस्तुत हुए; एक का तो प्रस्ताव १, २७,४९४ मतों से हुआ था। आस्ट्रेलिया के संघीय संविधान के संशोधन की प्रक्रिया में उपराज्यों का तथा नागरिकों के बहुमत का मिश्रण है। यह संविधान अमरीका के संविधान से कुछ कम अनम्य तथा स्विट्जरलैंड के संविधान की भाँति लोकनिर्णय द्वारा ही संशोधित हो सकता है। संविधान के अनुच्छेद १२९ के अनुसार उसका संशोधन निम्न दो में से किसी भी रीति से हो सकता है :

(१) प्रस्तावित संशोधन पहले दोनों सदनों में प्रत्येक के परम मताधिक्य से पारित होना चाहिये। उसके दो मास बाद, पर छः मास से पहले, यह संशोधन प्रत्येक उपराज्य के उन निर्वाचकों के समक्ष रखा जाना चाहिये जो प्रतिनिधि सदन

के सदस्यों को चुनते हैं ।

(२) यदि प्रस्तावित संशोधन एक सदन में परम मताधिक्य से तो स्वीकृत हो जाय, पर दूसरा सदन उसे स्वीकृत न करे, या रद्द कर दे या ऐसे परिवर्तनों के साथ स्वीकृत करे जो पहले सदन को पसन्द न हों, और यदि फिर तीन मास बीतने पर पहला सदन उस प्रस्तावित संशोधन को फिर परम मताधिक्य से, उसी सत्र में अथवा अगले सत्र में, और यदि दूसरा सदन पहले सदन की पसन्द के अनुसार उसे स्वीकार न करे, तो गवर्नर जनरल पहले सदन से अंतिम बार रूप से प्रस्तावित संशोधन को बिना उन परिवर्तनों के, या उन परिवर्तनों के साथ जो बाद में दोनों सदनों ने मान लिये हों, उपराज्यों के उन निर्वाचकों के समक्ष रख सकता है जो प्रतिनिधि सदन के सदस्यों को चुनते हैं ।

उपरोक्त दोनों अवस्थाओं में से किसी से स्वीकृत प्रस्तावित संशोधन निर्वाचकों के सामने रखे जाने पर तभी स्वीकृत समझा जाता है जब बहुसंख्यक राज्यों (६ राज्यों में से कम से कम चार राज्यों) के और समस्त आस्ट्रेलिया के निर्वाचकों के बहुमत से स्वीकृत हो जावे । किन्तु यह प्रतिबन्ध है कि संशोधन के द्वारा केन्द्रीय संसद के किसी भी सदन में किसी उपराज्य के अनुपाती प्रतिनिधित्व को या उसके प्रतिनिधियों की यूनतम संख्या को घटाया नहीं जा सकता है और न संघ में न्यूनतम किसी राज्य के पद को उस राज्य के निर्वाचकों के बहुमत की स्वीकृति बिना बदला नहीं जा सकता । इससे भी यह सिद्ध होता है कि संघीय संविधान की संशोधन प्रक्रिया सामान्य विधान-प्रक्रिया से भिन्न होती है ।

साम्यवादी रूस का संविधान भी एक विशेष प्रक्रिया द्वारा ही संशोधित किया जा सकता है । वहाँ की सर्वोच्च सोवियत के प्रत्येक सदन में बहुमत प्राप्त होने पर कोई भी विधेयक कानून बन जाता है । किन्तु संविधान में संशोधन करने के निमित्त प्रस्तुत हुआ विधेयक तभी पारित समझा जाता है जब दोनों सदनों में, प्रत्येक की पृथक पृथक् बैठक में, वह कम से कम दो तिहाई बहुमत से स्वीकृत हो जाता है ।

विभिन्न संघों के संविधानों की अनम्यता एक-सी नहीं है; एक ओर संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान परम अनम्य है तो उसके दूसरी ओर साम्यवादी रूस का संविधान बहुत कम अनम्य है । इसके कुछ कारण हैं । सन् १७७६ में अमरीकी तेरह उपनिवेशों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की थी । सन् १७८७ के संविधान निर्माण के समय छोटे-छोटे उपनिवेशों को बड़े उपनिवेशों से आशंका थी कि कहीं आगे चल कर वे संघ में अधिक प्रभावशाली होकर छोटे उपनिवेशों पर अधिक अधिकार न जमा लें। इसी कारण उन्हों ने दो बातों की माँग की, एक तो संघीय

विधान मंडल के ऊपरी सदन में सम प्रतिनिधित्व तथा संविधान के संशोधन में विशेष हाथ। तभी से ये दो सिद्धान्त संघवाद में महत्वपूर्ण हो गये। किन्तु अमरीका में अनुभव के पश्चात् यह सिद्ध हो गया कि परम अनम्यता वांछनीय नहीं है। तथा सभी उपराज्यों का सम प्रतिनिधित्व, विशेषतया संसदीय प्रणाली वाले संघों में, उतना अनिवार्य नहीं जितना १७८७ की परिस्थितियों में संयुक्त राज्य में सम्मिलित होनेवाले संशयित उपनिवेशों को मालूम होता था। यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी में स्थापित हुए संघों में इन दोनों सिद्धान्तों में ढिलाई आ गई है।

न्यायपालिका का विशेष स्थान-संघात्मक संविधान द्वारा संघ-राज्य में संघ-न्यायपालिका का विशेष महत्व होता है; उसकी शक्तियाँ और अधिकार ऐकात्मक राज्य की न्यायपालिका से अधिक होती हैं। इस महत्व को समझने के लिये हमें यह स्मरण रखना है कि संघ का संविधान एक प्रकार से संविदा या करार है जिसमें वे शर्तें लिखित हैं जिनके अनुसार केंद्रीय तथा उपराज्यों की सरकारों की विभिन्न शक्तियाँ और अधिकार पृथक् कर दिये जाते हैं और कोई सरकार अपने राज्यक्षेत्र के बाहर दूसरी सरकार के राज्यक्षेत्र पर किसी प्रकार अतिक्रमण नहीं कर सकती। इसी संविधान में दोनों सरकारों के आपसी सम्बन्ध भी स्पष्ट कर दिये जाते हैं। इसलिये यदि संघ की रक्षा करनी है और उसे स्थायी रखना है तो संविदात्मक संविधान की शर्तों का उचित पालन होना चाहिये। जैसे जनसमूहों के बीच करार की शर्तों को उचित रूप में सुरक्षित रखने के लिये तथा किसी भी शर्त को तोड़ने वाले को दंड देने के लिये न्यायालय की आवश्यकता होती है वैसे ही केंद्र की सरकार और उपराज्यों या प्रांतों की सरकारों के बीच में हुए करार अर्थात् संविधान की शर्तों के पालन कराने तथा किसी भी सरकार को उसके राज्य-क्षेत्र के बाहर अतिक्रमण करने से रोकने के लिये न्यायालय की आवश्यकता होती है। परन्तु कौन सा न्यायालय यह निर्णय करेगा कि सब सरकारें संविधान की शर्तों के अनुसार ही अपने अधिकारों का प्रयोग कर रही है या नहीं और उनके बनाये कानून संविधान की दृष्टि से वैध (Legal) हैं या नहीं ? कौन सा न्यायालय संविधान की सर्वोच्चता की रक्षा करेगा, आवश्यकता पड़ने पर कौन उसकी व्याख्या करेगा या निर्वचन करेगा, और कौन सा न्यायालय संविधान के आधारभूत सिद्धान्तों को व्यापक रूप देगा ? ये प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनका उत्तर अमरीकी संविधान के निर्माताओं ने उस संघ की न्यायपालिका की रचना (विशेषतया सर्वोच्च न्यायालय की रचना और अधिकारों) तथा क्षेत्र का निर्धारण कर अमरीकी संविधान के तीसरे अनुच्छेद में दिया है। यों तो आधुनिक काल में संघवाद के सिद्धान्तों का स्पष्टी-

करण इन्हीं संविधान निर्माताओं ने संविधान सभा की कार्यवाही के अन्तर्गत कर राजनीति के क्षेत्र में संसार को एक मौलिक देन प्रदान की है किन्तु संघीय न्यायपालिका की रचना, अधिकार, स्वातंत्र्य तथा अधिकार क्षेत्र का निर्धारण उनकी बहुमूल्य देन है। उन्होंने यह सिद्धान्त रखा कि उपरोक्त प्रश्नों का हल इसी में है कि ऐसे स्वतंत्र न्यायालय की रचना की जावे जो किसी सरकार से प्रभावित न हो, जिसके अधिकार उसी संविधान से प्राप्त हों जिससे केंद्रीय तथा उपराज्यों की सरकारों की शक्तियाँ निर्धारित हुई हैं, जो विवाद उठने पर संविधान की व्याख्या तथा निर्वचन स्वतंत्र रूप से, बाहरी दवाब से अप्रभावित रहता हुआ, कर सके। उक्त संविधान के छठे अनुच्छेद की द्वितीय कंडिका में कहा गया है कि "यह संविधान, और वे सब विधियाँ जो इसके अनुसार निर्मित होंगी; और सभी संधियाँ जो बनीं हैं या संयुक्त राज्य के प्राधिकार से बनेगी, इस भूमि (देश) की सर्वोच्चतम विधि होगी . . .।" संविधान की इस सर्वोच्चता की रक्षा वहाँ का सर्वोच्च न्यायालय इसलिये करता है क्योंकि उस न्यायालय की सारी शक्ति का स्रोत संविधान (तीसरा अनुच्छेद) है और क्योंकि न्यायालय का कार्य विधि की रक्षा है अतएव सर्वोच्च विधि ही न्यायालय के ऊपर लागू है। आधुनिक काल में इस प्रकार के स्वतंत्र तथा विशेषाधिकारी न्यायालय की रचना अमरीका के संघात्मक संविधान द्वारा हुई थी।

अन्य संघों के संविधानों में भी रूपान्तर से एक विशेषाधिकार प्राप्त स्वतंत्र संघीय न्यायपालिका की स्थापना की गई है। भारत के गणराज्य के संविधान में उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) के अधिकार और कार्यक्षेत्र के निर्धारण में अमरीकी संविधान का बहुत प्रभाव है।

संघ की न्यायपालिका का सामान्यतः अधिकार क्षेत्र निम्न प्रकार होता है : संविधान की सर्वोच्चता की रक्षा करना और फलतः केंद्र तथा उपराज्यों की विधियों की वैधता कि वे संविधान के अनुकूल हैं वा नहीं निश्चित करना; केंद्र तथा एक वा एक से अधिक उपराज्यों के बीच विवाद तथा संघर्ष को तय करना; विभिन्न उपराज्यों के बीच वैधानिक विरोधों का निपटारा करना; विदेशों से मान्य दूतों सम्बन्धी झगड़ों का निर्णय करना; विवाद उपस्थित होने पर संविधान के किसी खण्ड या उपबन्ध या प्रविष्टि की व्याख्या या निर्वचन करना, इत्यादि।

यह आश्चर्य की बात है कि यद्यपि स्विट्ज़रलैंड के विधान निर्माताओं ने बहुत कुछ प्रेरणा अमरीकी संविधान से ली थी, तथापि उन्होंने स्विस न्यायपालिका को संविधान का निर्वचन करने का अधिकार नहीं दिया क्योंकि यह कार्य लोकनिर्णय तथा उपक्रम की प्रथाओं से स्वयं नागरिक ही करते हैं। स्विस संघीय न्यायपालिका के अधि-

कार क्षेत्र में संघ और केंटनों के बीच व्यवहार सम्बन्धी झगड़ों, तथा ऐसे मुकदमें जो संघ तथा कंपनियों या व्यक्तियों के बीच में हों, केंटनों के पारस्परिक मुकदमों, और केंटनों तथा कम्पनियों या व्यक्तियों के बीच उठे झगड़ों का निपटारा करना है। यही न्यायालय नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है।[1] यह सच है कि स्विस संघीय न्यायपालिका का अधिकार क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है फिर भी यह निश्चय है कि वह अमरीका के उच्चतम न्यायालय के वैधानिक महत्व को नहीं पा सकता, विशेषकर विधानमंडल द्वारा निर्मित विधियों की अथवा अधिनियमों की वैधता अथवा अवैधता घोषित नहीं कर सकता। ऐसा करना स्विट्ज़रलैंड की ही नहीं वरन् योरुप की परम्परा के विरुद्ध होगा; इसका मुख्य कारण यह है कि स्विट्ज़रलैंड में शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को नहीं अपनाया गया है। स्विट्ज़रलैंड में विधान-मंडल ही राज्य का सब से अधिक शक्तिशाली अंग है जिसके निर्णयों के विरुद्ध नागरिकों से ही लोकनिर्णय द्वारा पुनर्विचार प्रार्थना की जा सकती है। संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त अपनाया गया है, प्रत्येक अंग (विधान मंडल, कार्य-पालिका, न्यायपालिका) के अधिकार सीमित हैं, वे एक दूसरे से स्वतंत्र हैं, अतएव वहाँ पर संघीय न्यायपालिका के विशेषाधिकारों की अत्यावश्यकता थी।

संघ में शक्ति-विभाजन—संघात्मक संविधान की एक यह विशेषता है कि वह केंद्रीय तथा उपराज्यों के बीच शासन शक्ति का स्पष्टतया विभाजन कर देता है; एकात्मक संविधान में यह नहीं होता क्योंकि एकिक राज्य में समस्त शासनाधिकार एक ही सरकार के अधीन होता है। संघ के संविधान में यह शक्ति-विभाजन किस प्रकार होता है। इसका वर्णन अगले अध्याय में सविस्तार किया गया है। इस शक्ति-विभाजन में प्रत्येक सरकार की वित्तीय शक्तियों पर भी विचार किया गया है, क्योंकि दोनों सरकारों के सह-अस्तित्व के लिये यह आवश्यक है कि उनको अपने शासन को चलाने के निमित्त पर्याप्त धन प्राप्त करने के लिये उचित कर तथा आय के अन्य स्रोत दिये जावें।

सम्बन्ध-विच्छेद का सिद्धान्त—संघ एक स्थायी राज्य है जिसमें सम्मिलित राज्य सदा के लिये अपनी शक्ति का कुछ भाग सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिये केंद्रीय सरकार को दे देते हैं। इस संघ का विघटन नहीं हो सकता, संघ राज्य अविघटनीय राज्य है जिसके अन्तर्गत उपराज्यों को अपना सम्बन्ध विच्छेद करने का किसी प्रकार अधिकार नहीं है। संघ में प्रत्येक नागरिक दोनों सरकारों की नागरिकता से

---

१. संघीय संविधान की धारा ११३।

बद्ध है: अधिकतर संघों में, जैसे संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और स्विट्ज़रलैंड में, द्वि-नागरिकता का सिद्धान्त अपनाया गया है। भारत में एक ही नागरिकता है। इस विषय पर आगे सविस्तार विचार किया गया है।

अध्याय २

संघवाद की वृद्धि और विकास

आज के संसार में संघों का जो उन्नत रूप और रचना तथा शासन प्रणाली हम देखते हैं, वह न तो किसी एक विशेष समय पर ही प्रगट हुए और न संघवाद के आधुनिक सिद्धान्तों की व्युत्पत्ति ही किसी एक समय पर हुई। प्राचीन यूनान के संघों का रूप और उनकी उत्पत्ति के कारण मध्यकालीन और आधुनिक संघों से विभिन्न थे। मध्यकालीन संघों और प्रसंधानों का संघटन तथा उद्देश भी आधुनिक संघों से भिन्न थे। ऐतिहासिक अध्ययन से यही परिणाम निकलता है कि संघवाद की वृद्धि और विकास में बहुत बड़ा समय लगा है और इस वृद्धि तथा विकास में विभिन्न कारकों और हेतुओं ने सहायता दी है। इसी अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि जब कभी संघ अथवा प्रसंधान की स्थापना में कठिनाई अथवा असफलता हुई तो कौन से कारणों से तथा किस सीमा तक अड़चनें पड़ीं।

भौतिक विज्ञानों के विकास का इतिहास किसी और ही भाँति हुआ, उसमें प्रयोगों, प्रयोगों के परिणामों का बहुत कुछ क्रमबद्ध हाथ रहा। इसके विपरीत सामाजिक शास्त्रों में, विशेषतया राजनीति के सिद्धान्तों में, जो वृद्धि हुई उसमें विभिन्न युगों की परिस्थितियों तथा मानव की भावनाओं, चेतनाओं और आवश्यकताओं का अधिक भाग रहा। फिर भी क्रमानुकूल अध्ययन तथा समयानुकूल परिस्थितियों का विचार रखते हुए हम उन कारकों तथा सहायक हेतुओं और साथ ही साथ उन कारणों का भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जिनसे संघवाद की वृद्धि और उसके विकास में सहायता मिली, अथवा इस वृद्धि और विकास में बाधाएँ पड़ीं।

१—भौगोलिक संस्पर्शता और पड़ोसी

जब कभी भी संघों का निर्माण हुआ है तो उन्हीं स्वतंत्र राज्यों ने ही संघ बनाये हैं जो एक दूसरे के निकटतम होते हुए पड़ोस की सुविधा और भावना के कारण सफलतापूर्वक अपने सार्वजनिक हितों की रक्षा करने के लिये अपने ऊपर एक केंद्रीय सरकार स्थापित कर सके हैं। पड़ोस के अस्तित्व ने स्वतंत्र राज्यों को अनायास और अप्रत्यक्ष

रूप से एकता की ओर खींचा है। प्राचीन तथा मध्य युगों में जो भी संघ और प्रसंधान बने उन सब में ही अन्य कारणों के साथ भौगोलिक निकटता (संस्पर्शता) अवश्य थी। प्राचीन यूनान में उन्हीं नगर-राज्यों ने सम्मिलित होकर संघ बनाये जो एक दूसरे के संस्पर्शी थे और इस कारण उनमें मेल की भावना सरलता से उत्पन्न हुई और उनको संघ बनाने में सहायक हुई। मध्ययुग में भी हैंसा-नगरों में तथा उत्तरी इटली के लोम्बर्ड मैदान में पड़ोसी नगरों ने ही मिलकर हैंसियाटिक संघ और लोम्बर्ड संघ की स्थापना की थी। यही पड़ोसी नीदरलैंड के प्रसंधान की स्थापना में मुख्य कारक था।

कनाडा में सन् १८४२ तक औन्टेरियो (Ontario) और क्यूबेक (Quebec) के प्रांत एक दूसरे से पृथक् रहे, किन्तु वे एक दूसरे के पड़ोस में संस्पर्शी थे इसलिये उनके सार्वजनिक हितों में एकता की आवश्यकता हुई। दक्षिण में संयुक्त राज्य अमरीका की बढ़ती हुई शक्ति ने इनको एक राजनीतिक संघ की स्थापना में प्रोत्साहन दिया। यद्यपि स्विट्ज़रलैंड में तीन विभिन्न जातियों, फ्रेंच, इटालियन और जर्मन, के लोग रहते हैं, किन्तु २२ कैंटनों को एक संघ में बने रहने में पड़ोस भावना अत्यन्त सहायक रही है। सन् १७८६ में पड़ोस-भावना संस्पर्शता ने ही अमरीका के १३ उपनिवेशों को एक ही संघ में बने रहने के लिए बाध्य किया। वहाँ पर एक ऐसा विचार उठ खड़ा हुआ था कि थोड़े थोड़े उपनिवेश मिलकर दो या तीन प्रसंधान (अनुसंघ) स्थापित कर लें, किन्तु अलैकज़ण्डर हैमिल्टन ने इस प्रकार के विभाजन से संभावित भय से उत्पन्न अनेक बुराइयों को दिखाया और भौगोलिक निकटता पर ज़ोर देकर एक ही संघ में रहने के लिये अपील की। तेरहों उपनिवेशों ने इसी निकटता को ध्यान में रख कर एक ऐसे संघ की स्थापना की जो कालांतर में पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम की ओर बढ़ता गया और वह आज संसार के अन्यतम बली और सम्पत्तिशाली देश है। हेमिल्टन ने अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किये थे : "मुझे यह देखकर हर्ष होता है कि स्वतंत्र अमरीका दूरस्थ और पृथक् पृथक् क्षेत्रों का देश नहीं है, वरन् एक ही पड़ोस वाले, उपजाऊ और सविस्तार वाला देश है जिसमें स्वतंत्रता के पश्चिमी पुत्र आकर बस गये थे। प्रकृति ने अपनी विशेष आशीर्वाद से इसमें विभिन्न प्रकार की मिट्टी जिसमें विभिन्न उपज होती हैं, रखी है, जिसकी सिंचाई अनेक नदियों से होती है जिसके फलस्वरूप यहाँ के निवासी प्रसन्नतापूर्वक जीवन-निर्वाह करते हैं। इसकी सीमाएँ नौगम्य नदियों या समुद्रों से घिरी हुई हैं, मानों वे इसे एकता में बाँधे हुए हैं; और अत्यन्त अभिजात नदियाँ इसमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर बहती हुई मैत्रीपूर्ण सहायता देने तथा भीतरी व्यापार की सामग्रियों की अदल-बदल करने के लिये यातायात के

साधन बनी हुई हैं।"[1]

आस्ट्रेलिया के संघ के निर्माण के समय केवल निकटस्थ छ: राज्य ही सम्मिलित हो सके थे, और यद्यपि न्यूज़ीलैंड द्वीप समूह के लोगों की बड़ी इच्छा थी कि न्यूज़ीलैंड भी संघ में सम्मिलित हो किन्तु दोनों के बीच स्थित समुद्र एक ऐसी रुकावट बन गया कि आज तक उस महत्वाकांक्षा को पूरा नहीं होने दिया है। इसी कारण न्यू फाउण्डलैंड भी लगभग ९० वर्ष तक कनाडा के संघ में सम्मिलित न हो सका था। यही कारण था कि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के विभिन्न सदस्य एक दूसरे से सैकड़ों और हज़ारों मील के समुद्रों और महासागर से दूरस्थ होने के कारण, अन्य सहायक हेतुओं के होते हुए भी एक संघ की स्थापना न कर सके। दक्षिणी अफ्रीका के चार प्रान्त, अंग्रेज़ और डच जाति की विभिन्नता और पुरानी होड़ से उत्पन्न घृणा के रहते हुए भी, भौगोलिक निकटता और निरंतरता के कारण सन् १९०९ में एक ही संघ बनाने को बाध्य हो गये। बीसवीं शताब्दी में भी जो संघ बने हैं वे पड़ोसी राज्यों के मिलने से ही बने हैं। पाकिस्तान के दो भाग, पश्चिमी और पूर्वी, लगभग १००० मील के अन्तर पर हैं, यही कारण है कि अभी तक उनमें, अन्य हेतुओं के होते हुए भी दूरस्थता उनके आपसी सम्बन्ध में बाधाएँ डालती ही रहती हैं। हाँ, संयुक्त राज्य अमरीका का ४९ वाँ उपराज्य अलास्का और पचासवाँ उपराज्य हवाई द्वीप संघ से दूर होते हुए उसमें सम्मिलित हुए हैं, इसके विशेष कारण हैं जो एतिहासिक तथा युद्धनीति सम्बन्धी परिस्थितियों से उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार यद्यपि पुर्तगाल ने भारतीय भागों (गोआ, डामन, ड्यू) को तथा फ्रांस ने उत्तरी अफ्रीका में अल्जीरिया को अपने राज्यों का अंग घोषित करने की चेष्टा की, किन्तु अन्य कारणों के साथ सामुद्रिक दूरी ने इन साम्राज्यवादी देशों के कुचक्र को सफल नहीं होने दिया।

परिणाम में हम यह कह सकते हैं कि भौगोलिक निकटता तथा निरंतरता संघों के निर्माण में सहायक हेतु हैं, जिसका न्यूनतम उदाहरण हमें मलायेशिया के संघ के निर्माण में दिखाई देता है जहाँ मलाया प्रायद्वीप के पड़ोसी छोटे-छोटे राज्यों ने मिलकर एक संघ की स्थापना की है।

२—प्रतिरक्षा की समस्या

भौगोलिक संस्पर्शता ही संघों के निर्माण में एक मात्र हेतु अथवा कारक नहीं है। छोटे छोटे प्रभुत्व सम्पन्न राज्य जब किसी बाह्य आक्रमणकारी शक्तिशाली राज्य से आशंकित होते हैं तो वे अपनी प्रतिरक्षा (Defence) के निमित्त आपस में मिल-

---

१ फेडरेलिस्ट सं० ११।

कर एक अधिक शक्तिशाली संघ बना लेते हैं और उस संघ की केन्द्रीय सरकार को प्रतिरक्षा का पूरा भार सौंपकर सुरक्षित होते हैं। प्राचीन काल से लेकर अब तक इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब संस्पर्शी छोटे राज्यों ने किसी विशेष परिस्थिति में अपनी प्रतिरक्षा के निमित्त संघात्मक शासन प्रणाली के सिद्धान्तों को अपनाया है और अपने पृथक् प्रभुत्व सम्पन्न अस्तित्व भाव को किसी सीमा तक बदल कर अपने ऊपर एक केन्द्रीय शासन स्थापित कर संघ राज्य बनाया है। उदाहरणार्थ, आस्ट्रेलिया के छः उपनिवेश औपनिवेशिक स्वशासन पाकर भी बहुत समय तक एक दूसरे से स्वतंत्र और पृथक् रहे थे। उनमें यह भाव ही उत्पन्न नहीं हुआ था कि वे किसी प्रकार का संघ बनावें। किन्तु जब उन्नीसवीं शताब्दी के चतुर्थ चरण में योरुपीय तथा अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों में अपने साम्राज्य वृद्धि की होड़ आरम्भ हुई तो प्रशान्त महासागर में स्थित द्वीप समूहों और उपनिवेशों की शांति-भंग का भय उत्पन्न हो गया और आस्ट्रेलिया के छः उपनिवेशों ने भी, जिन्होंने पहले संघीय मेल करने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था, फिर से उस पर विचार किया। वाइकाउन्ट ब्राइस ने लिखा है: "सन् १८८३ के पश्चात् योरुपीय शक्तियों में सारे संसार में ही अनधिकृत क्षेत्रों पर अपना आधिपत्य जमाने के लिये होड़ लगी, और जब यह पश्चिमी प्रशान्त महासागर की ओर बढ़ी तो आस्ट्रेलिया के निवासियों में बाह्य मामलों की ओर ध्यान देने का अवसर आया और वे समझ गये कि उनके (पड़ोसी) द्वीपों में, विशेषतया न्यूगिनी (New Guinea) और न्यू हीब्राइड्स (New Hebrides) में जो उनके (आस्ट्रेलिया के) उत्तर और उत्तर-पूर्व में स्थित हैं, उनके हितों की रक्षा तभी सपरिणाम हो सकेगी जब वे सभी (आस्ट्रेलिया निवासी) एक ही प्राधिकारी (संस्था) के द्वारा आवाज उठावेंगे। इसी से पूर्व में कई बार उठाई गई आस्ट्रेलिया के सभी उपनिवेशों के एक संघ-निर्माण की योजना को पुनरुज्जीवन प्राप्त हुआ, जो ऐसी योजना थी जिसे स्वाभाविकतया व्यापारिक और आर्थिक विचारों से तो बल मिलता था किन्तु प्रत्येक समुदाय की अपनी स्थायी स्वतंत्रता कायम रखने की ईर्षा से उसमें गतिरोध होती थी।"[1] इसी प्रतिरक्षा के निमित्त १८८५ में उन छः उपनिवेशों ने संघीय परिषद् (फेडेरेल कौंसिल) की स्थापना की, जो उनको एकत्रित करने का पहला कदम था; किन्तु इस परिषद् को एक राष्ट्रीय सेना एकत्रित कर सारे महाद्वीप की रक्षा करने का अधिकार प्राप्त न था। जब १८८९ में मेजर जनरल बीवनएडवर्ड्स ने आस्ट्रेलिया की रक्षा के सम्बन्ध में अपना प्रतिवेदन उपस्थित किया तो उसके प्रकाशित होते ही, आस्ट्रेलिया

1 Bryce, **Modern Democracies,** Vol II, p. 188.

के निवासियों को छः उपनिवेशों के अधिक सम्पर्क में आकर संघ-निर्माण द्वारा अपनी प्रतिरक्षा करने का प्रस्ताव अधिक मान्य हो गया।

प्राचीन यूनान में भी मकदूनिया की बढ़ती हुई शक्ति तथा उससे उत्पन्न आक्रमण के भय से अपनी रक्षा करने के लिए बारह नगर-राज्यों ने एकियन संघ की स्थापना की थी। मध्ययुग में लोम्बर्ड संघ और हेंसियाटिक संघों की स्थापना में प्रतिरक्षा की समस्या ही विशेष कारक थी। स्विट्जरलैंड के विभिन्न कैंटन भी अपने पृथक् अस्तित्व को बनाये रख सकते थे यदि हेप्सबर्ग कुटुम्ब के शासकों के आक्रमणों ने उन्हें अपनी प्रतिरक्षा के लिये एकत्रित होकर संघ बनाने के लिये बाध्य न कर दिया होता। सन् १९१४ के पूर्व आस्ट्रिया-हंगरी के प्रसंधान के निर्माण में प्रतिरक्षा की समस्या ही मुख्य कारण था, जिससे आस्ट्रिया और हंगरी ने १८६७ में एक केन्द्रीय शासन को प्रतिरक्षा का भार सौंपा था।

संयुक्त राज्य अमरीका में भी स्वतंत्र होने के पश्चात् १३ उपनिवेशों ने संघ निर्माण के समय अपनी भावी प्रतिरक्षा के लिए भी केन्द्रीय सरकार की स्थापना कर उसे संघ की रक्षा का अधिकार देते हुए वे सब साधन भी (जैसे जल व थल सेना रखना और तत्सम्बन्धी अन्य अधिकार) दे दिये थे। वहाँ पर यह भय था कि यदि वे उपनिवेश पृथक्-पृथक् रहे तो योरुपीय शक्तियाँ उनकी स्वतंत्रता का हरण करने अथवा उनमें फूट डाल कर उन्हें कमजोर बना देंगी। इस सम्बन्ध में जे (Jay) ने 'फेडरेलिस्ट' में इस प्रकार अमरीकनों को समझाया: "यदि वे (योरुपीय शक्तियाँ) देखेंगे कि हमारा राष्ट्रीय शासन कार्यदक्ष है और सुशासित है, हमारा व्यापार प्राज्ञशील है, हमारी नागरिक सेना सुसंगठित है और अनुशासित है, हमारे संसाधन और वित्त का बुद्धिमानी से प्रबन्ध होता है, हमारी अच्छी साख है, हमारे लोग स्वतंत्र, संतुष्ट और मिले-जुले हैं, तो वे हमको अप्रसन्न न कर हमारी मित्रता के इच्छुक होंगे। और यदि इसके विपरीत वे देखेंगे कि हमारी सरकार प्रभावशाली नहीं है (प्रत्येक उपराज्य मनमानी गलत या ठीक काम कर रहा है) अथवा हम तीन या चार स्वतंत्र तथा शायद आपस में झगड़ा करते हुए गणराज्य वा प्रसंधा हैं, जिनमें एक ब्रिटेन की ओर, दूसरा फ्रांस की ओर और तीसरा स्पेन की ओर झुका हुआ है, और तीनों ने हमें एक दूसरे से लड़ा रखा है, तो उनकी दृष्टि में हम दयनीय होंगे। उस समय अमरीका से वे घृणा ही नहीं करेंगे, वरन् आघर्ष भी करेंगे; तब हमारा बहुत महँगा अनुभव यह घोषित करेगा कि जब कोई जन अथवा कुटुम्ब इस प्रकार विभाजित होते हैं तो वे अवश्य अपने ही विरोधी बन जाते है।"[1]

---

१. फेडरेलिस्ट, सं० ४। संख्या ३ में इसका सविस्तार वर्णन है।

जब नीदरलैंड का प्रसंधान स्थापित किया गया था तो उसका मुख्य उद्देश्य स्पेन के राजा द्वारा उनकी स्वतंत्रता पर होते हुए आक्रमण से अपनी प्रतिरक्षा करना ही था; यह उद्देय उनके अनुबंध के प्रथम तीन अनुच्छेदों में स्पष्ट कर दिया गया था।[1]

आधुनिक काल में, विशेषतया द्वितीय महासमर के पश्चात् स्वतंत्र राज्यों के सामने अपनी प्रतिरक्षा की समस्या इतनी जटिल और परम महत्व की हो गई है कि वे विभिन्न भूखंडों में आपसी समझौतों और सन्धियों द्वारा अनुसंघ जैसी संस्थाएँ स्थापित कर रहे हैं जिनका मुख्य उद्देश्य अपने संभावित विरोधियों और दुश्मनों से अपनी प्रतिरक्षा करना है। इसके मुख्य उदाहरण है नाटो (Nato) और सियाटो (Seato) जो साम्यवाद के भय से बचने के लिये अमरीका, इंगलैंड, फ्रांस, इटली, पुर्तगाल आदि ने उत्तरी अटलांटिक महासागर में, तथा अमरीका, इंगलैंड, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और पाकिस्तान ने दक्षिण-पूर्व एशिया में स्थापित किये हैं। इन सब घटनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिरक्षा की समस्या ने संघवाद के विकास और उन्नति में बहुत सहायता दी है; प्रतिरक्षा संघ-निर्माण में सारभूत हेतु है।

३—आर्थिक कारक

यदि भौगोलिक निकटता और संस्पर्शता तथा प्रतिरक्षा की समस्या ने संघों के निर्माण में बहुत योग दिया है तो यह भी ठीक है कि आर्थिक कारकों ने संघ के सदस्य-राज्यों के एकता-बन्धन को और भी अधिक पुष्ट कर संघों को स्थायी बनाया है। हेंसियाटिक संघ तो मुख्यत: व्यापारिक हितों की रक्षा के लिये ही स्थापित किया गया था; हेंसा नगरों ने उत्तरी सागर और बाल्टिक सागर में व्यापार पर एकाधिकार रखने के उद्देश्य से एकत्रित होना आवश्यक समझा था और अपना संघ बनाया था। व्यापारिक लाभ और आर्थिक कारक ही इस संघ के निर्माण में सहायक हेतु थे। और जब ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना हुई और सूखी हेरिंग मछली की माँग (जिसमें हेंसियाटिक संघ का मुख्य व्यापार होता था) घट गई तो उस संघ के आर्थिक कारक ढीले पड़ गये और अन्त में संघ का विघटन हो गया। सन् १७८७ में संयुक्त राज्य अमरीका के संघ निर्माण में भी आर्थिक कारकों का कम महत्व नहीं था। संघ के आर्थिक और व्यापारिक लाभों को स्पष्ट करते हुए हेमिल्टन ने लिखा था : "अमरीकी व्यापार के कई महत्वपूर्ण अधिकार हैं जो संघ के ही अधिकार हैं—मेरा आशय मीनक्षेत्र

---

1. Act of Union of the United Provinces of the Netherland, Jan. 23, 1579.

(Fisheries) पश्चिमी झीलों के नौ-परिवहन और मिसिसिपी के नौ-परिवहन से है। प्रसंधि के विघटन से ऐसे सुकुमार प्रश्न उठ खड़े होंगे जिनसे इन अधिकारों के भावी स्थायित्व की आशंका होगी; और अधिक शक्तिशाली साझीदार इन प्रश्नों को हमारे अहित में ही तय करेंगे।"[1] संघ के आर्थिक लाभों को स्पष्ट करते हुए यह भी कहा कि संघ द्वारा सभी भागों में व्यापार की धारायें पुष्ट होंगी और सभी भागों की व्यापार वस्तुओं के निर्बद्ध आयात-निर्यात से व्यापार में अधिक उन्नति होगी, और विभिन्न राज्यों की विभिन्न उत्पादनों से व्यापारिक क्षेत्र का विस्तार भी बढ़ जायगा।

कनाडा में भी न्यू ब्रंसविक, नोवा स्काटिया और प्रिंस एडवर्ड द्वीप यही आर्थिक लाभ को देखकर संघ में सम्मिलित हुए थे, कि संघ की स्थापना से उनके व्यापार की वृद्धि में विस्तृत और अधिक लाभकारी यातायात मार्गों, रेल मार्गों और झीलों, बंदरगाहों और प्रशुल्कों (Tariffs) से सहायता मिलेगी। ब्रिटिश नार्थ अमरीका अधिनियम के १४५ वे खण्ड में लिख दिया गया था: "क्योंकि कनाडा, नोवा स्काटिया और न्यू ब्रंसविक प्रान्तों ने यह सम्मिलित घोषणा की है कि ब्रिटिश नार्थ अमरीका के संघ को सपिण्डित करने के लिए अन्तर-उपनिवेशीय रेलवे का निर्माण परमावश्यक है, और उनकी (संघ में सम्मिलित होने की) अनुमति के भी लिये आवश्यक है, और वे इस पर राज़ी हो गये हैं कि कनाडा की सरकार को इसका (रेल मार्ग का) तुरन्त निर्माण करना चाहिए; अतएव इस समझौते की पूर्ति के निमित्त कनाडा की सरकार और संसद का कर्तव्य होगा कि वे संघ की स्थापना के पश्चात् छः मास के भीतर ही एक रेल मार्ग द्वारा सेंट लारेन्स नदी को नोवा स्काटिया के हेलीफाक्स नगर से सम्बद्ध करेंगे और उस मार्ग का निर्माण अविराम जारी रख अत्यन्त शीघ्रता से पूरा करेंगे।" अतएव उत्तरी और दक्षिणी कनाडा के संघ-निर्माण से सीमा शुल्क तथा शुल्कावलि का अधिक सुलभ प्रबन्ध हो गया जिससे संघ के सदस्य-प्रान्तों के व्यापार में वृद्धि हो गई।

जिस समय आस्ट्रेलियन कामनवेल्थ की स्थापना के लिये वहाँ के नेता अपनी बुद्धि का प्रयोग कर एक संघ-संविधान बनाने में जुटे हुए थे, तो जनमत पर संघ से उत्पन्न आर्थिक लाभों की संभावना का कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ा था। जब संघ की स्थापना के लिये न्यू साउथ वेल्स में पहली बार जनमत संग्रह हुआ तो वहाँ की जनता ने इस आशंका से कि कहीं संघ बनने पर उनको आर्थिक हानि न उठानी पड़े, संघीय योजना को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने स्वतंत्र व्यापार दल (Free Trade

1. फेडरेलिस्ट, सं० ११।

Party) के नेता और न्यू साउथ वेल्स के प्रमुख राजनीतिज्ञ सर हेनरी पार्क्स द्वारा प्रस्तुत संघीय योजना का इसलिये विरोध किया कि वह विक्टोरिया (Victoria) को व्यापार संरक्षण नीति से न्यू साउथ वेल्स की अबाध व्यापार नीति का गठबंधन करना चाहते हैं। न्यू साउथ वेल्स के विधान मंडल के सदस्य, बैरिस्टर श्री डेविड बुकानन ने, इस योजना का विरोध करते हुए 'सिडनी मार्निंग हेरल्ड' के २१ जनवरी १८८९ के अंक में लिखा : "सर हेनरी पार्क्स जानते हैं कि यदि वह अपने स्वतंत्र व्यापार सिद्धान्त पर अड़े रहे तो संघ की स्थापना न हो सकेगी; अतः वे स्वतंत्र व्यापार के सिद्धान्तों को त्याग कर संघ स्थापना का कार्य करना चाहते हैं। परन्तु सर हेनरी पार्क्स को फौलाद की भांति स्वतंत्र व्यापार के सिद्धान्तों पर खड़ा रहना चाहिये और तब तक संघ निर्माण की स्वीकृति नहीं देनी चाहिये जब तक अबाध (स्वतंत्र) व्यापार की नीति को संघ की नीति स्वीकार न कर लिया जाय। (यदि वे ऐसा न करेंगे तो) स्वतंत्र व्यापार दल की कुछ न चलेगी और व्यापार संरक्षण की नीति के समर्थक संघ को (उनके ऊपर) लाद देंगे और व्यापार संरक्षण ही संघ की नीति संघीय संसद द्वारा घोषित कर दी जायगी"[1] इन्हीं विचारों के कारण (जो आगे चल कर असत्य सिद्ध हुए) आस्ट्रेलिया में संघ की स्थापना में बिलम्ब हुआ। वहाँ स्वतंत्र (अबाध) व्यापार तथा व्यापार संरक्षण की नीतियों के विरोधी दल अपने मतों का प्रचार करते रहे और संघ की स्थापना से संभावित भय का चित्रण करते रहे। अन्त में आर्थिक लाभों का प्रलोभन देकर ही संघ विरोधियों की अनुमति प्राप्त की गई, और संघीय संविधान के चतुर्थ अध्याय में आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिये विभिन्न उपबन्ध लिख दिये गये जिनमें से निम्न उपबन्ध इसका उदाहरण है :

"कामनवेल्थ की स्थापना के पश्चात् दो वर्ष के भीतर एकसम बहिः शुल्क लगाया जायगा।" (अनुच्छेद ८८)

"एक सम बहिः शुल्क लगाये जाने पर सभी उप-राज्यों में व्यापार, वाणिज्य और संचार, चाहे आन्तरिक वाहन से या सामुद्रिक मार्गों से, निर्पेक्षतया अबाध (स्वतंत्र) रहेगा।" (अनुच्छेद ९२)

"कामनवेल्थ किसी भी कानून अथवा विनिमय द्वारा किसी भी उपराज्य अथवा उसके निवासियों के, नदियों के जल को संरक्षित करने अथवा सिंचाई के लिये उपभोग करने के अधिकार को न्यून न करेगा।" (अनुच्छेद १००)

संविधान के अनुच्छेद ९८, १०२ और १०४ में रेलमार्गों के अबाध उपभोग का

1. Wise, B. R., **Making of American Commonwealth**, p. 34.

अधिकार दिया गया था। इन उपबन्धों से जब यह निश्चय हो गया कि सभी के आर्थिक हितों की रक्षा होगी तो वे लोग जो पहले संघ-स्थापना के विरोधी थे उसके समर्थक बन गये।

दक्षिणी अफ्रीका के चार प्रान्तों में जब तक पृथक् पृथक् शासन रहे उनके समक्ष दो प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण थे, रेल मार्ग और बन्दरगाह, जिनका स्वामित्व उन उपनिवेशों की भावी समृद्धि के लिये इतना अधिक था कि वे उसे अपने जीवन और मृत्यु का प्रश्न समझते थे। ट्रांसवाल प्रांत भीतरी भाग में स्थित है, उसका औद्योगिक केन्द्र जोहन्सबर्ग था, इसलिये उसकी आर्थिक नीति में बहिः शुल्क का कोई महत्व नहीं था, वह तो अपनी समृद्धि के लिये अबाध व्यापार को ही हितकर समझता था। किन्तु समुद्रतटीय उपनिवेश जानते थे कि व्यापार-संरक्षण की नीति अपनाने से समुद्र-तटस्थ स्थानों में ही नये नये उद्योगों की वृद्धि होगी, भीतरी भागों में नहीं, इसलिये वे व्यापार को अधिक बहिः शुल्क लगाकर चलाना चाहते थे जिससे उनके राजस्व में भी वृद्धि हो और नये उद्योगों की स्थापना भी हो। दूसरी ओर, ट्रांसवाल की खेतिहर जनता अपनी उत्पादन वृद्धि के लिये केप कोलोनी के कृषकों के हितों और इच्छा के विरुद्ध खेती के पदार्थों का संरक्षण करना चाहती थी। ट्रांसवाल के कृषक अपने जोहन्सबर्ग बाज़ार को अपना विशेष रक्षित बाज़ार समझ कर, केप की कृषि उपज के आयात पर शुल्क लगाकर अपने आर्थिक लाभ को सुरक्षित रखने के लिये आवाज़ उठा रहे थे। इस संघर्ष में, जो उनकी विरोधात्मक आर्थिक नीतियों का परिणाम था, संघ की स्थापना असम्भव-सी हो रही थी। अन्त में जब बातचीत के बाद वहाँ के राजनीतिज्ञों को विश्वास हो गया कि राजनीतिक मेल हो जाने से सभी प्रांतों को आर्थिक लाभ ही होगा तो उनके भ्रम और विरोध का अन्त हो गया और संघ की स्थापना में सहायता मिली।

द्वितीय महासमर के पश्चात् विभिन्न स्वतंत्र राज्यों में व्यापारिक होड़ और भी बढ़ गई है। जिन राज्यों की समृद्धि का आधार औद्योगिक और व्यापारिक उन्नति पर ही निर्भर था, वे अपनी पुरानी राजनीतिक शत्रुता को भूलकर, व्यापारिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा के लिये एक दूसरे के निकट आने का प्रयत्न कर रहे हैं। पश्चिमी योरुप का "षष्ठ" राज्यों (फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, बैलजियम, हालैंड, नीदरलैंड और इटली) ने योरुपीय आर्थिक, सार्वजनिक बाज़ार (European Economic Common Market) की स्थापना कर यह सिद्ध कर दिया है कि अपने आर्थिक हितों की सामान्य रक्षा करने के लिये राजनीतिक मेल-जोल स्थापित हो जाता है, जो यदि सफल हुआ तो अन्त में राजनीतिक संघ बन सकता है। ब्रिटेन भी इसी उद्देश्य से इस गुट में शामिल हो रहा है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संघ-शासन की स्थापना में आर्थिक लाभ ने बड़ा योग दिया है और आगे चल कर भी इसी आधार पर संघवाद का विस्तार होगा। बहुत से संघों के निर्माण का आधार ही यही था कि उनकी स्थापना से व्यापार-वाणिज्य, मुद्रा कर, व्यापार शुल्क, यतायात के मार्ग आदि के सम्बन्ध में कानूनों की समानता होगी और निरर्थक रुकावटों के हट जाने से संघ में एकत्रित होने वाले राज्यों की आर्थिक स्थिति सुधर जायगी और औद्योगिक उन्नति होगी। जितने भी संघ आज तक बने हैं उनके संविधानों में ऐसे अनेक उपबन्ध मिलते हैं जिनके द्वारा विभिन्न सदस्य-राज्यों को व्यापारिक और आर्थिक लाभ की संभावना द्वारा राजनीतिक संघ में सम्मिलित किया गया है। इस बात के समझने में कल्पनाशक्ति की अधिक उड़ान की आवयकता नहीं है कि संघ-शासन प्रणाली अपनाने से एक विस्तृत क्षेत्र खुल जाता है, क्रय-विक्रय की सुविधायें बढ़ जाती हैं। सन् १९४७ के पहले भारत में, ब्रिटिश प्रांतों तथा कई बड़ी बड़ी देशी रियासतों में व्यापार नियंत्रण, विभिन्न बहिःशुल्क, विभिन्न मुद्रा कर, माप तौल, आदि के कारण देश के आन्तरिक व्यापार तथा समागम में अनेक रुकावटें थीं जो गणराज्य के संघीय संविधान अपनाने से दूर हो गई हैं, और औद्योगिक और आर्थिक दृष्टि से देश का ऐकीकरण हो गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संघ शासन के विकास में आर्थिक लाभ और समस्या ने बड़ा योग दिया है।

४—राजनीतिक हेतु और प्रेरणायें

यह बात निरसन्देह सत्य है कि एक बड़ा राज्य अपने विस्तृत क्षेत्र, अधिक जनसंख्या और विस्तृत संसाधनों के कारण किसी भी छोटे राज्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और सम्मानित होता है। सभी अंतर्राष्ट्रीय मामलों में बड़े राज्य के विचारों का ही अधिक प्रभाव होता है। जब अमरीका में, स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् एक ऐसी विचारधारा उठी जो १३ उपनिवेशों के दो या तीन प्रसंघियों में सम्मिलित होने के पक्ष में थी, तो जे (Jay) ने इस प्रश्न की ओर अमरीकनों का ध्यान आकर्षित करते हुए, देश के इस प्रकार के विभाजन से उत्पन्न संकटों को बताया और उनसे अनुरोध किया कि वे एक ही संघ में सम्मिलित रहें। उस मेल के राजनीतिक लाभों को स्पष्ट करते हुए उसने लिखा "एक ही शासन देश के किसी भी भाग में रहनेवाले योग्यतम व्यक्तियों की योग्यताओं और प्रतिभाओं से लाभ उठा सकता है। वह राजनीति की समता के सिद्धान्तों पर चल सकता है। वह राज्य के सभी भागों और सदस्यों का आत्म ग्रहण कर, समरूप करता हुआ उनकी रक्षा कर अपनी दूरदर्शिता तथा पूर्वोपाय से उन्हें लाभ पहुँचा

सकता हैं । संधियों के करते समय वह समस्त के हितों का साधन करेगा, और खण्डों के विशेष हितों को सम्पूर्ण के हितों से सम्बद्ध करेगा । वह किसी भी भाग की रक्षा करने में सम्पूर्ण के संसाधनों और शक्ति का प्रयोग करेगा, और यह सब प्रत्येक पृथक् राज्य सरकारों का प्रसंधियों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता समता और सरलता से कर सकेगा ।"[१] उसने यह चेतावनी देते हुए कि पड़ोसियों में ईर्ष्या और द्वेष से विभिन्न संकट उपस्थित हो जाते हैं, लिखा कि यदि अमरीका १३ राज्यों में अथवा दो या तीन प्रसंधियों में विभक्त छोड़ दिया जाय तो वे क्या सेना एकत्रित कर सकेंगे, अथवा उनके पास क्या नौ-शक्ति होगी ? यदि एक पर आक्रमण हुआ, तो क्या दूसरे उसकी सहायता के लिये दौड़ेंगे ? क्या यह भय नहीं बना रहेगा कि उनमें से कुछ को लंबे चौड़े वायदों से तटस्थ रहने को राज़ी कर दिया जाय, और शांति का विशेष लाभ दिखा कर अपने पड़ोसियों की रक्षा करने से उत्पन्न भय द्वारा उन्हें रोक दिया जाय, जिन पड़ोसियों से उन्हें शायद ईर्ष्या है और जिनके महत्व के घटने से उन्हें संतोष हो। यूनान के राज्यों तथा अन्य देशों के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, तो यह असम्भव नहीं कि इतिहास में जो पहले हो चुका है, वैसी ही परिस्थितियों में, फिर वही हो।"[२] यही बात स्विस के संघ के सम्बन्ध में कही जा सकती है । यदि वहाँ के २२ कैंटनो ने सन् १८१५ में मिलकर संघ में रहना निश्चय न किया होता तो योरुपीय राजनीति के संघर्ष में स्विट्जरलैंड के वर्तमान प्रभाव की भाँति पृथक् पृथक कैंटनों का प्रभाव न होता ।

ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का भी राजनीतिक प्रभाव उस मेल-जोल का ही फल था, जिसमें एक ही राजमुकुट के प्रति श्रद्धा रखते हुए संसार के विभिन्न भागों में स्थित स्वशासित उपनिवेश एक सम नीति का अवलम्बन करते रहे हैं ।

राजनीतिक मेल से जो शक्ति उत्पन्न होती है वह राज्य को विशेष प्रभावशाली बनाती है । यह सिद्धान्त सदा से ही मान्य चला आ रहा है । "मेल की उत्कट भावना और शुभाभिलाषाओं ने, इतिहास के आरम्भिक काल से ही, लोगों को संघ-शासन की स्थापना करने, उसका परिरक्षण करने तथा स्थायी बनाने के लिये प्रेरित किया है । जैसे ही उन्हें राजनीतिक अस्तित्व मिला, उन्होंने उसकी (संघ-शासन) स्थापना की; नहीं, बल्कि ऐसे समय भी जब उनके (देशों के) निवासी अग्निज्वाला में फँसे थे, जब उनके बहुत से नागरिकों का रक्त बह रहा था, और

---

१. फेडरेलिस्ट, सं० ४ ।
२. पूर्व स्रोत ।

जब शत्रुता और बरबादी के बढ़ने से शांतिपूर्ण तथा परिपक्व जाँच और विचार करने के लिये गुंजायश ही न थी, जो बुद्धि पूर्ण और सुसंतुलित स्वतंत्र शासन की स्थापना के लिये आवयक है।"[१]

यही कारण था कि बिस्मार्क ने प्रशिया को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये ३९ राज्यों को मिला कर सन् १८६७ में जर्मन साम्राज्य को संघात्मक रूप दिया था, ब्युएस्ट (Buest) और फ्रांसिस डीक (Francis Doak) ने आस्ट्रिया और हंगरी का प्रसंघान स्थापित किया; आस्ट्रेलिया निवासियों ने आस्ट्रेलियन संघ की स्थापना की; दक्षिणी अफ्रीका के नेताओं ने दक्षिणी अफ्रीका 'यूनियन' बनाया; और इन सभी के प्रयत्न का फल सबल और अधिक प्रभावशाली राज्यों की स्थापना में हुआ। बड़े और अधिक प्रभावशाली राज्यों के नागरिक होने की महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर इन देशों के निवासियों ने संघों की स्थापना में अपना हित समझा। ऐसी ही भावनाओं से प्रेरित होकर नोवा स्काटिया के विधान मंडल ने १८५४ में सर्व-सम्मति से निश्चय किया कि "ब्रिटिश प्रांतों के संघ वा प्रसंधान में सम्मिलित होने से, उनके पैतृक राज्य के साथ अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध होने के साथ साथ, उनकी उन्नति, प्रगति और समृद्धि होगी, उनके बल और प्रभाव में वृद्धि होगी",[२] और इस प्रकार कनाडा का संघ स्थापित हुआ था।

यदि योरुप के मध्य में स्थित ३९ छोटे बड़े राज्यों ने मिलकर सन् १९२९ में परास्त जर्मनी के विभिन्न अंगों को एकत्रित रख कर गणराज्य का संघात्मक शासन स्थापित न किया होता तो वे पृथक् पृथक् राज्य, प्रथम महासमर की चोट खाने के पश्चात् इतने प्रतिभाशाली और प्रभावशाली न हो पाते जितना उनका गणराज्य हो गया था। कुछ ही वर्षों में जर्मनी ने अपना प्रभाव फिर से जमाया और राष्ट्र संघ (League of Nations) में उसे अन्य महाशक्तियों के साथ बराबरी का स्थान प्राप्त हो गया।

सन् १९४७ में भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम (Indian Independence Act) के अनुसार जहाँ ब्रिटिश भारत के दो स्वशासित राज्य, भारत और पाकिस्तान बने, वहाँ ५०० से अधिक देशी राज्यों को भी ब्रिटिश शासन से मुक्त कर यह अधिकार दे दिया गया था कि वे अपनी स्वतंत्र इच्छा से अपना भविष्य निश्चित करें। देशी राजाओं ने दूरदर्शिता से काम लिया और अपनी रियासतों को स्वेच्छा से भारतीय

१. फेडरेलिस्ट, सं० २।

२. सर जॉन मेकडानल्ड की जीवनी, ले०—जी० आर० पार्किन, पृष्ठ ९५ पर उद्धृत।

संघात्मक गणराज्य में सम्मिलित कर दिया, राजपूताना की रियासतों को मिला कर राजस्थान का प्रभावशाली सुसंपत राज्य बना दिया गया, और इस प्रकार प्रत्येक छोटी रियासत राजनीतिक दृष्टि से प्रगतिशील बन गई। इसी प्रकार पूर्वी भारत में छत्तीसगढ़ की रियासतें मध्यप्रदेश में शामिल हुईं; गुजरात में भी इसी प्रकार छोटी रियासतों का विलयन हुआ, इत्यादि। यदि प्रत्येक नरेश ने स्वतंत्र रहना निश्चय किया होता तो किसी भी रियासत का राजनीतिक हित सुरक्षित न रहता और न वहाँ के निवासियों को वे सुविधायें और अधिकार तथा उन्नति करने के वे अवसर प्राप्त होते जो भारतीय गणराज्य की नागरिकता से उन्हें प्राप्त हैं।

यदि सन् १९२३ में रूस साम्राज्य के विभिन्न राज्य एक संघ न बना लेते तो उनमें से कोई भी इतना राजनीतिक प्रभाव तथा महत्व प्राप्त न कर सकता जितना आज साम्यवादी सोवियत गणराज्य को विश्व में प्राप्त हो गया है।

सारांश यह है कि छोटे-छोटे राज्य संघ बनाकर अपनी राजनीतिक प्रतिष्ठा बढ़ा लेते हैं और अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से प्रभावशाली बन जाते है। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बड़े राज्य की जो सुनवाई होती है वह छोटे राज्य की नहीं होती, इसी कारण छोटे छोटे राज्य मिल कर संघ बनाने के लिये तैयार रहते हैं। इसके अतिरिक्त संघ-शासन में व्यय की भी बचत होती है क्योंकि संघ स्थापित हो जाने पर उप-राज्यों को अलग अलग निजी स्थल, जल और वायुसेना रखने की आवयकता नहीं रहती और न उन्हें अपने निजी दूत तथा दूतावास ही रखने पड़ते हैं, क्योंकि ये सभी कार्य केन्द्रीय सरकार करती है जो उपराज्यों के लिये राष्ट्रीय सेना, राष्ट्रीय दूतावास और राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व प्राप्त कर अन्य देशों की राजनीतिक मान्यता प्राप्त कर अधिक प्रभावशाली बन कर उपराज्यों के राजनीतिक स्तर को बढ़ा देती है।

५—मूलवंशीय तथा सांस्कृतिक कारक

संघों के इतिहास से यह शिक्षा मिलती है कि संघों के निर्माण में वंश, जाति और सांस्कृतिक एकता ने बहुत सहायता दी है। फेडरेलिस्ट के लेखकों ने भी इन विभिन्न कारकों का महत्व बताते हुए और उनका प्रभाव संयुक्त राज्य अमरीका के राजनीतिक एक्य पर दर्शाते हुए लिखा था, "मुझे इसका अनेक बार ध्यान करते हुए भी प्रसन्नता होती है कि ईश्वर ने इस एक सम्बन्ध देश को एकताबद्ध लोगों को सौंपा है—वे लोग एक ही पूर्वजों से उत्पन्न, एक ही भाषा बोलनेवाले, एक ही धर्म के अनुयायी, शासन के एकसम सिद्धान्तों से प्रभावित, अपने जीवन में एकसम रीतिरिवाजों को माननेवाले हैं, जिन्होंने, एकमत हो, शस्त्रों और प्रयासों

से एक दूसरे से कंधा लगाकर एक लंबे और खूनी युद्ध में लड़कर बड़ी शान के साथ सामान्य स्वाधीनता और स्वतंत्रता स्थापित की है।[1]" सन् १७७० के लगभग अमरीका के तेरह उपनिवेशों के निवासी अधिकतर ऐंग्लो सेक्सन वंश के थे, यद्यपि अन्य यूरोपीय जातियों, जैसे आयरिश, फ्रेंच, स्पेनिश, डच तथा इटालियन भी थोड़ी थोड़ी संख्या में थे, किन्तु एक ही शासन और देश में पड़ोसी जीवन व्यतीत करने के कारण सभी अपने को अमरीकन समझने लगे थे और अंग्रेजी भाषा तो सभी बोलते थे। इन सभी को अंग्रेजी शासन की कठोरतायें अखरने लगीं और वे यह सहन न कर सके कि उनके पूर्वजों के मातृदेश इंगलैंड की पार्लियामेंट के सदस्य उपनिवेशों में रहने वाले वंशजों को शासन के उन सिद्धान्तों और विशेषाधिकारों से वंचित रखें जिनके अनुसार वे स्वयं शासित हो सुखी जीवन बिता रहे थे। स्वतंत्रता के युद्ध में वे सभी उपनिवेशी कंधे से कंधा मिलाकर इंगलैंड से लड़े और स्वतंत्रता प्राप्त होने पर उनमें एक्य स्थापित हुआ। इस प्रकार उत्पन्न एकता के भावों का जो विशेषतया मूलवंशीय एकता थी, इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उन उपनिवेशों ने अपने राजनीतिक पृथक्ता को बहुत कुछ छोड़कर सन् १७८७ में एक संघ की स्थापना की और यही संघ आज संयुक्त राज्य अमरीका संसार में अत्यन्त धनी और सर्वोच्च शक्तिशाली देश है।

आस्ट्रेलिया में भी संघ निर्माण के आन्दोलन के समय सर हेनरी पार्क्स ने वहाँ के छह विभिन्न उपनिवेशों के निवासियों से एक संघ में मिल जाने के लिये अपील करते समय मूलवंशीय एकता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा था कि 'हम सभी एक मूलवंशीय एकता के धागे में पिरोये हुए हैं', और इन शब्दों का जो भावात्मक प्रभाव पड़ा उसी के परिणामस्वरूप आस्ट्रेलिया में संघ-आंदोलन को सहायता मिली थी। अमरीका और आस्ट्रेलिया के संघों की स्थापना में मूलवंशीय (racial) और भाषा की एकता बहुत महत्व के कारक थे।

मूलवंशीय असमता के भी कारण कतिपय संघों की स्थापना में सहायता मिली जो इस प्रकार थी। कनाडा में, सन् १७६३ के लगभग दो प्रांत थे; उत्तर में आंटेरियो जिसमें अंग्रेजी मूलवंश के निवासी रहते थे, और दक्षिण में क्यूबेक प्रांत में अल्प संख्या में अंग्रेज थे, शेष सभी लोग फ्रांसिसी थे जिनकी भाषा फ्रेंच थी और वे फ्रेंच साहित्य पढ़ते तथा फ्रेंच संस्कृति और विचारधारा के समर्थक थे। उन दोनों प्रांतों का शासन लंदन के औपनिवेशिक कार्यालय द्वारा होता था।

---

१. जॉन जे० द्वारा लिखित फेडरेलिस्ट, अंक २।

क्यूबेक में मूलवंशीय, सांस्कृतिक और साहित्यक भेदों के कारण झगड़े रहते थे। लार्ड डर्हम ने अपने प्रतिवेदन (रिपोर्ट) में लिखा था; "निचले कनाडा (क्यूबेक) में शांति भंग और अव्यवस्था की जड़ में दो मूलवंशों का मतभेद है जिसके कारण सुशासन असम्भव है।[1] और यह भी कहा कि यद्यपि शासन व्यवस्था की कठिनाइयाँ हैं, फिर भी समाज के ढाँचे में वंशीय भेदों का बहुत प्रभाव पड़ा है। अंग्रेजी मूलवंशीय नागरिकों के फ्रांसिसियों के प्रति दुर्व्यवहार की चर्चा करते हुए, डर्हम ने लिखा ; "अंग्रेज जाति का यह कोई सद्गुण नहीं है कि वे अपने से भिन्न जीवन के ढंग, रीति रिवाजों और कानूनों वाले लोगों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते; अपने जीवन को औरों से ज्येष्ठ समझते हुए, वे उनके प्रति असहिष्गुता तथा घृणा को छिपाने की कोशिश नहीं करते। उन्होंने फ्रांसीसियों को भी अपने बराबर आत्माभिमानी देखा है, वे अपमान नहीं सहते और दूर ही रहते हैं........ फ्रांसिसी अंग्रेजों के दुर्व्यवहार की शिकायत करते हैं; उधर अंग्रेज भी फ्रांसिसीयों को पराजित जाति के अवगुणों से भरपूर समझते हैं। इन दोनों जातियों के आपसी अविश्वास का परिणाम यह है कि वे दूसरे की शुभेच्छाओं का भी बुरा अर्थ निकालते हैं और सद्भावनाओं और कृपादृष्टि को भी संदेह की दृष्टि से देखकर उसे दुर्भावना और गुप्त भेद समझते हैं।[2]

इन आपसी शत्रुता और ईर्ष्याओं के कारण सुलभ शासन में अनेक कठिनाइयाँ होती थीं। दोनों जातियों ने अपने अपने पृथक् स्कूल, क्लब और मनोरंजन की समाजें स्थापित कर रखी थी। वे सहभोज भी नहीं करते थे। उनमें सामाजिक सम्पर्क असम्भव हो गया था। जातिय द्वेष यहाँ तक बढ़ गया था कि छोटे-छोटे बच्चे भी जब गली-कूचों में खेलते थे तो दो दलों में विभक्त हो, एक का नाम फ्रेंच और दूसरे का नाम अंग्रेजी रखते थे। उनके बच्चे भी अपना-अपना जातीय साहित्य पढ़ते थे जिसका प्रभाव भी वैमनस्य बढ़ाता था। न्यायसम्य मंडलियाँ (Juries) भी इस प्रभाव से नहीं बची थीं, वे अपराधी के दोषी अथवा निर्दोषी होने का विचार न कर अपने जातीय अपराधी के पक्ष में ही अपना निर्णय देती थीं। इससे अधिक इस जातीय वैमनस्य की और क्या सीमा हो सकती थी? इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि जनसंख्या की वृद्धि रुक गई और देश की समृद्धि को भी धक्का पहुँचा। जहाँ सन् १८३२ में नये आगन्तुकों की संख्या बावन हजार थी वह १८३७ में

---

१. रिपोर्ट, भाग २, पृ० ७२।
२. उपरोक्त, पृ० ६३।

घट कर बाईस हजार और १८३९ में केवल पाँच हजार रह गई। इस सब के लिये डर्हम ने सरकार को ही दोषी ठहराया, क्योंकि शासन ने वैमनस्य की अग्नि को बढ़ने से रोकने के लिये कोई भी कदम नहीं उठाया था।[1] परिस्थिति इतनी जटिल हो गई थी कि डर्हम जैसे दूरदर्शी व्यक्ति को भी कोई उचित सुझाव न सूझा और उसने केवल यही कहा कि दक्षिणी कनाडा में अधिक संख्या में अंग्रेज उपनिवेशी बसा कर फ्रेंच लोगों की बहुसंख्या को अल्प संख्या में परिवर्तित कर दिया जावे और उत्तरी तथा दक्षिणी कनाडा को मिलाकर विधायी एक्य (Legislative Union) स्थापित कर दिया जावे। उस समय ब्रिटिश पार्लियामेंट ने इस सुझाव को मान कर दोनों प्रांतों को एक में मिलाकर एक ही शासन स्थापित कर दिया। किन्तु इस विलयन से फ्रेंच लोग न तो अपनी पृथक् राष्ट्रीयता को और संस्कृति को भूल सके और न उन्हें किसी प्रकार भी अंग्रेजों की बहुसंख्या द्वारा शासित होने से कोई संतोष हुआ। अन्त में २५ वर्ष के इस हल के प्रयोग को ठीक न समझकर पार्लियामेंट ने कनाडा के लिये सन् १८६७ में संघात्मक संविधान बनाया जिसके अनुसार १८४२ के विलयन को भंग कर उत्तरी और दक्षिणी कनाडा को पृथक् पृथक् प्रांतों में विभक्त कर उनको समानाधिकार देकर आंटेरियो और क्यूबेक नाम देकर, कनाडा में संघ की स्थापना की। इसका फल ठीक रहा क्योंकि क्यूबेक प्रांत के फ्रेंच निवासियों को अपनी बहुसंख्या द्वारा शासन कर अपने हितों (धार्मिक, सांस्कृतिक तथा जातीय) की रक्षा करने और अपने ढंग और रीति रिवाजों के अनुसार जीवन व्यतीत करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो गई, उधर आंटेरियो प्रांत में अंग्रेज उपनिवेशियों को भी अपने प्रांत में इसी प्रकार की स्वतंत्रता मिल गई। इस प्रकार मूलवंशीय, सांस्कृतिक तथा भाषा की विभिन्नताओं ने संघवाद के सिद्धान्तों में समुचित हल निकालकर कनाडा के संघ की स्थापना में योग दिया। तभी से अब तक ९५ वर्षों के संघीय हल ने कनाडा में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों को अपने-अपने हितों की रक्षा कर एक सबल संघीय राज्य बनाने और कनाडा की नवीन राष्ट्रीयता को गर्व के साथ स्थापित करने में विचित्र सहायता प्रदान की है।

स्विट्जरलैंड की भी राजनीतिक कहानी ऐसी ही है। वहाँ तीन जातियों (मूलवंशीयों) के लोग रहते हैं; जर्मन, फ्रेंच और इटालियन जो विभिन्न कैंटनों में बहुसंख्या में है। वे एकिक शासन के अन्तर्गत तो रह ही नहीं सकते थे क्योंकि उनकी सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ और जातीय भाव बहुत भिन्न थे। और न प्रत्येक जाति के

---

१. डहम रिपोर्ट, भाग २, पृष्ठ ४३-६३।

कैन्टन पृथक् पृथक् स्वतंत्र राज्य बनाकर अधिक काल तक स्वाधीन रह सकते थे क्योंकि निश्चय ही फ्रांस अपने पड़ोसी फ्रेंच कैन्टनों पर, और जर्मनी अपने पड़ोसी जर्मन कैन्टनों पर तथा इटली अपने पड़ोसी इटालियन कैन्टनों पर अधिकार जम लेता। इसीलिये सभी कैन्टनों ने मिलकर संघ का निर्माण कर लिया जिसके फलस्वरूप आज स्विट्ज़रलैंड स्वाधीन देश है। जिसमें प्रत्येक जाति अपने ऊपर स्वशासन करती हुई सुख और शांति का जीवन व्यतीत कर रही है।

इसी प्रकार दक्षिणी अफ्रीका में भी जहाँ हालैंड वालों ने अपने उपनिवेश स्थापित कर अपने वंशजनों का राज्य स्थापित किया तथा अंग्रेज़ों ने भी अपने उपनिवेशों में अंग्रेज़ बसाये, वहाँ सभी प्रांतों ने मिलकर १९०९ में संघीय सिद्धान्तों के आधार पर प्रत्येक प्रांत को आन्तरिक शासन में स्वत्याधिकार दे कर यूनियन की स्थापना की। इस यूनियन में डच बहुसंख्यक प्रांत, और अंग्रेज बहुसंख्यक प्रान्त अपनी अपनी संस्कृति और जीवन-ढंग के अनुसार रहते हुए अपना स्थानीय स्वायत्त शासन करते हैं और सभी प्रान्त राष्ट्रीय बातों में यूनियन के द्वारा शासित होते हैं।

मूलवंशीय भेदों की समस्या का एक और भी पहलू है जिसके कारण संघीय शासन के सिद्धान्तों के आधार पर राजनीतिक परिस्थिति का हल किया गया है। वह पहलू है उपनिवेशों में प्राचीन आदिम निवासियों और उपनिवेशियों के जातीय मतभेद तथा उससे उत्पन्न शासकों (उपनिवेशियों) तथा शासितों (आदिम निवासियों) के बीच राजनीतिक समस्या का। दक्षिणी अफ्रीका और संयुक्त राज्य अमरीका में यह प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया था और दक्षिणी अफ्रीका में तो अब भी जटिल रूप धारण किये हुए है। दक्षिणी अफ्रीका के चारों उपनिवेशों में हबशियों (Negroes) की संख्या बहुत थी और योरुपीय उपनिवेशियों की कम थी। इन स्वेतवर्ण उपनिवेशियों ने आदिम निवासी हबशियों पर अपना अधिकार जमा कर उन पर तरह तरह के अत्याचार किये और उनके शारीरिक बल तथा श्रम का भी शोषण किया। यदि सन् १९०९ के पश्चात् भी प्रत्येक उपनिवेश पृथक् एकिक प्रान्तीय शासन बनाये रखता तो प्रत्येक प्रान्त के श्वेत वर्णों को हबशियों को दबाने में कठिनाई पड़ती, इसलिए चारों प्रान्तों ने मिलकर यूनियन सरकार की स्थापना की ताकि यूनियन की शक्ति द्वारा काले वर्ण वालों को दबाकर रखा जावे। इस प्रकार बीस प्रतिशत संख्या वाले श्वेत वर्णों ने ८० प्रतिशत काफिरों (Kaffirs) अर्थात् काले हबशियों पर शासन स्थापित कर रखा है।

संयुक्त राज्य अमरीका में यद्यपि सारे राज्य में अब हबशियों की संख्या गौर वर्णों की अपेक्षा कम है किन्तु कुछ दक्षिणी उपराज्यों में हबशी अधिक संख्या में हैं।

संघीय शासन की स्थापना के पश्चात् केन्द्रीय सरकार की शक्ति से गौर वर्णों को हबशियों पर शासन रखने में अधिक सफलता मिली थी ।

आधुनिक संसार में, क्षेत्रफल की दृष्टि से, सोवियत रूप सबसे विशाल संघराज्य है जो दो महाद्वीपों, एशिया और योरुप में, उत्तर में टंड्राज़ से लेकर दक्षिण में अफगानिस्तान, ईरान और तुर्की तक तथा पश्चिम में पोलैंड और स्वीडन से लेकर पूर्व में प्रशान्त महासागर तक फैला हुआ है। इतने विशाल देश का बहुजातीय, बहुभाषीय और बहुराष्ट्रीय होना स्वाभाविक है। इस देश में, एस्कीमो, यूक्रेनियन, मंगोल, तुर्क, काकेशियन, स्लेव आदि विभिन्न मूलवंशीय जातियों के लोग विभिन्न भागों में रहते हैं। वे अपनी संस्कृति, भाषा, भेष, भाव, भोजन तथा रीति-रिवाजों के अनुसार जीवन निर्वाह करते हैं। प्रथम विश्व-युद्ध तक वहाँ ज़ार का आतंकवादी राज्य था। महासमर के मध्य में वहाँ लोकतंत्रीय लहर जिसे ज़ार ने दबा रखा था, बड़ी तेज़ी से बढ़ी, ज़ार को गद्दी से ही नहीं उतारा गया, बल्कि उसको और उसके सारे कुटुंबियों को मौत के घाट उतारकर, सैनिकों और श्रमिकों ने जन-शासन की स्थापना की। सन् १९२४ और १९३६ में जो संविधान बने वे संघीय सिद्धान्तों के अनुसार बने और प्रत्येक मूलवंशीय जाति के प्रदेश को स्थानीय शासन की स्वतंत्रता दे दी गई, क्योंकि संविधान निर्माता जानते थे कि एकात्मक राज्य में इन विभिन्न जातियों को अपनी अपनी संस्कृति, भाषा आदि की रक्षा का अवसर न मिलेगा। रूस के संघीय गणराज्यों (Union Ropublics) में भी कई ऐसे हैं जो बहुजातीय, बहुभाषी हैं और वे भी संघीय सिद्धान्तों के अनुसार शासित होते हैं जिससे प्रत्येक जाति के हितों की रक्षा हो जाती है। रूस में यों तो लगभग १५० भाषाएँ बोली जाती हैं किन्तु इनमें १६ प्रमुख हैं जिनके आधार पर १६ संघीय गणराज्यों का निर्माण किया है। कनाडा और स्विट्ज़रलैंड की भाँति रूस में भी भाषाओं की और जातियों की विभिन्नता ने संघीय शासन अनिवार्य किया है ।

रूस आदि बहुभाषी देशों के अनुभव को आगे रखकर भारत ने भी संघीय शासन के सिद्धान्तों के आधार पर १९४९ का संविधान अंगीकृत किया। भारत के विभिन्न प्रान्तों अथवा राज्यों का आधार भाषा ही है। विभिन्न राज्यों में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। यद्यपि ब्रिटिश शासन काल में प्रान्तों की सीमाएँ किसी वैज्ञानिक आधार पर निश्चित् नहीं हुई थीं, किन्तु मांटेगूचेम्सफ़ोर्ड सुधारों के पश्चात् भाषा के तथा मूलवंशीय भेदों के आधार पर प्रान्तों के पुनर्संगठन की माँग उठी और बिलोचिस्तान, सिन्ध और उड़ीसा के प्रान्त इसी आधार पर बनाये गये। भारत के भाषावार चित्र से यही परिणाम निकलता है कि यहाँ प्रमुख भाषाएँ सघन क्षेत्रों में बोली जाती हैं।

ऐसे विशाल देश में एक ही केन्द्र द्वारा शासन करना सुलभ नहीं। विभिन्न राज्यों का भाषावार निर्माण कर, प्रत्येक राज्य को विभिन्न प्रकार से स्थानीय बातों में स्वतंत्रता देकर, राष्ट्रीय महत्व के विभागों को केन्द्रीय शासन में रखना संघवाद के सिद्धान्तों का अवलम्बन कर भारतीय गणराज्य का संविधान बनाया गया है, और उस संविधान में १५ प्रमुख भाषाओं को राष्ट्रीय मान्यता दी गई है। जर्मनी में वीमार (Weimar) के संघीय संविधान में प्रान्तों के आवश्यकतानुसार पुनर्निर्माण की व्यवस्था की गई थी, इसी प्रकार भारत के संविधान में भी तीसरे अनुच्छेद में केन्द्रीय सरकार को आवश्यक शक्ति और अधिकार दिया गया है जिसका प्रयोग, आंध्र देश को तेलूगू भाषा, महाराष्ट्र को मराठी और गुजरात को गुजराती भाषा के आधार पर निर्मित किया गया है।

पाकिस्तान के दोनों अंगों, पूर्वी बंगाल और पश्चिम में पश्चिमी पंजाब, में विभिन्न भाषाओं, बंगाली और उर्दू के आधार पर बहुत कुछ संघीय सिद्धान्तों के अनुसार आन्तरिक स्वायत्त शासन के अधिकार दिये गये हैं।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बहुभाषी देशों, जैसे कनाडा, स्विट्ज़रलैंड, दक्षिणी अफ्रीका, सोवियत रूस, भारत और पाकिस्तान में विभिन्न प्रकार से संघवाद के सिद्धान्तों के अनुसार उक्त देशों के विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीय भावनाओं का समाधान करने से संघवाद को अपनाया गया है।

धार्मिक भेदों को सुलझाने के लिये बहुमतीय देशों में संघवाद को सहायता मिली है। उत्तरी कनाडा (आंटेरियों प्रान्त) में अंग्रेज़ बहुसंख्यक थे जो इंगलैंड के चर्च के अनुयायी थे; दक्षिणी कनाडा में फ्रेंच बहुसंख्यक जैसुइट्स मतावलम्बी थे जिनकी चर्चों को दी गई सम्पत्ति की आय बहुत अधिक थी। सम्मिलित कनाडा में यह सभी के हित में व्यय होती थी। दोनों मूलवंशीय जातियों में धार्मिक वैमनस्य था। इस धार्मिक भेद और वैमनस्य से शांति भंग होती थी। संघीय शासन स्थापित होने से कनाडा के उत्तरी और दक्षिणी प्रांतों की धार्मिक समस्या का भी समाधान हो गया और विशेषकर दक्षिणी प्रांत (क्यूबेक) में फ्रेंच जैसुइट्स अपने गिरजों की सम्पत्ति को अपनी इच्छानुकूल व्यय करने लगे।

यद्यपि वर्तमान युग में अधिकतर राज्यों में धर्मनिरपेक्ष राज्य-शासन की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, किन्तु फिर भी धार्मिक भावों का लोगों के जीवन में प्रभाव पड़ता ही है। प्रत्येक धार्मिक समुदाय के व्यक्ति धार्मिक स्वतंत्रता के इच्छुक होते हैं और वे ऐसा शासन चाहते हैं जिसमें उनका जीवन अपने मत के सिद्धान्तों के अनुकूल चलता रहे। स्विट्ज़रलैंड में पहले कैथोलिक मतावलम्बी ही थे किन्तु सोलहवीं शताब्दी

में वहाँ प्रोटेस्टेंट मत का प्रचार हुआ और १९ वीं शताब्दी तक बढ़ता ही गया। सन् १५३१ में प्रोटेस्टेंट और केथोलिक मतावलम्बी कैंटनों में पहला गृहयुद्ध हुआ, सन् १७१२ दूसरा धार्मिक युद्ध हुआ। अन्त में सन् १८४५ में धार्मिक झगड़ों ने ऐसा विषम रूप धारण कर लिया कि केथोलिक कैंटनों ने अपनी सेना के बल पर केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध युद्ध कर प्रसंधान से मुक्त होने का प्रयास किया। संघीय सेना ने केथोलिक कैंटनों को परास्त कर संघ की रक्षा तो कर ली, किन्तु सन् १८४८ में ही संघीय संविधान में ऐसे संशोधन कर दिये जिनसे केथोलिक कैंटनों को धार्मिक सुविधाएँ मिल गईं। इस प्रकार यह धार्मिक झगड़ा सुलझ गया।

भारतीय प्रायद्वीप में भी हिन्दू-मुसलिम झगड़े होते गये और यद्यपि इनसे राजनीतिक सम्बन्ध न था किन्तु सन् १९४६ में मुसलिम लीग ने पाकिस्तान बनाने की माँग रखी। इसमें संदेह नहीं कि यह माँग विवेकहीन तथा किसी के भी वास्तविक हित में न थी। किन्तु कतिपय मुसलिम नेताओं ने अपने निजी स्वार्थों की सिद्धि के लिये भारत के दो टुकड़े करा ही लिये, पाकिस्तान बना दिया गया; देश की शांति भंग हो गई। यद्यपि संघीय संविधान के अन्तर्गत मुसलिम बहुसंख्या वाले प्रांत स्वशासित रह सकते थे किन्तु 'इस्लाम ख़तरे में' के नारों ने मुसलिम जनता को उत्तेजित कर देश को विभाजित करा लिया।

सारांश यह है कि जिन देशों के विभिन्न खण्डों में विभिन्न मतों के माननेवाले रहते हैं वहाँ धार्मिक झगड़ों का हल संघवाद के सिद्धान्तों द्वारा हो गया है। कनाडा और स्विट्ज़रलैंड इसके मुख्य उदाहरण हैं। भारत में इन झगड़ों के कारण विशेष प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न हुई और देश के दो टुकड़े हो गये क्योंकि धार्मिक भेदों का अनुचित लाभ उठाकर राजनीतिक परिस्थिति बदल दी गई थी।

६—औपनिवेशिक नीति

संघवाद के इतिहास के अध्ययन से एक यह भी निष्कर्ष निकलता है कि साम्राज्यवादी तथा उपनिवेश बसानेवाले देशों ने अपने उपनिवेशों के प्रति जिस शासन नीति को अपनाया उसका कालान्तर में यह परिणाम निकला कि संघवाद के सिद्धान्तों को अपनाकर उन उपनिवेशों ने स्वतंत्रता प्राप्त करने में और पश्चात् भी आपसी मेल-जोल बढ़ाया और संघों की स्थापना की।

साम्राज्यवादी देशों ने जहाँ जहाँ अपने उपनिवेश बसाये वहाँ एक ही स्थान पर विभिन्न उपनिवेशों को एक दूसरे के सामंजस्य से पृथक् रख कर प्रत्येक पर पृथक्-पृथक् शासन रखा ताकि वे उपनियेश स्वयं निर्बल रहते हुए, आपस में मिलकर मातृ-

देश के प्रति उपद्रव खड़ा कर स्वतंत्र होने का प्रयास न कर सकें। यह भेद डालकर शासन की नीति (Divide et Impera) साम्राज्यवादी देशों की औपनिवेशीय नीति का आधारभूत सिद्धान्त रहा है। किन्तु कालान्तर में पड़ोसी भाव तथा अपने शासकों की कुटिल नीति से छुटकारा पाने के निमित्त वे उपनिवेश स्वतंत्रता के लिये आपस में मिल गये और संघवाद को अपनाकर अपनी शक्ति बढ़ाई। इंगलैंड के तेरह उपनिवेश उत्तरी अमरीका के अटलांटिक तट के पास स्थित थे। वे आपस में राजनीतिक दृष्टि से एक न थे, केवल एक ही मातृ-देश (इंगलैंड) के अधीन होते हुए लंदन के औपनिवेशिक कार्यालय से शासित होते थे। यदि इंगलैंड ने अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपनी औपनिवेशिक नीति की कठोरता द्वारा उन्हें अप्रसन्न और शोषित न किया होता तो वे उपनिवेश मिलकर स्वतंत्रता की घोषणा कर इंगलैंड के शासन का अन्त न कर पाते। इंगलैंड की औपनिवेशिक नीति उन सभी उपनिवेशों के प्रति कुटिलता, अत्याचार और आर्थिक शोषण से भरपूर थी। उपनिवेशों का शासन मातृ-देश (Mother Country) के हितों के साधन के लिये होता था, उपनिवेशों के निवासियों के हित में नहीं। जैसा कि संयुक्त राज्य अमरीका के संघीय इतिहास से स्पष्ट होता है, इसी औपनिवेशीय नीति के कारण दो परिणाम निकले। प्रथम, उन सभी उपनिवेशों ने मिल कर इंगलैंड के शासन से मुक्त होने की घोषणा कर स्वतंत्रता का युद्ध किया और वे स्वतंत्र हो गये। किन्तु उनमें कोई भी उपनिवेश पृथक् रहकर अपनी स्वतंत्रता कायम रखने में सफल न होता। इसी कारण फिलेडेल्फ़िया (Philadelphia) के संवैधानिक परिषद् में उन्होंने घनिष्ठ मेल करने की योजना प्रस्तुत कर १७८७ का संविधान बनाया और संयुक्त राज्य अमरीका का संघीय राज्य स्थापित किया।

इसी प्रकार कनाडा में भी विभिन्न प्रांतों (उपनिवेशों) के प्रति इंगलैंड की अदूर-दर्शी नीति रही। दक्षिणी कनाडा की फ्रेंच बहुसंख्यक विधायिनी सभा ने बार-बार अधिकारसूची (Civil List) को अस्वीकृत कर अपना रोष प्रकट किया। उत्तरी कनाडा के अंग्रेज़ी बहुसंख्यक विधानमंडल ने भी मातृ-देश की नीति के विरुद्ध स्वशासन के अधिकारों की माँग की। परिस्थिति इतनी बिगड़ी कि सन् १८३८ में अंग्रेज़ी सरकार ने लार्ड डर्हम (Lard Durham) को संयुक्त कनाडा का गवर्नर नियुक्त कर वहाँ की परिस्थिति पर रिपोर्ट देने का आदेश दिया। डर्हम उदार दल का सदस्य था, उसने कनाडा के प्रति अंग्रेज़ी औपनिवेशीय नीति को ही वहाँ की अशांति का कारण समझ उस नीति की निंदा की और यह कहा कि कनाडा के विभिन्न प्रांतों को स्वशासन के अधिकार दे दिये जावें। सर सी० पी० ल्यूकस ने लुई (Lewis) कृत 'गवर्नमेंट

'ऑफ़ डिपेन्डेंसी' नामक पुस्तक की भूमिका में लार्ड डर्हम की रिपोर्ट में लिखे सुझावों की प्रशंसा करते हुए कहा है : "लार्ड डर्हम के १८३८ के दूत मण्डल तथा १८३९ के के प्रतिवेदन से ही ग्रेट ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति का नया युग आरम्भ होता है। इसी के फलस्वरूप बड़े-बड़े उपनिवेशों को अधिक से अधिक विस्तार से स्वशासनाधिकार दिये गये और प्रसंधान का बीज बोया गया। उसका निकटतम परिणाम तो कनाडा के दोनों प्रांतों को मिलाकर पूर्ण उत्तरदायी शासन १८४०-४१ में स्थापित होने में हुआ और पूर्ण फल सन् १८६७ में इन दोनों प्रांतों को आन्टेरियो और क्यूबेक संज्ञा दे (पृथक् कर) उनके साथ नोवास्काटिया और न्यू ब्रंसविक को मिला कर कनाडा के संघ की स्थापना की गई जो आज समृद्धिशाली देश बन गया है।"

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि साम्राज्यवादी मातृ-देश की औपनिवेशिक नीति, (चाहे उसने उपनिवेशों में दमन किया हो अथवा वहाँ की परिस्थिति की अवहेलना की हो) के ही कारण उपनिवेशों ने अपना स्वतंत्रता का युद्ध छेड़ा, अपने ऊपर शासन करनेवाले देश से पृथक् हुए और फिर मिल कर संघवाद के सिद्धान्तों के आधार पर अपना संविधान बनाया। अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजों ने अपनी औपनिवेशिक नीति की भूल समझ ली और उन्नीसवीं शताब्दी में डर्हम के प्रतिवेदन में दिये गये सुझावों के अनुसार उपनिवेशों तथा अपने साम्राज्य के अन्तर्गत शासित देशों के प्रति उदार नीति अपनाई। लार्ड डर्हम ने लिखा था कि यदि दैव की बुद्धि के अदृश्य आदेशों में यह अंकित है कि ये देश सदैव के लिये ब्रिटिश साम्राज्य के भाग नहीं बने रहेंगे तो हमें अपने ही सम्मान की रक्षा के लिए ऐसे कदम उठाने चाहिये कि जब ये हमसे पृथक् हों तो वे ऐसी दशा में न हों कि अमरीकी महाद्वीप में ये अपना ही शासन करने के अयोग्य हों। सर सी० पी० ल्यूकस ने इन शब्दों की व्याख्या करते हुए कहा है कि ये शब्द कनाडा पर ही नहीं वरन् दूर-दूर तक और अमरीकी महाद्वीप के परे भी लागू होते हैं। "इनकी भावना समस्त ब्रिटिश साम्राज्य की जीती जागती शक्ति है। ये शब्द एक महान् अंग्रेज द्वारा अपने देशवासियों को दिया गया संदेश हैं कि अपने अनुरिक्थ को इन्हीं के आधार पर सुस्थित और स्थायी रखें। यदि इंगलैंड ने डर्हम की शिक्षा से स्फूर्ति प्राप्त की तो जिस प्रकार ब्रिटेन का उन्नत रूप महान् ब्रिटेन (Great Britain) हुआ, उसी भाँति महान् ब्रिटेन महानतर ब्रिटेन बनेगा, जो जगतनियंता का गौरव होगा, और मानव जाति का कल्याण होगा।"[1] उसने डर्हम की प्रशंसा करते हुए लिखा है : "डर्हम ने सभी युगों और परिस्थितियों में रहने वालों को यह सिद्धान्त

---

१. रिपोर्ट, भाग २, पृ० ३१०।

बताया है कि व्यक्तियों तथा जन समूहों के लिये जीवन की बहुमूल्य बात है कि वे निर्माण करें, विध्वंस नहीं, वे इमारत खड़ी करें, गिरावें नहीं; वे भिन्न तत्वों को मिलावें; सदैव के लिये और सर्वांश में "विभाजन कर शासन करने' के सिद्धान्त (Divide et Impera) को त्याग दें; बलवान बनें और डरें नहीं; संसार के लोगों को आगे बढ़ने की शिक्षा दें।"[१] इन शब्दों के द्वारा ब्रिटेन ने अपनी साम्राज्य शासन की नीति में धीरे-धीरे ही परिवर्तन किया। सन् १८५८ के पश्चात् भारत में भी भेद डाल कर शासन चलाने की नीति अपनाई और देशी राजाओं को न तो एक दूसरे से मिलने दिया कि कहीं वे सशक्त होकर सन् १८५७ का-सा युद्ध न छेड़ दें, और न देशी रियासतों को ब्रिटिश शासित प्रांतों से सम्पर्क करने दिया। प्रथम विश्व समर के पश्चात् इंगलैंड ने अपनी नीति में कुछ परिवर्तन किया। ब्रिटिश राष्ट्रमंडल की स्थापना हुई और भारत को भी सन् १९३५ के कानून के अनुसार बहुत कुछ स्वशासन के अधिकार दे दिये। द्वितीय विश्व समर के पश्चात् साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का अन्त होना आरम्भ हो गया। भारत को स्वतंत्रता मिली और देशी रियासतों में छोटी-छोटी रियासतों ने भारतीय गणराज्य में सम्मिलित होने के लिये मिलकर बड़ी इकाइयाँ बनाईं, जैसे सौराष्ट्र, राजस्थान, मध्यभारत आदि और ये इकाइयाँ भारतीय संघ में सम्मिलित हो गईं। इस प्रकार भारत में संघीय शासन अपनाने का मुख्य कारण इंगलैंड की साम्राज्यवादी औपनिवेशिक नीति ही थी।

ब्रिटिश साम्राज्यों के अन्य भागों में भी उपनिवेशों के संघ बने जिनमें छोटे-छोटे ब्रिटिश शासित भाग मिल गये। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है मलाया के संघ का जिसमें मलाया प्रायद्वीप के छोटे-छोटे अर्धस्वशासित विभिन्न भाग मिल गये हैं, और इसका श्रेय तुंकु अब्दुर रहमान को है।

बेलजियम की औपनिवेशिक नीति भी भेद डाल कर शासन करने की रही थी। अफ्रीका में कांगों पर बैलजियम के शासन का अन्त हुआ किंतु कटांगा को उभाड़ कर वहाँ भी बैलजियम ने कांगो संघ के भावी निर्माण को प्रोत्साहन ही दिया है। अफ्रीका के नव-स्वतंत्र देशों ने उपनिवेशवाद से मुक्त होकर संघवाद के सिद्धान्त की ओर दृष्टि डाली है और अब वहाँ भी छोटे-छोटे राज्यों के संघ बनना संभावित हैं। विभिन्न अरब देशों को भी साम्राज्यवादी देशों की नीति ने एक दूसरे से सहयोग करने में बाधाएँ डाली थीं। जब उपनिवेशवाद का अन्त होता जा रहा है तो अरब संसार में भी संघवाद का विस्तार होगा, यह निश्चय ही समझना चाहिए।

---

१. पू० स्रो०, पृष्ठ ३१६-१७।

संसार के विभिन्न संघों तथा प्रसंधानों के निर्माण में, प्राचीन काल से बीसवीं शताब्दी तक, उपरोक्त कारकों ने सहायता दी हैं। ये सभी कारक प्रत्येक राजनीतिक संघ की स्थापना में मौजूद न थे। यदि कहीं सुरक्षा तथा धार्मिक मंदिरों की एकता ने अधिक प्रभाव डाला था, जैसे प्राचीन यूनान के संघों में, तो मध्यकालीन प्रसंधानों में सुरक्षा और आर्थिक कारक अधिक प्रभावशाली रहे। वर्तमान काल में सांस्कृतिक हेतु, मूलवंशीय भावनाएँ तथा औपनिवेशिक नीति ने संघों के निर्माण में अधिक योग दिया। अगले दो अध्यायों में संघों का इतिहास दिया जाता है जिससे विभिन्न कारकों का प्रभाव स्पष्ट होता है।

अध्याय ३

संघवाद का इतिहास

प्राचीन तथा मध्यकालीन संघ

प्रस्तावना :—इस अध्याय के अन्तर्गत प्राचीन एवं मध्यकालीन संघीय एवं समूह-राज्यों का वर्णन किया गया है। जो कि आधुनिक काल में संघ राज्यों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

जैसा कि पिछले अध्यायों में कहा गया है, प्राचीन संघीय राज्यों के उदाहरण हमें प्राचीन यूनान के इतिहास में मिलते हैं। उन दिनों यूनान में बहुत से नगर-राज्य थे, जिनमें प्रत्यक्ष प्रजातंत्र राज्य प्रणाली का प्रचलन था। उन नगर-राज्यों के प्रत्येक नागरिक को अपना मत देने का पूर्ण अधिकार था, तथा पूर्ण रूप से शासन व्यवस्था में भाग लेने का भी अधिकार प्राप्त था। यह नगर-राज्य पूर्ण रूप से स्वतंत्र थे और किसी भी विदेशी शक्ति के अधीन न थे, परन्तु कभी कभी विदेशी आक्रमणों के भय के कारण आपस में संगठित हो जाते थे। इस प्रकार के उदाहरण हमें यूनानी इतिहास के अन्तिम अवनत काल में ही मिलते हैं। इसके अतिरिक्त समान भाषा, समान धर्म तथा समान रीति-रिवाजों के कारण भी वे राज्य कभी कभी आपस में मिल जाते थे। किन्तु ऐसे उदाहरण यूनान के उत्थान्वित काल में नहीं मिलते हैं, क्योंकि उस काल में प्रत्येक राज्य पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रहना चाहता था और जब कभी उन राज्यों की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती थी, वे आपस में संगठित हो जाते थे। परन्तु ज्यों ही उनका विदेशी भय समाप्त हो जाता था, उनका संगठन भी समाप्त हो जाता था और जब कभी दोबारा भय उत्पन्न हो जाता था, वे फिर आपस में मिल जाते थे। इस प्रकार वे संघराज्य स्थायी रूप से न बन सके।

अ—प्राचीन यूनान की देन

फ्रीमैन ने एकियन (Achaian), बोशियन (Boeotian) तथा ऐटोलियन (Aetolian) संस्थाओं को संघात्मक स्वीकार करते हुए भी इस बात पर बल दिया है कि डैल्फियन एम्फीटायनी (Delphian Amphictyony)

सच्चे अर्थों में संघात्मक सरकार का रूप नहीं प्रदर्शित करती। फ्रीमैन के अनुसार एम्फीटायनी की समिति यूनान की धार्मिक संस्था थी, जो पश्चिमी ईसाई संसार की कौंसिल की भाँति प्रतिनिधित्व करती थी, न कि स्विट्ज़रलैंड की डाइट (Diet) अथवा अमेरिकन कांग्रेस की भाँति, जो सामान्य संघीय संस्थाएँ थीं।[1] अर्थात् एम्फीटायनी समिति स्विट्ज़रलैण्ड की डाइट तथा अमेरिकन कांग्रेस की भाँति संघीय संस्था न थी। परन्तु यह विचार उस समय के लिये उपयुक्त न थे, जब कि अन्तर्राष्ट्रीय राज-नीति, उपनिवेशी नीति, व्यापारिक सम्बन्ध एवं मनुष्य के रहन-सहन का क्षेत्र बहुत ही संकुचित थे। उस काल में धर्म ही समस्त नीति का आधार, था। वास्तविकता में उस समय के यूनानी राजवेत्ताओं के लिये यह सम्भव न था कि वे मध्यकालीन या आधुनिक उन्नतिशील जन जागरण को समझते। अतः इससे सिद्ध होता है कि फ्रीमैन ने अज्ञानवश पुरातन जीवन एवं पुरातन राजनीति को, मध्यकालीन अथवा आर्वाचीन संगठनों से तुलना करके प्राचीन यूनानी (ग्रीक) संस्थाओं को समझने में भूल की है। यह सच है कि एम्फीटायनिक (Amphictyonic) संघ में संघीय विशेषताएँ विद्यमान थी, उदाहरणार्थ एक विशेष लक्ष्य के लिये संप्रभुतायुक्त राज्यों का आपस में एक सूत्र में बँधना आदि।[2] जिससे यह सिद्ध होता है कि यूनान के एम्फीटायनिक संघों में संघीय गुण विद्यमान थे।

---

1. Freeman, **History of Federal Government,** Vol. 1, p. 127.

He says that the Council of the Amphictyony "Represented Greece as an ecclesiastical synod represented western Christendom, not as a Swiss Diet or an American Congress represents the Federation of which it is the Common legislature."

In Greece these religious associations really drew the several cities together and thus developed a Federation which had a religious basis for its cohersion.

2. "That Amphictyonic Unions had one of the Characteristic elements of federation, namely, that they were free sovereign states combining for a particular purpose with an elaborate system of representation."

Encyclopaedia Britannica, Edition 13th. Vol. 1., pp. 233-234.

Cf. Freeman's previous remark. **History of Federal Governments,** Vol. I., p. 127.

१—एम्फीटायनिक संघ

एम्फीटायनी नाम यूनान के स्वतन्त्र जातियों अथवा नगर-राज्यों को, जो सामान्य पूजा के लिये धार्मिक मंदिर में एकत्र होते थे, दिया गया था। यद्यपि एम्फीटायनिक संघ में पूजा को ही प्राथमिकता दी गई थी, फिर भी इस प्रकार से बना हुआ संघ अपने सदस्यों को राजनीतिक गतिविधियों से प्रभावित करता था। यूनान में भी अन्य स्थानों के समान ही सामान्य धर्म और उपासना राजनैतिक संगठनों के बनाने में प्रभाव डालती थी। "ये त्यौहारिक संघ अथवा एम्फीटायनियाँ यूनान के इतिहास के ही समकालीन हैं, अथवा यों कहा जाय कि इनके द्वारा ही प्रथम राष्ट्रीय इतिहास का प्रारम्भ होता है,"[1] तो सम्भवत: गलत न होगा।

सारे यूनान में एम्फीटायनियों में डेल्फियन एम्फीटायनी सबसे अधिक प्रसिद्ध थी, जिसके सदस्य अपने सामान्य देवता की उपासना के लिये डेल्फी (Delphi) के प्रसिद्ध मंदिर में एकत्रित होते थे। एम्फीटायनिक कौंसिल ही एम्फीटायनी की केन्द्रीय प्रशासकीय संस्था थी। यदि संघीय सरकार की यही विशेषता है, दो सरकारों का होना, जिसमें राज्य का प्रत्येक राज्य आन्तरिक मामलों में पूर्व स्वतन्त्र होता है और द्विनागरिकता होती है, तो एम्फीटायनी में पूर्ण रूप में संघीय लक्षण विद्यमान थे। "इस प्रकार राज्य का प्रत्येक सदस्य स्वतंत्र तथा संप्रभुतायुक्त होता था, और संघीय समिति में समान मत देने का अधिकारी होता था। समिति को यूनान के सामान्य हितों को प्रस्तावित करने तथा उन पर निर्णय करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वही युद्ध और संधि की घोषणा करती थी, वही सदस्यों के पारस्परिक मतभेदों का निराकरण करती थी और विरोधी तत्वों के विरुद्ध सारी कार्यवाही करती थी। यही नहीं, अपराधी सदस्य को दंड देती, और नये सदस्यों को प्रविष्ट भी करती थी।[2]

---

1. "Such festivals, associations,or Amphictyonies, areco-eval with Greek history, or may even be said to constitute the fiist expressions of a common national history."

—Curtius, **History of Greece**, Vol. I. p. 111.

2. "The members retained the character of independent and sovereign state and had equal votes in the federal Council. This Council had a general authority to propose and resolve whatever it judged necessary for the Common welfarc of Greece, to declare and, carry on war; to decide. in the last resort, all controvercies

उस काल में संघात्मक सरकार का यह रूप अत्यन्त दुष्प्राप्त था, जब कि सुदूर राष्ट्रों में सम्बन्ध स्थापित करना कठिन था। सामान्य मंदिर के संरक्षक होने के नाते तथा विभिन्न स्वतन्त्र नगर-राज्यों की संघीय संस्था होने के नाते, उसके सदस्यों को निम्न-लिखित शपथ ग्रहण करनी पड़ती थी 'वे एम्फीटायनी के किसी भी नगर को नष्ट न करेंगे, न शांति अथवा युद्धकाल में अपने स्रोतों को भंग करेंगे। यदि कोई ऐसा करेगा तो वे संगठित रूप से उसके विरुद्ध अभियान करेंगे और उसके नगरों को नष्ट कर देंगे। यदि कोई उनके डेल्फी मंदिर की ईश्वरीय सम्पत्ति का हरण अथवा हानि पहुँचाने के लिये कोई गुप्त मंत्रणा करेगा तो वे उससे सम्पूर्ण शक्ति से बदला लेंगे।'[1] उक्त शपथ को हम योरप की प्रारम्भिक अन्तर्राष्ट्रीय विधि कह सकते हैं, जिसमें दो मुख्य तथ्य हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं, सर्वप्रथम धर्म ही संगठन का प्रमुख तत्व था, द्वितीय संघ विरोधी सदस्यों के विरुद्ध शक्ति का प्रयोग कर सकता था। यद्यपि सभी कार्य धर्म से प्रभावित होते थे, क्योंकि उस काल में कानूनी व्यवस्था, धर्म और नैतिकता के अनुसार ही होती थी। इसके अतिरिक्त लोगों का ऐसा भी विश्वास था, कि शक्ति सीधे ईश्वर द्वारा ही प्रदत्त होती है और कानून का उल्लंघन करना, ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन करना समझा जाता था।

पायले समिति (Pyalea) का संगठन भी कौंसिल अथवा एम्फीटायनी के संघीय गुण को पुष्ट करता है। यद्यपि संघ निर्माण करनेवाले नगर-राज्य आकार प्रकार में समान न थे, परन्तु सिद्धान्ततः उनके अधिकार समान थे। समिति में सबसे छोटी जाति को भी एथेन्स के समान ही मत देने का अधिकार प्राप्त था। समिति में मिले हुए १२ राज्यों में प्रत्येक को दो मत देने का स्वामित्व प्राप्त था। समिति के निर्वाचित सदस्य दो श्रेणियों में विभाजित थे, हीरोम्नीमोंस (Hieromnemones)

---

between the members; to fine the aggressing party; to disobedient; to admit new members."

—Hamilton and Madison, **Federalist,** No. XVIII.

1. "They would destroy no city of the Amphictyons, nor cut off their streams, in war or in peace, and if any should do so, they would march against him, and destroy his cities, and should any pillage the property of the God, or be privy to or plan any thing against what was in his temple at Delphi, they would take Vengeance on him with hand and foot, and voice, and all their might."

Quoted by Elizabeth York in, **Leagues of nations**, p. 5.

तथा पायलेगोरे (Pylagorae), जिनमें हीरोम्नीमोंस पवित्र वस्तुओं के संरक्षक होते थे, उनका चुनाव, निर्वाचन एवं अनुमोदन द्वारा होता था और प्रत्येक हीरोम्नीमोंस के साथ दो पायलेगोरे होते थे। यह प्रति छः माह के बाद चुने जाते थे; वे वक्ता और राजनीतिज्ञ होते थे। सभी प्रकार के निर्णय दोनों वर्गों के सदस्यों के बहुमत से घोषित किये जाते थे। इन सदस्यों के अतिरिक्त और भी कर्मचारी होते थे जिन्हें सचिव एवं राजदूत कहते थे। इन कर्मचारियों के साथ साथ नागरिकों की एक सर्वसाधारण सभा (General Assembly) भी होती थी, जो कार्यप्रणाली में भाग लेती थी। सभा का सभापतित्व लीग का राष्ट्रपति करता था। ऐसी बैठकें अत्यन्त विशेष अवसरों पर ही बुलाई जाती थी।

यद्यपि धर्म ही इस संघ का मूल तत्व था और सामान्य पूजा ने ही एम्फीटायंस को एक साथ संगठित रक्खा, इसका परिणाम यह हुआ कि एम्फीटायनी के सदस्य स्वयं को बाह्य शक्तियों के विरुद्ध एकमत हो उनका सामना करते थे, और इस प्रकार इन तमाम जातियों में एक राष्ट्र का प्रादुर्भाव हुआ जिसकी राजनीतिक एवं धार्मिक प्रणाली अन्य जातियों से भिन्न थी। एम्फीटायंस ने इस संघ का नाम हेलेन्स (Hellens) रक्खा।[1]

यदि यह कहा जाय कि यह समिति विदेशी नीति से अधिक सम्बन्धित न थी, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह संघीय संस्था ही न थी, बल्कि उस काल में न तो नदियों तथा समुद्रों को पार करने की कोई व्यवस्था ही थी और न रेल, तार, डाक ही थे, जो कि द्वीप समूहों की दूरी को कम करते। अतः ऐसी स्थिति में यदि एम्फीटायनिक संस्था अपना सम्बन्ध विदेशों से अधिक न स्थापित कर सकी तो कोई आश्चर्य की बात न थी। फिर भी जब कभी यूनानी उपनिवेशों ने अपने पैतृक घरों को सुदूर आश्चर्यजनक स्थानों पर व्यवस्था स्थापित करने के लिए अभियान किया तो वे सदैव अपने साथ मातृभूमि की पवित्र अग्नि, व्यवहार एवं परम्परा साथ ले गये और अपने नवीन निवास गृहों में स्वयं को सुरक्षित रखा।

एम्फीटायनी अपने पूर्ण तथा सुरक्षित संगठन के कारण सैद्धान्तिक दृष्टि से परिपूर्ण एवं सुसंगठित थी। फिर भी आधुनिक संघ के स्वरूप के अतिरिक्त वर्तमान संघों के समान और कुछ शासन न कर सकी। जिसके परिणामस्वरूप यह संस्था शीघ्र ही विश्रृंखलित हो गई और उसके सदस्य भी एक दूसरे से अलग हो गये। इस विघटन के बहुत से कारण थे। सर्वप्रथम, विभिन्न नगरों ने समिति में पृथक् पृथक् राज-

1. Curtius, **History of Greece,** Vol. I., p. 116.

नीतिक कार्यों के लिए अन्य सदस्यों की नियुक्तियाँ कीं। अतः सदस्यों में सामान्य राष्ट्रीयता तथा राष्ट्र के प्रति भक्ति की भावना का जागरण न हो सका। सदस्यों ने स्वयं अनुभव किया कि वे केवल अपने राज्यों से ही सम्बन्धित हैं, इसलिए संघ के प्रति उनमें कोई आदर भावना न रह सकी। दूसरा कारण यह था कि शक्तिशाली नगर-राज्यों के सदस्य शक्तिहीन राज्यों के सदस्यों पर अनुचित दबाव डालने लगे, और शक्तिशालियों के पक्ष में एकांगी निर्णय होने लगे। यह संघ के सदस्यों की इस समानता का सीधा आक्रमण और उपेक्षा थी, क्योंकि समानता एक सफल संघ के लिये अति-आवश्यक थी। इस प्रकार प्रेरणापूर्ण सिद्धान्त व्यवहारिक कठिनाइयों के सामने अधिक दिनों तक न टिक सका। "छोटे सदस्य जो सिद्धान्त में समान अधिकार रखते थे, उन्हें केवल अत्यन्त साधारण विषयों में ही सक्रिय भाग लेने का और प्रभाव डालने का अवसर मिल पाता था।[1]

इसके अतिरिक्त यूनान के निवासियों ने निकटतम संघों की विशेष आवश्यकता का न अनुभव ही किया, और न आपसी द्वेष तथा महत्वाकांक्षाओं से युक्त शक्तिशाली एथेन्स और स्पार्टा के नगर-राज्यों की ओर ही ध्यान दिया। तथा साथ ही साथ शक्तिहीन सदस्यों द्वारा भी इस लीग के नष्ट होने में सहायता मिली। अतः उपरोक्त कारणों से ही शक्तिशाली एम्फीटायनिक संघ सदैव के लिये नष्ट भ्रष्ट हो गया। परन्तु यह निश्चित है कि यदि विदेशियों ने विशृंखलता के बीज न बोये होते तो यह संघ इतना शीघ्र नष्ट न हो जाता। दूसरी ओर ईर्ष्यालू मकदूनिया (Macedon) का शासक फिलिप एथेन्स और स्पार्टा की बढ़ती हुई शक्ति की ओर ध्यान लगाये हुए बैठा था। एम्फीटायनिक संघ की आपस की फूट का फिलिप ने लाभ उठाया और थेबन्स् और दूसरे नगरों के आमंत्रित करने पर उसने युद्ध के लिए निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। सन् ई० पू० ३४६ में इस युद्ध में उसे सफलता मिली, जिसका परिणाम यह हुआ कि डेमोस्थेनीस (Demosthenes) के विरोध करने पर भी फिलिप को समिति में प्रविष्ट कर कर लिया गया। तत्पश्चात् एथेन्स ने पिथियन खेलों (Pythian games) में जो, फिलिप् के नेतृत्व में होते थे, अपने मनोनीत सदस्य भेजने के लिए मना कर

1. "The smaller members, though entitled by the theory of their system to revolve in equal pride and majesty around the Common Centre, had become, in fact, statellites of the orbs of primary magnitude."

Federalist, No. XVIII.

दिया। इस प्रकार बाद को यूनान की संप्रभुता मकदूनिया के हाथों में चली गई। इसके पश्चात् शीघ्र ही फिलिप और उसके बाद सिकन्दर (Aloxander) ने अपना स्वामित्व एम्फीटायंस पर जमा लिया, और बाद में एम्फीटायनिक को सदैव के लिए मकदूनिया की जंजीरों में बँधना पड़ा, और इस प्रकार वह संघ सदैव के लिए छिन्न-भिन्न हो गया, जिसने यूनान के संगठन में बड़ी सहायता की थी, और बाद को हेलेनिक (Hellenic) संघों के निर्माण में उन्नति-मार्ग के पथ प्रदर्शक का काम किया था।

२--एकियन संघ-ई० पू० २८१-१४६

एम्फीटायनिक संघ के अतिरिक्त यूनानी इतिहास में एकियन संघ का दूसरा उदाहरण मिलता है। एकियन संघ का संगठन एम्फीटायनिक संघ से कहीं अधिक अच्छा था, और उसमें एम्फीटायनिक संघ से अधिक संघीय विशेषतायें विद्यमान थी।

सिकन्दर महान् की मृत्यु के पश्चात् उसका राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और कई भागों में विभाजित हो गया, जिसके परिणामस्वरूप एकिया (Achaia) के कई नगरों ने एक नये संघ की स्थापना की, जो एकियन संघ कहलाया। प्रारम्भ में इन नगर-सदस्यों की संख्या १२ थी,[1] परन्तु मकदूनिया तथा रोम की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर अन्य नगर भी अपनी रक्षा के लिये इस संघ में सम्मिलित हो गये, और इस प्रकार इस संघ की सदस्य-संख्या १२ से बढ़कर ७० हो गई।

इस संघ का संविधान एम्फीटायनी से कहीं अच्छा था, और उसमें सभी संघीय विशेषतायें विद्यमान थी[2]। इस संघ के अन्तर्गत सभी नागरिकों को दोहरी नागरिकता प्राप्त थी, प्रथम अपने नगर की, द्वितीय संघ की। इसके अतिरिक्त सभी नगर-राज्य

---

१. ये १२ नगर थे : हेलिके, ओलीनोस, पहरे, डायम, फरे, लियोनटिओन, ऐजीश, पेलेने, एजिअन, बौरा तथा केरीनिया।

2. Freeman, History of Fedral Government, Vol. I., p. 244. "The Constitution of the League strictly Federal. The Federal form of Government now appears in its fullest and purest shape. Every city remained a distinct state, sovereign for all purposes not in consistent with the higher sovereignty of the Federation, retaining its local Assemblies and local Magistrates and ordering all exclusively local affairs without any interference from the central power. There is no evidence that the Federal Government, in its best days, ever directly interfered with the internal laws, or even with the political constitutions of the several cities."

Ibid. pp. 255-256.

अपने घरेलू मामलों में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थे, और केवल कुछ विशेष अधिकार संघ को सौंप दिये थे। पर जब कभी कुछ विशेष मामलों पर आन्तरिक शासन का प्रश्न होता था तब सभी राज्य समानता का व्यवहार करते थे। कानून, रीतिरिवाज एवं नाप-तौल में भी समानता का ध्यान रखा जाता था। इसके अतिरिक्त संघ की सदस्यता में धन का विशेष महत्व था। उपरोक्त प्रकार के संघ का सबसे सुन्दर उदाहरण लेसीडेमन (Lacedaemon) का है। जब लेसीडेमन एकियन संघ में सम्मिलित हुआ, तब उसने लाइकर्गस (Lycurgus) नियमों को छोड़कर एकियन संघ के नियमों को अपनाया। उपरोक्त उदाहरण वास्तविक संघात्मक शासन प्रणाली का जीता-जागता रूप था।

जैसा कि संघीय शासन प्रणाली की विशेषता, दो सरकारों का सह-अस्तित्व का होना है, एकियन संघ में भी दो प्रकार की सरकारों का वर्णन मिलता है, प्रथम केन्द्रीय, द्वितीय राज्य सरकारें। दोनों प्रकार की सरकारों की शक्तियों का भी वर्णन अलग अलग प्रदर्शित होता है। नगर-राज्य स्वयं अपने स्थानीय शासन के लिए कर्मचारियों की नियुक्तियाँ करते थे, तथा अपने आन्तरिक कार्यों में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थे। सभी नगर-राज्य सीनेट में प्रतिनिधित्व करते थे, जिसे युद्ध तथा शान्ति की घोषणा करने, राजदूत भेजने तथा ग्रहण करने, संधि एवं सम्बन्ध स्थापित करने, मुख्य न्यायाधीश को जो कि सेना का संचालन करता था, जिसकी सहायता के लिए १० सीनेटर होते थे, और कार्यवाहियों में भाग लेता था, चुनते थे।

संघ के सभी सदस्य नगर-राज्यों के नागरिकों को कम से कम सिद्धान्त में संघीय संसद की प्रत्यक्ष रूप से नागरिकता प्राप्त थी। परन्तु यूनान के निवासियों को प्रतिनिधित्व प्रणाली का ज्ञान न था।[1] व्यवहार में सिद्धान्त के बिलकुल बिपरीत होता था क्योंकि सभी सदस्य दूरस्थ नगर-राज्यों के सदस्य धनाभाव के कारण ऐजियन नगर जहाँ सभा होती थी[2], न आ जा सकते थे। जब कि एथेन्स के लोग ही बड़ी मात्रा में सभा में भाग लेते थे; जिसके फलस्वरूप जब कभी किसी मामले का निर्णय होता था, वह एथेन्स के पक्ष में ही होता था। इस प्रकार समानता का सिद्धान्त नष्ट हो जाता था। तदनन्तर यह कठिनाई राज्य-मतों द्वारा दूर कर दी गई और बिना किसी जनसंख्या का विचार किये हुए प्रत्येक राज्य को एक मत देने का अधिकार दिया गया। इस प्रकार से छो

1. Freeman, **History of Federal Government,** Vol. I., p. 259.
एजियन का महत्व जानने के लिये देखिये :—

2. Freeman, **History of Federal Government,** Vol. I., pp. 276-277.

अथवा बड़े, निकट अथवा दूर की समस्या सुलझ गई और संघीय सिद्धान्तों की रक्षा हो गई।

संसद की बैठक वर्ष में दो बार, बसंत एवं शरद् ऋतु में होती थी, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति विशेष बैठक भी बुला सकता था। इसके अतिरिक्त १२० सदस्यों की एक समिति भी थी, जो संसद की कार्य-सूची को तैयार करती थी। राष्ट्रपति संसद की बैठकों में भाग लेता था तथा कोई भी प्रस्ताव पास होने पर उसकी स्वीकृत से ही संघीय कानून बनता था। राष्ट्रपति को 'स्ट्रेटेजस' (Strategus) अथवा 'जनरल' नाम से सम्बोधित किया जाता था। इसकी सहायता के लिये एक मंत्रिमंडल भी होता था, जिसमें कुल १० मंत्री होते थे, जो केवल एक वर्ष के लिए राष्ट्रपति के साथ-साथ चुने जाते थे। राष्ट्रपति राजनैतिक एवं सैनिक विभागों का प्रमुख होता था, परन्तु युद्ध काल में वास्तव में सेना का सेनापति होता था। यह ध्यान में रखते हुए कि वह कहीं तानाशाह न हो जाय, उसका वार्षिक निर्वाचन किया जाता था। अवधि के पूरा हो जाने पर उसकी स्थिति एक साधारण सिपाही की भाँति हो जाती थी। यह जनरल जल-सेना का भी प्रधान होता था। इसके अतिरिक्त जब कभी विशेष आवश्यकता पड़ती थी, किराये के सिपाही भी रख लिये जाते थे। संसद ही सभी प्रकार की संधियाँ तथा समझौते करती थी।

आश्रित नगरों को भी संघ में सम्मिलित होने का अधिकार प्राप्त था। परन्तु उन्हें सदस्यता के सभी नियमों का पालन करना पड़ता था। संघ की सदस्यता बढ़ाने तथा निरंकुशता बचाने का यह अच्छा तरीका था।

इस संघ ने एक संघीय न्यायालय की स्थापना की थी जो राज्यों में होने वाले झगड़ों को तथा राज्य एवं संघ के बीच में होने वाले झगड़ों का निपटारा करती थी। इस संघ के किसी भी सदस्य-राज्य को वैयक्तिक रूप से युद्ध अथवा शान्ति की घोषणा करने, विदेशों को राजदूत भेजने अथवा ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त न था। सभी विदेशी मामले संघ के द्वारा ही होते थे, परन्तु कुछ दिनों पश्चात् कभी-कभी नगर-राज्य विदेशियों से सीधे सम्बन्ध स्थापित रखने लगे थे, किन्तु यह साधारण तरीका न था। संघ ने ऐसे अधिकारी की भी नियुक्ति की, जिसका कार्य नियंत्रण करना था। परन्तु यह अधिकारी भी अश्वारोही के अधिकार में था।[1]

---

1. A. P. Poley, **Federal System of the United States and the British Empire,** p. 37.

और भी Freeman, **History of Federal Government,** Vol. I., p. 261.

सिकन्दर के उत्तराधिकारी इस संघ की बढ़ती हुई शक्ति को देख न सके; उन्होंने संघ के सदस्यों को आपस में लड़ने को बहकाया। रोम ने भी संघ के सदस्यों के छिन्न-भिन्न करने में हाथ बटाया, जिसके कारण लगभग डेढ़ शताब्दी के जीवन के पश्चात् यह संघ सदा के लिए नष्ट हो गया।

मध्यकालीन संघों का आधुनिक संघों पर प्रभाव

मध्यकाल में भी कुछ संघों की स्थापना हुई, जिन्होंने आधुनिक संघों को पथ-प्रदर्शित किया। योरुप का मध्यकालीन इतिहास ऐसे संघों एवं प्रसंधानों से भरा पड़ा है, जो स्वतन्त्र राज्यों द्वारा बने थे, और जिनमें संघात्मक विशेषतायें विद्यमान थी। इन संघों में लोम्बर्ड संघ (Lombard League), हेंसियाटिक संघ (Hanseatic League), नीदरलैण्ड का संघ एवं स्विट्ज़रलैण्ड का संघ-राज्य बहुत ही प्रसिद्ध हैं। यहाँ पर हम लोम्बर्ड संघ, हेंसियाटिक संघ तथा नीदरलैण्ड के संघ-राज्यों के उत्थान-पतन के इतिहास का ही वर्णन करेंगे, क्योंकि स्विस संघ का इतिहास आधुनिक संघों के इतिहास काल में आ जाता है, अतः यह ठीक ही है कि इसका वर्णन आधुनिक संघों के साथ ही किया जाये।

प्राचीन रोम की देन

लोम्बर्ड संघ[1]

मध्यकाल में इटली का राज्य होहिनस्टोफनों (Hohenstaufens) द्वारा प्रशासित होता था। इस काल के शासक वर्ग निरंकुश होते थे, इसीलिए इस काल को तानाशाही युग कहा गया है। जब फ्रेडरिक प्रथम, जो फ्रेडरिक बारबोसा नाम से भी विख्यात था, अपने पूर्वजों की राजगद्दी पर बैठा, उस समय मिलन (Milan) नामक नगर ने, जो उसके राज्य में इटली के उत्तरी नगरों में से एक था, राजा का अधिपत्य स्वीकार करने को मना कर दिया। अतः इन नगरों को अधीन करने की इच्छा से फ्रेडरिक ने इटली की ओर प्रयाण किया और मिलन पर घेरा डाल दिया। मिलन ने यद्यपि अपने बचने के उपाय किये, परन्तु अन्त में पराजय स्वीकार करनी पड़ी। किन्तु ज्यों ही फ्रेडरिक वापस लौटा, त्योंही पुनः क्रान्ति उठ खड़ी हुई। अतः फ्रेडरिक को पुनः मिलन पर चढ़ाई करनी पड़ी, और सन् ११५९ से ११६२ तक घेरा डाले पड़े रहना पड़ा। अन्त में फ्रेडरिक की विजय हुई, और मिलन के प्रमुख निवासियों को अपने बहुमूल्य ध्वजा एवं ईसामसीह की मूर्ति के साथ विजयी सम्राट के सम्मुख

१. उत्तरी इटली में लोम्बर्डी एक प्रदेश है।

उपस्थित होना पड़ा। यद्यपि मिलन के नागरिकों ने उन व्यक्तियों को कैद से मुक्त कराने के लिए राजा की साष्टांग दंडवत् की, परन्तु राजा को उनकी दीनता पर किंचित् भी दया न आई। यही नहीं बल्कि उसने लोदी (Lodi), कोमो (Como) और क्रेमोना (Cremona) के सिपाहियों को उनके नगर लूटने एवं नष्ट-भ्रष्ट करने की आज्ञा दे दी। यह निरंकुशता का दूसरा जीता जागता प्रमाण था।

यद्यपि इस प्रकार लोम्बर्ड नगर दो बार नष्ट हो गये, परन्तु वहाँ के निवासियों ने स्वतन्त्रता एवं पराधीनता से मुक्त होने की आशा न छोड़ी। इसी समय पोप के उत्तराधिकार के लिए इटली की राजनैतिक दशा बहुत ही गहन हो गई। अतः सन् ११६६ ई० में फ्रेडरिक इटली गया और पोप विरोधी पेस्कल तृतीय (Paschal III) द्वारा राजमुकुट धारण किया। किन्तु इसी समय रोम में प्लेग फैल गया, जिससे हजारों की संख्या में फ्रेडरिक की सेना नष्ट भ्रष्ट हो गई, अतः फ्रेडरिक को जर्मनी वापस जाना पड़ा। इटली ने इस समय फ्रेडरिक की अनुपस्थिति का लाभ उठाया और एक संघ की स्थापना की। तत्पश्चात् ११६७ ई० के पूर्वार्ध में क्रेमोना (Cremona), ब्रेसिया (Brescia), बर्गानो, (Bergano) तथा मंचुआ (Mantua) के निवासियों ने यह संकल्प किया कि इस अपमानित एवं कलंकित जीवन से मर जाना अच्छा है। अतः इन सब नगरों के लोगों ने मिलकर एक संघ की स्थापना की, और आपस में तय किया कि यदि राजा संघ के किसी सदस्य-नगर पर अत्याचार करेगा, तो हम सब मिलकर राजा के विरुद्ध एक दूसरे की सहायता करेंगे। इसके बाद मिलन निवासियों को जो देश से निकाल दिये गए थे वापस लाने में सहायता की। इस प्रकार यह संघ बहुत ही शीघ्र संगठित हो गया, और उसको प्रभुता प्राप्त हुई, जिसका परिणाम यह हुआ कि लोदी नगर को, जिसमें युद्ध में फ्रेडरिक की सहायता की थी, उसे मजबूर किया गया कि वह भी संघ में सम्मिलित हो। इस प्रकार इस संघ की बढ़ती हुई शक्ति को, राजा शक्तिहीन होने के कारण रोक न सका। सन् ११६७ के उत्तरार्ध में वीरोनीज़ संघ (Veronese League) और लोम्बर्ड संघ ने मिलकर लोम्बर्ड समाज की स्थापना की, जिसमें १६ नगर सम्मिलित थे। यह १६ नगर, बर्गीमो, ब्रेसिया, मिलन, लोदी, क्रेमोना, वेरोन, मंचुआ, पर्मा, मेडेना, ट्रेविसो, विकेंजा, पदुआ, विनिस, फेरारा, बोलोना तथा पियाकेंजा थे। इन नगरों ने फ्रेडरिक के अनुचित माँगों को पूरा करना अस्वीकार कर दिया। सन् ११६७ से ११७४ तक उपरोक्त संघ अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया। इसी काल में इस संघ ने टेनारो (Tanaro) तथा बोर्मिडा (Bormida) नदियों के संगम पर पोप अलेकसेन्डर के सम्मान में ऐलेक्सेंड्रिया नामक नगर का निर्माण कराया। सन् ११७४ तक पेविया (Pavia) तथा

मोंटफेराट (Montferrat) नगर भी संघ में सम्मिलित हो गये, और पो घाटी (Po Valley) के सभी जागीरदारों ने भी संघ के साथ समझौता कर लिया, जिसके परिणामस्वरूप संघ के सदस्यों की संख्या बढ़कर १६ से ३६ हो गई। इस संघ का शासन पादरियों की एक संस्था द्वारा होता था, जिसमें सभी प्रान्तों के प्रतिनिधि होते थे। इसकी एक सामूहिक सेना होती थी। इस संघ का मुख्य ध्येय था, राजा की निर्दयता का मिलकर सामना करना।

संघ की बढ़ती हुई शक्ति से राजा भयभीत हो गया, और अपनी रक्षा के लिए इटली आकर ऐलेस्सेंड्रिया (Alessandria) नामक नगर पर घेरा डाल दिया, जिसे शाही सेना ने तिरस्कारपूर्वक 'घास का नगर' (City of Straw) कह कर पुकारा था, परन्तु सन् ११७५ ई० में लीग की सेना ने शाही सेना का सामना किया, और इस बात के लिये विवश किया कि वह अपना घेरा उठा ले। अन्त में राजा को अपनी सेना हटानी पड़ी, और अब यह घास का नगर, लोहे के नगर में परिवर्तित हो गया। परन्तु अभाग्यवश इसी समय मोंटेबेलो (Montebello) की संधि ने शत्रुता एवं युद्ध के फिर से बीज बो दिये। अत: पेविया (Pavia), मोंटफेराट (Montferrat) के मारक्विस (Marquis) और कोमो में फिर राजभक्ति का संचार हुआ। जेनोआ (Genoa) और पिसा (Pisa) ने भी राजा की सहायता की। उपरोक्त कारणों से संघ की शक्ति क्षीण हो गई परन्तु मिलन निवासियों ने स्वतन्त्रता की आशा न छोड़ी और केरेकियो (Carrocio) की रक्षा के लिये, अपने जीवन का बलिदान करने के लिये तैयार हो गये। अत: ९०० युवकों ने एक मृत्यु समुदाय (The Company of Death) की स्थापना की। १९ मई सन् ११७६ को लेग्नानो (Legnano) के प्रसिद्ध युद्ध में मृत्यु समुदाय ने शाही सेना को तितर-बितर कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप फ्रेडरिक को लोम्बर्ड का दबाना कठिन हो गया, और वह अपनी सेना सहित वीनिस में ६ वर्ष तक विश्राम करता रहा। सन् ११८३ की कोंसटेंस (Constance) की संधि में वीनिस को भी स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया, जिसके फलस्वरूप आठ नगर-राज्य राजा के मित्र हो गये और शेष १७ नगरों को फ्रेडरिक ने सभी प्रकार के राजनैतिक अधिकार दे दिये। इन अधिकारों में युद्ध एवं शांति की घोषणा करने, दुर्ग का निर्माण करने तथा आपराधिक एवं व्यवहारिक अधिकार भी सम्मिलित थे। इन नगर राज्यों को अपने कौंसिल (Consal) चुनने में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी, परन्तु उनकी नियुक्तियाँ राजा स्वयं करता था। यह नियुक्तियाँ केवल ५ वर्ष के लिए ही की जाती थीं। जहाँ तक संघ की सुरक्षा का प्रश्न था, सभी सदस्यों को समान रूप से अधिकार प्राप्त थे और वे अपने संघ की सुरक्षा

कर सकते थे। १५ से ७० वर्ष की आयु वाले प्रत्येक नागरिक को प्रति १५ वें वर्ष राजा के प्रति निष्ठा बनाये रखने की शपथ ग्रहण करनी पड़ती थी। साथ ही राजा का भी यह कर्तव्य था कि जो भी नगर-राज्य अथवा जागीरदार जो संघ के सदस्य न थे, उनके विरुद्ध यदि संघ के सदस्यों को आवश्यकता पड़ती तो राजा उनकी सहायता करता था। न्याय सम्बन्धी अपीलें राजा के स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा सुनी जाती थी। इटली में राजा को बाज़ारों, सड़कों तथा पुलों आदि पर भ्रमण आदि करने का अधिकार दे दिया गया, परन्तु राजा को किसी नगर में ठहरने का अधिकार न था। इसी अवरोध से संघ को सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि भविष्य में राजा संघ के साथ अनुचित व्यवहार करने का प्रयत्न न कर सका। यद्यपि इस प्रकार नगरों ने राजा की आधीनता अवश्य ही स्वीकार कर ली थी किन्तु सबसे बड़ी जो वस्तु 'स्वतंत्रता' थी उसको उन्होंने पा लिया। परन्तु उपरोक्त दशा एक शताब्दी से अधिक न चल सकी। फ्रेडरिक द्वितीय सन् १२१६ से १२५० तक राजगद्दी पर बैठा। वह बहुत ही शक्तिशाली राजा था, अतः उसकी बढ़ती हुई शक्ति से आशंकित और भयभीत होकर सदस्य-नगरों ने संघ को एक नया रूप दिया। सन् १२३४ ई० में इटली निवासियों ने हेनरी सप्तम् के स्वत्व को स्वीकार कर उसे अपना राजा मान लिया। सन् १२३५ ई० में संघ का नाम बदल कर मार्च और रोमाना की समिति (Society of Lombardy, the March and Romagna) रखा गया। परन्तु फ्रेडरिक द्वितीय ने इटली की स्वतन्त्रता को नष्ट करने के उद्देश्य से सन् १२३६ ई० में चढ़ाई कर दी। इस बार देश की रक्षा के लिये मिलन को ही संघ का नेतृत्व सौंपा गया। दो वर्ष तक घमासान युद्ध के पश्चात् मिलन युद्ध में हार गया और उसका झंडा छीन लिया गया। यह युद्ध लगभग सन् १२५० ई० तक चलता रहा। अन्त में सन् १२५० ई० में होहिनस्टोफनों (Hohenstaufens) के पतन के बाद लोम्बर्ड संघ भी सदा के लिये भंग हो गया।

(ब) हेंसियाटिक संघ

तेरहवीं शताब्दी में होहिनस्टोफनों के पतन के कारण जर्मनी का राज्य छिन्न-भिन्न हो गया, और उनके उत्तराधिकारी राज्य के विभिन्न सदस्यों पर नियंत्रण न रख सके। अतः जर्मनी के व्यापार में उन्नति न हो सकी। इधर व्यापारी वर्ग एक शक्तिशाली सरकार चाहता था, जो उनके व्यापार की रक्षा कर सके, और वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने व्यापार की उन्नति की ओर ध्यान दे सकें। इसी उद्देश्य से व्यापारी नगरों को अन्त में अपने व्यापार की रक्षा के लिए एक संघ की स्थापना करनी पड़ी। इस संघ की स्थापना के पश्चात् बहुत से नये संघों की रचना हुई, जिनमें रहीनिश (Rhenish) नामक संघ बहुत प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि इस संघ का संविधान बहुत ही शक्तिहीन था,

फिर भी संघ के सदस्य अपनी सामान्य नीति एवं सैनिक प्रबन्ध करने के लिये कोलोव (Colloqua) नामक संसदों में एकत्रित होते थे, जहाँ पर अपनी नीति को निर्धारि करते थे। इस संघ में एक प्रारम्भिक न्यायालय की भी व्यवस्था की गई थी, जो सदस्य के आपसी झगड़ों का निपटारा करता था, यद्यपि उसे न्याय करने की शक्तियाँ बहु ही कम प्राप्त थी।[१]

हेप्सबर्गों (Hapsburgs) की बढ़ती हुई शक्ति के सामने यह संघ एक शताब्द से अधिक न चल सका, और अन्त में इस संघ के समाप्त होने पर दक्षिण जर्मनी ा बहुत से छोटे छोटे संघों की स्थापना हुई, तथा उत्तरी जर्मनी में एक शक्तिशाली संघ की स्थापना हुई जिसका नाम हेंसियाटिक संघ पड़ा।

तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, विदेशी व्यापार पर आधिपत्य जमाये बैठे हु दूरस्थ व्यापारियों को आज्ञा दी गई कि वह अपनी फैक्टरियों का निर्माण करावें औ उसमें अपने माल को इकट्ठा रखें। तत्पश्चात् इन संघों ने व्यापार एवं फैक्टरं की उन्नति एवं कार्यसंचालन तथा देख रेख के लिये राजकर्मचारियों की नियुक्तिय की। अतः इस संघ ने व्यापारियों के उन स्थानों पर नियंत्रण कर लिया, जहाँ प व्यापारीगण व्यापार के लिये निवास करते थे। उपरोक्त कारणों से बाल्टिव एवं उत्तरी समुद्रीय किनारों के नगर हेंसियाटिक संघ में सम्मिलित हो गये इससे स्पष्ट होता है कि इस संघ की स्थापना एक दम ही नहीं हो गई, किन्तु धीरे धीरे एक-एक करके जर्मनी के सभी प्रमुख नगर एवं बाल्टिक समुद्र के किनारे के व्यापारी नगर इसमें मिल गये।[२] इस संघ के कोलोन (Cologne), ल्यूबेक (Lubeck) तथा विस्बी (Visby) नामक नगर बहुत ही प्रसिद्ध थे। कालान्तर में संघ के सदस्यों को विवश किया गया कि वेडेन्मार्क के दक्षिणी राज्यों पर बसे हुए देशों से यातायात के साधन उपस्थित करें। इधर संघ की बढ़ती हुई शक्ति ने डेनिश-राजा वेल्डीमार तृतीय (Waldemar III) की ईर्षा को प्रोत्साहित किया और उसने बिस्वी को लूट कर बहुत सी सम्पति ग्रहण कर ली, परन्तु इस लूट का प्रभाव संघ की शक्ति पर कुछ न पड़ सका, जिसका फल यह हुआ कि संघ फिर से अधिक सुसंगठित हो गया। अन्त में संघ ने एक सेना की व्यवस्था की और वेल्डीमार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।[3] विवश होकर वेल्डीमार को हेंसियाटिक संघ के

1. A. P. Newton, **Federal and Unified Constitutions**, p. 7.
2. **The End of the Middle Ages,** 1273–1453, p. 233.
३. हेंसियाटिक संघ के सदस्य नगरों के व्यापारी अपना माल डेन्मार्क में होकर ले जाते थे। उनको बढ़ती डेनिश राजा वेल्डीमार सहन न कर सका और उनका व्यापार-मार्ग रोक

सदस्यों को व्यापार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे देनी पड़ी। परन्तु यह स्वतन्त्रता अधिक दिनों तक न चल सकी और सन् १३६७ ई० में वेल्डीमार ने संघ के विरुद्ध फिर से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। किन्तु इस बीच में संघ की शक्ति बहुत बढ़ चुकी थी, और उसके ७७ सदस्यों ने डेन्मार्क के राजा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। घमासान युद्ध होने के पश्चात् संघ की विजय हुई और अन्त में संधि हो गई जिससे संघ की शक्ति और भी अधिक बढ़ गई। अव यह संघ एक वास्तविक राजनीतिक शक्तिशाली संस्था बन गया और पड़ोस में जितने भी दुर्ग थे उन पर संघ का नियंत्रण स्वीकार कर लिया गया।

इस विजय के पश्चात् संघ की राजनैतिक दशा का प्रभाव डेनिश राजाओं पर बहुत अधिक पड़ा, और यह नियम बन गया कि कोई भी डेनिश राजा संघ की स्वीकृति के बिना राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकेगा। रक्षा की आवश्यकता के कारण ही संघ के सदस्यों को एक वास्तविक संघ की स्थापना करनी पड़ी थी। राजनैतिक एवं वाणिज्य सम्बन्धी सामूहिक मामलों को तय करने के लिये संघ ने एक प्रतिनिधि संस्था की स्थापना की, जिसमें विभिन्न नगरों के प्रतिनिधि प्रतिनिधित्व करते थे। इस संस्था का कम से कम ३ वर्ष में एक बार अवश्य सम्मेलन होता था। इस संस्था की सभा अधिकतर ल्यूबेक (Lubeck) नामक नगर में होती थी और यहीं पर संस्था सम्बन्धी सभी अभिलेख (क़ागजात) सुरक्षित रखे जाते थे। संस्था को सभी सदस्यों के आपसी झगड़े तय करने, शांति एवं युद्ध की घोषणा करने, आयात एवं निर्यात कर लगाने, अपराधी नगरों पर दंड लगाने अथवा संघ से पृथक् कर देने का अधिकार प्राप्त था। परन्तु इतना होने पर भी संस्था के सदस्यों को भी यह अधिकार प्राप्त था कि जिस समय वह चाहे संघ की सदस्यता को त्याग कर सकते थे। यही संघ के शक्तिहीन होने का कारण बन गया।

इस संघ के नष्ट होने के कई कारण थे। प्रमुख कारण यह था कि बाल्टिक एवं उत्तरी समुद्री किनारे के नगरों में आपस में ही संघर्ष पैदा हो गया था। पोप विरोधी प्रतिवाद सिद्धान्त (Protestantism) की बढ़ती के कारण सूखी हेरिंग मछली के व्यापार में कमी हो गई, जो उनका मुख्य व्यापार था[१]। ईस्ट इंडिया

दिया। संघ के ७७ सदस्यों ने युद्ध की धमकी दी तो वेल्डीमार ने अहंकार से इस चुनौती का उत्तर देते हुए कहा कि क्या ये ७७ केंकड़े काँव काँव कर मेरी ओर बढ़कर मुझे भयभीत कर सकेंगे? कदापि नहीं। संघ का उसने इन शब्दों से तिरस्कार किया।

१. हेरिंग मछली के व्यापार की वृद्धि से संघ बनाने की आवश्यकता हुई थी, और जब उसकी माँग घट गई तो संघ का बन्धन ढीला हो गया।

कम्पनी की स्थापना के बाद अंग्रेज सदस्यों ने संघ में रूचि लेना बन्द कर दिया, यहाँ तक कि लंदन के लिये संघ का कोई महत्व न रहा। इसके अतिरिक्त संघ की भौगोलिक विषमता ने भी उसकी शक्ति को बहुत कुछ कम कर दिया। ल्यूबेक, ब्रीमेन और हेम्बर्ग सन् १६२८ तक तो सदस्य बने रहे। परन्तु सन् १६४८ ई० की वेस्टफेलियां (Westphalia) की संधि के पश्चात् संघ का सदैव के लिये अन्त हो गया।

(ग) नीदरलैण्ड का अनुसंघ-राज्य

मध्यकाल में नीदरलैंड का अनुसंघ राज्य सबसे अधिक संगठित संघ-राज्य था। इस प्रसंधान में योरुप के उत्तर-पश्चिमी दूरस्थ प्रान्त सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त पवित्र रोमन साम्राज्य से पृथक् हुए प्रान्त या शासकहीन प्रान्त, जिनकी संख्या १७ थी, इस संघ में सम्मिलित थे। १४ वी एवं १५वीं शताब्दी में थोड़े से राज्य भी बर्गंडी (Burgundy) के ड्यूक के प्रति सामुहिक स्वामिभक्ति के अतिरिक्त संघ के प्रति सद्भावना रखने लगे थे, जिसका परिणाम यह हुआ कि ड्यूक ने सामूहिक कार्यों के लिये प्रत्येक प्रान्त से धन इकट्ठा किया, और प्रतिनिधियों को बुलाकर 'स्टेट जनरल' की स्थापना की। इस समिति का प्रमुख कार्य था राजनैतिक कार्यों के लिए धन इकट्ठा करना। थोड़े दिनों के पश्चात् इस समिति में सदस्यों के सामूहिक मामलों की वार्ता भी होने लगी। परन्तु राज्यों ने अपनी स्वतन्त्रता स्थायी रखने की ओर विशेष ध्यान रखा। किन्तु १६वीं शताब्दी के मध्य में स्पेन का निरंकुश राजा इन प्रान्तों का शासक हुआ और उसने इन पर कर अधिक बढ़ा दिये, जिसका परिणाम यह हुआ कि इन प्रान्तों की दशा ही बदल गई। राजा ने केवल कर ही नहीं बढ़ाये, वरन् प्रान्तों के व्यापार, धर्म, आर्थिक एवं राजनैतिक मामलों में भी वह आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप करने लगा। फल यह हुआ कि उपरोक्त प्रान्तों ने राजा के दूषित मंत्रियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। यद्यपि यह विद्रोह अधिक दिनों तक न चल सका, किन्तु फिर भी प्रान्तों के लिए यह आवश्यक हो गया था कि जब तक युद्ध चलता रहे, तब तक कोई सामुहिक शक्ति सामान्य लाभ के लिए शासन भार सँभाले। इस युद्ध में राजा की सेना ने दक्षिणी प्रान्तों की सरकारों पर नियंत्रण कर लिया, परन्तु उत्तरी प्रान्तों की सरकारों पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उत्तरी प्रान्तों में हालैण्ड और जीलैण्ड नामक प्रान्त बहुत ही प्रसिद्ध थे, जिनका शासन स्टाडहोल्डर (Stadholder) द्वारा होता था, जो राजा द्वारा मनोनीत होता था।

क्योंकि उत्तरी प्रान्तों का शासन संघ शासन प्रणाली द्वारा होता था, अतः यहाँ पर आवश्यक है कि उत्तरी प्रान्तों के इतिहास का ही वर्णन किया जावे। उत्तरी प्रान्तों का शासन युद्धकालीन समय में भी आधुनिक संघ प्रणाली पर आधारित था। अप्रैल सन् १५७६ ई० में हालैण्ड तथा जीलैण्ड के नागरिक स्टाड होल्डर तथा विलियम ऑफ आरेन्ज के नेतृत्व में डेल्फट (Delft) नामक स्थान पर मिले, और यह तय किया कि हम अपनी संप्रभुता के कुछ भाग को स्टाडहोल्डर को देकर एक संघ के स्थापित करने का निश्चय करेंगे[1] यह समाचार फैलते ही १७ प्रान्तों ने मिलकर, एक झंडे के नीचे खड़े होकर एक संघ की स्थापना की, परन्तु धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक विभिन्नताओं के कारण सामुहिक कार्यों के करने में विघ्न पड़ने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि यह संघ अधिक दिनों तक न चल सका। ५ जनवरी सन् १५७९ ई० को दक्षिणी प्रान्तों हेनोल (Hainaull), डौए (Douai) तथा आर्टोइस (Artois) के प्रतिनिधियों ने अर्रास (Arras) में एक रक्षात्मक संघ की स्थापना की जो स्पेन के राजा के साथ समझौता करने की प्रथम सोपान थी।[2] इस घटना से उत्तरी प्रान्तों के हालेण्ड और जीलेण्ड के संघ को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

इसका संविधान में जो 'नीदरलैण्ड के संयुक्त प्रान्तों का अधिनियम' के नाम से विख्यात था, सभी संघीय सिद्धान्तों का समावेश था। संविधान की प्रस्तावना से यह स्पष्ट होता है, कि उक्त प्रान्तों को स्पेन की सेना से भय के कारण आपस में समझौता कर एक संघ बनाने की आवश्यकता पड़ी, जो सदैव के लिए उनकी रक्षा करता। प्रान्तीय अधिनियम की प्रथम धारा के अनुसार सभी प्रान्त सदैव के लिए एकता के सूत्र में बाँध दिये गये। उन्होंने यह भी प्रण किया कि वे किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो, चाहे उनकी वसीहत का प्रश्न हो, चाहे सम्पत्ति का, चाहे संधि का अथवा विवाह का या किसी भी मामले का प्रश्न हो, उनमें बिना किसी पक्षपात के स्वतन्त्रता, समानता, प्राचीन रीतिरिवाज या अन्य प्रकार के अधिकार चाहे वह प्रान्त के हों अथवा नगर के, किसी भी प्रकार का भेदभाव न किया जावेगा। संविधान की दूसरी एवं तीसरी धारा के अनुसार प्रत्येक सदस्य प्रान्त का यह कर्तव्य था, कि वह स्पेन अथवा विदेशी मामलों में एक दूसरे की सहायता करेंगे। चौथी धारा में कहा गया था, कि सरकार उन स्थानों की किलेबन्दी करवायेगी, जहाँ से संघ के रक्षा की सम्भावना हो। पाँचवीं धारा के अनुसार राज्यकीय व्यय के लिए, धन इकट्ठा करने के लिये कुछ पदार्थों पर कर लगाने

1. A. P. Newton, **Federal and Unified Constitutions**, p. 14.
2. A. P. Newton, **Federal and Unified Constitutions**, p. 15.

की भी व्यवस्था की गई थी। अन्य धाराओं के अनुसार किसी भी प्रान्तीय राज्य को संधि अथवा युद्ध करने का अधिकार न रह गया था। इस नियम से प्रान्तों में अन्तर्राष्ट्रीय भावना का उदय हो गया। सभी प्रान्तों को संघ में सम्मिलित होने, मुद्रा में एकता स्थापित करने तथा धार्मिक पूजा-पाट में भाग लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। सदस्यों के आपसी झगड़े तय करने का अधिकार स्टाडहोल्डर को ही था और उसका निर्णय अन्तिम निर्णय माना जाता था। संविधान की १४वीं धारा के अनुसार यदि संविधान में कोई आवश्यक परिवर्तन अथवा संशोधन की आवश्यकता होती थी तो वह केवल प्रान्तीय सदस्यों की सलाह से ही हो सकता था। सामुदायिकता के लिए प्रत्येक कर्मचारी को शपथ लेनी पड़ती थी। इस प्रकार संघ शासन प्रणाली की सभी विशेषतायें उपरोक्त संघ में विद्यमान थी। परन्तु व्यवहार में यह संघ आधुनिक संघ-प्रणाली के आधार पर न रह सका। इसके कई कारण थे। सर्वप्रथम, जहाँ तक करों का प्रश्न था, उसमें कुछ प्रान्तों को, सामुहिक कर प्रणाली होने के नाते अधिक कर देना पड़ता था, और कुछ को बहुत कम कर देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त सरकार की शक्तिहीनता, प्रान्तों की आपसी फूट, विदेशियों का प्रभाव एवं संदिग्ध शान्ति और युद्धकालीन अद्भुतमय कठिनाइयाँ ही संघ के अवनति के कारण सिद्ध हुए। आबकारी पर लगाये हुए कर भी कार्यान्वित न हो सके, जिससे शासन प्रणाली चलानें में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। परन्तु संघ राज्य की शक्तिहीनता का सबसे बड़ा कारण यह था कि संघ के सदस्यों के चुनने का अधिकार प्रत्यक्ष रूप से जंनता को न था, जिसका परिणाम यह हुआ कि १८१४ की वियाना की कांग्रेस के पश्चात् यह संघ एकात्मक शासन में परिवर्तित हो गया।[1]

1. **Federalist,** No. XX.

अध्याय ४

आधुनिक संघों का इतिहास

जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है, स्विट्ज़रलैण्ड के संघ-राज्य का इतिहास आधुनिक संघों के इतिहास के साथ वर्णन किया जावेगा। आधुनिक संघ एवं संघ-राज्य तीन वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं; (१) महाद्वीपीय जिसमें स्विटज़रलैण्ड, जर्मन राज्य एवं जर्मन गणतंत्र राज्य, आस्ट्रो-हंगेरियन संघ तथा साम्यवादी रूस सम्मिलित हैं (२) ऐंग्लो सेक्सन; जिसमें संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका के राज्य आ जाते हैं (३) भारत का संघ, जिसके निर्माण में उपरोक्त सभी संघों के अनुभव से लाभ उठाया गया है और जिसमें विभिन्न सिद्धान्तों के विभिन्न स्वरूपों का अनुकरण किया गया है। यद्यपि दक्षिणी अफ्रीका का संघ वास्तविकता में संघ नहीं है परन्तु तब भी वह संघीय (संघात्मक) प्रणाली पर प्रचुर मात्रा में प्रकाश डालता है।

स्विट्ज़रलैण्ड के संघ का इतिहास

स्विटज़रलैण्ड योरुप का एक छोटा सा देश है, जो पहाड़ियों से घिरा हुआ है। इसका क्षेत्रफल १५९७६ वर्गमील है, तथा इसकी अधिकतम लम्बाई पूर्व से पश्चिम तक २२६½ मील है और अधिकतम चौड़ाई उत्तर से दक्षिण तक १३७ मील है [1]। इसके चारों ओर योरुप की महान् शक्तियां विद्यमान हैं; उत्तर में जर्मनी, पूर्व में आस्ट्रिया, दक्षिण में इटली तथा पश्चिम में फ्रांस अपनी शक्ति का झंडा लहरा रहा है। उपरोक्त सभी बातों का इसके इतिहास पर विशेष प्रभाव पड़ा है। यहाँ के निवासी अधिकतर खेती अथवा दस्तकारी करते हैं और विभिन्न भाषायें बोलते हैं, जिनमें जर्मन, फ्रेंच तथा इटालियन प्रमुख हैं। जर्मन भाषा के बोलनेवाले अधिकतर १७ कैंटनों में रहते हैं, फ्रेंच भाषा बोलनेवाले केवल ५ कैन्टनों में पाये जाते हैं और इटालियन भाषा केवल एक कैन्टन में ही बोली जाती है।

1. Brooks, **Government and Politics of Switzerland,** p. 1.

जहाँ तक धर्म का प्रश्न है उसमें भी प्रोटेस्टैंट (Protestants), रोमन कैथोलिक (Roman Catholics) तथा यहूदी (Jews) धर्म के माननेवाले पाये जाते हैं। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार लगभग ५७ प्रतिशत प्रोटेस्टैन्ट्स, ४१ प्रतिशत रोमन कैथोलिक एवं ५ प्रतिशत यहूदी हैं। इस प्रकार १२ कैन्टनों में प्रोटेस्टैन्टस तथा १० कैन्टनों में कैथोलिक अधिक संख्या में निवास करते हैं। स्विटज़रलैण्ड की जनसंख्या की विभिन्नता ने प्रजातन्त्र-राज्य की उन्नति में सहायता की।

स्विट्ज़रलैण्ड का प्रचलित संविधान संघात्मक है। इसका विकास भी धीरे-धीरे हुआ है। अतः इसका संवैधानिक इतिहास ५ भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) प्राचीन प्रसंधान (अनुसंघ) जो १२९१ से १७८९ तक रहा,
(२) हेलवेटिक (Helvetic) गणतंत्र जो १७८९ से १८०३ तक रहा;
(३) नेपोलियन काल (Napoleonic Era) १८०३ से १८१५ तक;
(४) सन् १८१५ से १८४८ तक का प्रसंधान तथा;
(५) १८४८ से आज तक का संघीय काल।

१. प्राचीन प्रसंधान :—सामंतशाही अंधकार युग में जब पहाड़ों एवं जंगलों से घिरे हुए स्विटज़रलैण्ड के तीन कैन्टन उरी, स्विज तथा अंटरवाल्टन जो लूज़र्न झील के किनारे पर एकान्त में बसे हुए थे, उस समय हेप्सबर्गस कुटुम्ब के रुडोल्फ के आक्रमण के डर से, अपने अधिकार एवं विदेशियों से यातायात सम्बन्ध बनाये रखने के लिये वह पहली बार संगठित हुए। रुडोल्फ की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अलबर्ट गद्दी पर बैठा। यह बहुत ही कठोर एवं महत्वाकांक्षी शासक था। अतः उसकी कठोरता एवं महत्वाकांक्षा के भय से उपरोक्त कैन्टनों ने सन् १२९१ में शास्वत लीग की स्थापना की। इसी काल से स्विट्ज़रलैण्ड के राजनैतिक इतिहास का प्रारम्भ होता है। यद्यपि इस लीग द्वारा व्यवस्थापिका सभा के लिये बहुत ही थोड़ा सुझाव था, जो कि कैन्टनों ने अपनी रक्षा एवं सम्बन्ध स्थापित करने के लिये बनाया था।

सन् १३०५ में अल्बर्ट की हत्या के पश्चात् तीनों कैन्टनों ने मिलकर हेप्सबर्ग-शासकों के विरुद्ध एक संगठन स्थापित किया। अतः इस धृष्टता को दबाने के लिये ड्यूक लिओपोल्ड (Duke Leopold) ने १५००० सैनिकों को लेकर इन कैन्टनों पर आक्रमण कर दिया, परन्तु १३०० स्विस बहादुर किसानों ने मारगार्टन (Margarten) के दर्रे पर आस्ट्रिया की फौज का डटकर सामना किया। घमासान युद्ध के पश्चात् आस्ट्रियन सेना को पीछे हटना पड़ा। इस विजय से, जो सन् १२९१

की मैत्री थी, उसमें पुन: जान आ गई। उपरोक्त विजय के पश्चात् भी स्विस लोगों ने सन् १३८६ में सेम्पाक में और सन् १३८८ में नेफेल्स में हेप्सबर्ग के विरुद्ध अपनी वीरता दिखलाई। इसका परिणाम यह हुआ कि आस्ट्रिया एवं स्विटज़र-लैण्ड में मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो गये; जो ७५ वर्ष तक चलते रहे। इस प्रकार लीग की बढ़ती हुई शक्ति को देख कर दूसरे कैन्टन भी आकर्षित हुए और अपनी रक्षा तथा आस्ट्रिया के आक्रमणों से वचने के लिये एक एक करके कई कैन्टन इस लीग में सम्मिलित हो गये। अत: सन् १३५३ तक लीग के सदस्यों की संख्या ३ से बढ़ कर ८ हो गई। लूज़र्न कैन्टन सन् १३३२ में, ज़ूरिफ सन् १३५१ में, ज़ग तथा ग्लेरस सन् १३५२ में; तथा बर्न सन् १३५३ में लीग में सम्मिलित हो गये।

१४वीं शताब्दी में सन् १३७० के पुजारियों के पत्र तथा सन् १३९३ के सेम्पाक के प्रसंविदा द्वारा भी लीग के सदस्यों की संख्या में वृद्धि हो गई, जिसे ब्रूक्स ने 'सैनिक शक्ति काल' कह कर सम्बोधित किया है। १५वीं शताब्दी के अन्तर्गत कैन्टनों ने पड़ोसी, विदेशी राज्यों को मिलाकर अपने क्षेत्राधिकार को बढ़ाया। विसेंट ने इस बात को कितने सुन्दर शब्दों में कहा है कि The Swiss of that time were democrats at home but not abroad."[१] (स्विस निवासी उस समय घर में ही जनतंत्रवादी थे, न कि बाहर भी) सन् १४१५ की आस्ट्रिया की दूसरी विजय से कैन्टनों की शक्ति और भी अधिक शक्ति-शाली हो गई। परन्तु सन् १४४२ से १४५० के बीच में धार्मिक एवं राजनैतिक विभिन्नताओं तथा ग्रामीण एवं नगर सम्बन्धी तानाशाही के कारण गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। परन्तु इसका परिणाम अच्छा ही हुआ। अब लीग के सदस्यों की संख्या बढ़कर १३ हो गई। तत्पश्चात् सन् १५३१ से १७२१ तक धार्मिक विभिन्नताओं के कारण आपस में मतभेद चलता ही रहा। परन्तु यह सब होते हुए भी सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि स्विटज़रलैण्ड विदेशी आक्रमणों का सामना करता रहा। यद्यपि लीग बहुत दिन पहले ही दो विरोधी भागों में विभाजित हो गई थी पर तब भी वह राजनैतिक कठिनाइयों में अपना अस्तित्व बनाये रही।

(२) **हेल्वेटिक गणराज्य** :—स्विस संघ का दूसरा ऐतिहासिक काल हेल्वेटिक गणराज्य कहलाता है, जो सन् १७८९ से १८०३ तक अर्थात् १४ वर्षों तक चलता रहा। इस काल के प्रथम वर्ष में स्विटज़रलैण्ड की स्थानीय समस्याओं ने फ्रांसीसी संचालिका को अपनी फौजें भेजने के लिये उत्साहित किया, जिसके फलस्वरूप

1. Vincent, **Government in Switzerland**, p. 33.

फ्रांसीसियों ने स्विटज़रलैण्ड में एक नये संविधान की स्थापना की जिसका नाम हेल्वेटिक गणराज्य पड़ा। इस संविधान के अनुसार सम्पूर्ण देश का शासन २२ विभागों में विभाजित कर दिया गया था और प्रत्येक विभाग में एक स्थायी व्यवस्थापिका सभा की स्थापना की गई जो अपनी स्वतन्त्रता को कायम रखती थी। इसके अतिरिक्त एक द्वि-सदनीय व्यवस्थापिका सभा की भी स्थापना की गई, (१) सीनेट, (२) ग्राण्ड कौंसिल, सीनेट सदन में प्रत्येक विभाग अपने ४ सदस्य भेजता था और ग्राण्ड कौंसिल में ८ सदस्य। इसके साथ साथ प्रशासन को सुधारने के लिये बहुत से परिवर्तन भी किये गये, जैसे शिक्षा, कानून एवं अर्थ आदि में। व्यापार, निवास एवं प्रेस की स्वतंत्रता की ओर भी ध्यान दिया गया। संवैधानिक लोकमत संग्रह (Referendum) भी अमरीका के संविधान से ग्रहण किया गया।[1] यद्यपि बाह्य दृष्टिकोण से स्विटज़रलैण्ड में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित करने का ढोंग रचा जा रहा था, परन्तु फ्रांस अपने नियंत्रण की वास्तविक नीति को बहुत दिनों तक छिपा न सका और बर्न नामक स्थान पर स्विटज़रलैण्ड के कोष का अपहरण किया। इतना ही नहीं वरन् कैन्टनों के बहुत से सिपाही विदेशियों से लड़ने के लिए ले जाते थे। अतः ब्रुक महोदय ने सच ही कहा है कि "The Helvetic Republic was independent in appearance only; in reality it was ruled from Paris and in the interest of France.[2] (हेल्वेटिक गणराज्य देखने में ही स्वतंत्र था, परन्तु वास्तविकता में फ्रांस के हित में पेरिस द्वारा शासित होता था।) इस प्रकार प्रजातन्त्र में तानाशाही छिपी हुई थी। जिसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण देश शक्तिहीन हो गया। अतः वह जंगली कैन्टनों ने जो अपनी बरबादी अपनी आँखों देख रहे थे, फ्रांस के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। इस विद्रोह को दबाने के लिये फ्रांसीसियों ने कत्लेआम का सहारा लिया और बिना किसी आयु अथवा लिंग का भेद-भाव किये हुए सबको मौत के घाट उतार दिया। अभाग्यवश इसी समय आस्ट्रिया संघ एवं फ्रांस में युद्ध चल रहा था जिसका स्विट्जरलैण्ड ही युद्ध क्षेत्र बना।

स्विटज़रलैण्ड की इस अस्तव्यस्त दशा को देख कर नेपोलियन ने अपने विश्वसनीय जनरल ने (Ney) को यहाँ की दशा सुधारने के लिये भेजा। इसी समय स्विस प्रतिनिधियों की एक सभा पेरिस में बुलाई गई, जिसमें सन् १८०३ में एक्ट ऑफ मीडियेशन (Act of Mediation) पास किया गया। इसी समय से

---

1. Brooks, **Government and Politics of Switzerland,** p. 27.
2. **Ibid.** p. 37.

स्विटज़रलैण्ड के इतिहास का तृतीय काल प्रारम्भ होता है जो नेपोलियन काल के नाम से विख्यात है।

(३) नेपोलियन काल (सन् १८०३ से १८१५ तक)

एक्ट ऑफ मीडियेशन में १९ कैन्टनों का एक प्रसंधान की स्थापना की गई। इसके अतिरिक्त एक नेशनल डाइट की भी स्थापना की गई जिसकी बैठकें बारी-बारी से ६ प्रमुख कैन्टनों में होती थीं। परन्तु उपरोक्त एक्ट स्विट्ज़रलैण्ड की स्वतन्त्रता को फ्रांस के प्रभाव से न बचा सका। अन्त में स्विट्ज़रलैण्ड को १६००० सिपाही, फ्रांसीसी फौज़ में भेजने पड़े। सन् १८१३ में वेलेस (Valias), न्यूचेटेल (Neuchatel) और जिनेवा नामक कैन्टन भी इस प्रसंधान में मिला लिये गये। नेपोलियन जो इस प्रसंधान का प्रवर्तक था, उसके पतन के वाद ही यह प्रसंधान भी सन् १८१३ ई० में समाप्त हो गया।

सन् १८१५ में वियना कांग्रेस बुलाई गई। इस कांग्रेस ने नेपोलियन के पतन के बाद योरुप का राजनैतिक मानचित्र ही बदल दिया। यद्यपि स्विस निवासियों ने कांग्रेस से अपनी राज्य सीमाओं की वापसी की माँग की परन्तु कांग्रेस ने वापस करने को मना कर दिया। फिर भी कांग्रेस ने स्विट्ज़रलैण्ड के लिये एक उदार शासन की व्यवस्था कर दी जो सन् १८१५ की संधि के नाम से प्रसिद्ध है। यहीं से स्विट्ज़रलैण्ड के चौथे काल का प्रारम्भ होता है।

(४) सन् १८१५ से १८४८ तक का प्रसंधान एवं संघीय काल—

सन् १८१५ की संधि के अनुसार सभी कैन्टनों के साथ समानता का व्यवहार किया गया, चाहे वह छोटे थे अथवा बड़े सबको बराबर के अधिकार दिये गये। प्रत्येक कैन्टन को नेशनल डाइट में एक मत देने का अधिकार दिया गया। संघात्मक कार्य बर्न, ज़ूरिच तथा लूज़र्न नामक प्रमुख कैन्टनों के कार्यकारिणी पदाधिकारियों द्वारा होता था। इस प्रकार स्थानीय कार्यों की देख-भाल करने के लिये कैन्टनों को ही अधिकार दे दिया गया और कैन्टनों ने इस प्रकार के स्वराज्य को स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् नेशनल डाइट को ज़िलों में शांति एवं सुरक्षा स्थापित करने का भी अधिकार दे दिया गया। इसके साथ साथ नेशनल डाइट को यह भी अधिकार दे दिया गया कि यदि उसे शांति एवं सुरक्षा स्थापित करने के लिए सेना की आवश्यकता पड़े तो वह सेना की सहायता ले सकती थी। परन्तु इस संधि में सबसे प्रमुख बात यह थी कि यह धार्मिक स्वतन्त्रता, राजनैतिक एकता, प्रेस की स्वतन्त्रता एवं सभा के अधिकारों के बारे में चुप थी। यह उपरोक्त बातें कैन्टनों के ऊपर

छोड़ दी गई थी कि चाहे वह माने अथवा न माने।[1] इस संधि द्वारा कैन्टनों को यह अवसर मिल गया था जिससे वह भी अपनी उन्नति कर सकते थे। यहाँ तक कि कुछ कैन्टनों ने सिक्के, निवास का अधिकार तथा विवाह सम्बन्धी एकता स्थापित करने के लिये समझौता भी किया। परन्तु अभाग्यवश यह संधि स्विस निवासियों की अभिलाषाओं को पूरी न कर सकी। अतः जुलाई सन् १८३० में फ्रांस की क्रान्ति ने स्विटज़रलैण्ड के संविधान में बिना एक बूंद रक्त बहाये हुए बहुत से सुधारों की ओर प्रभावित किया।

परन्तु केवल १० वर्ष पश्चात् ही धार्मिक मतभेद ने सम्पूर्ण देश में कलह को जन्म दिया जिससे पूरा देश प्रभावित हुआ। यह घटना स्विटज़रलैण्ड के संघीय इतिहास की बहुत ही महत्वपूर्ण घटना समझी जाती है। सन् १८४५ ई० में ७ कैन्टनों (लूज़र्न, ऊरी, स्विज, अन्टरवोल्डन, ज़ग, फेबर्ग तथा नेलेस) ने मिलकर एक पृथक् लीग की स्थापना की जो बिवाफनेटर सोंडरबर्ग (Bewaffneter Sonderburg) के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस लीग ने अपनी स्वतन्त्रता लीग को प्रस्तावित किया। जिसमें मठों का उन्मूलन, चर्च की सम्पति पर कर तथा जेसूइटों की चिकित्सा भी सम्मिलित थी। इस नीति के पश्चात् उन लोगों ने योरुपीय पड़ोसी शक्तिशाली राज्यों से सहायता भी माँगी। इससे नेशनल डाइट को सतर्क होना पड़ा। अतः संघीय डाइट ने अपने अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये एवं कैन्टनों की एकता को तोड़ने के लिये ४ नवम्बर सन् १८४७ को सैनिक सहायता ली। इसी समय ब्रिटिश विदेशी मंत्री लार्ड पामर्सटन ने आस्ट्रिया, फ्रांस एवं प्रशिया के तटस्थ रहने में सफलता प्राप्त की और यह विश्वास दिलाया कि वह इस मामले में हस्तक्षेप न करें। वे स्वयं आपसी मामले को तय करें। इधर विरोधी दलों ने अपनी सेनाओं को इकट्ठा किया। कैथोलिक लीग ने अपने ७९००० सिपाही १००००० संघीय डायट की सेना के विरुद्ध युद्धस्थल में उतार दिये। परन्तु संघीय सेना के सेनापति डूफर ने १० दिन (नवम्बर १० से १९ तक) घमासान युद्ध करने के पश्चात् विद्रोहियों को कुचल दिया। इस प्रकार सेनापति डूफर ने धार्मिक एवं शासन सम्बन्धी बातों को इस विजय द्वारा तय कर दिया और दोनों दल आपस में मिल गये और उन्होंने फिर से पुराने संविधान को अपनाया। यहीं से स्विट्ज़रलैण्ड के संघीय इतिहास का ५वाँ काल प्रारम्भ होता है जो आधुनिक काल के नाम से प्रसिद्ध है।

(५) स्विट्ज़र लैण्ड का आधुनिक काल :—इस संविधान में सर्वप्रथम एक

---

1. Brooks, **Government and Politics of Switzerland,** p. 41.

लोकमत संग्रह हुआ जिसके परिणामस्वरूप १५½ कैन्टनों द्वारा उपरोक्त संविधान अपनाया गया, जिनकी जनसंख्या १,८९७,८८७ थी, शेष ६½ कैन्टनों की जन-संख्या केवल २९२,३७१ थी। यह घोषणा १२ सितम्बर सन् १८४८ को की गई थी।[1] संघ में पोस्टआफिस, राष्ट्रीय तारघर एवं सिक्कों में एकता स्थापित हो जाने से कैन्टनों के बीच एकता का भाव स्थायी हो गया, जिससे शिक्षा, सैनिक, सड़कों एवं नहरों की उन्नति में प्रेरणा मिली। सन् १८४८ का संविधान सन् १८७० तथा सन् १८७४ में संशोधित किया गया था। वही संशोधित संविधान स्विट्ज़र-लैण्ड में अब तक चल रहा है।

जर्मन-साम्राज्य एवं जर्मन-गणतन्त्र राज्य

जर्मन राज्य भी सामंतशाही का ही फल है। परन्तु जर्मन सामन्तशाही फ्रांस की सामन्तशाही से भिन्न थी। जर्मन में दो प्रकार के सामंत रहते थे। एक वे थे जिनके पास अपने पूर्वजों की वंशानुगत सम्पत्ति थी और दूसरे वे थे जो जिस प्रान्त में निवास करते थे वहीं के राजा द्वारा गवर्नर नियुक्त कर दिये गये थे तथा बाद को धन, शक्ति एवं उच्च सामाजिक स्तर द्वारा अपनी शक्ति बढ़ाकर उन्हीं प्रान्तों के वंशानुगत शासक हो गये। बाद को सम्राट् के इटली चले जाने से उसकी लम्बी अनुपस्थिति में इन शासकों की शक्ति और भी बढ़ गई। तत्पश्चात् केन्द्रीय योरुप में एक प्रसंधि की स्थापना हुई। यदि हम इस प्रकार के स्वामित्व द्वारा बनी संस्था को प्रसंधि मान लें तो राज्य के विभिन्न समुदायों द्वारा जो अर्ध-स्वतन्त्र राज्य एवं नगर थे उनमें बहुत से प्रसंधानों की स्थापना हुई। इनमें प्रशिया तथा आस्ट्रिया बहुत ही शक्तिशाली थे। पहले आस्ट्रिया नामक प्रसंधान बहुत ही शक्तिशाली था, परन्तु बाद को प्रशिया ने अपने द्वितीय राजा फ्रेडरिक विलियम प्रथम (१७१३ से १७४० तक) के शासन काल में अपनी शक्ति बढ़ा ली। इस प्रकार राजा फ्रेड-रिक विलियम ने अपने पुत्र फ्रेडरिक महान् की सहायता से अपने अधिकारों एवं सैनिक शक्ति में वृद्धि की। सैनिक शक्ति बढ़ जाने के बाद से फ्रेडरिक महान् ने भी पोलैण्ड के एक भाग एवं सिलेसिया को मिलाकर अपने राज्य की सीमा भी बढ़ा ली। इस प्रकार फ्रेडरिक ने पहले सिलेसिया को आस्ट्रिया से छीन लिया और बाद को पोलैण्ड के कुछ क्षेत्रों को अपने राज्य में मिला लिया। अतः फ्रेडरिक ने पश्चिमी प्रशिया तथा नेत्स ज़िले के साथ पूर्वी एशिया तथा बेंडेनवर्ग के बीच का

1. Brooks, **Government and Politics of Switzerland**, p. 45.

भाग भी मिला लिया। पोलैण्ड के द्वितीय तथा तृतीय विभाजन क्रमशः १७९३ तथा १७९५ में प्रशिया में मिल गये और अब यह भाग पूर्वी प्रशिया के पोसेन नाम से प्रसिद्ध है।[1]

जब जर्मन प्रसंधि में श्रेष्ठता की होड़ के लिये दावा उठा तो प्रशिया भी आस्ट्रिया का वास्तविक शत्रु हो गया। उसी काल में फ्रांस की क्रान्ति की लहर सम्पूर्ण योरुप में फैल गई, जिसका प्रभाव जर्मनी पर अधिक पड़ा और बहुत परिवर्तन हुए। यही वह समय था जब जर्मनी में भी राष्ट्रीयता की भावना का उदय हुआ। इस क्रान्ति का पहला प्रभाव यह पड़ा कि छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्य एवं नगर तथा धार्मिक भागों को उनके शक्तिशाली पड़ोसियों ने अपने में मिला लिया; इससे उन्नति के मार्ग में आसानी पड़ गई क्योंकि स्वतन्त्र राज्यों की सख्या कम हो गई, जिससे विदेशियों को प्रसंधि में विघ्न डालने का बहुत कम समय मिला।[2] नेपोलियन ने सम्पूर्ण योरुप पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये बेवोरिया, वर्टुमबर्ग तथा बेडिन के ड्यूक राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर रहाइन नामक प्रसंधि की स्थापना की। इस प्रकार उत्तर से प्रशिया को और दक्षिण से आस्ट्रिया को अलग कर दिया गया और नेपोलियन स्वयं ही इस प्रसंधि का संरक्षक बना (सन् १८०६ से १८१३ तक), परन्तु उसने इस कार्य से अचेतना-पूर्वक जर्मन लोगों में देशभक्ति की भावना की जागृति कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १८१३ में जर्मन लोगों ने रहाइन प्रसंधि को तोड़ दिया। नेपोलियन के इस युद्ध ने न केवल छोटे छोटे राज्यों को ही दबाया या इस और असंगठित प्रसंधि की ही स्थापना की बल्कि जर्मन राष्ट्रीय भावना को भी जन्म दिया।[3]

उसी समय वियेना की कांग्रेस की स्थापना हुई। यद्यपि कांग्रेस जर्मनी को पुनर्जीवित न कर सकी। परन्तु सन् १८१५ में सभी छोटे एवं बड़े ३९ राज्यों को मिलाकर एक प्रसंधि की स्थापना की। इस प्रसंधि का सभापतित्व आस्ट्रिया के और उप-सभा-पतित्व प्रशिया के हाथों में दिया गया। सभी राज्यों के राजदूतों की एक डाइट् सभा भी स्थापित की गई। इस डाइट् में सभी सदस्य अपने राज्य के अनुदेशनों के अनुसार

---

१. पोलैण्ड के लोकापवादत्मक हृदयहीन प्रथम विभाजन तथा द्वितीय और तृतीय विभाजनों का यह फल था।

Woodrow Wilson, **The State**, p. 443.

2. Newton, **Federal and Unified Constitutions**, p. 28.

3. Lowell, **Government and Parties in Continental Europe**, Vol. I., p. 263.

ही मत देते थे। डाइट् को युद्ध तथा शान्ति की घोषणा करने,सार्वजनिक सेना का संगठन तथा सदस्य राज्यों के आपसी झगड़े तय करने के अधिकार प्राप्त थे। परन्तु आज्ञाओं को कार्यान्वित करने के लिये कोई आफिसर नियुक्त न थे। अतः यह कार्य कई राज्यों पर ही छोड़ दिया गया था। पर जब कभी कोई शक्तिशाली राज्य डाइट् की आज्ञाओं को कार्यान्वित कराने को मना कर देता था तो डाइट् दूसरे राज्यों की सहायता से विद्रोही राज्य पर धावा कर देती थी और उसे सैनिक शक्ति द्वारा इस बात के लिए विवश कर देती थी कि वह डाइट् की आज्ञाओं को माने। जर्मन प्रसंधि का वर्णन करते हुए लोवेल का कहना है कि यह प्रसंधि वास्तविक संघ-राज्य न था, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय शाश्वत समझौता था। केवल जर्मनी की वाहरी रक्षा के हित को छोड़कर सभी राज्य स्वतन्त्र थे।[1]

इसी समय जर्मनी में एक नवीन उदार पार्टी का जन्म हुआ जिसने सम्पूर्ण जर्मनी पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। ज़ोलवेरीन द्वारा सार्वजनिक आयात-निर्यात शुल्क का प्रबन्ध किया गया, जिसके परिणामस्वरूप बहुत से राज्य आपस में संगठित हो गये, परन्तु सबसे प्रमुख वात यह हुई कि प्रशिया की शक्ति इन्हीं दिनों में बहुत अधिक बढ़ गई, अतः उसने आस्ट्रिया के सभापतित्व को हरण करने का प्रयत्न किया, क्योंकि शक्ति के बढ़ जाने से प्रशिया अधिक शक्तिशाली हो गई, जिससे बहुत से छोटे राज्य इसमें मिल गये।[2] उदार पार्टी तब तक उन्नति करती रही जब तक सन् १८४८-४९ तक योरुप की राजनीतिक जर्मनी को प्रभावित न किया। जर्मन-राज्य की स्थापना करने के लिये उदार दल के नेता मई सन् १८४८ को फ्रेंकफोर्ट नामक स्थान पर इकटठा हुए और एक राष्ट्रीय जर्मन संस्था की स्थापना की। इस संसद के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ था। वास्तविकता में उन लोगों ने राज्य सत्ता की बागडोर प्रशिया के हाथों में दे दी। परन्तु सबसे बड़ी हानि यह हुई कि इस कार्य के बीच ही में आस्ट्रिया को इतना समय मिल गया कि वह अपनी शक्ति को पुनः बढ़ा सका। जब तक विस्मार्क का प्रशिया के शासन में आगमन न हुआ, तब तक के लिये उदार आन्दोलन थोड़ समय के लिये दवा रहा।

ज्योंही विस्मार्क ने जर्मन राजनीति में भाग लिया उसने योरुप की राजनीति-का ढाँचा ही बदल दिया। उसने पहले से ही प्रशिया को शक्तिशाली बनाने एवं आस्ट्रिया

1. **Government and Parties in Continental Europe,** Vol. I., p. 234.

2. **Federal and Unified Constitutions,** p. 29.

को क्षीण करने की नीति को सोच रखा था। अतः जिस कार्य को उदार दल पूरा न कर सका था उसे विस्मार्क ने पूरा किया। इस कार्य को पूरा करने के लिये विस्मार्क ने 'रक्त एवं स्पात' (Blood and Iron) की नीति का सहारा लिया। इस कार्य में प्रशिया का राजा विलियम, विस्मार्क की नीति से पूर्ण सहमत हो गया, अतः विस्मार्क को सभा का सभापति बना दिया गया। परन्तु विस्मार्क अपनी नीति द्वारा सभा को संतुष्ट न कर सका, अतः सदन ने विस्मार्क द्वारा प्रस्तावित बजट को अस्वीकृत कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इस इस्पात के शासक ने बिना बजट के पारित हुए ही शासन की बागडोर सँभाली। सन् १८६४ में विस्मार्क ने सेलस्विग और हाल्स-टीन प्रान्त डेन्मार्क के छीन लिये। किन्तु इनके बटवारे के सम्बन्ध में झगड़ा कर आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अतः सन् १८६६ में युद्ध छिड़ गया। घमासान युद्ध के पश्चात् आस्ट्रिया पूर्ण रूप से पराजित हो गया और उसे प्रसंधान (अनुसंघ) से अलग कर दिया गया। विस्मार्क ने आस्ट्रिया में सम्मिलित छोटे-छोटे राज्य जैसे हेनोवर, हेस, नसाऊ, फ्रेंकफोर्ट तथा सेलस्विग आदि को प्रशिया में मिला लिया। इस प्रकार राज्यों के मिला लेने के पश्चात् मेन नदी के किनारे पर उत्तरी जर्मनी प्रसंधान की स्थापना की गई। प्रशिया का राजा इस प्रसंधान का सभापति बनाया गया और व्यवस्थापिका सभा दो सदनों (१) रेक्सटाग (Reichstag), (२) बुंदसराथ (Bundesrath) द्वारा संगठित की गई। सन् १८७० में फ्रांस तथा जर्मनी में युद्ध छिड़ जाने के कारण मेन नदी के दक्षिण के राज्य बेवेरिया, वर्टुमबर्ग, बेडन तथा हेस भी इस प्रसंधान में सम्मिलित हो गये और उन्हें विशेषाधिकार भी दिये गये। इसी समय इस प्रसंधान का नाम बदल कर जर्मन राज्य रक्खा गया और एक नये संविधान का निर्माण किया गया।

इस संविधान में व्यवस्थापिका सम्बन्धी अधिकार रेक्सटाग तथा बुंदसराथ में निहित थे। रेस्क्सटाग इस व्यवस्थापिक सभा का निचला सदन था, जिसमें ३९७ सदस्य थे। इन सदस्यों में प्रशिया ही केवल २३५ सदस्य भेजता था तथा बेवेरिया ४८, सेक्सनी २३, वर्टुमबर्ग १७, आल्सेस लोरन १५, बेडन १४, हेस ९, मेसे ९, मेक्लेन बर्ग-शिवेरियन ६, सेक्सेवीमार ३, ओल्डनबर्ग ३, ब्रंसविक ३, हेम्सबर्ग ३, सेम्सेमे-नेनगन २, सेक्सेकोबर्ग २, एनहाल्ट २ और बाकी प्रत्येक राज्य से १ सदस्य भेजा जाता था। इन सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर होता था। रेक्सटाग में सभी विधायिनी शक्तियाँ निहित थीं। इस सदन का कार्यकाल केवल ५ वर्ष था, परन्तु सभापति बुंदसराथ की सलाह से उसे अवधि के पहले ही विघटित कर सकता था। इस व्यवस्थापिका सभा का ऊपरी सदन बुंदसराथ था, जिसमें ५८ सदस्य होते

थे। इनमें १७ सदस्य केवल प्रशिया के होते थे, शेष बेवेरिया ६, सेक्सोनी और वर्टुम-बर्ग से ४, हेसे और बेडन से तीन तीन, ब्रंसविक और मेक्लेनबर्ग, स्वेरिन प्रत्येक से २ और शेष राज्यों से एक एक सदस्य चुना जाता था। यह सभी सदस्य सदन में अपने राज्यों की आज्ञाओं के अनुसार मत देते थे। बुंदसराथ के सदस्य सीनेटर के बजाय राजनीतिज्ञ थे। बर्लिन में विदेशी राजदूत होने के नाते से रहने की सुविधाएँ इन्हें दी गयी थीं। उनकी नियुक्तियाँ करने अथवा उन्हें पदच्युत करने का अधिकार राज्यों की इच्छा पर निर्भर था। उनका मत भी राज्य का मत समझा जाता था, व्यक्तिगत नहीं, अतः सभी सदस्यों का मत एक तुल्य समझा जाता था।[1] १४ निषेधार्थक मत किसी भी मामले को रद्द कर सकते थे। इस प्रकार यदि प्रशिया ही चाहती तो किसी भी मामले में अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकती थी। इस प्रकार बुंदसराथ को बहुत अधिक शक्तियाँ प्राप्त थीं, जिससे उसे असाधारण विधायिनी शक्तियों का सम्मिश्रण भी कहा गया है। यह कार्यकारिणी परिषद्, कोर्ट ऑफ अपील तथा राजनीतियों की स्थायी सभा थी। इसे विधायिनी मामलों में अन्तिम शक्ति प्राप्त थी। इसके साथ साथ इस सदन को यह भी अधिकार प्राप्त था कि किसी भी विद्रोही सदस्य-राज्य को दबाने के लिये राज्य-सेना को आज्ञा दे सकती थी। इस सदन का चुनाव किसी विशेष समय पर न होता था। इसके सदस्यों की नियुक्तियाँ करना एवं उन्हें पदच्युत राज्यों की इच्छा पर निर्भर था। इस प्रकार नियुक्ति एवं पदच्युत करने की शक्ति जो रेक्सटाग में निहित थी, योरुप के दूसरे देशों से भिन्न थी।

प्रशिया राज्य का राजा ही कार्यकारिणी का प्रधान होता था, वह सेना का प्रधान सेनापति भी होता था। उसे शांति एव युद्ध करने की घोषणा करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में प्रतिनिधित्व करने का अधिकार प्राप्त था। वह स्वयं व्यवस्थापिका सभा की बैठक बुलाता था और उसका विघटन भी कर सकता था। वह सभी कानूनों की घोषणा भी करता था। उसे प्रशिया का राजा होने के नाते बहुत सी शक्तियाँ प्राप्त थी, क्योंकि प्रशिया अकेले ही अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता था। इस प्रकार वह व्यवस्थापिका सभा के किसी भी प्रस्ताव को अकेले ही अस्वीकृत कर सकता था। इस सभा को ही साम्राज्य के चांसलर की नियुक्ति करने का अधिकार प्राप्त था। चांसलर ही उच्चतम संघीय कर्मचारी होता था और सभी अन्य कर्मचारी उसके सहायक होते थे। वह न केवल व्यवस्थापिका के ही वरन् प्रशिया के राजा के प्रति भी

---

1. Lowell, **Government and Parties in Continental Europe**, Vol. I, pp., 261-262.

उत्तरदायी होता था और क्योंकि बुंदसराथ में प्रशिया के १७ सदस्य होते थे, अतः लगभग सभी कार्यों में प्रशिया का ही अधिक हाथ रहता था। इसीलिए लोवेल ने ठीक ही कहा है कि "विस्मार्क के समय में जर्मन चाँसलर को जितनी शक्तियाँ प्राप्त थी, उतनी सम्भावतः विश्व के किसी भी शासक को प्राप्त न थी।"[1]

प्रत्येक राज्य में बहुत से न्यायालय थे, जिनका संगठन एवं कार्यप्रणाली साम्राज्य स्तर के आधार पर होती थी। यद्यपि न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ राज्यों द्वारा ही होती थीं, परन्तु उनकी कार्यप्रणाली साम्राज्य द्वारा बनाये हुए नियमों के आधार पर ही कार्यान्वित होती थी।

इस प्रकार जर्मन राज्य के संविधान के अध्ययन करने के पश्चात् हम निम्नलिखित परिणामों पर पहुँचते हैं: इस प्रसंधान के सदस्यों में समानता का व्यवहार न था, क्योंकि चाहे साम्राज्य सम्बन्धी मंत्रणाएँ हों अथवा आन्तरिक शासन सम्बन्धी प्रश्न हों, प्रशिया को ही सबसे अधिक अधिकार प्राप्त थे। इसके अतिरिक्त जो भी राज्य उपरोक्त प्रसंधान में बाद को सम्मिलित हुए थे, उनकी ओर विशेष ध्यान दिया गया था, यहाँ तक कि धीरे-धीरे कुछ सदस्य-राज्य भी अपनी सेना पर स्वयं नियंत्रण रखने लगे थे। संघ शासन को चलाने के लिए गणतन्त्रात्मक संविधान अति ही आवश्यक होता है, परन्तु सदस्य-राज्यों में इस प्रकार का संविधान न था। साम्राज्य में विधायिनी केन्द्रीकरण अधिक था, जब कि कार्यकारिणी में विकेन्द्रीकरण अधिक था। केन्द्रीय सरकार अमरीका के कांग्रेस की भाँति शासन करती थी। परन्तु संघीय कर्मचारी न होने के कारण राज्य के कर्मचारी ही संघीय कानून को कार्यान्वित करते थे। अतः प्रशिया के राजा को दोहरे अधिकार होने के कारण सबसे अधिक शक्तियाँ प्राप्त थी। वास्तविकता में यह साम्राज्य एक संघ राज्य कहलाने योग्य न था, जैसा कि लोवेल ने ठीक ही कहा है कि "यह मेल एक सिंह, आधे दर्जन लोमड़ियाँ और बीस चूहों के मेल सदृश था।"[2] साम्राज्य का प्रत्यक्ष रूप से, स्थानीय राजाओं तथा स्वतन्त्र नगरों पर ही नियंत्रण था न कि सम्पूर्ण जनसंख्या पर। वास्तव में सभी राज्यों के नागरिकों को जर्मन नागरिकता प्राप्त थी।

1. **Government and Parties in Continental Europe**, Vol I, p. 297.

2. "The compact could not fail to resemble that between the lion and the fox, or rather a compact between a lion, half a dozen foxes and a score of mice."

Government and Parties in Continental Europe, Vol. I, p. 246.

संविधान के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि इस प्रसंघान की शासन प्रणाली २० वीं शताब्दी के प्रजातन्त्रीय विचारों से बहुत दूर थी परन्तु सन् १९१४ के प्रथम महायुद्ध में जर्मनी की जो सेना होहेनजार्लेन शासकों के आज्ञानुसार लड़ रही थी, वह कागज के महल की भाँति नष्ट-भ्रष्ट हो गई। किन्तु जर्मनी के निवासियों की यह देशभक्ति माननी ही पड़ेगी कि जब अन्य लड़ाकू देश जैसे रूस, आस्ट्रिया, हंगरी और टर्की के छिन्न-भिन्न हो जाने के पश्चात् आसानी से दोबारा न बस सके, उस समय जर्मनी ने इतने बड़े विप्लव के बाद भी एक ऐसे नवीन प्रजातन्त्रीय संविधान की स्थापना की, जो कि वास्तविकता में संघीय एवं प्रजातन्त्रात्मक सरकार का वास्तविक स्वरूप था।

इस संविधान के निर्माण में जो विचार ग्रहण किये गये थे, वह वास्तव में बहुत ही सुन्दर थे, परन्तु इस महायुद्ध में अमरीका के मिल जाने से जर्मनी को अपना पश्चिमी भाग खोना पड़ा। इधर जर्मनी पर लगातार मरण बढ़ जाने से जर्मन-निवासियों ने युद्ध जारी करने को मना कर दिया, क्योंकि उनके पास सेना न थी।

सन् १९१८ की क्रान्ति ने तो जर्मनी की आन्तरिक राजनीति को बिलकुल ही परिवर्तित कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि केसर जो जर्मनी का राजा था उसे गद्दी से उतार दिया गया और विभिन्न राज्यों के राजकीय शासकों को भी गद्दी से उतार दिया गया, तभी समाजवादी दल का उदय हुआ। इसके अतिरिक्त एक नेशनल असेम्बली की भी स्थापना की गई, जिसके सदस्य वयस्क मताधिकार द्वारा गुप्त रीति से चुने जाते थे। यह निर्वाचित सदस्य ६ फरवरी सन् १९१९ को वीमार नामक स्थान पर एकत्रित हुए। असेम्बली में यद्यपि समाजवादी दल का ही बोलबाला था, किन्तु कुल ४२१ सदस्यों में केवल १६५ समाजवादी होने के कारण यह दल बहुमत न प्राप्त कर सका। अतः समाजवादी दल ने धर्मवादियों तथा लोकतन्त्रवादियों के साथ मित्रता स्थापित की। परन्तु उस समय वास्तविक रूप में दो ही दल अधिक प्रसिद्ध थे। एक वह दल था जो सम्पूर्ण राज्यों का अन्त करके एक शक्तिशाली केन्द्रीयकरण करना चाहता था, दूसरा दल वह था, जो केवल शक्तिशाली प्रशिया से अलग होकर अलग अलग राज्यों की शक्ति स्थापित करना चाहता था। इस प्रकार बहुत वादविवाद के पश्चात् दोनों दल इस परिणाम पर पहुँचे कि एक वास्तविक संघात्मक संविधान की स्थापना की जावे, जो बिना लोकनिर्णय के ११ अगस्त सन् १९१९ को लागू हुआ।

उपरोक्त संविधान के अन्तर्गत व्यवस्थापिका सभा में दो सदनों की व्यवस्था की गई। प्रथम निचला सदन था जिसमें सम्पूर्ण जर्मनी के नागरिकों के प्रतिनिधि थे। इस सदन का एक सभापति होता था, जो प्रजा द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुना जाता था। कार्यकारिणी शक्ति इसी में निहित होती थी। परन्तु सभापति, चांसलर तथा

मंत्रियों की राय से ही कार्य करता था, जिन पर शासन का प्रमुख उत्तरदायित्व रहता था। इस प्रकार यह संविधान अध्यक्षात्मक तथा संसदीय सरकारों का सम्मिश्रण था। संविधान के अन्तर्गत विधायिनी शक्तियों में केन्द्रीयकरण था और कार्यकारिणी शक्तियों में विकेन्द्रीकरण था। आर्थिक एवं सामाजिक बातों की माँगों के लिये समाजवादियों ने एक राष्ट्रीय मंडल की माँग की, जिससे सभी श्रमिक एवं सामाजिक मामलों में सलाह ली जाती थी।

आस्ट्रो-हंगेरियन साम्राज्य

आस्ट्रिया-हंगरी नामक प्रसंधान का राजनतिक इतिहास दूसरे संविधानों से अनेक बातों में भिन्न है। पूर्व मध्यकाल में हैप्सबर्गों ने, मध्य योरुप में, एक साम्राज्य की स्थापना की थी और एक एक कर के सभी पड़ोसी राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया था। प्रस्तुत अध्याय एवं पूर्व के अध्याय में यह पहले ही वताया जा चुका है, कि हैप्सबर्ग नामक साम्राज्य के कुछ दूरस्थ नगरों और राज्यों ने किस प्रकार इस साम्राज्य से अलग होकर अपने अपने संघों एवं प्रसंधानों की स्थापना की थी।

यद्यपि आस्ट्रिया अनेक युद्धों में पराजित हो रहा था, परन्तु वह केवल उसका ही सौभाग्य था कि वह पराजित होने के पश्चात् भी अपने साम्राज्य की सीमाएँ वढ़ाता रहा। सन् १५२६ में बोहोमिया एवं हंगरी नामक राज्यों ने हैप्सबर्ग का साथ त्याग कर आस्ट्रिया के प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया। मोरोविया, ट्रांसील्वनिया, स्लावोनिया और क्रोटिया नामक राज्यों ने विभिन्न कालों में हैप्सबर्ग को त्याग दिया था। वह सभी सन् १५२६ में हंगरी के साथ आस्ट्रिया के साम्राज्य में मिल गये। गेलीसिया भी सन् १७७२ में, पोलैण्ड के विभाजन के पश्चात आस्ट्रिया में मिला लिया गया और डालमेशिया भी कैम्पो फारमियो की संधि द्वारा सन् १७९७ में आस्ट्रियन साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। इसके पश्चात् सन् १८७८ में वर्लिन की कांग्रेस ने बोस्निया तथा हर्जेगोविना को टर्की से लेकर आस्ट्रिया के संरक्षण में सौंप दिया। परन्तु सन् १९०८ में यह पूर्ण रूप से आस्ट्रिया में मिल गया।

इस प्रकार से आस्ट्रिया की सीमाएँ बढ़ने के कारण आस्ट्रियन-साम्राज्य में विभिन्न जातियों एवं भाषाओं का सम्मिश्रण हो गया। इन विभिन्नताओं ने ही आस्ट्रिया के संवैधानिक इतिहास की रूपरेखा को बहुत हद तक जटिल बना दिया। सभी सम्मिलित राज्यों में तीन प्रमुख जातियाँ निवास करती थीं, जर्मन, स्लेव तथा मेग्यार। स्लेव अपने ऐतिहासिक, धार्मिक एवं भाषा सम्बन्धी विभिन्नताओं के कारण विभिन्न प्रान्तों में एक दूसरे से भिन्न थे। इसके अतिरिक्त दूसरी जातियाँ भी आस्ट्रिया के विभिन्न

भागों में निवास करती थीं।[1] परन्तु जर्मन लोग आस्ट्रिया की कुल संख्या का एक तिहाई भाग थे और सबसे अधिक संगठित भी थे। स्लेव बोहेमिया और मोरविया, में अधिक थे, जब कि पोल्स, गेलिसिया में और इटैलियन एड्रेयाटिक किनारे पर निवास कर रहे थे। हंगरी में मेग्यार, स्लेव, जर्मन तथा रोमानियन नामक चार जातियाँ निवास करती थीं। परन्तु मेग्यार आर्य न होने के कारण उनकी तुलना दूसरी जातियों से नहीं की जा सकती। यही एक कारण था, कि उनमें एकता थी और उसी एकता के बल पर अल्पसंख्यक होने पर भी वे हंगरी के शासन में अधिक प्रभुत्वशाली थे। जहाँ तक भाषाओं का प्रश्न है, उस समय दो भाषाएँ अधिक प्रचलित थी; प्रथम जर्मन, जो आस्ट्रिया में बोली जाती थी, और द्वितीय मेग्यार, जो हंगरी में बोली जाती थी। परन्तु भाषाओं की विषमता से प्रसंवान की सरकार को किंचित् भी हानि नहीं पहुँची।[2]

---

१. ३१ दिसम्बर सन् १८९० को आस्ट्रिया की जनसंख्या का जातीय-विभाजन निम्न प्रकार से किया गया था।

जर्मन	..	८,४६१,५८०
	..	५,४७२,८७१
पोल्स	..	३,७१९,२३२
रुथेनियन	..	३,१०५,२२१
स्लोवेनियन	..	१,१७६,६७२
इटैलियन	..	६७५,३०५
	..	६४४,९२६
रोमानियन	..	२०९,११०
अन्य	..	४३०,४९०

Government and Parties in Continental Europe, Vol. II, p. 73.

२. निम्नलिखित तालिका सन् १९१० की जनगणना के अनुसार आस्ट्रिया एवं हंगरी की भाषा सम्बन्धी स्थिति प्रदर्शित करती है।

आस्ट्रिया				हंगरी	
भाषा		बोलनेवालों की संख्या	बोलनेवालों का प्रतिशत	बोलनेवालों की संख्या	बोलनेवालों का प्रतिशत
जर्मन	..	९,९५०,२६६	३५.५८	१,९०३,३५७	१० ४०
मेग्यार	..	१०,९७४	.०४	९,९४४,६२७	५४.५०
	..	६,४३५,९८३	२३.०२	..	..
	..	..	..	१,९४६,३५७	१०.७०
पोलिश	..	४,९६७,९८४	१७.७७	..	..

नेपोलियन के पतन के पश्चात् से आस्ट्रो-हंगेरियन साम्राज्य का इतिहास उपरोक्त बातों से वर्णन करना सरल हो जाता है। इस काल में सम्पूर्ण योरुप निरंकुशता की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। विड्रो विल्सन का तो यहाँ तक कहना है कि "ये बन्धन इतनी अधिक सफलता से पुष्ट नहीं थे जितने कि दुष्ट मेटर्निक के शासन प्रभाव से आस्ट्रिया हंगरी में थे।"

सन् १८४८ के राजनैतिक एवं सामाजिक विप्लव ने साम्राज्य के खतरे को समाप्त कर दिया। हंगरी ने भी अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये आस्ट्रिया के नियंत्रण को हटाने का प्रयत्न किया, परन्तु रूस ने आस्ट्रिया को अपना प्रभुत्व हंगरी पर स्थापित करने में सहायता की। परन्तु जब सन् १८६६-६७ में आस्ट्रिया, प्रशिया द्वारा हरा दिया गया, उस समय आस्ट्रिया के सम्राट ने विदेशी बेरन ब्युएस्ट को अपनी सेवा में रख लिया जो सेक्सनी का बहुत समय तक मंत्री रह चुका था। इसी समय हंगरी अपने राजभक्त नागरिक फ्रांसिस डीक के निर्देशन में कार्य कर रहा था। भाग्यवश ८ फरवरी सन् १८६७ को बेरन ब्युएस्ट तथा फ्रांसिस डीक के बीच एक समझौता हो गया। जिसके परिणामस्वरूप सन् १८४८ के सभी कानून तुरन्त ही हंगरी में लागू हो गये और ७ जून सन् १८६७ को बुडापेस्ट नामक स्थान पर आस्ट्रिया के फ्रांसिस जोसेफ को हंगरी का भी सम्राट अभिषिक्त कर दिया गया। इस प्रकार आस्ट्रिया तथा हंगरी, युद्ध, अर्थ एवं विदेशी आदि सभी मामलों में अपनी मिश्रित संसद द्वारा शासित होने लगे और एक ही सम्राट दोनों राज्यों का संवैधानिक शासक बना दिया गया। दोनों राज्यों के सार्वजनिक मामले विदेशी युद्ध एवं अर्थ सम्बन्धी तीन मंत्रियों द्वारा शासित होने लगे जो सम्राट के आधीन थे। प्रत्येक राज्य की संसद, ६० प्रतिनिधियों का एक प्रतिनिधिमंडल वार्षिक भेजती थी, जो सार्वजनिक मामलों के लिये कानून बनाती थी। यह दोनों प्रतिनिधिमंडल बारी बारी से बुडापेस्ट तथा वियेना में मिलते थे। प्रत्येक नियम दोनों प्रतिनिधिमंडलों द्वारा अलग अलग पारित किया

रुथेनियन ..	३,५१८,८५४	१२.५८	४६४,२७०	२.५०
सेरवेनियन और क्रोशन	७८३,३३४	२.८०	६५६,३२४	३.६०
रुमानियन ..	२७५,१५०	०.९८	२,९४८,१८६	१६.१०
..	१,२५२,९४०	४.४८	..	..
इटैलियन एवं लैडिन	७६८,४२०	२.७५	..	..
अन्य ..	६०१,०६२	२.१५	४०१,४१२	२.२०

The International Year Book, 1914, Edition, p. 76.

जाता था।[1] यदि कोई भी प्रस्ताव किसी प्रतिनिधिमण्डल द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता था तो दोनों मण्डलों की एक संयुक्त बैठक बुलाई जाती थी। परन्तु इस बैठक में कोई वाद-विवाद न होता था, अपितु केवल मत ही लिये जाते थे। यदि बहुमत से कोई प्रस्ताव पारित हो जाता था, तो वह स्वीकृत समझ लिया जाता था। संयुक्त बैठक में यह आवश्यक था कि दोनों प्रतिनिधि-मंडलों के सदस्यों की संख्या बराबर हो, परन्तु यदि किसी कारणवश कोई सदस्य अनुपस्थित होता था तो समानता बनाये रखने के लिए दूसरे प्रतिनिधि-मण्डल का भी सदस्य कम कर दिया जाता था। सभी मंत्रियों को शासन-सम्बन्धी सभी प्रश्नों के उत्तर प्रतिनिधि-मण्डल के सदस्यों को देने पड़ते थे, और जो भी कानून प्रतिनिधि-मण्डल पारित कर देते थे। उन्हें उनको कार्यान्वित करना पड़ता था। व्यवस्थापिका-सम्बन्धी कार्य अधिकतर दोनों संसदें अपने अपने राज्य में पृथक् पृथक् करती थीं। प्रतिनिधि-मण्डल केवल अपने निर्णय-द्वारा दृढ़ कर देते थे। इस प्रकार व्यवस्थापिका सम्बन्धी मामलों में पूर्ण रूप से विकेन्द्रीकरण था, जब कि कार्यकारिणी के क्षेत्र में केन्द्रीकरण था। प्रत्येक राज्य का नागरिक दूसरे राज्य का भी नागरिक माना जाता था और नागरिकता सम्बन्धी सभी सुविधाएँ सभी नागरिकों को प्राप्त थीं। दोनों राज्य किसी भी सामान पर जो एक से दूसरे राज्य को जाता था, अधिक कर नहीं लगा सकते थे, केवल अपने माल पर ही कर लगाते थे।

दोनों राज्यों की एक सार्वजनिक जल एवं थल सेना भी थी। सम्राट ही उसका प्रधान सेनापति होता था। सेना में भर्ती हो जाने के बाद सभी सैनिक तथा सेना के अधिकारी संयुक्त शासन द्वारा शासित होते थे। सम्राट प्रधान सेनापति होने के नाते सभी अधिकारियों की नियुक्तियाँ भी करता था और सेना के संगठन को भी देखता था, सेना मंत्री सभी मामलों में जैसे रसदघर, सैनिक, स्कूल आदि के लिये सम्राट के प्रति उत्तरदायी रहता था।[2] सेना का संगठन दोनों संसदों द्वारा पारित हुए नियमों द्वारा होता था। परन्तु प्रत्येक राज्य अपनी स्थानीय सेना भी रखता था।

सहायक मन्त्रियों की नियुक्तियाँ सम्राट स्वयं करता था। सार्वजनिक व्यय, करों एवं व्यापार शुल्क द्वारा एकत्रित धन से चलता था। इसके अतिरिक्त यदि कमी रहती थी तो उसकी पूर्ति के लिए अनुदान ३० प्रतिशत हंगरी तथा ७० प्रतिशत आस्ट्रिया

---

१. आस्ट्रियन-प्रतिनिधि-मण्डल में सभी कार्य जर्मन भाषा में होते थे तथा हंगेरियन-प्रतिनिधि मण्डल में मेग्यार भाषा में ही कार्य होता था।

2. **Government and Parties in Continental Europe**, Vol. II, p. 171.

देता था। व्यापार शुल्क की आय प्रत्येक राज्य अपने कर्मचारियों द्वारा वसूल करके सार्वजनिक कोष में जमा करते थे। जो भी अनुदान की दर दोनों संसदों द्वारा स्थापित कर दी जाती थी, उसका प्रत्येक १० वर्ष पश्चात् ही संधि के रूप में संशोधन होता था। इस संधि में सिक्के का एक सार्वजनिक स्तर भी निश्चित किया जाता था। इसके अतिरिक्त विशिष्ट-अधिकार पत्र तथा व्यापारिक चिह्न भी तय किये जाते थे। सामुद्रिक व्यापार के लिये अलग नियम बने हुए थे। रेल, तार, डाक तथा सड़कों का उपभोग दोनों राज्यों के लिये समान रूप से था। यह सभी बातें सार्वजनिक राष्ट्रीयता के चिह्न थे, जो संधि द्वारा तय किये जाते थे और केवल १० वर्ष बाद ही संशोधित किये जाते थे।[1] परन्तु संशोधन में अधिकतर हंगरी को ही अधिक सुविधाएँ प्राप्त हो जाती थीं। यद्यपि नाप-तौल एवं मुद्रा में एकता रखी जाती थी, परन्तु प्रत्येक राज्य के अपने मुद्रा भी व्यवहार में अलग चालू थे।

सन् १८७८ में रूस-टर्किस युद्ध के पश्चात् देश लूट से बोस्निया तथा हरजेगोनिया के राज्य आस्ट्रिया को मिल गये। संयुक्त मंत्रिमंडल के सदस्यों ने दोनों संसदों की इच्छा के विरुद्ध उन राज्यों के शासन उत्तरदायित्व को ग्रहण कर लिया जहाँ का स्थानीय करों द्वारा शासन चलता था। दोनों राज्यों में से किसी ने व्यय बढ़ जाने के कारण इन नवीन क्षेत्रों का शासन भार सँभालने का पूर्ण उत्तरदायित्व न लिया। इनके शासन में धन की पूर्ति भी दोनों प्रतिनिधि-मण्डलों द्वारा निर्धारित अनुदान से होती थी।

उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आस्ट्रिया एवं हंगरी में पुष्ट राजनैतिक एकता न थी। यह संघ दो विभिन्न स्वतन्त्र राज्यों द्वारा बना हुआ था, जो कि एक ही राजा द्वारा शासित होता था। परन्तु धार्मिक, भाषा एवं जाति सम्बन्धी विभिन्नताओं के कारण एक दूसरे के प्रति सहानुभूति की भावना का संचार न हो सका। यद्यपि दोनों राज्य विदेशी भय के कारण एकता के सूत्र में बँधे रहे, क्योंकि आस्ट्रिया, हंगरी के बिना जर्मनी का शिकार बनने को आशंकित हुआ था और हंगरी आस्ट्रिया के बिना अपने पड़ोसियों सम्भवतः रूस के द्वारा विवश किया जा रहा था कि वह उसमें मिल जाय। यही कारण थे कि अन्य विरोधी तत्वों के होते हुए भी दोनों राज्य बहुत समय तक एकता के सूत्र में बँधे रहे। यद्यपि हंगरी की जनसंख्या आस्ट्रिया की जनसंख्या से कम थी पर तब भी हंगरी की मेग्यार जाति शासन भार में अधिक भाग लेती थी, क्योंकि आस्ट्रिया की जनसंख्या में विभिन्न जातियों का सम्मिश्रण होने से फूट रहती थी, क्योंकि उनके प्रतिनिधिमण्डल में भी कई जातियों के सदस्य प्रति-

---

1. **Ibid**, pp. 174-175.

निधित्व करते थे, जब कि हंगरी के प्रतिनिधि-मण्डल में ६० सदस्यों में ५५ मेग्यार होते थे। यही कारण था कि हंगरी की जनसंख्या कम होने पर भी वह ३० प्रतिशत व्यय करती किन्तु ७० प्रतिशत अधिकारों का लाभ उठाती थी।[1]

परन्तु वास्तविकता में यह संविधान एक संघीय संविधान का उदाहरण न था, क्योंकि इसमें न तो सदस्यों में ही समानता थी, न ही व्यवस्थापिका सभा में केन्द्रीकरण ही था। इसके अतिरिक्त इनका आर्थिक अस्थायित्व होने के कारण तथा शासन कार्य का ढंग एवं सामुदायिक कार्य में रुचि न लेने के कारण भी दोनों राज्य वास्तविक संघ स्थापित न कर सके। परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि न तो केवल योरुप में ही किन्तु विश्व के किसी भी देश में इस प्रकार की कोई भी शासन प्रणाली इतने दिनों तक नहीं चलने पायी थी। लोवेल ने ठीक ही कहा है कि "युद्ध के पूर्व आस्ट्रिया-हंगरी राजनैतिक विचित्रताओं के संग्रहालय थे।"[2]

किन्तु प्रथम महायुद्ध में आस्ट्रिया एवं हंगरी के जाति सम्बन्धी विरोध के कारण यह प्रसंधान युद्ध जनित विकार को सह न सका और सदा के लिए नष्ट हो गया। सभी छोटे छोटे राज्य जाति के आधार पर पृथक् राज्य बन गये; जैसे पोल के साथ पोल मिल गये और स्लेव के साथ स्लेव, और यह परिणाम अन्त में सार्वजनिक विचार एवं सार्वजनिक संस्कृति के आधार पर अवश्यम्भावी था। सम्राट चार्ल्स द्वितीय ने गद्दी छोड़ दी और प्रजातन्त्र की लहरों ने राजतन्त्र को समाप्त कर दिया, और सन् १९१८ की वर्साई की संधि ने इस अंगविच्छेद पर छाप लगा दी।

संयुक्त-राज्य अमरीका

संयुक्त-राज्य अमरीका का राजनीतिक इतिहास उसके उपनिवेशिक काल से ही प्रारम्भ होता है। योरुप के अनेक देशों के निवासियों ने सोलहवीं सदी के अन्त में तथा सतरहवीं सदी के प्रारम्भ में इस देश में निवास करना आरम्भ कर दिया था। अमरीका जाने वालों में अंग्रेज ही सबसे पहले निवासी थे, जो अपने घर-द्वार को छोड़कर वहाँ गये और उपनिवेशों की नींव डाली। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड के सम्राट द्वारा दंडित और पीड़ित मनुष्य भी अपने घरों को छोड़कर अमरीका गये, जहाँ पर अपनी इच्छानुसार ईश्वर की पूजापाठ कर सकते थे। ऐसे समय में व्यापारी वर्ग ने भी जाने में देरी न की। थोड़े दिनों के पश्चात् इंगलैण्ड की सरकार ने भी उन व्यक्तियों

1. Lowell, **Government and Parties in Continental Europe**, Vol. II, p. 167.

2. **Ibid**. p. 167.

को अमरीका भेजना प्रारम्भ कर दिया, जो संसद द्वारा सम्पूर्ण जीवन अथवा दीर्घकालीन अवधि तक भृत्यभाव के लिये दोषी ठहराये जाते थे। व्यापारी वर्ग ने अपनी संस्थाओं से शासन-पत्र अथवा राजा से राज-पत्र ग्रहण करके ईस्ट इंडिया कम्पनी के आधार पर अपनी कम्पनियों की स्थापना की। इधर जो भी अंग्रेज अमरीका गये थे, वे सभ्य एवं सुसंस्कृतियुक्त थे, अत: अमरीका के आदिम निवासी रेडइंडियनों के साथ मिलकर प्रसन्न न रह सके। इसका परिणाम यह हुआ कि या तो कुछ रेडइंडियन अंग्रेजों में मिल गये या उनका सर्वनाश कर दिया गया, और जो कुछ बच गये वह सभी पश्चिम की ओर भाग गये। इंगलैण्ड की जनसंख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी, अत: अब बड़ी संख्या में अंग्रेज अमरीका जाने लगे और इस प्रकार उन लोगों ने आरम्भ में तीन प्रकार के उपनिवेशों की स्थापना की :—

(१) सम्राट् के उपनिवेश (Crown Colonies)—यह वह उपनिवेश थे जो पहले व्यापारियों द्वारा सम्राट् से प्राप्त शासन-पत्र के आधार पर बसाये गये थे, अर्थात् सम्राट की आज्ञा द्वारा यह व्यापारी अमरीका गये थे और वहाँ पर जाकर व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया था। तत्पश्चात् जब उनकी जनसंख्या बढ़ गई तब उन लोगों ने अपने पृथक् उपनिवेश बना लिये। परन्तु बाद को जो शासन-पत्र सम्राट द्वारा मिले थे, वह एक एक करके खंडित कर दिये गये और प्रत्यक्ष रूप से यह उपनिवेश सम्राट द्वारा नियंत्रित होने लगे। यही उपनिवेश सम्राट के उपनिवेश कहलाये।

(२) स्वाम्याधीन उपनिवेश (Proprietory Colonies)—यह वह उपनिवेश थे जो सम्पत्तिशाली एवं योग्य पुरुषों द्वारा बसाये गये थे। इन लोगों ने इंगलैण्ड के सम्राट से विशेष शासन-पत्र ग्रहण किया था।

(३) चार्टर् उपनिवेश (Charter Colonies)—यह वह उपनिवेश थे, जिनके निवासियों ने सम्राट से सीधे शासन-पत्र ग्रहण करके तथा कुछ धन एकत्रित करने के पश्चात् अपनी सीमाएँ निर्धारित कर ली थीं। इन उपनिवेशों के निवासी स्वतन्त्र-पुरुष (Free-men) कहलाते थे।

इसके अतिरिक्त योरुप की अन्य जातियाँ भी अमरीका आयीं और विभिन्न स्थानों पर बस गयीं, पर उनकी संख्या अधिक न थी। उदाहरणार्थ स्पेन-निवासी अमरीका के दक्षिणी भाग एवं फ्लोरिडा (Florida) में बस गये, तथा फ्रांसीसी उत्तर में और कुछ डच तथा जर्मन-निवासी मध्य देश में। परन्तु अंग्रेजों की जनसंख्या अधिक होने के कारण शीघ्र ही और अन्य जातियाँ जो आकर बसी थीं, उनमें युद्ध छिड़ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्पेन-निवासी दक्षिण में ही रह गये, फ्रांसीसी उत्तर में विध्वंस कर दिये गये और डच तथा जर्मन संख्या में बढ़ गये। अत: अमरीका-निवासी

पूर्ण रूप से ऐंग्लो-सेक्सन (Anglo-Saxon) की भावना में परिवर्तित हो गये। यह प्रवासी अपने साथ अपनी मातृभूमि की राजनैतिक भावनाएँ लाये थे, उन्होंने इन भावनाओं को अपने नये देश में अपना लिया। अतः विल्सन का कहना है कि "जैसे अमरीका अंग्रेजी बनाया गया वैसे ही उपनिवेशों में अंग्रेजी-संस्थायें अमरीकी बन गयीं। इन संस्थाओं में पृथक् पृथक् उपनिवेशों के राजनैतिक जीवन की नवीन स्थितियों एवं नवीन सुविधाओं के अनुकूल अपने आपको ढाल लिया। ये उपनिवेश प्रारम्भ में कठिनाइयों से लड़े, पुनः विस्तृत हुए और अन्त में विजयी हुए। इन्होंने बिना अंग्रेजी स्वभाव त्यागे अमरीकन रूप-रस प्राप्त कर लिया।"[1]

सम्पूर्ण देश के विभिन्न भागों की भौगोलिक एवं राजनतिक दशा एक दूसरे से भिन्न थी, जिनका अमरीकन निवासियों के व्यवसाय, सामाजिक रहन-सहन एवं राजनैतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उदाहरणार्थ अमरीका का उत्तरी भाग उद्योग के लिये उपयुक्त था, केन्द्रीय भाग में भारतीय अनाजों की पैदावार होती थी तथा दक्षिणी भाग तम्बाकू के लिय अधिक प्रसिद्ध था। दक्षिणी भाग में तम्बाकू का व्यापार होने के कारण दक्षिण निवासियों के पास बहुत से दास रहने लगे थे और उन दासों का व्यापार भी प्रारम्भ हो गया था। परन्तु आगे चल कर अमरीकन इतिहास पर पाइन दासों का बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा।

सामाजिक विभिन्नताओं के साथ साथ धार्मिक एवं राजनतिक विभिन्नताय भी विद्यमान थी। अंग्रेजों में प्यूरिटन[२] लोग ही सबसे पहले अमरीका जाकर बसे, जिनमें बाद को अन्य धर्मावलम्बी भी जैसे प्रोटेस्टैन्ट तथा रोमन कैथोलिक आदि सम्मिलित हो गये। परन्तु इतना होते हुये भी राजनैतिक विभिन्नताओं ने उपनिवेशों के इतिहास पर गहरी छाप डाली। उदाहरणार्थ, ऊपर वर्णन किये हुये उपनिवेशों (सम्राट के उपनिवेश, स्वाम्याधीन उपनिवेश तथा चार्टर उपनिवेश) के ही शासन प्रबन्ध में ही विभिन्नतायें थीं। सम्राट के उपनिवेश जिनमें न्यू हैम्पशायर, न्यूयार्क, उत्तरी व दक्षिणी कैरोलिना और जार्जिया सम्मिलित थे, प्रत्येक में गवर्नर शासन करता था, जो सम्राट् की शक्ति का प्रतीक था। उसकी सहायता के लिये एक परिषद् भी होती थी। चार्टर उपनिवेशों का, जिसमें रोड द्वीप और कनैक्टीकट सम्मिलित शासन भी यद्यपि गवर्नर तथा उसकी परिषद् द्वारा होता था, परन्तु गवर्नर तथा परिषद् के सदस्यों का चुनाव स्वयं जनता करती थी। उपरोक्त भिन्नता के

1. **The State,** p. 268.

२. यह ईसाई धर्म की एक संस्था थी।

कारण दोनों उपनिवेशों की कार्यप्रणाली में भी अन्तर था। परन्तु सबसे प्रमुख अन्तर उपनिवेशों की सरकार तथा ब्रिटिश पार्लियामेंट एवं सम्राट् में था। गवर्नर ब्रिटिश-सम्राट् द्वारा नियुक्त होते थे। अतः वह सम्राट् की आज्ञाओं के अनुसार कार्य करते थे, उधर विधान सभाओं के सभी सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते थे, इसलिए प्रजा की वाणी विधान सभाओं में विद्यमान रहती थी। यह विधान सभायें सदैव अपने प्रस्तावों द्वारा जनता के कल्याण की ओर ध्यान रखती थीं। दूसरी ओर गवर्नर ब्रिटिश सम्राट् की आज्ञाओं के अनुसार कार्य करने को बाध्य थे। इस प्रकार जब कभी भी गवर्नर तथा विधान-सभा के मध्य झगड़ा खड़ा हो जाता था उस समय जनता सदैव विधान-सभा का ही साथ देती थी, जिसमें उनकी पूर्ण प्रभुसत्ता निहित रहती थी। इसीलिये विल्सन का कहना है कि इस प्रकार उपनिवेशों की विधान-सभाओं की शक्तियाँ दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थीं।[१] वास्तविकता में बहुत दिनों तक न तो सम्राट् ने ही और न उसकी पार्लियामेंट ही ने उपनिवेशों की विधान सभाओं की शक्तियों को कम करने का प्रयत्न किया अथवा यों कहना चाहिये कि उनके लिये कोई अवसर ही नहीं आया कि वह इसमें रुचि लेते। यही कारण था कि उपनिवशों के निवासियों को समय मिला कि वह अपनी अपनी विधान-सभाओं की स्थापना करें और ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भी अप्रत्यक्ष रूप से उनकी वृद्धि में सहयोग दिया। अतः उपनिवशों के निवासियों ने ऐसे समय का सदुपयोग करके अपनी विधान-सभाओं को शक्तिशाली बनाया और बाद में सभी निवासी अपनी सीमा के अन्तर्गत अपनी विधान-सभा को ही सर्वेसर्वा मानने लगे। ब्रुक का कहना है कि "यह जो भी उपनिवेश थे वे या तो सम्राट् के नियंत्रण द्वारा या सम्राट् के शासन-पत्र द्वारा स्थापित हुए थे। इनकी विधान-सभायें, कार्यप्रणाली, शक्तियाँ एवं अन्य बातें भी ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की भाँति ही थीं। अतः यह असम्भव ही था कि वह ब्रिटिश लोगों के विचारों को न अपनाते.....जब उपनिवेशों में शक्तिशाली पुरुषों की जनसंख्या बढ़ गयी तब उन लोगों के लिये यह स्वाभाविक था कि वह जिस देश का प्रतिनिधित्व करते थे यह उसके संविधान एवं विधान-सभा का सम्मान करते। परन्तु यह अधिक दिनों तक न चल सका और यह सभी विधान-सभायें प्रत्येक प्रकार के कानून स्वयं ही निर्मित करने लगीं।"[२]

परन्तु सप्तवर्षीय युद्ध के परिणामस्वरूप जनता पर भरण अधिक बढ़ गया,

1. **The State,** p. 280.

२. वुडरो विल्सन द्वारा उद्धृत, पृष्ठ संख्या २८०।

इसलिये उपनिवेशिक कर का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। इसमें कोई भी संदेह नहीं है कि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने व्यापार सम्बन्धी कानून बनाकर अप्रत्यक्ष रूप से कर लगा दिया था। किन्तु इस प्रकार के कपटी कानून को मानने के लिये चुंगी कर्मचारियों ने भी मना कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १७६५ में 'स्टैम्प एक्ट' के पारित होते ही उपनिवेशों के निवासियों में हलचल मच गयी और अन्त में वे अपनी अपनी स्वतन्त्रता के लिये अड़ गये और "बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं" (No Taxation without Representation) नामक सिद्धान्त पर बल दिया, जो अंग्रेजों की राजनैतिक बाइबिल का प्रथम आदेश था। परन्तु ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में तब तक विवाद का कोई प्रश्न न खड़ा हुआ जब तक व्यापारिक कानूनों पर उपनिवेशों ने कोई आपत्ति न की, जिसके द्वारा वास्तविक रूप में उपनिवेशों पर कर लग रहा था। यद्यपि यह अप्रत्यक्ष कर था और उसकी दर भी कम थी, या इंगलैण्ड के बड़े व्यापारियों पर जो अमरीका के व्यापार में रुचि रखते थे और अपने प्रतिनिधियों द्वारा पार्लियामेन्ट में प्रतिनिधित्व भी करते थे, या उन लोगों पर जो पार्लियामेन्ट में प्रतिनिधित्व नहीं करते थे, भी लादा गया था। उपरोक्त लोगों ने जब तक पार्लियामेन्ट के बनाये हुए नियमों पर आपत्ति न की, तब तक पार्लियामेन्ट में विवाद का कोई प्रश्न ही न खड़ा हुआ। यद्यपि कुछ दिनों पश्चात् मंत्रिमंडल में कुछ परिवर्तन भी हुए तथा स्टैम्प ऐक्ट का खण्डन भी किया गया, परन्तु स्थिति में कोई परिवर्तन न हुआ। इधर सन् १७७० में इंगलैण्ड के सम्राट् ने उपनिवेशों पर आंशिक चाय-कर लगा कर पार्लियामेन्ट का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। परन्तु इसके परिणाम अच्छे न हुए। इसी कर के पश्चात् ही कर रूपी सिद्धान्त उठ खड़ा हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि उपनिवेश तथा पार्लियामेन्ट अपने अपने स्थान पर अड़ गये, किसी ने भी परिणाम की चिन्ता न की, परन्तु उपनिवेशों ने उस समय का सदुपयोग किया। यद्यपि उपनिवेश कई अर्थों में पूर्णरूप से संगठित न थे, परन्तु सभी उपनिवेशों ने संगठित होकर पार्लियामेन्ट का सामना किया और अपने को विजयी सिद्ध कर दिया।

सन् १७७३ में बोस्टन नामक स्थान में युद्ध की नींव पड़ी और ४ जुलाई सन् १७७६ को १३ उपनिवेशों ने मिलकर इंगलैण्ड तथा उसके सम्राट् के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता के लिए युद्ध की घोषणा कर दी। यह युद्ध १९ अक्टूबर सन् १७८१ तक चलता रहा और बाद को ग्रेट ब्रिटेन ने संयुक्तराज्य-अमरीका की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। सन् १७८३ की पेरिस संधि से इसको मान्यता दी गयी।

उपरोक्त युद्धकालीन समय में अमरीका की राजनीति में बहुत से संवैधानिक

प्रयोजन अवश्य था परन्तु वह ठीक प्रकार से शासन प्रणाली को चला न सकी। इसका मुख्य कारण यह था कि इंगलैण्ड की भाँति यह राज्य संगठित केन्द्रीय सरकार की सर्वश्रेष्ठता को अनिच्छा से स्वीकार करना चाहती थी, क्योंकि वह राज्यों पर अधिक कर लगा सकती थी और उनकी स्वतन्त्रता में बाधा डाल सकती थी। कांग्रेस तो राज्यों के राजदूतों की एक संस्था थी जैसा कि ओलीवर (Oliver) ने स्वयं कहा है कि "विभिन्न विधान मण्डलों के साथ उसके सम्बन्ध राजदूतों के सम थे। सेना स्थापित करने के लिये उसे आज्ञा लेनी पड़ती थी, और इसकी पूर्ति के लिये उसे ऐसी शर्तें माननी पड़ती थीं, जो अपमानसूचक ही नहीं वरन् विवेकहीन थी। जब किसी राज्य को एक रेजीमेन्ट देनी पड़ती थी तो वह उसके कर्मचारियों की नियुक्ति करने का अधिकार चलाता था, जो स्पष्टतया सैनिक प्रशासन के विरुद्ध था।"[1] यह केवल वाशिंगटन की ही शक्ति एवं प्रभुत्व का फल था, जिसने स्वतन्त्रता संग्राम के काल में सेना को बनाये रखा। यदि केन्द्रीय सरकार को अपनी शक्तियों द्वारा जनता पर नियंत्रण रखने का अधिकार भी न होता तो सम्भवतः यह युद्ध अधिक दिनों तक न चल पाता।

उपरोक्त युद्ध काल के अन्तर्गत वाशिंगटन को कई बार अपने स्वामित्व को छोड़ने पर विचार करना पड़ा था। जब वाशिंगटन ने अपनी दुर्जय शक्ति द्वारा युद्ध में सफलता प्राप्त की तब दूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने अपनी प्राप्त की हुई स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये एक शक्तिशाली सुसंगठित केन्द्र की ओर ध्यान दिया। अतः सन् १७८३ के प्रारम्भ में वाशिंगटन ने हेमिल्टन को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कांग्रेस को सामान्य शक्तियों के देने पर उनका ध्यान आकर्षित किया था। तत्पश्चात् हेमिल्टन ने एकता बनाये रखने के लिए उत्तर दिया था कि "केन्द्राभिसारी (Centripetal) शक्तियों से केन्द्रापसारी (Centrifugal) शक्तियाँ अधिक शक्तिशाली हैं, फूट के बीज संघ से अधिक राज्यों में स्थित हैं। अतः प्राप्त की

---

1. "With the various legislatures its relations were those of a deplomatist. When it sought to creat an army it needed to ask leave and accomplish that end was forced to submit to terms not only ignominious but contrary to reason. When a State saw fit to furnish a regiment. it claimed and exercised that right to appoint its officers. Military organisation under such condition was clearly impossible."

—**The Life of Alexander Hamilton.**

हुई स्वतन्त्रता की रक्षा के लिय चेष्टा तथा परिश्रम करना आवश्यक है।[1]" परन्तु अभाग्यवश शांति स्थापित होने के पश्चात् ही आर्थिक संकट ने आ घेरा। इस आर्थिक संकट का एकमात्र कारण था प्रसंधान की शिथिलता। भरण इतना अधिक बढ़ गया था कि न तो रक्षात्मक सेना ही तैयार की जा सकती थी न सिपाहियों को पेन्शन ही दी जा सकती थी। इसीलिए उपरोक्त आर्थिक कठिनाई के कारण सभी विदेशी भरणदाता तथा अमरीकन व्यापारी एवं सभी सैनिकों ने एक ऐसी शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना करने की सलाह दी, जो व्यापार की ओर अपनी रुचि रख सके और सभी प्रकार के दुःखों का निवारण कर सके।[2]

अन्त में सन् १७८६ में वर्जिनिया के राज्य ने अन्नापोलिस (Annapolis) नामक स्थान पर एक संयुक्त सम्मेलन बुलाने के लिये एक घोषणा जारी की जिसका मुख्य ध्येय था, राज्यों के व्यापार में प्रसंधान को कुछ शक्तियाँ प्रदान करना। भाग्यवश यह सभा उसी वर्ष मिली परन्तु बिना कोई विशेष कार्य किये हुए स्थगित कर दी गयी। तदुपरान्त केन्द्रीय सरकार की कार्यप्रणाली चलाने की सुविधा के लिये इस बात पर बल दिया गया कि प्रसंधान को शक्तिशाली बनाया जाये। इधर अन्नापोलिस प्रस्ताव ने भी उपरोक्त विचारों की पुष्टि में सहायता की। कांग्रेस ने प्रस्तावों को मान लिया और बाद को राज्यों से आग्रह किया गया कि वह फिलाडेल्फिया परिषद् में भाग लेने के लिए अपने प्रतिनिधियों को चुन कर भेजें। सभी राज्यों ने उपरोक्त निमंत्रण को स्वीकार किया और एक निश्चित दिन को सभी राज्यों के सदस्य एकत्रित हुए। बहुत वाद-विवाद और सोच-विचार के पश्चात् एक नवीन संविधान का निर्माण किया गया। यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि जिस समय फिलाडेल्फिया परिषद् बुलाया गया था उस समय परिषद् में दो दल थे और उनके विचार भी अलग अलग थे। एक दल प्रसंधान को अधिक शक्ति देने पर बल दे रहा था, दूसरा दल राज्यों की वैयक्तिक शक्तियों पर अधिक बल दे रहा था। परन्तु अन्त में दोनों दलों ने मिलकर एक नवीन संविधान का निर्माण किया, जो बहुमत द्वारा अपनाया गया। इस प्रकार अन्नापोलिस परिषद् जो व्यापार सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने के लिये बुलायी गयी थी, उसने अमरीका के भावी संविधान की समस्या को हल कर दिया।

---

1. **The Life of Alexander Hamilton,** p. 109.

2. Beard, **The Rise of American civilization** Vol. I., pp. 304-305.

इस सम्मेंलन में यह भी निश्चित कर दिया गया कि स्थानीय देशभक्त सभी राज्य अपने प्रतिनिधियों को चुन कर सीनेट में भेजेंगे और जनता अप्रत्यक्षरूप से राष्ट्रपति निर्वाचन मण्डल द्वारा संयुक्त-राज्य अमरीका के राष्ट्रपति का चुनाव भी करेगी। एक प्रतिनिधि सदन (House of Representative) की भी व्यवस्था की गयी, जिसके सदस्य प्रत्यक्षरूप से जनता द्वारा चुने जाते हैं। संविधान की धारा १ के अनुच्छेद की ९वीं धारा में कांग्रेस की शक्तियों का वर्णन किया गया है और अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों को दी गयी हैं। परन्तु संविधान की एक धारा के अन्तर्गत कहा गया है कि "सभी विदेशी मामलों में कानून बनाने, अथवा वह सभी शक्तियाँ जो संयुक्त-राज्य अमरीका के संविधान द्वारा केन्द्र को मिली हुई हैं, उनमें केन्द्रीय सरकार को ही कानून बनाने का अधिकार होगा।" इसके अतिरिक्त अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय को ही केन्द्रीय कानून लागू करने तथा उनका स्पष्टीकरण करने का अधिकार प्राप्त होगा। उपरोक्त शक्ति के आधार पर ही न्यायाधीश मार्शल ने जो स्पष्टीकरण किये हैं, उनके सम्बन्ध में कहा गया है कि मार्शल के हाथों में यह धारा तो भानमती का, बाजीगरी का पिटारा बन गयी है।[1]

सन् १७७७ के प्रसंधान की धाराओं की शक्तिहीनता फिलाडेल्फिया परिषद् की घोषणा के उन शब्दों में गूँज रही थी, जब कि कांग्रेस में सभी राज्यों के सदस्य बैठकर प्रसंधान की कुछ धाराओं के मानने के साथ साथ राज्यों के शास्वत संघ को भी मान लिया था। फिलाडेल्फिया परिषद् द्वारा निर्मित संविधान की प्रस्तावना के ये शब्द कि "हम संयुक्त-राज्य-अमरीका के सभी नागरिक शक्तिशाली संघ तथा न्याय की स्थापना करने एवं घरेलू मामलों को तय करने, सार्वजनिक रक्षा तथा जनकल्याण के लिए, तथा स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए एवं नवीन संविधान का निर्माण करने के लिये एकत्रित हुए हैं।" उस संविधान की लोक सत्ता सिद्ध करता है। इस प्रकार सभी नागरिकों ने राज्यों के आपसी समझौते द्वारा संयुक्त-राज्य-अमरीका में एक सुसंगठित राष्ट्रीय संघात्मक सरकार की स्थापना की। अतः जो भी प्रतिनिधि फिलाडेल्फिया परिषद् में एकत्रित हुए थे, उन्होंने अपनी योग्यता एवं परिश्रम द्वारा इस नवीन संविधान का रूप उपस्थित किया, जो संघवाद के इतिहास में अपना महत्व रखता है और जिसके द्वारा अमरीकी संविधान का अब तक शासन चल रहा है।

---

1. Beard, **The Rise of American Civilization,** Vol. I ., p. 325.

कनाडा का संघ-राज्य

कनाडा नामक उपनिवेश फ्रांसीसियों द्वारा सन् १६०८ में वसाया गया था। तभी से फ्रांसीसी राजा, कनाडा को फ्रांस का एक प्रान्त समझकर निरंकुशतापूर्वक शासन करते रहे। यहाँ पर अन्य प्रान्तों की भाँति एक गवर्नर की नियुक्ति की गयी जो वर्साई की नीति के आधार पर शासन करता रहा। यहाँ की शासन प्रणाली पूर्ण रूप से स्वेच्छाचारिता पर आधारित थी। आर०एल० बोर्डन ने प्रशासन सम्बन्धी स्वेच्छाचारिता का वर्णन करते हुए कहा है कि "नागरिकों की किसी भी प्रतिनिधि सभा को कोई भी अधिकार प्राप्त न था। बिना गवर्नर की आज्ञा के कोई भी सार्वजनिक सभा न हो सकी थी; पर कभी कभी बिना आज्ञा के भी हो जाती थीं ...दीवानी एवं फौजदारी मामलों में फ्रांसीसी कानून ही प्रचलित थे, न्याय सम्बन्धी प्रशासन अच्छा तथा न्यायपूर्ण था। निवासियों में अधिकतर संख्या धनवानों, पुरोहितों, कनाडा निवासियों एवं व्यापारियों की थी।[1]" इसके अतिरिक्त कृषकों की भी संख्या अधिक थी। ज्यों ही योरुप में सप्तवर्षीय युद्ध की घोषणा की गयी, उसी समय विश्व में जहाँ भी फ्रांसीसी एवं अंग्रेज पास पास निवास करते थे, उनमें भी युद्ध की लहर दौड़ गयी। उत्तरी अमरीका भी इस लहर से अछूता न रह सका। फ्रांसीसियों का कट्टर विरोधी ब्रिटिश जनरल वोल्फ (Wolfe) अमरीका में जब फ्रांसीसियों के विरुद्ध अपनी विजय की पताका लहराने जा ही रहा था, उसी समय वीरता के साथ रण में मारा गया। इस युद्ध में १८ सितम्बर सन् १७५९ को क्यूबेक तथा एक वर्ष बाद ८ सितम्बर सन् १७६० को मोंट्रेल (Montreal) पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण कनाडा ब्रिटिश सैनिकों द्वारा शासित होने लगा। यह शासन १० फरवरी सन् १७६३ की पैरिस की संधि पर हस्ताक्षर होने तक चलता रहा। उपरोक्त संधि में कहा गया कि "ब्रिटेन के सम्राट् द्वारा कनाडा के कैथोलिक धर्म के माननेवाले निवासियों को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाती है, कि वह रोमन चर्च के धार्मिक नियमों द्वारा अपने धर्म का पालन कर सकते हैं, जहाँ तक ब्रिटेन के कानून आज्ञा देते हैं।"[2] तत्पश्चात् ७ अक्टूबर सन् १७६० को एक राजकीय घोषणा द्वारा एक गवर्नर तथा उसकी सहायता के लिये परिषद् एवं सभा की नियुक्तियाँ की गयीं। इसी समय ब्रिटिश-

---

1. **Canadian Constitutional Studies,** pp. 14-15.

2. Shortt and Doughty, **Constitutional Documcts,** IInd. Ed., Pt. I, p11.

देशान्तरवासियों ने प्रशासकीय नियंत्रण सम्बन्धी अधिकारों की माँग कर देश में एक नयी राजनैतिक समस्या खड़ी कर दी। अतः इस प्रकार से प्रशासन न तो फ्रांसीसियों को और न अंग्रेज़ों को ही संतुष्ट कर सका। सन् १७७० ई० में गवर्नर कार्लेटन (Carleton) ने स्वयं इंगलैण्ड जाकर अपने परिश्रम से सन् १७७४ में क्यूबेक (Quebec) ऐक्ट ब्रिटिश पार्लियामेन्ट से पारित कराया, जिसके द्वारा रोमन कैथोलिकों की बहुत सी समस्यायें एवं कठिनाइयाँ समाप्त हो गयीं। परन्तु उस समय तक अमरीकन स्वतन्त्रता का आंदोलन कनाडा पर अपना प्रभाव डाल चुका था, जिसने कनाडा की ही राजनीति को बदल दिया। अमरीकन राजनीतिज्ञ स्वयं ही कनाडियन राजनीतिज्ञों से अधिक योग्य थे, इसलिये उन्होंने नवीन राजनैतिक अधिकारों की माँग का प्रश्न खड़ा कर दिया। परन्तु ज्योंही अमरीकन आंदोलन समाप्त हुआ और क़ार्लेटन सन् १७८७ में गवर्नर जनरल के पद पर नियुक्त किया गया, उसी समय उसने अपनी बुद्धि एवं सूझबूझ से सन् १७९१ में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा संवैधानिक ऐक्ट (कनाडा ऐक्ट) पारित करा लिया। इस ऐक्ट द्वारा सम्पूर्ण कनाडा दो भागों में विभाजित कर दिया गया, अपर कनाडा और लोअर कनाडा। इन दोनों का प्रशासन निर्वाचित असेम्बली द्वारा होने लगा। परन्तु गवर्नर सम्राट द्वारा प्राप्त कर एवं सैनिक सहायता के कारण व्यवस्थापिका सभा से पूर्ण स्वतन्त्र था। कार्यकारिणी भी स्वतन्त्र था। यह अमरीकन आंदोलन का ही प्रभाव था। इस प्रकार हज़ारों मील दूरस्थ सरकार द्वारा कनाडा शासित होता रहा।

निचले कनाडा की कौंसिल में अंग्रेज़ों की एवं असेम्बली में फ्रांसीसियों की बहुसंख्या के कारण आपस में संघर्ष के बीज़ उत्पन्न हो गये, जिसका परिणाम यह हुआ कि कभी कभी तो असेम्बली एवं अनुत्तरदायी कार्यकारिणी के बीच में संघर्ष के कारण कार्य ही स्थगित हो जाता था। इसी बीच में फ्रांसीसियों ने अपने नेता पेपिनों (Papineau), जो कि असेम्बली का स्पीकर भी चुना जा चुका था, के नेतृत्व में एक आंदोलन खड़ा कर दिया। कुछ ही समय पश्चात् इसने एक भयंकर रूप धारण कर लिया। परन्तु कालान्तर में वह आंदोलन दबा दिया गया और पेपिनो भाग गया। परन्तु ज्वाला के बीज जो पहले उत्पन्न हो चुके थे, समाप्त न हो सके। ऊपरी कनाडा में भी अंग्रेजों ने सम्पूर्ण प्रशासन पर नियंत्रण रखने के अधिकार की माँग की, जिसके फलस्वरूप कनाडा का संविधान स्थगित कर दिया गया। परन्तु लार्ड डर्हम ही ऐसे प्रभावशाली एवं योग्य व्यक्ति थे, जिन्होंने अपन अथक परिश्रम से उपरोक्त समस्या का समाधान किया।

लार्ड डर्हम ने दो वर्ष (१७३७ से १७३९ तक) शासन करने के पश्चात् ही कनाडा की सम्पूर्ण परिस्थितियों एवं समस्याओं का अध्ययन करके इंगलैण्ड की महारानी को एक रिपोर्ट भेजी। उसी समय से ब्रिटिश उपनिवेशिक इतिहास का एक नया युग प्रारम्भ होता है। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा कि सेना सम्पूर्ण रूप से असंगठित है, जातीय शत्रुता के कारण न्याय भी ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है,[1] गवर्नर केवल नाममात्र के लिये इंगलैण्ड की महारानी का प्रतिनिधि है, परन्तु उसकी राजनीति उपनिवेशिक कार्यालय द्वारा निर्धारित होती है। इसके अतिरिक्त न तो पुलिस का ही ठीक प्रबन्ध है न ही शिक्षा का।[2] कार्यकारिणी भी उत्तरदायी नहीं है। इसी अन्तिम कमी के कारण ही प्रमुख नेताओं को सरकार की आलोचना करने का अच्छा अवसर मिलता है। अतः लार्ड डर्हम ने इस बात पर अधिक बल दिया कि केवल अनुभवशून्यता के कारण ही यह त्रुटियाँ हो रहीं हैं। आगे उन्होंने उपनिवेशों के उत्तरदायित्व की ओर भी लोगों का ध्यान आकर्षित किया और कहा कि केवल इसी सूत्र से फ्रांसीसियों एवं अंग्रेजों का आपसी भेदभाव मिट सकता है और वह उन्नति के मार्ग पर चल सकते हैं।

लार्ड डर्हम ने ब्रिटिश सरकार को अपनी रिपोर्ट देते हुए कुछ सुझाव पेश किये, जिनमें यह प्रार्थना की गयी, कि जो त्रुटियाँ हो गयी हैं वह शीघ्र ही ठीक कर ली जायें, यद्यपि समय बहुत बीत चुका था। लार्ड डर्हम के सुझावों के आधार पर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने ऊपरी और निचले कनाडा को आपस में मिलाने के लिए २३ जुलाई सन् १८४०

---

१. जातीय शत्रुता के कारण न्याय उचित रूप से नहीं हो पाता है। यही कारण है कि किसी भी राजनैतिक मुकदमें में ठीक न्याय पाना कठिन है। यहाँ तक न्याय प्रणाली भी जातीय शत्रुता के कारण फ्रांसीसी एवं अंग्रेजी शाखाओं में विभाजित हो जाती है और इसी कारण किसी भी न्याय की आशा नहीं की जा सकती है।

Lord Durham. **Report with an Introduction by Sir C. P. Lucas,** Vol. II., pp. 53-54.

२. लार्ड डर्हम ब्रिटिश सरकार द्वारा कनाडा की शिक्षा पर ध्यान दिलाते हुए कहते हैं "कि मुझे यह बात कहते हुए बड़ा दुःख होता है कि जब से ब्रिटिश सरकार ने कनाडा पर शासन करना प्रारम्भ किया है। तब से उसने यहाँ की शिक्षा की उन्नति पर किंचित ध्यान नहीं दिया है और जो भी कार्य इस दिशा में हुए हैं वह नहीं के बराबर हैं। यद्यपि जेसुइटों ने शिक्षा की उन्नति के लिए धन भी दिया और कई वर्षों तक वह देते भी रहे परन्तु असेम्बली में झगड़ा होने के कारण इस धन का कोई उपयोग न किया गया।"

Durhams Report, Vol. II., p. 136.

को एक कानून पारित किया। इसके अनुसार दोनों प्रान्त आपस में मिला दिये गये। तदुपरान्त एक व्यवस्थापिका सभा की स्थापना की गयी, जिसमें कौंसिल एवं असेम्वली नामक दो सदनों का विधान किया गया। कनाडा के दोनों प्रान्तों के लिये एक गवर्नर की नियुक्ति की गयी और उसे अपना शासन चलाने के लिये अन्य कर्मचारियों की नियुक्तियाँ करने का भी अधिकार दिया गया। इसके अतिरिक्त गवर्नर को शासन भार सँभालने के लिये और भी अधिकार दिये गये।

परन्तु उपरोक्त प्रकार की शासन प्रणाली संघीय शासन प्रणाली चाहनेवाले उपनिवेशों की आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सकी। अतः सम्पूर्ण देश में यातायात के साधन एवं कृषि की उन्नति को दृष्टिकोण में रखते हुए सभी उपनिवेश एक दूसरे से सम्बन्धित हो गये, जिसके परिणामस्वरूप सभी प्रमुख उपनिवेशों के प्रतिनिधि, जिसमें नोवास्कोटिया (Novascotia), न्यूब्रन्सविक (New Brunswick) तथा प्रिंस एडवर्ड द्वीप सम्मिलित थे, क्यूबेक में मिले। यद्यपि इन प्रतिनिधियों के सम्मुख धार्मिक, आर्थिक एवं भाषा सम्बन्धी बहुत सी कठिनाइयाँ थीं। परन्तु चिर-कालिक वाद-विवाद के पश्चात् उन लोगों ने संघात्मक शासन प्रणाली के लिये एक प्रसिद्ध क्यूबेक प्रस्ताव पास किया।

तत्पश्चात् सभी उपनिवेशों के प्रतिनिधि इंगलैण्ड गये और वहाँ उन लोगों ने ब्रिटिश प्रस्ताव पर ब्रिटिश सरकार के मंत्रियों से बातचीत की। तदुपरान्त ब्रिटिश सरकार ने १९ मार्च सन् १८६७ को 'ऐक्ट ऑफ पार्लियामेन्ट' पारित किया, जिसमें उपनिवेशों की एक संघीय-सरकार की स्थापना की स्वीकृत दी गयी, जो लार्ड डर्हम द्वारा प्रस्तावित सरकार से कहीं सुदृढ़ एवं स्थायी थी। लार्ड डर्हम ने तो केवल कनाडा निवासियों को नियंत्रित करने के लिये व्यवस्थापक-संघ के लिये ही अपने विचार रखे थे। सन् १८६७ के ऐक्ट से स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश मंत्रिमण्डल अमरीकन आंदोलन के समय ब्रिटिश उपनिवेशिक नीति को भूला न था। कनाडा की इस संघ प्रणाली का प्रभाव ब्रिटिश सरकार के अन्य उपनिवेशों पर भी पड़ा।

आस्ट्रेलिया का कामनवेल्थ

केप्टेन कुक (Captain Cook) द्वारा इस द्वीप के अन्वेषण के पश्चात् सन् १७८८ से इस उपनिवेश में लोगों ने निवास करना प्रारम्भ कर दिया था। आस्ट्रेलिया के उपनिवेशों में न्यू साउथ वेल्स नामक उपनिवेश सर्वप्रथम बसा था। यहाँ की चाँदी एवं सोने की खानों ने अन्य लोगों को आस्ट्रेलिया महाद्वीप में बसने के लिये आकर्षित कर दिया, शेष लोग महाद्वीप के तटीय भाग तक बस गये। प्रारम्भ में इस महाद्वीप

का शासन सिडनी (Sydney) से केन्द्रीय सरकार द्वारा होता था। परन्तु बढ़ती हुई जनसख्या ने तस्मानिया (Tasmania) को अलग होने के लिये विवश कर दिया, जो बाद को वान डीमन्स (Van Diemens) के नाम से विख्यात हुआ। तत्पश्चात् उपरोक्त उदाहरण को पश्चिमी आस्ट्रेलिया, दक्षिणी आस्ट्रेलिया और अन्त में क्वीन्स लैण्ड ने सन् १८५९ में शीघ्र ही अपना लिया।

सन् १८५० में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के एक कानून द्वारा विक्टोरिया भी अपनी मातृभूमि न्यूसाउथ वेल्स से अलग हो गया। उपरोक्त कानून के पारित कराने में अर्ल ग्रे (Earl Grey) ने सन् १८४८ में बहुत अधिक बल दिया था। यद्यपि उस कानून का उस समय कोई विशेष प्रभाव न पड़ा, परन्तु अर्धशताव्दी उपरान्त उसका प्रभाव अवश्य ही पड़ा। ग्रे ने कहा था "जब कि स्थानीय सुशासन के लिये स्थानीय सरकारें हैं उस समय हम सभी लोगों के हित के लिये केन्द्रीय शासन व्यवस्था को भुलाना न चाहिये। बहुत से ऐसे प्रश्न हैं, जिसमें साम्राज्य का हित छिपा है; उन्हें साम्राज्य की पार्लियामेन्ट के लिये छोड़ देना चाहिये; परन्तु कुछ ऐसे भी प्रश्न हैं; जो यद्यपि स्थानीय हैं परन्तु वह सम्पूर्ण आस्ट्रेलिया-निवासियों के हितों से सम्बन्धित हैं; जिसके लिए यह आवश्यक है कि सभी लोगों के कल्याण के लिए आस्ट्रेलिया में एक शक्तिशाली सरकार की स्थापना होनी चाहिए जो वास्तविकता में अधिक समीप से कार्य करने के योग्य और पार्लियामेंन्ट से कम शक्तिशाली होगी।"[1] इस प्रकार से इन सात उपनिवेशों का एक वास्तविक संघ-राज्य हो जावेगा।[2]

---

1. A. B. Keith, **Speeches and Documents on Colonial Policy**, Vol. I., pp. 339-340.

. कामनवेल्थ आस्ट्रेलिया का क्षेत्रफल २, ९७४,५८१ वर्गमील है, निम्नलिखित भागों में विभाजित है :—

विक्टोरिया	..	८७,८८४	वर्गमील
न्यू साउथ वेल्स	..	३०९,४३२	,,
क्वींस लेण्ड	..	६७०,५००	,,
दक्षिण आस्ट्रेलिया	..	३८०,०७०	,,
पश्चिमी आस्ट्रेलिया	..	९७५,९२०	,,
टसमानिया	..	३६,२१५	,,
उत्तरी क्षेत्र	..	५२३,६२०	,,
संघीय राजधानी एवं सीमा	..	९४०	

३० जून सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार आस्ट्रेलिया की कुल जनसंख्या १०,५०८,००० थी।

न्यूसाउथ वेल्स के स्वतन्त्र व्यापारिक दल के नेता सर हेनरी पार्क्स ही ऐसे महापुरुष थे, जिन्होंने लोगों को उत्साहित कर आस्ट्रेलिया संघ के निर्माण में पहला कदम उठाया था। भाग्यवश अन्य और कारण भी संघ निर्माण में सहायक सिद्ध हुए, जिसमें प्रमुख इस प्रकार थे (१) जर्मनी द्वारा न्यूगिनी (New Guinea) पर अधिकार, (२) फ्रांस में न्यू कैलोडोनिया के दंडनीय समझौते द्वारा अपराधियों का आस्ट्रेलिया में भाग आना, और (३) महाद्वीपों के न्यूहेब्रीडीज द्वीप को फ्रांसीसियों द्वारा ठीक कराने का विचार।[1] उपरोक्त घटनाओं ने उपनिवेशों के मध्य संघ की स्थापना की भावना को और भी उत्तेजित कर दिया था। इसी समय सन् १८८३ में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने सन् १८८५ का आस्ट्रेलिया-संघीय कौंसिल एक्ट (The Federal Council of Australia Act 1885) पारित किया, जिसके द्वारा आस्ट्रेलिया की संघीय कौंसिल की स्थापना हुई और इसी कानून में इसकी शक्तियों का भी वर्णन कर दिया गया। परन्तु उपरोक्त कौंसिल में न तो न्यूसाउथ वेल्स और न ही दक्षिण आस्ट्रेलिया ने अपने प्रतिनिधि भेजे, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस कौंसिल का वास्तविक फल लोगों को न मिल सका। संघीय कौंसिल की कमियाँ स्पष्ट ही थीं। क्योंकि सर्वप्रथम यह निर्वाचित संस्था न थी, बल्कि, विभिन्न उपनिवेशिक सरकारों द्वारा नियुक्त की हुई थी। अतः यह एक क्षीण संस्था थी, जो नियुक्त करनेवाले उपनिवेशों की शक्ति अथवा संस्था पर आधारित रहती थी। इसे सेना को बढ़ाने अथवा नियंत्रण करने का अधिकार प्राप्त न था। यद्यपि इसे कानून बनाने का अधिकार था पर कानूनों को कार्यान्वित करने का अधिकार न था। इसके अतिरिक्त इसको कर लगाने का भी अधिकार प्राप्त न था। अन्त में जो सबसे बड़ी कमी इसमें यह थी कि कोई भी उपनिवेश जब चाहता इससे अलग हो सकता था। अतः इसको सभी उपनिवेशों पर नियंत्रण करने का भी अधिकार अप्रत्यक्ष रूप से न था।[2]

९ अक्टूबर सन् १८८९ को मेजर जनरल बीवन एडवर्ड्स (Bevan Edwords) जो ब्रिटिश सरकार द्वारा आस्ट्रेलिया की रक्षा शक्ति का निरीक्षण करने के लिए नियुक्त किये गये थे, उन्होंने अपनी रिपोर्ट में आस्ट्रेलिया के सभी उपनिवेशों की सैनिक शक्ति को संगठित करके सम्पूर्ण आस्ट्रेलिया की एक सैनिक शक्ति का निर्माण करने का सुझाव दिया। इस रिपोर्ट के आधार पर १५ अक्टूबर सन् १८८९ को सर

1. James Bryce, **Constitutions**, p. 274.

2. A. B. Keith, **Speeches and Documents on Colonial Policy**, p. 341. (The Speeches of Chamber lain)

हेनरी पार्क्स ने सभी प्रधान मंत्रियों को एक तार भेजा, जिसमें सामान्य सैनिक संगठन, चुंगी सम्बन्धी कठिनाइयों का निराकरण तथा उपनिवेशों को संघात्मक बनाने के लिए कुछ बातों पर व्यवस्थापिका सम्बन्धी एकता स्थापित करने की प्रार्थना की। तत्पश्चात् सभी उपनिवेशों की मैलबोर्न (Melbourne) नामक स्थान पर एक बैठक बुलायी गयी, जिसमें सभी उपनिवेशों के मंत्री उपस्थित थे, जो बाद को १८९१ की सिडनी परिषद् के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस परिषद् में कामनवेल्थ बिल का मसविदा तैयार किया गया परन्तु बहुमत न मिलने के कारण अपना वास्तविक रूप धारण न कर सका। संघीय नेताओं ने इस बात पर विचार किया कि अब जनता शिक्षित होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उन लोगों ने एक संघीय लीग की भी स्थापना की जिसने सम्पूर्ण देश में संघ स्थापित करने के कारणों का प्रचार किया। इधर विरोधी दलों ने भी संघ प्रचार की आलोचना की और उसी लगन से कार्य किया जिस उत्साह से लीग के सदस्य संघ-प्रचार कर रहे थे। विरोधियों ने जनता को यह भी बताया कि संघ शासन में किन किन विपदाओं का सामना करना पड़ेगा। सन् १८९३ की आर्थिक कठिनाइयों ने भी संघ स्थापित करने की इच्छाओं में और भी चार चाँद लगा दिये। अतः समय को देखते हुए सन् १८९७ ई० में उपरोक्त दशा पर विचार करने के लिए होबर्ट (Hobert) में प्रधान मंत्रियों की एक बैठक बुलायी गयी। परन्तु वह समय एक अभाग्य का समय था, क्योंकि उन दिनों तक संघीय विचारों के जन्मदाता सर हेनरी पार्क्स स्वर्ग सिधार चुके थे, जो अपने अथक परिश्रम द्वारा अपने अन्तिम दिनों तक संघ स्थापित कराने के प्रयत्नों में लगे रहे थे। उन्हीं की सूझबूझ के आधार पर सभी उपनिवेशों की पार्लियामेन्टों ने एक नियम द्वारा परिषद् में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों को बहुमत द्वारा चुनकर भेजने को कहा था। अतः सन् १८९७ में उपरोक्त प्रतिनिधियों की एक सभा एडेलेड (Adelaide) में हुई, जिसमें सन् १८९१ के आधार पर एक संविधान का मसविदा तैयार किया गया और यह भी निश्चय किया गया कि यह सभी उपनिवेशों में जनमत संग्रह के लिये रखा जावेगा। परन्तु अभाग्यवश संविधान को स्वीकार करने के लिये परिषद् में जो कम से कम मत निर्धारित किये गये थे, ३ जून सन् १८९८ को न्यूसाउथ वेल्स को ८० हजार मत प्राप्त न हो सके। परन्तु उस जनमत संग्रह में अन्य उपनिवेशों में निर्धारक बहुमत

अवश्य मिल गया था ।[1]

परिषद् में जो बहुतमत प्राप्त करने की शर्त रखी गयी थी, उसको प्राप्त करने का पुनः प्रयत्न किया गया । तत्पश्चात् साउथवेल्स के नेता रीड जो सदा से ही संघ शासन के घोर विरोधी थे, अपने सहमत के लिये कुछ संशोधन रखे । २१ जनवरी सन् १८९९ को प्रधान मंत्रियों का एक सम्मेलन मेलबोर्न (Melbourne) में हुआ । उसमें रीड के लगभग सभी संशोधन मान लिये गये । और दूसरा जनमत संग्रह लिया गया । उसी वर्ष १० जून को न्यूसाउथ वेल्स में निर्धारित बहुमत प्राप्त हो गया । दूसरे उपनिवेशों में भी बहुमत प्राप्त हो गया ।[2]

इधर २ सितम्बर सन् १८९९ ई० को क्वीन्सलैण्ड तथा ३१ जुलाई सन् १९०० को पश्चिमी आस्ट्रेलिया के मिल जाने से और भी अधिक बहुमत प्राप्त हो गया, जिसके परिणामस्वरूप अब समय आ गया था, जिसमें १० वर्ष तक के अथक परिश्रम का फल दिखलायी देनेवाला था । इसी समय उपनिवेशों के प्रतिनिधि इंगलैण्ड गये और उन्होंने ब्रिटिश मंत्रिमंडल से अपने संविधान के मसविदे को ज्यों का त्यों स्वीकृत कराने का प्रयत्न किया । जिस समय चैम्बरलेन अपने संविधान को पारित कराने का प्रयत्न हाउस ऑफ़ कामंस में करा रहे थे उस समय उन्होंने स्वर्गीय हनरी पार्क्स की यादगार में श्रद्धांजलियाँ अर्पित की थी, जिनके अथक परिश्रम एवं प्रयत्नों के पश्चात् ही संघीय संवैधानिक फल प्राप्त हुआ था। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने केवल कुछ संशोधनों के साथ उस विधेयक को पारित कर दिया, जो ९ जुलाई सन् १९०० के कामनवेल्थ आस्ट्रेलिया के ऐक्ट के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस ऐक्ट के अनुसार आस्ट्रेलिया इंगलैण्ड के स्वामित्व से स्वतन्त्र होकर विश्व में एक स्वतन्त्र देश की स्थिति में गिना जाने लगा ।

---

१. मतों की संख्या तालिका :—

	न्यूसाउथ वेल्स	विक्टोरिया	दक्षिण आस्ट्रेलिया	तस्मानिया	योग
अनुकूल ..	७१,९६५	१००,५२०	३५,८००	११,७०६	२१९,९९१
प्रतिकूल ..	६६,२२८	२२,०९९	१७,३२०	२,७१६	१०८,३६३
नियम के लिये बहुमत	५,७३७	१८,४५०	१८,४५०	८,९९०	१११.६२

—B. R. Wise, **The Making of the Australian Common Wealth,** p. 282.

2. **Ibid,** p. 323.

दक्षिण अफ्रीका का संघ-राज्य

इंगलैण्ड निवासियों ने ही सबसे पहले दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेशों को बसाया था। बाद में जब अंग्रेज़ समुद्र द्वारा भारत जाते थे, तो मार्ग में गुडहोप अन्तरीप पर अपना कुछ सामान छोड़ जाते थे। और कालान्तर में वह भी वहीं के कुछ भाग पर बस गये। तत्पश्चात् सोने एवं हीरे की खानों के अन्वेषण ने अन्य लोगों को आकर्षित कर इस बात के लिये बाध्य कर दिया कि वे इस देश के भीतरी भागों में जाकर बसे। फिर भी अफ्रीका की प्राकृतिक जलवायु के कारण अधिक लोग वहाँ न बस सके। हालैण्ड तथा इंगलैण्ड के बीच दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेशों के लिये युद्ध हुआ और अन्त में सभी उपनिवेश अंग्रेजों के हाथ में चले गये।

दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेश भी अन्य अंग्रेजी उपनिवेशों की भाँति सम्राट् के उपनिवेशिक विभाग द्वारा अलग शासित होते थे। अतः ब्रिटिश उपनिवेशिक नीति के परिवर्तन के आधार पर दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेशक नीति पर भी प्रभाव पड़ा, जिससे दक्षिण अफ्रीका की अलग सरकार स्थापित हो गयी।

दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेशों में न तो कोई सीमा ही निर्धारित थी और न कोई आर्थिक सम्बन्ध ही था। अतः इस समस्या को तय करने के लिये एक संघ की स्थापना करने पर विचार किया गया। अफ्रीका की संसद के केप हाउस ने जून सन् १८७१ ई० में एक कमीशन की नियुक्ति के लिए प्रस्ताव किया, जिसमें सम्पूर्ण ब्रिटिश दक्षिण अफ्रीका को कई प्रान्तों में विभाजित करने तथा उनके ऊपर संघीय सरकार की स्थापना करने पर बल दिया गया था।[1] इसका प्रभाव भविष्य में संघ सरकार की स्थापना में सहायक सिद्ध हुआ। इसी समय सन् १८७१ में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने एक अनुमोदक नियम पारित किया। इधर कर्नरवन (Carnarvon) के अर्ल (Earl) जब हाउस ऑफ लार्ड्स में विधेयक के बारे में बता रहे थे, उस समय उन्होंने कहा था "... जो विधेयक आपके सम्मुख उपस्थित है वह उसका केवल आकार मात्र एवं सिद्धान्त के रूप में है तथा यह भविष्य के प्रसंवान का एक रूप है। परन्तु इसका विस्तृत रूप महाराजाधिराज तथा स्थानीय सरकार के विचार विनमय में रखा जावेगा। यदि आप लोग इस पर विचार करें तो इसके

---

१. "...यह उचित होगा कि सम्पूर्ण उपनिवेश तीन अथवा तीन से अधिक प्रान्तीय सरकारों में विभाजित कर दिया जाय और सभी उपनिवेशों के लिये एक संघीय सरकार की स्थापना की जाय जो उनके सामान्य हितों का ध्यान रखेगी।"

Newton, **Unification of South Africa,** Vol. I., p. 12.,

पारित होने की अवश्य ही आज्ञा दें। तथा इसके पश्चात् उपनिवेशों पर कोई भार नहीं पड़ना चाहिये और प्रसंधान के प्रत्येक सदस्य को अपने प्रान्त की उन्नति करने का पूर्ण अधिकार मिलना चहिए।"[1] इस विधि की ५वीं धारा में कहा गया था कि सम्पूर्ण उपनिवेशों को आवश्यक प्रान्तों में विभाजित किया जाय तथा धारा १८ वीं एवं १९वीं में व्यवस्थापिका के अन्तर्गत निचले एवं ऊपरी सदनों में प्रान्तीय प्रतिनिधियों के बारे में कहा गया था। धारा ३३ में संघीय पार्लियामेन्ट की निजी शक्तियों एवं अवशिष्ट शक्तियों का वर्णन किया गया था। परन्तु इस विधि पर ५ वर्ष तक कुछ भी विचार न किया गया और अन्त में उक्त योजना का निर्धारित समय बीतने पर स्वयं ही अन्त हो गया।

सभी योरुपीय नागरिकों को एक सरकार के अन्तर्गत शासित होने के उद्देश्य से सन् १८८४ में अफ्रीकाण्डर राष्ट्रीय दल की स्थापना की गयी। बाद को इसी दल ने संघ की स्थापना पर बल दिया। इसी समय यद्यपि संसद के केप हाउस ने रेलवे एवं चुंगी सम्बन्धी संघ की स्थापना पर विचार किया पर यह विचार तब तक व्यवहारिक रूप न धारण कर सका जब तक सन् १९०३ में उपनिवेशों की चुंगी-संघ सम्बन्धी सम्मेलन नहीं बुलाया गया। इसी सम्मेलन में सर अल्बर्ट हाइम ने जो नेटाल के प्रधान मंत्री थे, एक प्रस्ताव रखा और उस प्रस्ताव का ड्यूकन ने, जो ट्रास्वेल के प्रधान मंत्री थे, अनुमोदन किया। इस प्रस्ताव में कहा गया कि इस समय जो "सभी उपनिवेश इस सम्मेलन में प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। सभी सीमा-शुल्क संघ (Tariff and Customs Union) की स्थापना करने के पक्ष में हैं, जो सामान्य शुल्क पर आधारित रहेगी, और यह संघ मोज़ेम्बीक (Mozambique) के प्रान्त से अधिक निकटतम का सम्बन्ध रखेगा।"[2]

इस सम्मेलन में रेलवे सम्बन्धी करों पर भी विचार किया गया और बाद में इस मामले की जाँच करने के लिये एक समिति की भी नियुक्ति की गयी। इसी समय २० मई सन् १९०३ को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने एक आदेश भेजा, जिसमें अफ्रीका में एक अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् बुलाने के लिये कहा गया था। इस प्रकार अब उनके सामने राष्ट्रीय प्रश्न भी खड़ा हो गया। तीन वर्ष बाद उपनिवेशों के गवर्नर एवं प्रशासकों ने सीमा शुल्क परिषद् में उस समय भाग लिया। जब यह निश्चित होने जा रहा था कि प्रत्येक उपनिवेश को आयात कर लेने का अधिकार

1. **Ibid**, p. 45.

2. Newton, **The Unification of South Africa,** Vol. I., p. 213.

होगा और संघ की धाराओं के अनुसार उपनिवेशों के बीच सीमा-शुल्क संघ की स्थापना होगी।[1] जून सन् १९०७ ई० में सेलबोर्न (Selbourne) के अर्ल, जो दक्षिण अफ्रीका के हाई कमिश्नर थे, केप के गवर्नर को एक पत्र में बलपूर्वक कहा कि यदि संघ आंदोलन को विजयी बनाना है तो वह अफ्रीका की जनता की ओर से चलाना चाहिये। उन्होंने एक स्मृतिपत्र में अपने विचार प्रगट करते हुए कहा कि "विभाजित देश में संघ की स्थापना कदाचित् ही उपयुक्त समय तक टल सकती है। विभाजन जब तक रहेगा तब तक एक वास्तविक संघ की स्थापना करना कठिन है। तत्पश्चात् मई सन् १९०८में चुंगी एवं रेलवे कर पर विचार करने के लिए प्रीटोरिया (Pretoria) में एक अन्तर्राष्ट्रीय उपनिवेशिक सम्मेलन बुलाया गया।'[2] परन्तु संयुक्त राज्य अमरीका के अन्नापोलिस सम्मेलन की भाँति यह भी इस परिणाम पर पहुँचा कि "सभी उपनिवेश जो स्वयं शासित होते हैं। उनमें जब तक एक संघ सरकार की स्थापना न होगी तब तक दक्षिण अफ्रीका समृद्धिशाली नहीं हो सकता है।"[3] परन्तु दूसरे प्रस्ताव में यह दृढ़ निश्चय किया गया कि सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी उपनिवेशों के प्रतिनिधि संविधान का एक अभिलेख तैयार करें। इस प्रस्ताव के उत्तर में सभी उपनिवेशों की विधान सभाओं द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों ने राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लिया, जो क्रमशः १५ अक्टूबर से ११ मई सन् १९०९ तक डरबन, केपटाउन और ब्लोमफोन्टीन (Blomfontien) में मिली। इन सभी बैठकों में संघीय शासन प्रणाली की स्थापना पर विचार किया गया। परन्तु इन लोगों के सम्मुख बहुत सी कठिनाइयाँ थीं। क्योंकि दक्षिण अफ्रीका में दो योरुपीय जातियों के लोग डच तथा अंग्रेज निवास करते थे, उनके अलग अलग उपनिवेश थे और वे अपनी अपनी भाषा बोलते थे। अतः आर्थिक लाभ पर भी उनका एक मत न था। ट्रान्सवाल का जोहन्सबर्ग व्यापारिक केन्द्र होने के नाते वे स्वतन्त्र व्यापार चाहते थे, जबकि तटीय उपनिवेश चुंगी लगाने के पक्ष में थे, क्योंकि चुंगी द्वारा उनकी आय होती थी। इसके अतिरिक्त रेलवे कर का भी प्रश्न था, क्योंकि रेलगाड़ी सभी उपनिवेशों में गुजराती थी और उपनिवेशिक सरकार का शासन लगभग पूर्ण रूप से रेलवे की आय पर ही आधारित था। अतः उपनिवेशिक सरकारें किसी भी प्रकार

---

1. **Ibid,** Vol. II. p., 25-32.
2. Newton, **The Unification of South Africa,** Vol. II., p. 44.
3. **Ibid,** pp. 169-170.

से इस आय के साधन को केन्द्रीय सरकार के हाथों में नहीं जाने देना चाहती थीं। तटीय उपनिवेशों के पास बन्दरगाह थे, जो दूसरे उपनिवेशों के पास न थे। अंत में देशवासियों का भी प्रश्न था। दक्षिण अफ्रीका में वहाँ के निवासियों तथा अंग्रेजों की जनसंख्या में एक और पाँच का अनुपात था।[1]

आपस की फूट जातीय युद्ध में परिवर्तित हो गयी और अंत में यह निश्चय हो गया कि बिना संघ राज्य के शासन चलाना कठिन हो जावेगा। आर० एच० ब्राण्ड ने सम्पूर्ण दशा का वर्णन करते हुए कहा है कि "फूट ने न केवल बहुत सी विपदाओं को जन्म दिया था, किन्तु इससे यह भी स्पष्ट हो गया था कि सरकार अयोग्य, कष्टकारी एवं अपव्ययी थी; एक लाख अंग्रेजों को शासित करने के लिये चार प्रकार की अलग अलग शासन प्रणालियाँ प्रचलित थीं ; चार पार्लियामेन्ट भी थी, उनके नियम भी अलग अलग थे; चार न्यायालय भी थे जो अपने अपने ढंग से कानूनों को लागू करते थे; चार प्रकार की सरकारें भी थीं; कोषागृह भी चार थे, जो अनावश्यक ही पृथक् धन इकट्ठा कर रहे थे, बहुत से कानूनों में जैसे विशिष्ट अधिकार पत्र, विवाह, उत्तराधिकार तथा देशीकरण मामलों आदि में बड़ा मतभेद भी था। उदाहरणार्थ, कोई भी व्यक्ति केपटाउन में तो ब्रिटिश नागरिक हो सकता था पर ट्रांसवाल में नहीं। उपरोक्त प्रकार की कठिनाइयों ने संघ की स्थापना के लिये विवश कर दिया।"[2]

तत्पश्चात् सम्मेलन आपसी भेदों को मिटाने, वर्तमान प्रान्तीय सरकारों को समाप्त करने ; केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तियों के साथ स्थापित करने; व्यवस्थापिका सम्बन्धी मामलों में प्रान्तों को अधीनस्थ शक्तियों को देने का पूर्ण निश्चय करने के लिए एकत्रित हुए। बाद को एक नया संविधान बनाया गया जिसमें प्रीटोरिया में कार्यकारिणी तथा केपटाउन में व्यवस्थापिका सभा स्थापित करने की

---

१. सन् १९२१ की जनगणना के अनुसार दक्षिण अफ्रीका की जनसंख्या निम्नलिखित थी—

बान्टुस	..	..	७,८३१,९१५
योरुपियन	..	..	२,३७२,६९०
एशियाई	..	..	२८५,२६०
अन्य	..	..	९२८,४८४
		कुल जनसंख्या का योग	११,४१८,३४९

The Statement's Year Book, 1949. p. 234.

2. R. H. Brand, **The Union of South Africa**, p. 30.

व्यवस्था की गयी । व्यवस्थापिका सभा के ऊपरी तथा निचले सदनों में प्रान्तीय प्रतिनिधियों की ही व्यवस्था की गयी । डच तथा अंग्रेजी दोनों भाषायें अपनायी गयी । इस प्रकार सन् १९०९ में यूनियन ऑफ साउथ अफ्रीका एक्ट के अनुसार एक प्रकार के संघीय शासन की स्थापना हुई ।

समाजवादी-गणतन्त्र——रूस का संघ

आधुनिक समाजवादी-गणतन्त्र-रूस का संघ राज्य एशिया एवं योरुप के दो महाद्वीपों में फैला हुआ है । यह संघ-राज्य विश्व के सभी संघ-राज्यों से अधिक विस्तृत है । सन् १९१७ के आन्दोलन के पूर्व यह संघ-राज्य रूस के नाम से ही प्रसिद्ध था । यहाँ पर विभिन्न प्रकार की जलवायु, भाषा एवं जातियाँ पायी जाती हैं, जिनमें स्कीमों, मंगोल, तुर्क, उकरेनियन तथा स्लेव आदि भी सम्मिलित हैं। सन् १९५९ की जनगणना के अनुसार यहाँ की जनसंख्या २०,८८,००,००० थी तथा क्षेत्रफल ८,७०८, ०७० वर्गमील था । इस देश में लगभग १५० भाषायें बोली जाती हैं । उपरोक्त विभिन्नताओं के साथ साथ इस देश की सदैव से यह विशेषता रही है । कि सम्पूर्ण देश केवल एक राजनैतिक दल द्वारा शासित होता आ रहा है । यों तो देश की जनसंख्या बहुत ही अधिक है, परन्तु शासन प्रणाली केवल १०० लाख रूसी नागरिकों द्वारा संचालित होती रही है । सम्पूर्ण देश प्राकृतिक छटाओं जैसे वनों, पर्वतों, रेगिस्तानों, सरवरों, एवं सरिताओं से परिपूर्ण है । यह देश अपने प्राचीन काल में एक कृषि प्रधान देश रहा था । परन्तु साम्यवादी दल के विकास एवं उन्नति के साथ साथ यह देश अब केवल कृषिप्रधान ही न रह कर उद्योग प्रधान भी हो गया है ।

भौगोलिक दृष्टिकोण से तो यह देश वास्तविकता में एशिया के देशों की भाँति लगता है, परन्तु सांस्कृतिक एवं राजनैतिक दृष्टिकोण से इसकी गणना सदैव से ही योरुपीय देशों में की गयी है । जब हम इसे ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि सन् १९१७ के पूर्व तक यह देश निरंकुश शासकों द्वारा शासित होता रहा । यह निरंकुश शासक ज़ार कहलाते थे, जिनके शब्द ही कानून हुआ करते थे । यद्यपि जारों के शासन काल में बहुत से सुधारों पर विचार किया गया, परन्तु किसी में सफलता न मिल सकी, क्योंकि मुट्ठी भर निरंकुश शासक देश के विभिन्न भागों में जाकर कृषि कराने के विचार से छोटे छोटे उपनिवेश बनाकर बस गये थे, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अन्य जातियों द्वारा कृषि का कार्य कराते हुए शासन प्रणाली की बागडोर को अपने तक ही सीमित रखा । यही कारण था कि

इन शासकों ने अन्य जातियों के लिये शिक्षा का कोई प्रबन्ध न किया। अतः इसी अशिक्षिता एवं अत्यधिक निर्धनता के कारण ही उपरोक्त निरंकुश शासक वर्ग सैकड़ों वर्षों तक सम्पूर्ण देश पर शासन करता रहा। यद्यपि १६ वीं एवं १७वीं शताब्दियों में सम्प्रभुतायुक्त विचारक समय समय पर एक निर्वाचित राष्ट्रीय समिति की बैठकें बुलाते रहे, जो कि युद्ध एवं शांति के मामलों पर विचार करती रही। परन्तु समिति की कार्यप्रणाली ठीक न होने के कारण उसे अपने कार्य में कभी भी सफलता न मिल सकी। कभी कभी तो ऐसा भी होता था कि कोई कार्य आवश्यक होने पर भी सामाजिक परिस्थितियों के कारण समाप्त हो जाता था।

सन् १७७६ में कैथरिन महान् (Catherine) ने ज़ार द्वारा शासित उपनिवेशों में कृषिकों के साथ राज्य के सम्बन्ध, स्थानीय सरकार के प्रसार, दास वृत्ति आदि प्रश्नों पर विचार एवं वाद-विवाद करने के लिए निर्वाचित प्रतिनिधियों की एक सभा बुलायी। परन्तु अभाग्यवश इसी समय तुर्की के साथ युद्ध, फ्रांसीसी आंदोलन एवं पुगाचेव में कृषिकों के विप्लव के कारण यह समिति किसी भी परिणाम पर न पहुँच सकी।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ज़ार अलक्सेन्डर प्रथम ने केवल देश में बहुत से सुधारों की ओर ही ध्यान नहीं दिया, किन्तु अपने उदार मंत्री स्पेरान्स्की (Speransky) को एक संविधान का प्रालेख तैयार करने की आज्ञा भी दी। यद्यपि स्पेरान्स्की ने संविधान का प्रालेख तैयार कर उसमें जनमत, बहुमत एवं स्थानीय संसद की सूच्याकार योजना का भी प्रयोजन किया गया, जो निर्वाचन प्रणाली पर आधारित था और राष्ट्रीय संसद तक पहुँचने का एक परमकोटि आधार भी था। इसके अतिरिक्त वह साम्यवादी सरकार के प्रारम्भिक काल की शासन प्रणाली का एक सुझाव भी था। परन्तु सन् १८१२ में नेपोलियन-आक्रमण के फलस्वरूप उपरोक्त संविधान कार्य रूप में न आ सका।

अलक्सेन्डर प्रथम के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी निकोलस (Nicholas) ने किसी भी सुधार की ओर ध्यान न दिया। परन्तु निकोलस की मृत्यु के पश्चात् ही उसका उत्तराधिकारी अलक्सेन्डर द्वितीय ने, जो बहुत ही उदार प्रकृति का था, गद्दी पर बैठते ही उसने सन् १७८१ के आस्ट्रिया की दास प्रथा के निस्तार का उदाहरण लेते हुए सर्वप्रथम सभी सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों से कृषक-दासों को मुक्त करने तथा कृषि को अपने हाथों में लेने की इच्छा प्रकट की। इसका परिणाम यह हुआ कि सभी व्यक्ति जिनके यहाँ कृषक दास थे, अलक्सेन्डर द्वितीय की इस बात से सहमत हुए। परन्तु इसी समय यह प्रश्न खड़ा हो गया कि कृषि कृषकों को दी जाय अथवा नहीं,

क्योंकि इस समय कृषकों की जनसंख्या लगभग ९५ प्रतिशत थी। परन्तु उपरोक्त विचार के पश्चात् ही ३ मार्च सन् १८६१ को एक राजकीय घोषणा में दास प्रथा को समाप्त करने की आज्ञा दी गयी और यह भी कहा गया कि सम्पूर्ण भूमि जिन जिन कृषकों के पास थी वह उन्हीं को दे दी जाय। केवल उनसे किंचित कर अपने स्वामियों को देने के लिए कहा गया। तीन वर्ष पश्चात् अलक्सेन्डर ने पोलैण्ड के कृषक दासों को भी स्वतंत्र कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में हर्ष की लहर दौड़ गयी और चारों ओर से अलक्सेन्डर द्वितीय का अभिवादन एवं जयध्वनि की गयी। इस महान् सुधार के बाद ही उसने देश के अन्य सुधारों की ओर भी ध्यान दिया, जिसमें कार्यकारिणी से न्यायपालिका का पृथक्करण, जूरी द्वारा मुकदमों पर विचार; कर सम्बन्धी प्रणाली में एकता; स्थानीय स्वराज्य की स्थापना तथा शिक्षा प्रणाली में उदारता आदि सम्मिलित थे। उसका उद्देश्य भी न्याय,स्वतन्त्रता एवं अज्ञान के स्थान पर प्रकाश की स्थापना करना था। परन्तु इतना होते हुए भी अलक्सेन्डर द्वितीय को उपरोक्त सुधारों के विरोधी शून्यवादियों के विरोधों का सामना करना पड़ा। इन शून्यवादी विचारकों ने विरोध की भावना को यहाँ तक उत्तेजित कर दिया कि कुछ विद्यार्थियों ने तो अलक्सेन्डर द्वितीय को मृत्यु के घाट उतारने का उपाय भी सोचा। अन्त में शून्यवादियों ने गुप्त संगठनों की स्थापना करके राज्य के भय की प्रपंचा की, जिसका परिणाम यह हुआ कि १३ मार्च सन् १८८१ को ज़ार पर बम फेंका गया और वह सदैव के लिए समाप्त हो गया। यह उपरोक्त आपत्ति उन स्वतन्त्र विचारकों द्वारा लायी गयी थी, जो स्वतन्त्रता का उचित प्रयोग ही न जानते थे।

अलक्सेन्डर द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् सन् १९०५ के जापान एवं रूस के युद्ध के पूर्व तक प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली में कोई सुधार न हो सके। अब ज़ारों की सरकार अपनी वंशानुगत अधिकारों से हाथ धो चुकी तब उसने डयूमा नामक निर्वाचित संगठित सभा के बहुमत विचारों को जानने का प्रयत्न किया, जिसके परिणामस्वरूप देश में एक विद्रोह खड़ा हो गया। यद्यपि ज़ार ने जनता के मतदान अधिकार को बढ़ाकर उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। परन्तु उसके सभी प्रयत्न असफल रहे। तत्पश्चात् ज़ार को प्रजा के विचार एवं भाषण की स्वतन्त्रता तथा सभा एवं समुदाय बनाने की स्वतन्त्रता पर एक राजकीय घोषणा करने के लिए विवश किया गया और यह भी कहा गया कि कोई भी कानून बिना डयूमा के पारित किए हुए कार्यान्वित न होगा। इस घोषणा के साथ साथ राजकीय शक्तियों के नियंत्रण को कार्यान्वित करने तथा उपरोक्त शक्तियों द्वारा बनाये हुए कानूनों का संशोधन करने के लिए भी कहा गया। इसका फल यह हुआ कि सन् १९०६ में डयूमा की एक बैठक हुई, जिसमें प्रत्यक्ष व्यापक

मताधिकार तथा संसदीय सरकार प्रणाली की स्थापना की माँग की गयी। इस ड्यूमा का उसी वर्ष जुलाई में विघटन हो गया। उपरोक्त ड्यूमा की बैठक पुनः मार्च सन् १९०७ में हुई। परन्तु इस वर्ष वह कोई कार्य न कर सकी। इस बार ज़ार ने किसी व्यक्ति के मताधिकार का बिना हरण करते हुए, चुनाव सम्बन्धी अधिकारों को भी सम्पत्तिशाली लोगों के हाथों में देते हुए, अपनी घोषणा पर आरूढ़ रहने का प्रयत्न किया।

मई सन् १९०६ के मौलिक कानून के अन्तर्गत धारा ४ में यह घोषणा की गयी थी कि रूस का सम्राट सम्पूर्ण शक्तियों का स्वामी होगा और ईश्वर की आज्ञा के अनुसार देश की सम्पूर्ण जनता उसकी शक्तियों का पालन भय के कारण नहीं किन्तु सद्व्यवहार के कारण करेगी। इन परिस्थितियों में ड्यूमा की सन् १९०७ में बैठक हुई। परन्तु शासन सम्बन्धी सम्पूर्ण शक्तियाँ सम्राट में निहित होने के कारण वह कुछ न कर सकी। इस समय भी शासन सम्बन्धी कार्य गत वर्षों के आय-व्यय के अनुसार ही होते रहे थे, यदि कभी भी ड्यूमा मंत्रियों के प्रस्ताव को रद्द कर देती थी तो कार्यकारिणी ड्यूमा के प्रति उत्तरदायी न होकर ज़ार के प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदायी होती थी। ड्यूमा केवल कानून की कर्मनिष्ठा के लिए ही होती थी न कि राजनीतिक मामलों के लिए। ज़ार को सभी संवैधानिक कानूनों को रद्द करने एवं राज्य का अवरोध करने का अधिकार प्राप्त था। वास्तविकता में इस समय निरंकुश शासन प्रणाली प्रजातन्त्रात्मक आधार के नाम पर कार्य कर रही थी।

परन्तु उपरोक्त शासन प्रणाली का देश के राजनैतिक दलों द्वारा विरोध हो रहा था। इन विरोधी लोगों का संगठित एक दल भी था जो बोल्शेविक (Bolshevik) दल के नाम से प्रसिद्ध था। परन्तु उपरोक्त दल के लोगों को कालान्तर में या तो नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया अथवा वे जेल भिजवा दिये गए। यद्यपि इस दल के सिद्धान्तों को माननेवाले, विदेशों से, इस शासन प्रणाली का विरोध कर रहे थे, परन्तु उन्हें उठने का सुअवसर न प्राप्त हो सका। अन्त में सन् १९१४ के प्रथम महायुद्ध में उन्हें अपने विचारों को प्रगट करने का समय मिल ही गया, किन्तु रूस के निवासी इस विरोध को सहन न कर सके और उन्होंने अन्त में विरोधी दल के विरोध में एक विद्रोह खड़ा कर दिया, क्योंकि वे लोग इस प्रकार की कठिनाइयों को सहन न कर सके। उपरोक्त विरोधी दल विदेशों से लेनिन के नेतृत्व में कार्य कर रहा था।

सन् १९१७ का आंदोलन:—प्रथम महायुद्ध के अन्तर्गत रूस योरुप की अन्य शक्तियों के साथ मिलकर जर्मनी के विरुद्ध लड़ने लगा। परन्तु रूस अपनी निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन प्रणाली के कारण अपने मित्र राज्यों का साथ न दे सका। इसी समय यद्यपि ज़ार से प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली को कार्य रूप में लाने की

माँग की गयी, किन्तु ज़ार ने उसका प्रतिरोध किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उदार दल वाले लोगों में विप्लव की एक लहर दौड़ गयी। जार ने आंदोलन को समाप्त करने के विचार से डयूमा के सदस्यों को अपने अपने गृहों को प्रस्थान करने की आज्ञा देकर हड़ताल करनेवाले लोगों को कार्य करने को कहा। इस आंदोलन के मुख्य कारण करोड़ों रूसी कृषकों की निर्धनता एवं निराहारता, जो अभी तक भारतीय कृषकों की जैसी थी, तथा योरुप में प्रजातन्त्र का उत्थान एवं रूस जापान युद्ध का परिणाम और रूसी युवकों की अधीरता थे। डयूमा केवल निकोलस द्वितीय के राज्यरोहण तक कार्य करती रही। परन्तु अभाग्यवश निकोलास द्वितीय के राजगद्दी पर बैठते ही वह तथा उसके पारिवारिक सदस्य एक सप्ताह के अन्तर्गत ही कैदी बना लिए गए।

तत्पश्चात् शीघ्र ही डयूमा ने अस्थायी सरकार की स्थापना करके प्रेस के नियंत्रण को समाप्त करने, राजनैतिक एवं धार्मिक कैदियों को समाप्त करने एवं जल-थल सेना के कानूनों में सुधार करने के लिए एक घोषणा की। परन्तु उपरोक्त घोषणा का कोई प्रभाव न पड़ा और अन्त में यह अस्थायी सरकार अधिक दिनों तक कार्य न कर सकी। इसका पुनः संगठन १० मई सन् १९१७ को किया गया। तत्पश्चात् ६ अगस्त को उसी वर्ष जब अलक्सेन्डर केरेंस्की ने अपना मंत्रिमण्डल बनाया तब पुनः इसमें सुधार किये गये। इसी समय में पेट्रोग्राड सोवियत ने जल एवं थल सेनाओं को आज्ञा दी कि जिन बातों में सोवियत एवं सरकार की आज्ञाओं में संघर्ष हो उनमें वह सरकार की आज्ञाओं को मानने से मना कर दे। इसके परिणामस्वरूप सैनिकों एवं नाविकों ने ७ नवम्बर को स्थानीय आंदोलनकारी कमेटियों की स्थापना की। इन लोगों में कुछ तो अपनी प्राचीन राज्य सत्ता के प्रति स्वामिभक्त रहना चाहते थे और कुछ लोग युद्ध न करने के विचार में थे।

अतः सन् १९१७ में सर्वप्रथम पेट्रोग्राड सोवियत ने सोवियत की अखिल-रसियन कांग्रेस बुलायी, जिसमें १ हजार प्रतिनिधि थे। इस कांग्रेस ने सामाजिक आंदोलनकारी सरकार की स्थापना की परन्तु वह अधिक दिन कार्य न कर सकी।

इसी समय सम्पूर्ण देश में विद्रोह की एक लहर सभी वर्गों में दौड़ गयी। सैनिकों ने सैनिक इतिहास में एक विद्रोह खड़ा कर दिया। कृषकों ने अपने बाहुबल से शांतिपूर्वक जो भी भूमि ग्रहण कर सके किया। कर्मचारियों ने भी अपनी माँगे सरकार के सामने रखीं। ऐसी स्थिति में करेंस्की देश की दशा पर नियंत्रण न रख सका, अतः अक्टूबर सन् १९१७ में बोल्शेविकों (Bolsheviks) ने अपने दल की एक सभा बुलायी, जिसमें शासन को अपने हाथों में लेने के लिए निश्चय किया गया, जिसके परिणामस्वरूप पेट्रोग्राड सरकार को विध्वंस करके सभी कर्मचारियों को कैद कर

लिया गया। केवल केरेंस्की भाग गया। अब सोवियतों की अखिल-रसियन कांग्रेस ने, जो ७ नवम्बर को एकत्रित हुई थी, सम्पूर्ण रूस पर अपनी विजय पताका फहरा दी और लेनिन की अध्यक्षता में नवीन कार्यकारिणी तथा प्रशासकीय मण्डल की स्थापना की गयी। त्रोत्स्की (Trotskey) विदेशी विभाग के मंत्री पद पर तथा जोसेफ स्तालिन राष्ट्रीय विभाग के मंत्री पद पर नियुक्त किये गये।

नवम्बर सन् १९१७ के आंदोलन के प्रमुख नेता लेनिन तथा उनके प्रधान मंत्री लिओन त्रोत्स्की (Leon Trotskey) थे। मंत्रिमण्डल में एक मसविदा तैयार किया गया जिसमें शीघ्र ही केन्द्रीय शक्तियों की स्थापना तथा स्थानीय संघर्षों का दमन तथा अन्य शक्तियों का दमन सम्मिलित था। इसके अतिरिक्त देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का अध्ययन करके श्रमिक समाज की एक साम्यवादी सरकार की स्थापना करने तथा इस आंदोलन को सम्पूर्ण विश्व में फैलाने का विचार भी सम्मिलित था।

इस आंदोलन का मुख्य ध्येय जार के निरंकुश शासन को समाप्त करना तथा विभिन्न वर्गों के नागरिकों द्वारा स्वयं शासन करना था। उपरोक्त आंदोलन का सबसे अधिक प्रभाव यह पड़ा कि जो भी देश में बसे हुए छोटे छोटे निरंकुश शासक प्रजा पर शासन कर रहे थे और वह जार की केन्द्रीय शासन सत्ता पर आश्रित थे, उन्होंने शीघ्र ही अपने विचार बदल दिये और बोल्शेविक लोगों के भय के कारण अपने को आंदोलन का नेता कह कर पुकारने लगे तथा अपने स्वामित्व के लिए देश के विभिन्न भागों से अपने को रूस से स्वतन्त्र होने के लिए माँग करने लगे।

लेकिन लेनिन ने साम्यवादी राज्य के आधारों पर ध्यान रखते हुए साहसपूर्वक केन्द्रापसारी विचारों को स्थायी रखा। बोल्शेविकों ने सभी नागरिकों के समान अधिकारों की घोषणा की परन्तु त्रोत्स्की ने कहा कि "समान अधिकारों की घोषणा विशेषकर फिन लोगों के लिए कुछ भी अर्थ न रखती थी, वे रूस की स्वतन्त्रता के इच्छुक थे न कि रूस के निवासियों की। यूकेरेनियों के लिए इन अधिकारों का कुछ भी महत्व न पड़ा। क्योंकि उनके अधिकार वैसे ही रहे जैसे पहले थे, उन्हें बलपूर्वक रूसी निवासी घोषित किया गया। इससे लेटवियनों तथा एंस्थोनियनों की दशा में कोई परिवर्तन न हुआ। यह लोग जर्मनी के भूमिस्वामियों, जागीरदारों एवं रूसी जर्मन नगरों द्वारा सताये हुये थे। इससे मध्य एशिया के पिछड़े हुए लोगों के भाग्य में किंचित भी सुधार न हुआ, जो कि चट्टानों की तहों से न्यायिक प्रतिबन्ध से ही नहीं किन्तु सांस्कृतिक एवं आर्थिक शृंखलाओं से भी जकड़े हुए थे।" वह पुनः कहते हैं कि "इस आंदोलन ने सीमावर्ती देशों को भी प्रभावित किया और यह बात इससे और भी स्पष्ट हो जाती

है कि रूस की भाषा जमीदारों एवं जागीरदारों की भाषा थी। पूर्व प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली जिसमें प्रेस एवं समुदाय की स्वतन्त्रता सम्मिलित थी, इन दो कारणों द्वारा पिछड़े एवं पददलित लोग किस प्रकार से सांस्कृतिक उन्नति, अपने पाठशालाओं, न्यायालयों आदि में किस प्रकार से पिछड़े हुए थे, जान सके। भविष्य की सभा ने उन्हें और भी अधिक दुःखी बना दिया। वह जानते थे कि यह सभा भी अस्थाई सरकार की भाँति शासन करेगी जो शासित वर्ग के विरुद्ध नहीं जा सकती।"[1]

केन्द्रापसारी विचारधारायें मार्क्स की विचारधारा पर आधारित थीं, जिसमें पिछड़े हुए वर्गों की प्रभुसत्ता सम्मिलित थी। तथा ग्रामीण लोग नगरों के नागरिकों के चंगुल से अपनी स्वतन्त्रता चाहते थे; प्रत्येक मनुष्य की नागरिकता स्वतन्त्रता पर आधारित थी। इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक राष्ट्रीयता अपनी स्वतन्त्रता नामक नींव पर खड़ी हुई थी। तत्पश्चात् बोल्शेविक आंदोलन को क्षीण करने के विचार से सीमा पर स्थित देशों को अस्थायी सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए जनता को उत्साहित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक राष्ट्र ने सोवियत सरकार के आधार पर अपनी स्वयं स्वतन्त्र सरकार की स्थापना की। इसके अतिरिक्त रूस के राज्य को केन्द्रीभूत बनाये रखने के लिए उन लोगों ने जमींदारों एवं जागीरदारों की शक्ति को नष्ट करके अस्थायी सरकार के सभी प्रयत्नों को विफल कर दिया। फिनलैण्ड, लैटविया (Latvia), लिथुआनिया, स्टोनिया, जौर्जिया, ट्रांसकौकेसिया तथा मध्यएशिया नामक सभी देशों ने रूस से सम्बन्ध विच्छेद करके अपनी सोवियतों के हाथों में शक्ति देकर अपने अपने स्वतन्त्र गणराज्यों की स्थापना की। इनमें से बहुत से गणराज्यों ने बोल्शेविक विद्रोह का सामना करने के विचार से संघात्मक सिद्धान्तों के आधार पर छोटे छोटे सांस्कृतिक दलों द्वारा अपने गणराज्यों की स्थापना की। यह रूसी सामाजिक संघीय सोवियत गणतन्त्र था। (R. S. F. S.R) जिसका संविधान जुलाई सन् १९१८ में ५ वीं कांग्रेस द्वारा ग्रहण किया था।

३ मार्च सन् १९१८ की ब्रेस्टलिट्वोस्क (Brest-litovsk) की संधि के अनुसार रूस ने ५००,००० वर्गमील क्षेत्र एवं ६६ लाख जनसंख्या देकर आन्तरिक शांति स्थापित की। इसके अतिरिक्त रूस अत्यधिक जुर्माना देने के लिए भी तैयार हुआ।

तदुपरान्त विभिन्न देशों ने रूस की राजनीति में विघ्न डालना प्रारम्भ कर दिया। सर्वप्रथम उन लोगों ने जर्मनी की पूर्वी सीमा का पुनः निर्माण करने के लिए रूस पर

---

1. Leon Trotsky, **History of Russian Revolution,** pp. 892-893.

घेरा डालने की घोषणा कर दी। तथा बोल्शेविकों ने अपनी एक लाल सेना (Red Army) द्वारा अपने विरोधियों एवं विदेशी सेनाओं को पराजित कर सफलता प्राप्त की। इस विजय से उत्साहित होकर बोल्शेविक लोगों ने यूकरेन (Ukraine) तथा श्वेत रूस (White Russian) एवं अन्य सीमावर्ती सरकारों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

तत्पश्चात् सन् १९१८ के संविधान में संशोधन किये गये तथा ३० दिसम्बर सन् १९२२ की संघीय संधि द्वारा यू० एस० एस० आर० की प्रथम कांग्रेस ने चार सोवियत गणतन्त्र राज्यों को संघ में मिला लिया। इसी प्रकार अन्य राष्ट्रीय राज्यों के साथ ६ जुलाई सन् १९२३ की यू० एस० एस० आर० की केन्द्रीय कमेटी द्वारा सम्बन्ध स्थापित किये गए। इसका फल यह हुआ कि इस कमेटी द्वारा कुछ समय पूर्व आंदोलन द्वारा जो भेदभाव उत्पन्न हो गये थे, वह सब समाप्त हो गये। और उज्बेक तथा तुर्कोमन नामक सोवियत साम्यवादी गणतन्त्र राज्य मई सन् १९२५ में यू० एस० एस० आर० में मिल गये। तत्पश्चात् तादज़ेक (Tadzhiz) दिसम्बर सन् १९२९ में, ट्रांस्कौकेसिया तथा जौर्जिया भी यू० एस० एस० आर० में मिल गये। इस प्रकार सन् १९३६ में कज़ाख (Kazakh) तथा किरगेज़ (Kirghiz) के मिल जाने पर यू० एस० एस० आर० ११ राज्यों का एक संघ राज्य बन गया। यही वर्ष स्तालिन के संविधान के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सन् १९३६ के पश्चात् तथा द्वितीय महायुद्ध के परिणामस्वरूप बहुत से राज्य यू० एस० एस० आर० के संघ-राज्य में मिल गए। वे निम्नलिखित हैं :

(अ) जर्मनी द्वारा पोलैण्ड पराजित कर देने पर पश्चिमी यूक्रेन (Ukraine) तथा पश्चिमी बायलोरसिया (Byelorussia) सोवियत साम्यवादी रूस में सितम्बर सन् १९३९ में मिला लिये गए।

(ब) फिनलैण्ड द्वारा मिलाये हुए कुछ भाग को ३१ मार्च सन् १९४० को कारे-लिया (Karelia) को सोवियत साम्यवादी गणतन्त्र में मिला लिया गया।

(स) २ अगस्त सन् १९४० को मोलडेविया (Moldavian) यू० एस० एस० आर० का १३वाँ गणतन्त्र राज्य बना लिया गया।

(द) ३ अगस्त सन् १९४० को ऐस्टोनिया, लैटविया तथा लिथाआनिया को मिलाकर यू० एस० एस० आर० के संघ के उपराज्यों की जनसंख्या १६ हो गयी।

(य) जर्मनी की पराजय के पश्चात् प्रशिया का बहुत सा पूर्वी भाग यू० एस० एस० आर० में मिला लिया गया।

(र) सन् १९४५ में जापान द्वारा हटाये हुए सखालीन महाद्वीपों के अर्ध दक्षिणी भाग एवं क्यूराइल (Kurile) द्वीप समूह को भी यू० एस० एस० आर० में मिला लिया गया ।

सन् १९३६ तक का यू० एस० एस० आर० का संविधान

सन् १९३६ के संविधान का जन्म जार के निरंकुश शासन एवं सन् १९१७ के आंदोलन के कारण हुआ था । यह संविधान कार्लमार्क्स के सिद्धान्तों पर आधारित था । जिसमें प्रत्येक प्रश्न राजनीतिक हैं और प्रत्येक कर्मचारी राज्य का कर्मचारी है । अतः यह संविधान विश्व के अन्य सभी संविधानों से अपना एक अलग ही महत्व रखता है ।

इस संविधान का मुख्य ध्येय ही था पूँजीवाद को समाप्त करना । अतः रूस के सभी कर्मचारियों , सैनिकों एवं कृषकों को गणतन्त्र सोवियत कह कर घोषित किया गया । यू० एस० एस० आर० के संघ को वास्तविकता में बहुत ही अधिक अधिकार प्राप्त थे । राजनैतिक एवं आर्थिक सम्बन्धी मुख्य मुख्य अधिकार संघ की शासन सत्ता के हाथ में ही थे । अंगभूत इकाइयों को सांस्कृतिक स्वराज्य आदि सभी स्थानीय शक्तियाँ संघ से ही प्राप्त थी । इसका मुख्य ध्येय यही था कि सम्पूर्ण विश्व में सोवियत संघ की स्थापना की जाय । यही कारण था कि संघ राष्ट्रीय इकाइयों पर आधारित न होकर सामान्य समाजवादी संस्था पर आधारित था ।[1] परन्तु कम से कम लिखित रूप में आंगिक गणतन्त्र राज्यों को अपगमन का अधिकार दे रखा था जो कि संघात्मक विचार से बहुत दूर है ।

उपरोक्त संविधान सर्वसाधारण लोगों के लिए बनाया गया था । अतः केवल भाड़े पर कार्य करने वाले श्रमिकों, भिक्षुओं , पुजारियों आदि लोगों को मत देने का अधिकार न था । शेष सभी जनता को मत देने का अधिकार दिया था । इसके अतिरिक्त इस संविधान की सबसे बड़ी विशेषता अप्रत्यक्ष चुनाव था । प्रत्यक्ष चुनाव केवल गाँवों में ही प्रचलित था, जिनका अधिकार क्षेत्र बहुत ही संकुचित था । परन्तु वह ग्राम राज्य के प्रशासन में अपना महत्व अधिक मात्रा में रखते थे । परन्तु धीरे धीरे लोगों में केन्द्रीकरण की भावना का उदय हुआ । यू० एस० एस० आर० की राजनैतिक प्रणाली अन्य राज्यों की सरकारों से अपना एक विशेष ही महत्व रखती थी ।

स्थानीय एवं प्रान्तीय सरकारें:—यू० एस० एस० आर० के प्रशासन की सबसे

1. Cole, **A Guide to Modern Politics**, p. 223.

छोटी इकाई ग्राम एवं सोवियत फैक्टरी थे। और सबसे बड़ी इकाई केन्द्रीय कार्यकारिणी तथा प्रेसिडियम थे। प्रशासन के अन्तर्गत ग्रामों का शासन बहुत बड़ा महत्व रखता था। ग्राम अथवा फैक्टरी प्रशासन की सबसे छोटी इकाई होने के कारण सभी स्थानीय मामलों में प्रशासन करती थी। जिन गाँवों की जनसंख्या ३०० से कम थी वे या तो प्रत्यक्ष रूप से स्वयं शासित होते थे या कई गाँवों को मिलाकर प्रत्येक दल एक सोवियत का निर्वाचन करता था। इसी प्रकार जिन फैक्टरियों के कर्मचारियों की संख्या १०० से कम होती थी वह कई फैक्टरियों को मिलाकर एक सामान्य फैक्टरी-सोवियत की स्थापना कर लेते थे। यह फैक्टरी सोवियत फैक्टरियों में कार्य करनेवाले कर्मचारियों के सामाजिक जीवन, शिक्षा, रहन सहन एवं गृहों आदि की देखभाल करती थी।[1] इस प्रकार ग्रामों एवं नगरों की फैक्टरी-सोवियत स्थानीय शासन प्रबन्ध में अपना बड़ा महत्व रखती थीं और अपने अधिकार क्षेत्र में स्वतन्त्र थीं। परन्तु इतना होते हुए भी वह केन्द्र द्वारा नियंत्रित होती थी। साम्यवादी विचारकों द्वारा ही ग्राम अथवा कारखानों की सोवियत अपना कार्य करती थीं।

ग्राम अथवा कारखानों की सोवियत के ऊपर जिलों की सोवियत होती थी जो ग्राम अथवा कारखानों की सोवियतों के सदस्यों द्वारा ही निर्मित होती थी। जिले की सोवियत के सदस्य प्रत्यक्ष रूप से कृषिकों एवं कर्मचारियों द्वारा न चुनकर ग्राम अथवा कारखानों की सोवियतों के सदस्यों द्वारा चुने जाते थे। अतः जिले के सोवियतों के चुनाव में प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली प्रचलित थी, जो कि सोवियत शासन प्रणाली की एक विशेषता थी। जिले की सोवियत जिला सम्बन्धी शासन की देखरेख करती थी और यह भी अपने अधिकार क्षेत्र में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थीं। परन्तु यह भी केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रित होती थी।

जिले की सोवियत से बड़ी इकाई प्रदेश की कांग्रेस होती थी। प्रदेश की कांग्रेस कई जिलों से मिलकर बनती थी, प्रदेश की कांग्रेस के सदस्य कुछ तो जिले की सोवियतों द्वारा निर्वाचित होते थे और कुछ नगर एवं कारखानों के सोवियतों के सदस्यों द्वारा। इस दिशा में नगर सोवियतों को ग्राम सोवियतों से अधिक अधिकार प्राप्त थे, क्योंकि ग्राम सोवियत प्रत्यक्ष रूप से प्रदेश सोवियत में कोई भी सदस्य निर्वाचित करके नहीं भेजते थे। प्रदेश कांग्रेस का अधिकार क्षेत्र जिले की सोवियत से अधिक विस्तृत था। प्रदेश कांग्रेस से बड़ी इकाई गणतन्त्र राज्य थे। सम्पूर्ण यू० एस० एस० आर० सात गणतन्त्र राज्यों में विभाजित था। प्रत्येक गणतन्त्र में कई प्रदेश होते थे। प्रत्येक गण-

---

1. **A Guide to Modern Polities,** p. 226.

तन्त्र की एक कांग्रेस हुआ करती थी, जिसके सदस्य प्रदेश कांग्रेस द्वारा निर्वाचित होते थे।

उपरोक्त ७ गणतन्त्र राज्यों से मिलकर सोवियत समाजवादी गणतन्त्र का संघ राज्य वना था। (यू० एस० एस० आर०) सन् १९१८ के प्रारम्भ तक यह संघ रूस के समाजवादी संघीय सोवियत गणतन्त्र के नाम से ही प्रसिद्ध था। परन्तु सन् १९१८ तथा १९३२ के मध्य में ६ और गणतन्त्र राज्य रूस के समाजवादी संघीय सोवियत गणतन्त्र राज्य (आर० एस० एफ० एस० आर०) में मिल गए थे।

इन गणतन्त्र राज्यों में वहुत से राज्यों के छोटे एवं स्वतन्त्र राज्यों के अपने स्वयं संघ थे, जिनके संविधान सोवियत संविधान के सिद्धान्तों पर आधारित थे। इन गणतन्त्र राज्यों को शिक्षा, स्वास्थ्य, सांस्कृतिक भाषण, मुद्रण एवं लेखन शक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इतना होते हुए भी कम से कम सिद्धान्त: संघ की सभी इकाइयों को संघ से अलग हो जाने का अधिकार प्राप्त था। यह एक ऐसा अनोखा अधिकार था जो कि विश्व के किसी भी संघ राज्यों को प्राप्त न था।

यू० एस० एस० आर० की केन्द्रीय सरकार :—

समाजवादी सोवियत गणतन्त्र संघ के शासन की सवसे बड़ी इकाई केन्द्रीय सरकार थी, जो कि सोवियतों की कांग्रेस के नाम से प्रसिद्ध थी। इस कांग्रेस का प्रत्येक प्रतिनिधि नगर सोवियत के २५,००० मतदाताओं पर तथा प्रदेशीय कांग्रेस के १२५,००० जनसंख्या पर निर्वाचित होता था। इस केन्द्रीय सरकार में लगभग २,००० सदस्य होते थे, जिसकी बैठक वर्ष में केवल एक बार होती थी। कांग्रेस ही अपना मंत्रिमण्डल वनाती थी। मार्च सन् १९३१ तक इस मंत्रिमण्डल के ४७२ सदस्य ७ गणतन्त्र राज्यों से अनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर चुने जाते थे। कांग्रेस कौंसिल ऑफ नेशनलटीज के सदस्यों का भी चुनाव करती थी, जिसमें १३८ सदस्य होते थे। इन सदस्यों में प्रत्येक गणतन्त्र से ५ सदस्य तथा प्रत्येक प्रदेश से १ सदस्य चुना जाता था। इन दोनों संस्थाओं द्वारा यू० एस० एस० आर० की केन्द्रीय कार्यकारिणी निर्मित होती थी, जो संप्रभुतायुक्त होती थी और उसे सभी विधायिनी, प्रशासकीय. एवं न्याय सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे।

शासन की इकाइयाँ

(१) ग्राम एवं नगर अथवा कारखाने की सोवियत, जिसके सदस्य क्रमशः कृषकों एवं कर्मचारियों द्वारा प्रतिनिधित्व करते थे।

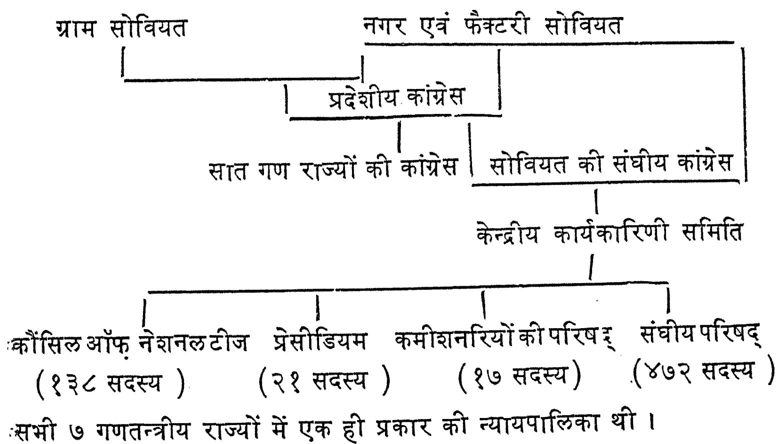
(२) ज़िला सोवियत, जिनके सदस्य ग्राम सोवियत एवं नगर अथवा कारखानों की सोवियतों द्वारा चुने जाते थे।

(३) प्रदेश कांग्रेस, जिसके सदस्य ज़िले की सोवियत तथा नगर एवं कारखानों की सोवियत के सदस्यों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते थे।

(४) सात स्वतन्त्र गण राज्यः—इन सभी गणराज्यों की एक कांग्रेस होती थी, जिसके सदस्य प्रदेशीय कांग्रेस द्वारा चुने जाते थे।

(५) केन्द्रीय शासनः—यह यू० एस० एस० आर० के शासन की सब से बड़ी इकाई थी, जिसके सदस्य प्रदेशीय कांग्रेस तथा नगर एवं कारखानों की सोवियत के सदस्यों द्वारा चुने जाते थे।

विभिन्न सोवियतों का ग्राफ



सभी ७ गणतन्त्रीय राज्यों में एक ही प्रकार की न्यायपालिका थी।

सोवियत संविधान संशोधनों के अंतर्गत:—यू० एस० एस० आर० का सम्पूर्ण संविधान मार्क्स के सिद्धान्तों पर आधारित था। अतः इसमें समय समय पर संशोधन होते रहे जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं:—

(१) ११ दिसम्बर सन् १९३३ को संविधान में एक संशोधन किया गया, जिसके अनुसार यू० एस० एस० आर० के अत्यधिक अर्थहीन दूरस्थ पूर्वी प्रान्त कर से मुक्त कर दिये गये।

(२) २७ फरवरी सन् १९३४ के संशोधन के अनुसार अनाज से भरणी व्यक्तियों को ऋण से मुक्त कर दिया गया।

(३) १७ मार्च सन् १९३४ के संशोधन में श्रमिकों का वेतन उनके कार्यों के अनुसार निश्चित किया गया। इसी वर्ष २३ अप्रैल के संशोधन में शिक्षा एवं राजनैतिक शिक्षा में सुधार किये गये और पुनः २९ नवम्बर को शासन प्रणाली समाप्त कर दी गयी।

(४) १७ फरवरी सन् १९३५ के संशोधन में सामुदायिक कृषी के नियमों में संशोधन किये गये तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकारों में वृद्धि की गयी। इसी वर्ष १ जून को निराश्रय एवं घर-द्वार रहित बच्चों के पालन पोषण के लिये एक अलग नियम ही बना दिया गया।

(५) ४ सितम्वर सन् १९३५ को शिक्षा सम्वन्धी नियम वनाये गये, जिसमें पाठशालाओं के सुधार की ओर बहुत ध्यान दिया गया। इसी वर्ष २९ दिसम्बर के संशोधनों में परिवार नियोजन सम्बन्धी नियम को समाप्त कर दिया गया और विश्वविद्यालयों में प्रवेश सम्वन्धी नियम बनाये गये।

(६) २९ फरवरी सन् १९३६ को राजकीय धन सम्बन्धी नियम बनाये गये तथा इसी वर्ष ११ अप्रैल को राजकीय आर्थिक सहायता के उन्मूलन एवं लकड़ी के कारखानों के सम्बन्ध में भी नियम बनाये गये।

जुलाई सन् १९३५ में नवीन संविधान का निर्माण करने के लिये जोसेफ स्तालिन की अध्यक्षता में एक कमेटी की नियुक्ति की गयी जिसके लिटवीनो (Litvinov), रादेक (Radek), विशिस्की (Vyshinsky), वोरोशिलोव (Voroshilov), मोलोटोव (Molotov), बुखारिन (Bukharin), अकुलोव (Akulov), चुवार (Chubar), जुडानोव (Zhdanov) तथा कगानोविच (Kaganovitch) भी प्रमुख सदस्य थे। इस कमेटी ने लगातार १ वर्ष परिश्रम करने के पश्चात् एक नवीन संविधान का प्रालेख तैयार किया। यह प्रालेख केन्द्रीय कार्यकारिणी द्वारा पारित करने के पश्चात् जनसमूह के संशोधन एवं अनुमति के लिये १२ जून सन् १९३६ को प्रकाशित किया गया। जन समूह के संशोधन के बाद सोवियत कांग्रेस ने कुछ संशोधनों के पश्चात् ५ दिसम्बर सन् १९३६ को पारित कर दिया, जो सन् १९३७ में लागू हुआ।

जिस समय उपरोक्त संविधान कांग्रेस में विचार करने के लिये रखा गया था। उस समय स्तालिन ने कहा था कि यू० एस० एस० आर० अब समाजवादी प्रणाली द्वारा पूँजीवर्ग के ऋण से निस्तार हो रहा है। इस संविधान के अन्तर्गत कृषि का सामाजिक प्रभुत्व, वन कारखानों की पैदावार, विभिन्न पौधों एवं औज़ार, अद्भुत कार्यों की समाप्ति, निर्धन लोगों की निर्धनता का निवारण तथा सम्पत्ति-

शाली पुरुषों की सम्पत्ति एवं बेकारी की समस्या आदि सम्बन्धी सभी समस्याओं का निवारण किया जा रहा है ।

सन् १९३६ का संविधान :—सन् १९३६ का नवीन संविधान पूर्णरूप से समाजवादी सिद्धान्त पर आधारित था । अतः इसी कारण यह संविधान कृषकों एवं श्रमजीवियों का संविधान कह कर घोषित किया गया था, जो परिश्रमी व्यक्तियों के प्रतिनिधियों द्वारा राजनैतिक आधारों पर आधारित हुआ । संविधान की सभी शक्तियाँ नगरों एवं ग्रामों के सभी श्रमजीवियों में निहित थीं । सम्पूर्ण देश के सभी वन, खनिज पदार्थ, मिल, कारखानें, सड़के एवं यातायात के सभी साधन राज्य की सम्पत्ति कह कर घोषित किये गये । अर्थात् देश की सब सम्पत्ति वहाँ के निवासियों की सम्पत्ति कह कर घोषित की गयी । सभी कृषकों के पास जो भी कृषि भूमि उनके पास थी वह बिना किसी धन के उन्हें दे दी गयी । यही नहीं कि केवल कृषि भूमि ही दी गयी हो किन्तु खेतों से लगी हुए वाटिकायें एवं गृह तथा कृषि के औजार भी बिना किसी मूल्य के उन्हें दे दिये गये । सभी लोगों को थोड़ी व्यक्तिगत सम्पत्ति का भी अधिकार दिया गया ।

संविधान की दो धाराओं द्वारा ही सोवियत राज्य के आर्थिक स्तर का ज्ञान हो जाता है; जैसा कि धारा ११ में कहा गया है कि राष्ट्रीय आय का मुख्य उद्देश्य ही जनता को समृद्धिशाली एवं श्रमिक वर्ग की सांस्कृतिक उन्नति तथा यू० एस० एस० आर० की स्वतन्त्रता एवं रक्षा को बढ़ाना है । इसके अतिरिक्त धारा १२ में कहा गया है कि यू० एस० एस० आर० का प्रत्येक नागरिक अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करेगा; जो व्यक्तिगत कार्य नहीं करेगा उसे भोजन भी नहीं मिलेगा ।

इस संविधान की दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि संविधान के १० वें अध्याय में नागरिकों के मूल अधिकारों की घोषणा की गयी है । इस अध्याय के अन्तर्गत नागरिकों को निम्नलिखित अधिकार दिये गये हैं:—

(अ) नागरिकों को कार्य करने, राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति को सामाजिक आधार पर संगठित करने, सोवियत समाज को उन्नतिशील बनाने; आर्थिक संकट को समाप्त करने तथा बेकारी की समस्या को हल करने के लिए कहा गया है ।

(ब) प्रत्येक श्रमिक को ७ घंटे लगातार काम करने के पश्चात् आराम मिलने तथा एक वर्ष काम करने के पश्चात कुछ समय वेतन सहित अवकाश मिलने, सेनेटोरियम का प्रबन्ध करने, कर्मचारियों के विश्राम के लिये विश्रामशालायें, क्लब आदि का प्रबन्ध करने के लिये कहा गया है ।

(स) सभी कर्मचारियों को बीमारी कार्य की क्षमता नष्ट होने; वृद्धावस्था; कर्म-

चारियों के सामाजिक बीमा एवं उनके स्वास्थ्य सुधार का भी प्रबन्ध किया गया है।

(द) शिक्षा के क्षेत्र में उच्च शिक्षा ग्रहण करने तथा निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने एवं देशी भाषाओं के लिए स्कूलों को आज्ञा देने का भी प्रयोजन है। इसके अतिरिक्त स्कूलों में कृषि-शिक्षा, मशीन, ट्रैक्टर सम्बन्धी शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया है।

उपरोक्त अधिकारों में कोई लिंग-भेदभाव नहीं है। पुरुषों की भाँति सभी स्त्रियों को कार्य करने, वेतन ग्रहण करने, शिक्षा एवं सामाजिक मामलों में बराबर का अधिकार प्राप्त है। राज्य की ओर से स्त्रियों को प्रसवकाल में वेतन सहित अवकाश मिलने तथा उनके बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षा एवं स्वास्थ्य के प्रबन्ध का भी प्रयोजन किया गया है।

सभी नागरिकों को बिना किसी जाति, धर्म, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक भेदभाव के बराबर का अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म-पालन की पूर्ण स्वतन्त्रता है। इसके अतिरिक्त अपने विचार प्रकट करने, सभा एवं मीटिंग तथा प्रदर्शन करने का अधिकार प्राप्त है।

प्रत्येक मनुष्य की संरक्षा कानून द्वारा सुरक्षित है। इसके साथ-साथ कोई व्यक्ति बिना अभियोग के बन्दी नहीं बनाया जा सकता है। प्रत्येक नागरिक को संविधान के नियमों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। राज्य की सम्पत्ति अपनी सम्पत्ति समझना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है।

प्रत्येक व्यक्ति को देश की रक्षा के लिए सैनिक सेवा करना आवश्यकीय समझा जाता है। राजद्रोह करना, शपथ का उल्लंघन करना, शत्रु से मिलने, सेना का क्षय करना एवं विदेशी राज्य के लिए गुप्तचर का कार्य करना बहुत ही कठिन अपराध समझा जाता है और ऐसा कार्य करनेवाले व्यक्ति को कड़ी से कड़ी सजा दी जाती है।

यू० एस० एस० आर० एक अद्भुत संघ है

यू० एस० एस० आर० के संघ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह संघ संघों का संघ है। यू० एस० एस० आर० एक राष्ट्रीय राज्य नहीं है, किन्तु राज्यों का राष्ट्र है, जिनकी संख्या १६ है और वे अपना अलग-अलग प्रभुत्व रखते हैं, जिनमें लगभग १५० भाषाएँ बोली जाती हैं। संविधान के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य को सांस्कृतिक संगठन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है। सम्पूर्ण यू० एस० एस० आर० का संविधान चार श्रेणियों में विभाजित है—(१) १६ गणराज्यों का संघ, जो केन्द्रीय

संघ कहलाता है, (२) कई स्वराज्य गणतन्त्र जो कि केन्द्रीय गणतन्त्र में सम्मिलित हैं, (३) स्वतन्त्र प्रदेश, जो स्वराज्य गणतन्त्र के भाग हैं, (४) राष्ट्रीय क्षेत्र।

उपरोक्त १६ संघीय गणतन्त्र राज्यों को अपने अपने अधिकार क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है और सभी को केन्द्रीय सरकार द्वारा भी बराबर अधिकार प्राप्त हैं। इन गणतन्त्र राज्यों में आर० एस० एफ० एस० आर० सबसे बड़ा है। प्रत्येक गण-तन्त्र का अपना संविधान है, अपनी भाषा है और उसे संघ से अलग हो जाने का अधि-कार प्राप्त है। वे अपने राजनैतिक दूतावास सम्बन्धी सम्बन्ध विदेशी राज्यों से स्थापित कर सकते हैं तथा अपनी स्वयं रक्षा-सेना रख सकते हैं। यूक्रेन (Ukaine) तथा बायलोरसिया (Byelorissia) ने इस अधिकार से अधिकतम लाभ उठाया है।

संघीय गणतन्त्र राज्यों में बहुत से सांस्कृतिक एवं राजनैतिक प्रजातन्त्रात्मक थे, परन्तु बाद को वह स्वयं प्रजातन्त्र राज्य बन गये और उन्होंने अपना संविधान बना लिया तथा बाद को सोवियत संघ में प्रत्यक्ष रूप से प्रतिनिधित्व करने लगे। उनका अब भी अपना संविधान है और अपने नागरिक हैं।

अध्याय ५

भारत और पाकिस्तान के संघ

सन् १८५७ के सैन्य विद्रोह के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने शासन की बागडोर अपने हाथों में लेकर भारत के सुप्रबन्ध के लिए सन् १८५८ का ऐक्ट पारित किया। इसके पश्चात् भारतीय शासन प्रणाली में सुधार करने के हेतु क्रमशः १८६१ में इंडिया कौंसिल ऐक्ट बना तथा १८९२ में पुनः इस ऐक्ट में सुधार किये गये। परन्तु उपरोक्त दोनों ऐक्टों द्वारा शासन प्रणाली में कोई विशेष मूल परिवर्तन नहीं हुआ। सन् १९०९ में पुनः मार्ले-मिन्टो सुधार पास किये गये। परन्तु इस ऐक्ट में भी शासन का उत्तर-दायित्व भारतीय हाथों में नहीं दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस के उदार नेता श्री गोखले को निराशा हुई। इसी समय सन् १९०९ तथा १९१९ के मध्य में, भारत में कांग्रेस द्वारा चलाया हुआ राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड़ता गया। इधर सन् १९१४ के प्रथम महायुद्ध में भारतीय राजाओं एवं जनता को ब्रिटिश सम्राट के प्रति निष्ठा दिखाने का अच्छा सुअवसर मिला। भारतीयों ने तन, मन, धन तथा जन से युद्ध में ब्रिटिश सरकार को योग दिया। भारतीय राजाओं ने सरकार को न केवल युद्ध में अपने सैनिक ही भेजे, किन्तु कुछ ने तो स्वयं जाकर युद्ध में भाग लिया। भारतीय सेनाएँ फ्रांस, पूर्वी अफ्रीका, मेसोपोटामिया और फिलस्तीन में युद्ध करने के लिए गयीं। भारत ने न केवल सैनिक सहायता ही दी वरन् युद्ध के व्यय में भी भाग लिया और भारतीय धारा के अनुसार भारत ने १० करोड़ पौण्ड ब्रिटिश सरकार को देना स्वीकार किया। उपरोक्त विभिन्न सहयोगों द्वारा भारतीयों में अभिमान एवं आत्मसम्मान की भावना जागृत हुई, कि वे संकट के समय भी ब्रिटिश सरकार को सहायता देने में अन्य देशों की अपेक्षा पीछे न रहे। इसके परिणामस्वरूप भारत भी ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों की भाँति समान व्यवहार का अधिकार पाने लगा। अतः अब भारतीयों के मस्तिष्क में स्वराज्य की भावना अपना घर बनाने लगी। इसीलिए जब युद्ध समाप्त हो गया उस समय सुधारों के प्रश्न पर भारतीयों ने उत्तर-दायी शासन की माँग की घोषणा की, जिसका फल यह हुआ कि ब्रिटिश सरकार ने २० अगस्त सन् १९१७ को निम्नलिखित घोषणा करके अपनी नीति स्पष्ट की कि

"सम्राट की सरकार की नीति जिसे भारत सरकार का समर्थन प्राप्त है, यह है कि शासन की प्रत्येक शाखा में भारतीयों को अधिक भाग मिले और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत में उत्तरदायी शासन की प्रगतिशील प्राप्ति के उद्देश्य से स्वशासित संस्थाओं का शनैः-शनैः विकास किया जाय और इस नीति में प्रगति धीरे-धीरे की जाय।"[1] इस घोषणा में तीन आश्वासन दिये गये थे—(१) स्थानीय स्वशासन के रूप में जहाँ जनता अपने मामलों का प्रबन्ध करना सीखेगी वहाँ स्वशासित संस्थाओं की स्थापना; (२) शासन की प्रत्येक शाखा में भारतीयों को अधिक पद देकर उनकी संख्या में वृद्धि; (३) औपनिवेशिक स्वराज्य की शनैः-शनैः स्थापना करना। सन् १९१७ की यह घोषणा एक बहुत ही अधिक महत्व रखती थी, क्योंकि यही घोषणा सन् १९१९ के सुधारों की आधारशिला बनी।

तत्पश्चात् सन् १९१९ में एक ऐक्ट पास किया गया जो मान्टफोर्ड सुधारों के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मान्टफोर्ड के सुधारों में चार सिद्धान्त निहित थे—(१) संस्थाओं का पूर्ण सार्वजनिक नियन्त्रण; (२) प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की प्रगतिशील प्राप्ति का आरम्भ; (३) सरकार को प्रभावित करने के लिए अधिक अवसर देने के हेतु केन्द्रीय धारा सभा का प्रजातंत्रीकरण और विस्तार तथा (४) गृह नियन्त्रण में नरमी।

उपरोक्त व्यावहारिक सुधारों में मुख्य अंग इस प्रकार दिखलाये जा सकते हैं:—

अनुत्तरदायित्व और केन्द्रीयकरण के पुराने विचार को त्याग दिया गया और भारत के ब्रिटिश साम्राज्य का एक भाग रहते हुए भी उसकी स्वशासित संस्थाओं के शनैः-शनैः विकास के लिए पहला कदम उठाया गया। इस प्रकार यह भारतीय वैधानिक इतिहास में नवयुग का निर्देशक है। उत्तरदायी शासन का पहला भाग प्रान्तों में दुहरे शासन के रूप में पुनः स्थापित हुआ।

धारासभा में प्रत्यक्ष चुनाओं की व्यवस्था प्रथम बार की गयी और सदस्यों की संख्या भी पर्याप्त मात्रा में बढ़ा दी गयी, ताकि यह कहा जा सके कि धारासभा पहले से अधिक प्रतिनिधित्व करती है।

धारासभा के अधिकारों में वृद्धि की गयी ताकि भारतीय धारासभाएँ प्रतिनिधिक सरकार के पथ पर अग्रसर हो सकें। प्रस्ताव उपस्थित करने, सरकार की आलोचना के लिए स्थगन प्रस्ताव रखने, वित्त की माँग पर मत देने, सभापति चुनने इत्यादि के अधिकार प्रतिनिधि प्रथा के विकास को स्पष्ट करते हैं। प्रान्तों में मंत्रियों का

---

1. **Montford Report,** p. 1

धारासभा के प्रति उत्तरदायी होना भी एक महत्वपूर्ण प्रगति थी। साथ ही प्रान्तों को धनसम्बन्धी अधिकार तथा स्थानीय स्वशासन का अधिकार दे दिया गया जिससे प्रत्येक प्रान्त भारत के भावी संघ में स्वतन्त्र राज्यों के समूह की इकाई बन सके।

मिन्टो-मार्ले सुधारों के अन्तर्गत केन्द्रीय धारासभा में राजकीय कर्मचारियों का बाहुल्य रखा गया था और प्रान्तीय धारा सभा में सरकारी एवं गैर सरकारी सदस्य भी सम्मिलित थे। परन्तु अब मान्टफोर्ड के सुधारों में सब धारासभाओं में निर्वाचित सदस्य बहुसंख्यक कर दिये गये तथा सरकारी कर्मचारियों की संख्या कम कर दी गयी। केन्द्रीय विधान मंडल की एक सभा के स्थान पर दो सभाएँ कर दी गयीं; कौंसिल ऑफ स्टेट तथा विधान सभा।

प्रान्तीय धारासभाओं का विस्तृत प्रतिनिधित्व के आधार पर संगठन किया गया और शासन सम्बन्धी विषयों का प्रान्तीय एवं केन्द्रीय श्रेणियों में विभाजन किया गया। आय के विभाजित भाग समाप्त कर दिये गये। उपरोक्त मान्टफोर्ड सुधारों ने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं जिससे भविष्य में संघीय सरकार सम्भव हो सके।

गृह-नियन्त्रण की शिथिलता मान्टफोर्ड सुधारों का बहुत ही महत्वपूर्ण अंग था। सरकार के प्रतिनिधित्व स्वरूप को वास्तविकता देने के लिए भारत मन्त्री के नियन्त्रण को कम करना आवश्यक समझा गया। इस क्षेत्र में यद्यपि कानून द्वारा कोई परिवर्तन नहीं हुए तथा सभी बातें पहले जैसे ही रहीं किन्तु प्रथाओं के आधार पर उपयुक्त शिथिलता उत्पन्न की गयी। मान्टफोर्ड सुधारों के अन्तर्गत भारतीय सभा में सदस्यों की संख्या में परिवर्तन एवं भारत के लिए हाई कमिश्नर की व्यवस्था करके गृह-शासन में परिवर्तन किये गये।

इन सुधारों में सबसे प्रमुख सुधार मतदान का किया गया जो वास्तविकता में संघशासन की स्थापना की प्रथम सोपान था। मतदान की योग्यता को पहले से घटाकर मतदाताओं की संख्या अधिक कर दी गयी जिसके परिणामस्वरूप भारतीय जनता को अधिक मतदान देने का अधिकार प्राप्त हो गया। इस प्रकार वयस्क जनसंख्या के १० प्रतिशत लोगों को मत देने का अधिकार मिल गया। स्थानीय स्वायत्त शासन में अधिक से अधिक मनुष्यों को राजनैतिक शिक्षा ग्रहण करने एवं उत्तरदायी शासन की नींव डालने के लिये स्थानीय संस्थाओं को सबसे अधिक स्वराज्य मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड के सुधारों द्वारा मिला।

उपरोक्त सुधारों ने राजाओं की परिषद् को भी जन्म दिया, जिससे राजागण सामूहिक रूप में अखिल भारतीय मामलों के अधिक निकट सम्पर्क में आ सकें। यह भारतीय संघ की स्थापना की ओर पहला कदम था।

इस प्रकार यद्यपि उत्तरदायी सरकार ने भारत को एक स्थायी संघ निर्माण करने की ओर अवश्य ही पथ दिग्दर्शित किया, परन्तु सफलतापूर्वक कार्य न करने के कारण दोहरे शासन की व्यवस्था सम्भव सिद्ध न हो सकी।

प्रान्तीय संगठन—सन् १९१५ भारतीय इतिहास के अंग्रेजी काल का पहला समय था जब कि मि० कर्टिस और उनके गोलमेज दल ने भारत के लिए दोहरे शासन पर विचार किया था। मि० कर्टिस का मत था कि भारत जैसे देश में जहाँ प्रजातांत्रिक प्रथाएँ नहीं हैं, पूर्ण उत्तरदायी शासन एक साथ स्थापित नहीं किया जा सकता। उन्होंने कहा था कि "यह एक ढालू चट्टान पर कदम रखने की भांति होगा और अशांति की ओर कूदकर विपत्ति और विनाश को निमंत्रण देना होगा।" इसीलिए प्रान्तों की कार्यपालिका को दो भागों में विभक्त कर दिया गया। एक भाग जनता के प्रति उत्तरदायी था और दूसरा भाग गवर्नर और गवर्नर जनरल द्वारा ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायी। इस प्रान्तीय कार्यपालिका के प्रथम भाग के अन्तर्गत पुलिस, वित्त एवं शासन प्रबन्ध सम्बन्धी विषय होते थे जो रक्षित विभाग के नाम से प्रसिद्ध था। इसका प्रबन्ध गवर्नर की परिषद् द्वारा होता था। गवर्नर एक आई० सी० एस० कर्मचारी एवं एक निर्वाचित व्यक्ति की नियुक्ति करता था जो कि उसकी परिषद् के सदस्य होते थे। इस परिषद् में प्रान्त की आवश्यकता के अनुसार २ से ४ तक सदस्य हो सकते थे। दूसरा भाग हस्तान्तरित या राष्ट्रनिर्माण करने वाला विभाग कहलाता था जिसमें शिक्षा, स्वायत्त शासन आदि सम्मिलित थे जिनका प्रबन्ध जनता द्वारा निर्वाचित मंत्रियों द्वारा होता था जो विधानमंडल एवं गवर्नर के प्रति उत्तरदायी होते थे। गवर्नर ही दोनों विभागों का अध्यक्ष हुआ करता था।

सन् १९१९ के मान्टफोर्ड के सुधारों द्वारा उपरोक्त दोहरा शासन मद्रास, बंबई, पंजाब, यू० पी०, सी० पी०, बिहार, और उड़ीसा, बंगाल तथा आसाम एवं वर्मा नामक प्रान्तों में लागू किया गया। इस बार रक्षित विभाग सरकारी नियंत्रण में तथा हस्तान्तरित विभाग सार्वजनिक नियंत्रण में रखा गया। इस प्रकार कार्यपालिका का यह विभाजन आवश्यकीय कर दिया गया। यही नहीं, दोनों विभागों के अन्तर्गत आनेवाले विषयों की सूची भी तैयार की गयी। यदि कभी दोनों विभागों के विषयों में मतभेद होता था तो वह प्रान्त के गवर्नर द्वारा निश्चित होता था और उसका निर्णय अन्तिम निर्णय माना जाता था।

दोहरे शासन के अन्तर्गत प्रत्येक प्रान्त में वित्त विभाग कार्यपालिका परिषद् के एक सदस्य के अधीन रखा गया, जो कि आई० सी० एस० होता था और प्रत्यक्ष रूप से भारत-सचिव के प्रति उत्तरदायी होता था। यह विभाग दोनों, रक्षित और

हस्तान्तरित विभागों के वित्त पर नियंत्रण रखता था। यही विभाग बजट एवं पूरक अनुमान तैयार करता था; टैक्स घटाने एवं बढ़ाने तथा व्यय की समस्त योजनाओं की जाँच करता था। परन्तु इस प्रकार के शासन में मंत्रियों का कर्मचारियों पर किंचित्‌मात्र भी नियंत्रण नहीं रहता था। मंत्री उनका स्थान परिवर्तन, पदच्युति एवं उनकी पदोन्नति नहीं रोक सकते थे।

कार्यपालिका सम्बन्धी मामलों में गवर्नर ही अध्यक्ष होता था। वह अपनी परिषद् के सदस्यों की सहायता से कार्य करता था, मंत्रियों की नियुक्ति संसद् के सदस्यों में से करता था। गवर्नर का कार्यकाल ५ वर्ष होता था। गवर्नर तथा उसकी परिषद् के सदस्य भारत सरकार तथा भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी होते थे। गवर्नर परिषद् का अध्यक्ष होने के कारण मतभेद के अवसरों पर निर्णायक मत देने का अधिकारी होता था।

प्रान्तों में दुहरे शासन की विफलता के कारण

यद्यपि प्रान्तों की दोहरे शासन प्रणाली में रक्षित एवं हस्तान्तरित विभागों के अधिकार क्षेत्र का विभाजन अवश्य ही हो गया था, परन्तु वास्तविकता में कार्यों का विभाजन ठीक ठीक न हो सका था। हस्तान्तरित विभाग को रक्षित विभाग पर अत्यधिक निर्भर रहना पड़ता था और शंकाप्रद मामले एक विभाग से दूसरे विभाग को फुटबाल की भाँति ठुकरा दिये जाते थे।

गवर्नर मंत्रियों के कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप किया करता था। उदाहरणार्थ, एक समय मध्य प्रदेश के मंत्री श्री केलकर ने म्यूनिसिपल भवन पर राष्ट्रीय झंडा फहराने की आज्ञा दे दी, तब गवर्नर ने हस्तक्षेप नहीं किया, परन्तु जब उस म्यूनिसिपैलिटी ने अपने कर्मचारियों को खद्दर पहनने का आदेश देते हुए एक प्रस्ताव स्वीकार किया तो गवर्नर के परामर्श से डिप्टी कमिश्नर की आज्ञा द्वारा यह प्रस्ताव रद्द कर दिया गया। श्री चिन्तामणि ने, जो यू० पी० के शिक्षा मंत्री थे अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि "वास्तविक अधिकार मंत्रियों के पास न रहकर गवर्नर के पास हैं। गवर्नर सभी छोटे एवं बड़े मामलों में हस्तक्षेप करता है।" इसके अतिरिक्त कुछ मंत्री अपने पद पर स्थायी रूप से बने रहने के लिए सदैव गवर्नर के कृपापात्र बने रहते थे। विभागों के अध्यक्ष भी अधिकतर आई० सी० एस० होते थे जिनकी पहुँच प्रत्यक्ष रूप से गवर्नर तक होती थी। वे लोग सदैव महत्वपूर्ण विषयों पर वाद विवाद करते थे। इसके विपरीत मंत्रीगण सदैव ही उनके पथ प्रदर्शक बनना चाहते थे।

वित्त सम्बन्धी मामलों में भी सदैव कार्यपालिका के सभी विभागों में अनबन रहती थी क्योंकि वित्त विभाग कार्यपालिका के एक सदस्य के अधीन रहता था

और वह वित्त एवं अन्य विभाग के अध्यक्षों के पास सरकार की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए व्यय के प्रस्तावों को न भेजने का आदेश भेजा करता था। इसी प्रकार यदि धन रहता भी था तो भी वह सदैव कुछ न कुछ बातों का सहारा लेकर धन देने से मना कर देता था। इधर व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होने के कारण मंत्रियों की दशा सदैव शोचनीय बनी रहती थी।

यद्यपि प्रान्तों में मंत्री अवश्य थे परन्तु उनका कोई मंत्रिमण्डल न था ; व्यवस्थापिका सभाओं की स्थापना भी साम्प्रदायिक ढंग पर हुई थी, इसीलिए किसी भी राजनैतिक दल का संगठन न हो सका था। केवल स्वराज्य-दल ही एक संगठित दल था परन्तु वह भी विधान सभा के कार्यों में सहायता न कर सका। इन सब दोषों के होते हुए भी दुहरा शासन चलता रहा परन्तु सामूहिक उत्तरदायित्व की अनुपस्थिति, गवर्नर के अत्यधिक हस्तक्षेप, कर्मचारियों की मंत्रियों के साथ मिलकर कार्य करने में असफलता, वित्त विभाग का नियंत्रण एवं रक्षित और हस्तान्तरित विभागों के पारस्परिक आघातों के कारण दुहरा शासन असफल रहा।

जहाँ तक प्रान्तीय एवं केन्द्रीय शक्तियों के विभाजनों का प्रश्न है मान्टफोर्ड सुधारों में केन्द्रों एवं प्रान्तों की दो पृथक् सूचियाँ तैयार की गयी थीं। केन्द्रीय सूची में रक्षा, सार्वजनिक ऋण, शुल्क और चुंगी, डाक व तार, यातायात के साधन, रेल, वायुयान और जलमार्ग, सार्वजनिक ऋण, मुद्रा, एकस्व और प्रतिलिप्यधिकार, दीवानी एवं फौजदारी सम्बन्धी दंडविधि आदि सम्बन्धी अधिकार सम्मिलित थे। प्रान्तीय सूची में स्थानीय स्वायत्त शासन, जनस्वास्थ्य एवं सफाई, शिक्षा, सार्वजनिक कार्य, जल संचय और सिंचाई, भूमिकर, अकाल सहायता, कृषि, जंगल, सहकारी संघ, न्याय, पुलिस, जेल आदि नामक अधिकार सम्मिलित थे। कोई समवर्ती सूची न थी। जो अधिकार प्रान्तीय सूची के अन्तर्गत न थे उन पर केन्द्र का ही अधिकार माना जाता था। परन्तु यदि किसी मामले को प्रान्त अपना स्थानीय मामला समझता था तो वह केवल गवर्नर जनरल द्वारा घोषित करने पर प्रान्तीय अधिकार क्षेत्र में मिल सकता था।

दोहरे शासन का अन्त होने पर देश भर में भारत-सरकार की नीति से जनता में असन्तोष व्याप्त हो गया। तब ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शासन-सुधारों की जाँच करने के लिए ८ नवम्बर सन् १९२७ को एक सायमन कमीशन की नियुक्ति करने की घोषणा की। इस कमीशन में केवल ७ अंग्रेज सदस्य थे और सर जान सायमन उसके अध्यक्ष थे। भारतीय सदस्य न होने के कारण इस कमीशन का पूरे देश में विरोध किया गया, क्योंकि इस कमीशन के अन्तर्गत भारत के भावी संविधान के

निर्माण के लिए विचार किया जा रहा था। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस गोरे कमीशन का पूर्ण बहिष्कार करने का निश्चय किया। भारतीय उदार दल ने भी इस कमीशन का पूर्ण रूप से बहिष्कार किया। परन्तु इतना होने पर भी सायमन कमीशन भारत आया और देश भर में भ्रमण करके साक्ष्य-संग्रह किया। प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकारों के पूर्ण सहयोग के साथ साथ मुस्लिम-लीग, दलित-वर्ग तथा ज़मींदार-वर्ग एवं व्यापारी-वर्ग ने भी उसका सहयोग दिया।

सायमन कमीशन की नियुक्ति के पूर्व सन् १९२५ में भारत में सर्वदल-सम्मेलन के समक्ष कामनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल विचार के लिए प्रस्तुत किया गया था। इस सम्मेलन ने श्रीमती वासन्ती देवी को कुछ भारतीय नेताओं के सहित उसी वर्ष ३ जुलाई को उपरोक्त बिल ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा पारित कराने के उद्देश्य से इंगलैण्ड भेजा। इस बिल का मुख्य ध्येय था भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य को प्राप्त कराना, परन्तु ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने इस पर कोई विचार नहीं किया।

तत्पश्चात् १९ मई सन् १९२८ को सर्वदल-सम्मेलन ने पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में भारत के लिए शासन विधान की रूपरेखा तैयार करने के लिए एक समिति की नियुक्ति की। इस समिति ने भारत में कनाडा एवं आस्ट्रेलिया की भाँति शासन प्रणाली स्थापित करने की रिपोर्ट २८ अगस्त सन् १९२८ को प्रस्तुत की। इसी वर्ष भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के अधिवेशन में इसे स्वीकार कर लिया गया और उसमें यह कहा गया कि ब्रिटिश सरकार इसे आगामी ३१ दिसम्बर सन् १९२९ तक स्वीकार कर ले। यदि सरकार इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेगी तो भारत अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग करेगा। ब्रिटिश सरकार ने इसे स्वीकार नहीं किया। सन् १९३० में सायमन कमीशन की रिपोर्ट भी प्रकाशित हुई, जिसमें केन्द्र में उत्तरदायी शासन के लक्ष्य की कोई विशेष प्रगति की ओर ध्यान नहीं दिया गया था। मार्च सन् १९३० में इस रिपोर्ट के प्रकाशित होने के पूर्व ही महात्मा गांधीजी ने सत्याग्रह नामक आंदोलन प्रारम्भ कर दिया था, क्योंकि यह निश्चित-सा था कि सायमन कमीशन की रिपोर्ट स्वीकृत न होगी। अतः ब्रिटिश सरकार ने भारतीय-शासन-विधान सम्बन्धी प्रश्न को हल करने के लिए नवम्बर सन् १९३० में गोलमेज सम्मेलन आमंत्रित किया। कांग्रेस ने इसका भी बहिष्कार किया। कांग्रेस तथा सरकार के मध्य समझौता कराने के लिए कई बार प्रयत्न किया गया परन्तु सफलता न मिल सकी। अन्त में ५ मार्च सन् १९३१ को गांधी-इरविन समझौता होने के कारण सत्याग्रह अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया। कांग्रेस भी गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए तैयार हो गयी।

यह समझौता एक राजनीतिक समझौता था । यह कांग्रेस और सरकार की हार्दिक संधि नहीं कही जा सकती; यही कारण था कि इसका प्रभाव कांग्रेसी नेताओं पर कुछ भी न पड़ा । इसीलिये ७ सितम्बर सन् १९३१ को द्वितीय गोलमेज सम्मेलन प्रारम्भ हुआ । इस बार अधिकांश कार्य उपसमितियों द्वारा ही होता रहा । महात्मा गांधी ने सम्मेलन के सम्मुख कांग्रेस की पूर्ण स्वाधीनता की माँग रखी । परन्तु ब्रिटिश सरकार, जिसमें अनुदार-दल का ही प्राधान्य था, ने सम्मेलन को साम्प्रदायिक उलझन में डाल दिया और भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न को खटाई में डालकर मुसलमानों, यूरोपियनों, भारतीय ईसाइयों, सिक्खों व दलित जातियों की साम्प्रदायिक माँगों को ही विशेष महत्व दिया । इसके फलस्वरूप २८ नवम्बर सन् १९३२ को पुनः लंदन में तृतीय गोलमेज सम्मेलन हुआ, जिसमें तीन महत्वपूर्ण बातें निश्चित की गयीं । सर्वप्रथम, भारतीय संघ की स्थापना के लिये ५० प्रतिशत जनसंख्या की देशी रियासतें संघ में सम्मिलित होने को तैयार होंगी । द्वितीय, केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में ३३⅓ प्रतिशत स्थान मुसलमानों को दिये जायँगे । अन्त में, सिंध व उड़ीसा नामक नये प्रान्त बनाये जायँगे । इस प्रकार सन् १९२७ में जो सायमन कमीशन द्वारा भारतीय विधान की रचना का कार्य आरम्भ हुआ था वह सन् १९३५ में पार्लियामेन्ट द्वारा पारित एक कानून द्वारा स्वीकृत किया गया ।

सन् १९३५ के ऐक्ट के अन्तर्गत अखिल भारतीय संघ की स्वीकृति की गयी, जिसमें केन्द्र में दुहरे शासन के रूप में आंशिक उत्तरदायित्व की पुनः स्थापना की गयी । इसके अतिरिक्त प्रान्तों को स्वराज्य, एवं गवर्नरों तथा गवर्नर जनरल के हाथों में रक्षण, विशेष उत्तरदायित्व और उल्लंघन करने की शक्तियों का भी प्रयोजन किया गया था । संघीय न्यायालय, संघीय रेलवे प्राधिकारी एवं भारत के रिजर्व बैंक की स्थापना भी उपरोक्त ऐक्ट के दूसरे लक्षण थे ।

संघीय कार्यपालिका—संघ की कार्यपालिका शक्ति इंग्लैण्ड के सम्राट द्वारा निर्वाचित गवर्नर जनरल में निहित थी । संघीय विषयों का विभाजन दो भागों में कर दिया गया था । गवर्नर जनरल के परामर्श के लिये एक परिषद् का भी प्रयोजन किया यगा था, जिसके सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक तीन हो सकती थी । परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर जनरल स्वयं करता था । उनका वेतन और नौकरी की शर्तें कौंसिल में भारत सचिव द्वारा निश्चित होती थीं । इसके अतिरिक्त एक मंत्रिपरिषद् का भी अलग प्रयोजन किया गया, जिसमें अधिक से अधिक १० सदस्य हो सकते थे । गवर्नर जनरल मंत्रिपरिषद् की सलाह से सभी कार्य करता था ।

परन्तु गवर्नर जनरल को विशेषाधिकार भी प्राप्त था, यदि किसी मामले में वह समझे कि मंत्रियों के कार्य से उसके किसी विशेष कार्य पर प्रभाव पड़ता है तो उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त था कि वह अपने निर्णयद्वारा उक्त कार्य कर सकता था। मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर जनरल स्वयं करता था।

गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के सदस्यों में से प्रत्येक के अधीन भारत-शासन के एक अथवा दो या दो से अधिक विभाग होते थे, जिनका वह प्रमुख होता था। प्रत्येक मंत्री अपने विभाग-सम्बन्धी कार्यों के संचालन के लिये भारतीय व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी न होकर गवर्नर जनरल के प्रति उत्तरदायी होता था। व्यवस्थापिका सभा उसके विरुद्ध कोई अविश्वास का प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकती थी और न व्यवस्थापिका द्वारा किसी सरकारी विल, प्रस्ताव अथवा आय-व्यय-पत्रक (Budget) की अस्वीकृति पर कार्यकारिणी के सदस्य त्यागपत्र देने को बाध्य थे। इस प्रकार यह कार्यकारिणी पूर्णतः अनुत्तरदायी थी।

गवर्नर जनरल ही मंत्रिपरिषद् की बैठकों का सभापतित्व करता था। गवर्नर जनरल को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे जिनमें मंत्रिमण्डल किंचित् भी बाधा नहीं डाल सकता था। जैसे भारत की शांति को गम्भीर खतरे से बचाने, संघीय सरकार की रक्षा करने, अल्पसंख्यकों के उचित हितों की रक्षा करने तथा नौकरियों के हितों की रक्षा करने एवं भारतीय रियासतों के अधिकारों के रक्षा करने के अधिकार सम्मिलित थे। इन मामलों में गवर्नर जनरल भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी था।

उपरोक्त अधिकारों के अतिरिक्त संघ सरकार के सभी कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य गवर्नर जनरल के नाम से होते थे। गवर्नर जनरल ही देश के सैनिक एवं असैनिक शासन का अध्यक्ष होता था, वह अपने कर्त्तव्यों के उचित पालन के लिए अध्यादेश जारी कर सकता था। यह अध्यादेश छः माह के लिये होते थे और फिर छः महीने के पश्चात् पुनः लागू किये जा सकते थे। अध्यादेश वह अपने मंत्रियों के परामर्श से भी जारी कर सकता था। जब व्यवस्थापिका सभा की बैठक नहीं होती थी तो यह अध्यादेश केवल छः सप्ताह के लिये ही लागू रह सकते थे। वित्त सम्बन्धी मामलों में उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वह विधान सभा द्वारा अस्वीकृत अनुदान को भी पूरा कर सकता था। बजट का ८० प्रतिशत भाग उसकी इच्छानुसार व्यय किया जाता था। वह संघ के वित्तीय आकलन (Financial Credit) को स्थिर करने के लिए एक वित्तीय परामर्शदाता की भी नियुक्ति कर सकता था।

यदि किसी समय भारत के वैधानिक यंत्र टूट जाने का भय हो तो शासन का

समस्त उत्तरदायित्व गवर्नर जनरल को ही अपने ऊपर लेने का अधिकार प्राप्त था। इसके लिए यह नियम बना दिया गया था कि ऐसी स्थिति आने पर गवर्नर जनरल को एक घोषणा करनी पड़ती जो केवल ६ माह के लिए मान्य होती। विधि सम्बन्धी मामलों में संघीय सरकार को परामर्श देने के लिए गवर्नर जनरल एक महाधिवक्ता (Advocate General) की नियुक्ति कर सकता था।

सन् १९३५ के ऐक्ट के अन्तर्गत संघीय रेलवे प्राधिकारी संस्था (Federal Railway Authority) की भी स्थापना की गयी थी, जो रेलों के निर्माण, रक्षण और संचालन के मामलों में संघ की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करती थी। इस प्राधिकारी में कुल ७ सदस्य होते थे, जिनमें तीन गवर्नर जनरल स्वयं चुनता था और शेष चार सदस्य अपने मंत्रियों के परामर्श से नियुक्त करता था। अध्यक्ष की नियुक्ति गवर्नर जनरल स्वयं ही करता था। इस प्रकार रेलों पर उसका पूर्ण नियंत्रण हो गया था। इसी प्रकार रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना द्वारा सिक्के और टंकण पर भी उसका नियंत्रण हो गया था और यहाँ भी वह सब मामलों में सर्वोच्च था।

गवर्नर जनरल की शक्तियाँ इस प्रकार इतनी अधिक थीं कि उत्तरदायी शासन की प्रगति होना ऐसी स्थिति में सम्भव न था। क्योंकि विशेष उत्तरदायित्व का क्षेत्र सारे प्रशासन पर फैला हुआ था और कोई ऐसा विषय न था जिस पर गवर्नर जनरल का पूर्ण अधिकार न हो। उसकी विवेकात्मक और निजी निर्णयानुसारिणी शक्तियाँ उसके हाथ में ऐसा शक्तिशाली अस्त्र था, जिससे वह सब कुछ कर सकता था। यह सन् १९३५ के ऐक्ट का सबसे दूषित रूप था।

संघीय व्यवस्थापिका सभा—संघीय व्यवस्थापिका सभा दो भागों में विभाजित थी—(१) राज्य-परिषद् (Council of State), (२) संघीय सभा (Federal Assembly)। राज्य-परिषद् एक स्थायी सभा थी, जिसका विघटन न होता था, किन्तु प्रति तीसरे वर्ष एक तिहाई सदस्यों को अवकाश ग्रहण कर लेना पड़ता था। संघीय-सभा की अवधि पाँच वर्ष थी, किन्तु इसका विघटन किया जा सकता था। दोनों परिषदों की अलग-अलग बैठक कम से कम वर्ष में एक बार होनी आवश्यक थी। प्रत्येक सदन अपने सदस्यों में से अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष स्वयं चुनता था। संघीय सभा का अध्यक्ष स्पीकर कहलाता था।

राज्य-परिषद्—राज्य-परिषद के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक २६० हो सकती थी, जिनमें से १५६ ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि और अधिक से अधिक

१०४ भारतीय राज्यों के प्रतिनिधि हो सकते थे। १५६ सदस्यों में से ६ सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर जनरल करता था। महिलाओं को भी चुनाव में भाग लेने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था परन्तु उनकी सदस्य-संख्या केवल छः ही हो सकती थी। देशी राज्यों के प्राप्त स्थानों की पूर्ति राजाओं द्वारा नियुक्त किये हुए सदस्यों द्वारा होती थी।

संघीय सभा—संघीय सभा के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक ३७५ हो सकती थी, जिनमें से २५० ब्रिटिश भारत का प्रतिनिधित्व करते थे और अधिक से अधिक १२५ देशी राज्यों का प्रतिनिधित्व कर सकते थे।

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि संघीय सभा का निर्माण प्रजातन्त्र प्रणाली से पूर्ण विरोधी था, जहाँ तक मंत्रिमण्डल का प्रश्न है उसमें तो स्थिर मंत्रिमंडल बनना ही असम्भव था क्योंकि किसी भी बहुसंख्यक दल का बहुमत ही न प्राप्त होता था।

संघीय न्यायालय—सन् १९३५ के विधान के अनुसार समस्त भारत के लिये एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गयी। इस न्यायालय के अन्तर्गत अधिक से अधिक ६ न्यायाधीशों का विधान किया गया था। इन न्यायाधीशों में एक प्रधान न्यायाधीश होता था। उपरोक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति हाईकोर्ट के अनुभवी न्यायाधीशों तथा इंग्लैण्ड में १० वर्ष की बैरिस्टरी के अनुभव प्राप्त बैरिस्टरों में से सम्राट द्वारा की जाती थी। यह न्यायाधीश केवल ६५ वर्ष की आयु तक अपने पद को ग्रहण कर सकते थे। मुख्य न्यायाधीश को ७००० रुपये तथा अन्य न्यायाधीशों को ५५०० रुपये प्रति माह वेतन मिलता था।

संघीय न्यायालय को तीन प्रकार के अधिकार प्राप्त थे; मूल, अपील एवं मंत्रणा। वह संघ, प्रान्त तथा देशी रियासतों के विषय में कानूनी अधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी विवाद का निर्णय कर सकता था। विधान की व्याख्या करना उसका अधिकार था। अपनी मौलिक सीमा के अन्तर्गत उसके निर्णय घोषणात्मक होते थे।

संघीय न्यायालय को अपील सुनने का अधिकार प्राप्त था। परन्तु अपील केवल निम्नलिखित अवस्थाओं में की जाती थी—(१) दीवानी अदालत में विवाद सबन्धी मामला कम से कम १५००० रुपये का हो; (२) अथवा उपर्युक्त सम्पत्ति पर विवाद हो और (३) यदि संघीय न्यायालय अपील के लिए आज्ञा दे। विधि सम्बन्धी मामलों में यह गवर्नर जनरल एवं कार्यपालिका के अध्यक्ष को सलाह देता था।

केन्द्र एवं प्रान्तों के मध्य सम्बन्ध--सन् १९३५ के ऐक्ट के अन्तर्गत संघ की स्थापना हो जाने के कारण प्रान्त स्वतन्त्र इकाई बन गये थे। उनके कार्य सम्बन्धी क्षेत्र भी पृथक् कर दिये गये थे। प्रान्तों एवं संघ का विधान भी अलग-अलग बना दिया गया था और उनके अलग-अलग अधिकार क्षेत्र थे। कुछ सामान्य मामलों में दोनों की समवर्ती शक्तियाँ थीं और विवाद के समय में संघ की विधि मान्य होती थी।

केन्द्रीय विषय---सन् १९१९ के ऐक्ट के अन्तर्गत यद्यपि केन्द्रीय एवं प्रान्तीय अधिकार क्षेत्रों को पृथक् पृथक् कर दिया गया था, परन्तु वह विभाजन शक्तियों सम्बन्धी कठोर विभाजन न था अतः उसकी पूर्ति सन् १९३५ के ऐक्ट में की गयी थी। संघीय सूची के अन्तर्गत जल, स्थल और वायु सेना, विदेशी मामले, सिक्का और टंकण, डाकघर, सेविंग बैंक, टेलीफोन, टेलीग्राम, रेडियो, जन गणना, आयात-निर्यात, रेलें, प्रतिलिप्यधिकार, चेक, अर्थव्यवस्था, अफीम, पेट्रोल, खानें और बीमा, बैंकिंग, उत्प्रवास, बहिःशुल्क, नशीले द्रव, नमक, लाटरी, तोल एवं सभी संघीय वस्तुएँ संमिलित थीं।

प्रान्तीय विषय--प्रान्तीय विषयों में सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस एवं रेलवे पुलिस, जेल एवं कारावास, सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफाई, अस्पताल और औषधि-गृह, मृत्यु और जन्म का पंजीबन्धन, तीर्थयात्रा, शिक्षा, सड़क और पुल, सिंचाई, भूमि, कृषि, जंगल, निर्धनों और बेघरों की सहायता, मुद्रण, म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक बोर्ड आदि विषय थे।

समवर्ती सूची---समवर्ती सूची में दंड विधि, कैदियों का हटाना, विवाह और विवाह विच्छेद, मध्यस्थ निर्णय, दिवालियापन, टिकट, न्यायालयों पर क्षेत्राधिकार, विधि और औषधि सम्बन्धी पेशे, समाचार पत्र, पुस्तकें और छापाखाना, विष और खतरनाक दवाइयाँ, फैक्टरी, श्रम और बिजली सम्मिलित थे।

केन्द्रीय आय के साधन---केन्द्रीय सरकार की आय के मुख्य साधन निर्यात एवं बहिःशुल्क, तम्बाकू, नशीले द्रव्यों जैसे अफीम, शराब एवं आबकारी के कर, नमक, रेल, तार, डाक, टकसाल एवं राज्यों के उपहार थे।

प्रान्तीय आय के साधन---प्रान्तों में आय के मुख्य साधन भूमि राजस्व, आबकारी, टिकट, कृषि भूमि के उत्तराधिकार पर शुल्क, खनिज पदार्थ पर कर, प्रति-व्यक्ति कर, वृत्तिकर, पशुओं और नावों पर कर, विज्ञापन और वस्तुओं की बिक्री पर कर एवं मृत्युकर ही थे।

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया---सन् १९३४ ई० में नोटों को जारी करने तथा

ब्रिटिश भारत में धन सम्बन्धी स्थिरता उत्पन्न करने, रक्षण करने और सिक्का एवं विनिमय के संचालन के उद्देश्य से रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना की गयी थी। बैंक के सामान्य प्रबन्ध के लिए एक केन्द्रीय मन्त्रिमण्डली थी, जिसमें बैंक का एक गवर्नर और दो उप-गवर्नर एवं चार निदेशक होते थे, जिनकी नियुक्तियाँ गवर्नर जनरल करता था। प्रबन्ध के अन्तर्गत और भी निदेशक होते थे जो अंश-स्वामियों द्वारा चुने जाते थे। गवर्नर जनरल इस बैंक का सर्वेसर्वा होता था, जिसकी आज्ञा के बिना संघ के सिक्के एवं टंकण सम्बन्धी विधेयक नहीं बनाया जा सकता था।

भारत और सन् १९३९ का महायुद्ध—सन् १९३९ के द्वितीय महायुद्ध से यूरोप की राजनैतिक दशा में बहुत से परिवर्तन हो गये, जिससे भारत भी अछूता न रहा। सन् १९३५ के भारत सरकार के ऐक्ट में ब्रिटिश संसद ने एक संशोधन किया जिसके अनुसार आयात के मामलों में प्रान्तीय सरकार सम्बन्धी नियम बनाने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे दिया गया एवं प्रान्तीय सरकार की कार्य-पालिका शक्ति के निर्देशन का अधिकार भी गवर्नर जनरल के हाथों में दे दिया गया। इसके अतिरिक्त सन् १९३९ में गवर्नर जनरल ने भारत रक्षा कानून (Defence of India Act) लागू किया, जिसके अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने ब्रिटिश भारत की रक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा, युद्ध के कुशल संचालन और राष्ट्रीय जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ और सेवाओं के लिए नियम बनाये। इन्हीं कारणों को लेकर भारत में असंतोष की लहर उठ खड़ी हुई। इधर कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिये, क्योंकि बिना जनता के परामर्श के भारत लड़ाकू देश घोषित कर दिया गया था। वैधानिक व्यवस्था असफल होने के कारण गवर्नरों को समस्त शक्तियाँ प्राप्त हो गयी थीं, जिससे केन्द्रीय सरकार अनुत्तरदायी हो गयी थी और प्रान्तीय स्वराज्य समाप्त कर दिया गया था। इसी समय भारतीय कांग्रेस ने समय का लाभ उठाते हुए ब्रिटिश सरकार से युद्ध समाप्त होने पर भारतीयों को अपने स्वयं संविधान निर्माण करने के अधिकार की माँग की जिसके फलस्वरूप अगस्त सन् १९४० को भारत सचिव के सहयोग से वायसराय ने एक घोषणा की, जिसमें उन्होंने युद्ध समाप्त होने के पश्चात् ही भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना करने का अपना मुख्य लक्ष्य बताया। परन्तु भारतीय जनता को उपरोक्त घोषणा से कोई आश्वासन न हुआ क्योंकि घोषणा के अन्तर्गत भारतीय औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना का कोई निश्चित समय नहीं दिया गया था। फिर भी ब्रिटिश सरकार अपनी स्थिति पर दृढ़ रही और गवर्नर जनरल की कार्य-पालिका परिषद् में सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ८ से १२ कर दी गयी, जिसमें से अब

७ भारतीय सदस्य होने लगे थे । परन्तु इतना होने पर भी रक्षा विभाग भारतीयों के सिपुर्द नहीं किया गया था, जिसके फलस्वरूप भारतीय जनता का कुछ भाग संतुष्ट रहा और कुछ असंतुष्ट । मुस्लिम लीग पाकिस्तान चाहती थी जब कि कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य चाहती थी । अत: दोनों में कोई समझौता न हो सका और भारत के विभाजन के बीज का अंकुर ऊपर आने लग गया ।

अटलांटिक चार्टर और भारत—यह अटलांटिक चार्टर ब्रिटिश युद्धकालीन प्रधान मंत्री चर्चिल और अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा हस्ताक्षर किया हुआ लेख्य था, जिसके अन्तर्गत कहा गया था कि जो भी राज्य ब्रिटिश सरकार द्वारा शासित हो रहे हैं उनके चुनाव सम्बन्धी अधिकार का सम्मान किया जायगा और शक्ति द्वारा वंचित किये हुए लोगों को स्वराज्य एवं श्रेष्ठ अधिकार सौंपे जायेंगे । अमेरिका और चीन ने भी ब्रिटेन से भारत के मामले पर पुन: विचार करने के लिए जोर दिया । अत: मार्च सन् १९४२ में ब्रिटिश मंत्रिमण्डल ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स के द्वारा कुछ प्रस्ताव भेजे जिनमें युद्ध के समाप्त होने पर भारत में नवीन संविधान बनाने के लिए कहा गया था । इसकी प्रस्तावना में स्पष्ट कर दिया गया था कि ब्रिटिश सरकार का मन्तव्य एक नवीन भारतीय संघ की स्थापना करना होगा, जो एक उपनिवेश होगा जिसका ब्रिटेन तथा अन्य उपनिवेशों से समानता के आधार पर सम्बन्ध होगा । यह संघ न तो आन्तरिक और न वैदेशिक मामलों में ब्रिटेन के अधीन होगा । इसमें कहा गया था कि युद्ध समाप्त होने पर भारत में विधान निर्मात्री-सभा की व्यवस्था की जायगी। परन्तु इस प्रकार की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने दो शर्तें भी लगायीं—(१) ब्रिटिश भारत के किसी भी प्रान्त को, जो नवीन संविधान को स्वीकार नहीं करेगा, अपनी वर्तमान स्थिति बनाये रखने का पूर्ण अधिकार होगा । भविष्य में यदि वह प्रान्त संघ में मिलना चाहेगा तो उसके लिए प्रावधान रखा जायगा। इस प्रकार पृथक् रहने वाला प्रान्त चाहेगा तो उसे अपना नवीन संविधान बनाने का पूर्ण अधिकार होगा जिसका भारतीय संघ के समान ही पद होगा । (२) विधान निर्माण होने के बाद भारत तथा ब्रिटिश सरकार के बीच संधि होगी, जिसमें में उन समस्त विषयों का उल्लेख होगा जो पूर्ण शासन-सत्ता का हस्तान्तरण करने के कारण उत्पन्न होंगे । उसमें धार्मिक तथा जातीय अल्पमतों की रक्षा के लिए भी प्रावधान होगा । भविष्य में भारत कामनवेल्थ के अन्य देशों के साथ सम्बन्ध रखने के निर्णय में स्वतन्त्र होगा । इसके अतिरिक्त युद्ध समाप्त होने पर भारत में प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के निर्वाचनों के परिणाम ज्ञात हो जाने पर व्यवस्थापिका परिषदों (Legislative Assemblies) के समस्त सदस्यों का एक निर्वाचक मण्डल बनेगा

जो आनुपातिक निर्वाचन मण्डली के आधार पर विधान परिषद् का निर्वाचन करेगा। यह विधान परिषद् कुल निर्वाचन मण्डल का दशमांश होगी। देशी रियासतों को भी अपनी जनसंख्या के अनुपात से अपने प्रतिनिधित्व करने का भी अधिकार दिया गया था।

इसके अतिरिक्त उपरोक्त प्रस्तावना में भारत के संकटकालीन एवं नवीन संविधान के निर्माण के मध्य समय तक ब्रिटिश सरकार द्वारा शासन प्रणाली का प्रयोजन किया गया था परन्तु पूर्णरूपेण से भारत के सैनिक, नैतिक तथा भौतिक साधनों के संगठनों का पूर्ण उत्तरदायित्व भारत सरकार के ऊपर ही छोड़ दिया गया था जिसे भारतीय जनता के सहयोग से पूरा किया गया। ब्रिटिश सरकार भारतवासियों के प्रान्तीय वर्गों के नेताओं द्वारा अपने देश के परिषदों में, राष्ट्रमण्डल और राष्ट्रसंघ में सक्रिय और शीघ्र भाग लेने का प्रयोजन भी किया था। इस प्रकार वे भारत की भावी स्वतन्त्रता के लिए आवश्यक कार्यों में सक्रिय और रचनात्मक सहायता प्रदान करते रहे।

सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने २५ मार्च से १० अप्रैल १९४२ तक भारतीय नेताओं से भेंट, वार्ता तथा व्यवहार किया। इसमें संदेह नहीं है कि इस प्रस्ताव में, जो नेताओं के समक्ष स्वीकृती के लिए रखा गया था और स्वीकृत हो जाने पर ही सरकार की ओर से घोषित किया जाता। जिसमें युद्ध की समाप्ति पर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने की स्पष्ट घोषणा की गयी थी। इस प्रकार यह घोषणा यद्यपि पूर्व की सभी घोषणाओं से अधिक प्रगतिशील थी किन्तु उक्त प्रस्ताओं में कुछ स्पष्ट दोष भी थे—

(१) सर्वप्रथम प्रारम्भ से ही प्रान्तों को भारतीय संघ से अलग होने का अधिकार दिया गया था। अतः इस अधिकार द्वारा भारतीय संघ के नाश की सम्भावना भी थी। इस प्रकार भारत में पृथक इकाइयों के निर्माण का तात्पर्य ही उसका विभाजन और आन्तरिक मतभेदों का बढ़ाना ही था।

(२) इसके वित्त सम्बन्धी परिणाम भी भयानक ही थे। जो रियासतें संघ में प्रवेश न करना चाहती थी उनसे राजनैतिक अशान्ति फैलने का डर भी था।

(३) संविधान सभा में भाग लेने वाली रियासतों का प्रतिनिधित्व शासकों द्वारा नियुक्त सदस्य करते जिससे भारतीय जनता की ९ करोड़ जनसंख्या को स्थान नहीं मिलता जिससे कोई भी किया गया समझौता रियासतों में प्रजातन्त्रीय संस्था के हित में सम्भवतः नहीं हो सकता था

(४) इन प्रस्तावों से अल्पसंख्यकों की समस्या का कोई हल न निकला। जनसंख्या की पूर्णरूपेण अदला बदली असम्भव थी।

(५) केन्द्र में युद्धकालीन व्यवस्था से सम्बन्ध रखनेवाला प्रस्ताव दोषपूर्ण था।

रक्षा-विभाग गवर्नर जनरल की कार्यपालिका परिषद् के भारतीय सदस्य को नहीं दिया गया था।

उपरोक्त दोषों के कारण सर स्टेफर्ड के प्रस्तावों को भारतीय जनता ने स्वीकार नहीं किया। अतः देश भर में असंतोष की लहर फैल गयी। जिसका परिणाम यह हुआ कि असंतोष से पीड़ित भारतीय कांग्रेस ने अगस्त सन् १९४२ में एक प्रस्ताव द्वारा "अंग्रेजों भारत छोड़ों" नामक प्रस्ताव पास किया। अब क्या था यह आंदोलन सम्पूर्ण देश में फैल गया, हिंसा और अपराध किये जाने लगे। देश में सरकारी सम्पत्ति, रेल, तार, डाकखाने, बैंक, दफ्तर आदि जलाये गये और लूटमार की गयी; पुलिस तथा मजिस्ट्रेटों की भी हत्याएँ की गयीं। नेताओं को जेल में बन्द कर दिया गया। कांग्रेस समितियों को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया; समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये और जनता का बड़े बर्बरतापूर्वक दमन किया गया। इस प्रकार देश की जनता का दोहरा दमन व शोषण हुआ। यह स्थिति सन् १९४५ तक चलती रही जब तक युद्ध समाप्त न हुआ।

विभाजन और भारत की स्वतन्त्रता :—सन् १९४५ में जर्मनी का युद्ध तो समाप्त हो गया था परन्तु जापान से अभी युद्ध चल ही रहा था उसी समय चर्चिल भारतीय अवरोध को हल करना चाहते थे, जिसके परिणामस्वरूप सन् १९४२ के विद्रोह के जन्मदाताओं को सर्वक्षमा कर दिया गया। लार्ड वेवेल को भारत के मुख्य राजनैतिक नेताओं का सम्मेलन बुलाने का आदेश दिया गया। शिमला कान्फ्रेन्स प्रारम्भ हुई। इसी समय लार्ड वेवेल ने एक घोषणा की जिसके अन्तर्गत कहा गया कि केवल रक्षा विभाग को छोड़कर अन्य सभी विभाग कार्यपालिका परिषद् के भारतीय सदस्यों के हाथों में सौंप दिये जायेंगे और उन्हें आश्वासन दिया गया कि निषेधात्मक शक्ति (Veto Power) का बहुत कम प्रयोग किया जावेगा। उन्होंने साम्प्रदायिक समानता के सिद्धान्त को अपनाया। मुस्लिम लीग को संस्था के अनुपात से कहीं अधिक प्रतिनिधित्व देकर शान्त करने का प्रयत्न किया गया। परन्तु इतना होने पर भी मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच समझौता न हो सका।

युद्ध समाप्त होते ही गवर्नर जनरल ने घोषणा की कि भारत में केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के चुनाव शीघ्र ही किये जाए। सन् १९४६ तक यह चुनाव समाप्त हो गये और उत्तरदायी शासन को पुनः जन्म मिला। इसी वर्ष ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों का एक दल भारत आया। इस दल ने नवीन संविधान के आधार बनानेवाली सभा एवं अन्तर्कालीन सरकार बनाने के लिए कहा। इसके अतिरिक्त केन्द्र को केवल विदेशी मामले, रक्षा और संदेशवाहन के साधन, और इन आधारों को

पूरा करने के लिए कोष इकट्ठा करने का अधिकार सौंपने तथा अन्य विषय और अवशेष अधिकार प्रान्तों को देने तथा केन्द्रीय धारा सभा में साम्प्रदायिक स्वभाव के समस्त प्रश्नों का निर्णय प्रत्येक सम्प्रदाय को अलग अलग और सामुहिक रूप में बहुमत द्वारा होने एवं प्रान्तों को तीन अलग अलग समूहों में विभाजित करने की सिपारिशें की।

संविधान बनानेवाली सभा के विषय में प्रत्येक प्रान्त की जनसंख्या के आधार पर कुल संख्या ३८५ रखी गयी थी जिनमें २९२ ब्रिटिश भारत और ९३ सदस्य रियासतों के प्रतिनिधि थे। सभा के सदस्यों, विभिन्न प्रान्तों एवं भाषाओं का विशेष ध्यान दिया गया था। इस प्रकार यह भी तय किया गया था कि प्रत्येक १० वर्ष के पश्चात् संविधान पर पुनः विचार किया जायगा। अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए एवं नागरिकों के मूल अधिकारों को निश्चित करने के लिए एक परामर्शदात्री समिति की भी नियुक्ति की गई थी।

जब संविधान के निर्माण का कार्य समाप्त हो गया उस समय उद्घाटन के समय मुस्लिम लीग के चुने हुए सदस्यों ने भाग नहीं लिया। अध्यक्ष के निर्वाचन एवं लक्ष्य प्रस्ताव स्वीकार करने के पश्चात् मुस्लिम लीग के सदस्यों के सम्मिलित न होने पर विचार करने के लिए संविधान सभा स्थगित कर दी गयी। लीग ने मंत्रिदल के प्रस्तावों पर दी गयी स्वीकृती वापस ले ली और सीधी कार्यवाही का निर्णय किया, जिससे देश में गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो गयी। परन्तु विधान सभा डा० राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में कार्य करती रही।

इसी समय लार्ड माउन्टबेटन लार्ड वेवेल के अवकाश प्राप्त करने पर भारत की समस्याओं को हल करने के लिए गर्वनर जनरल के पद पर नियुक्त किये गए। भारत आकर उन्होंने मुस्लिम लीग की समस्याओं का समाधान करने का प्रयत्न किया परन्तु जब वह किसी परिणाम पर न पहुँचे तब उन्होंने भारत के विभाजन का प्रश्न रखा। इस प्रश्न के अन्तर्गत यह रखा गया कि ब्रिटिश बलूचिस्तान, सिंध, पंजाब का मुस्लिम भाग, बंगाल और आसाम तथा सीमाप्रान्त को मिलाकर पाकिस्तान बनेगा और शेष भारत का संघ रहेगा। इसके अतिरिक्त रियासतों को अधिकार दिया गया कि वह किसी भी संघ राज्य में सम्मिलित हो सकते थे। जब यह प्रश्न तय हो गया और भारत एवं पाकिस्तान नामक संघ बन गये उस समय केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा का विघटन कर दिया गया तथा दो विधान सभाओं, एक पाकिस्तान के लिए तथा दूसरी हिन्दुस्तान के लिए बनाई गई। मुस्लिम लीग ने भी खंडित पाकिस्तान स्वीकार कर लिया और कांग्रेस ने भी परिस्थितियों को सर्वोच्च समझ कर भारत का

विभाजन स्वीकार कर ही लिया। इस प्रकार भारत एवं पाकिस्तान नामक दो संघ राज्य सदैव के लिए निर्मित हो गये।

१८ जुलाई सन् १९४७ को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने दो संघ राज्यों की स्थापना करनेवाला भारत स्वतन्त्र ऐक्ट स्वीकार कर लिया और १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत एवं पाकिस्तान ने अपने अपने को एक स्वतन्त्र संघ राज्य घोषित कर दिये।

भारत का नवीन संविधान :—स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् भारत का नवीन संविधान २६ जनवरी सन् १९५० से लागू किया गया। प्रस्तुत संविधान के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं।

(१) भारतीय संविधान के अन्तर्गत सार्वभौम भारतीय जनतन्त्र की स्थापना कर दी गयी। केन्द्र की सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति के हाथों में निहित कर दी गयी, जिसके पद की अवधि ५ वर्ष रखी गयी है। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रपति के अन्तर्गत एक जनतन्त्र है और लोक सार्वभौम है।

(२) नवीन संविधान के अन्तर्गत पहले की प्रान्तीय एवं केन्द्रीय नागरिकता को समाप्त करके केवल एक ही नागरिकता की व्यवस्था की गयी है। जिसमें समस्त भारतीय नागरिक एक ही राज्य के प्रति निष्ठा रखते हैं।

अध्याय ६

संघ-शासन में शक्ति-वितरण

दो सरकारों के सह-अस्तित्व (Co-Existence) में यह आवश्यकीय है कि केन्द्रीय अथवा संघ सरकार तथा राज्य-सरकारों में शक्ति-वितरण हो। संघीय सरकार की स्थापना में शक्ति-वितरण का सिद्धान्त वास्तविक रूप में अनिवार्य हो जाता है। शक्ति-वितरण का सिद्धान्त शक्तिविभाजन के सिद्धान्त से भिन्न है, क्योंकि शक्ति-विभाजन में कार्यपालिका, न्यायपालिका एवं व्यवस्थापिका सभा में शक्ति-विभाजन होता है, जब कि शक्तिवितरण में संघ सरकार तथा राज्य सरकारों के आपस में शक्तियों का वितरण होता है। शक्ति-विभाजन सिद्धान्त इकाई राज्यों में भी सम्भव है परन्तु शक्ति वितरण केवल संघीय शासन प्रणाली में ही सम्भव हो सकता है।

संघ-सरकार एवं राज्य-सरकारों में शक्ति-वितरण

प्रश्न विचारणीय है कि संघ-शासन में संघीय सरकार एवं राज्य सरकारों में शक्ति-वितरण किस आधार तथा सिद्धान्त पर किया जाता है। जैसा कि हम पिछले अध्यायों में यह बता चुके हैं कि संघ शासन का निर्माण दो आधारों पर होता है वह हैं केन्द्राभिसारी और केन्द्रापसारी (Centripetal and Centrifugal)। जब भी कभी छोटे छोटे राज्य मिलकर अपना एक संघ बनाते हैं और अपने कुछ अधिकारों को संघ सरकार को दे देते हैं तो एक संघराज्य का निर्माण हो जाता है या जब कोई बड़ा राज्य अपना शासन चलाने में असमर्थ हो जाता है तो शासन की सुदृढ़ता के लिए वह बड़ा राज्य कई छोटे-छोटे उप-राज्यों में बाँट दिया जाता है और वह बड़ा राज्य अपने कुछ अधिकारों एवं शक्तियों को अपने उपराज्यों को देता है तो भी संघराज्य की स्थापना होती है।

जब कभी स्वतन्त्र राज्य इस बात के लिए विवश किये जाते हैं कि वे एक नये संघ-राज्य की स्थापना करें, उस समय वह अपनी शक्तियों को केन्द्र सरकार को देने में सतर्क रहते हैं जैसा कि आस्ट्रो-हंगेरियन अथवा जर्मन राज्य तथा संयुक्त राज्य अमरीका एवं आस्ट्रेलिया के कामनवेल्थ के संघ राज्यों की स्थापना में पाया गया है।

परन्तु जब एक राज्य कई इकाई राज्यों में विभाजित हो जाता है तो उस समय इकाई अथवा उपराज्यों को पूर्ण अधिकार नहीं मिल पाते हैं जैसा कि कनाडा के सन् १८६७ के संघ राज्य की स्थापना में हुआ था। परन्तु उपरोक्त नियम बहुत ही कड़ाई के साथ संघ-स्थापना में प्रयोग नहीं होता है जैसा कि दक्षिण अफ्रीका के संघ तथा बहुत से अन्य संघ शासनों की स्थापना में हुआ है। परन्तु उपरोक्त दो सिद्धान्तों से यह स्पष्ट हो जाता है कि संघ सरकार की स्थापना में या तो केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तियाँ प्राप्त रहती हैं या राज्य सरकारों को। शक्ति-वितरण में साधारणतया: या तो राज्य-सरकारों की शक्तियाँ निश्चित कर दी जाती हैं और शेष शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार को दे दी जाती हैं अथवा केन्द्र की शक्तियाँ निश्चित कर दी जाती हैं और शेष शक्तियाँ राज्य सरकार को मिल जाती हैं। परन्तु राजनीतिक क्षेत्र में कोई ऐसी दीवाल नहीं है जो शक्तियों का ठीक ठीक बटवारा कर सके। परन्तु इस कठिनाई को समाप्त करने के लिए संविधान या तो अवशिष्ट शक्तियों को आरक्षित कर लेता है और केन्द्र सरकार को या राज्य-सरकारों को उपभोग करने के लिए आज्ञा दे देता है या दोनों सरकारों को भी स्पष्ट रूप से उन शक्तियों को बराबर उपभोग करने को कह देता है कि वह अवशिष्ट शक्तियों को प्रयोग करें। इससे स्पष्ट हो जाता है कि संघ शासन की स्थापना में शक्ति-वितरण देश की विशेष परिस्थितियों के अनुसार ही होता है। वास्तव में जो भी शक्तियाँ राज्य-सरकारों को मिली हुई होती हैं उनका प्रभाव राज्य के निवासियों पर पृथक् पृथक् रूप से पड़ता है, जिनके द्वारा राज्य की स्थानीय दशाओं के आधार पर उन्नति आधारित रहती है। जो विषय राष्ट्र के हित से सम्बन्धित होते हैं वह सदैव केन्द्रीय सरकार के पास रहते हैं। यह बात इकाई राज्यों की शासन प्रणाली में भी पायी जाती है। इकाई राज्यों में स्थानीय शासन एवं केन्द्रीय सरकार के अधिकारों का बटवारा होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शक्ति-वितरण का सिद्धान्त एकिक शासन प्रणाली में भी लागू होता है। संघ-शासन में संघीय सरकार एवं राज्य सरकारों को शक्तियाँ जनसाधारण एवं संविधान द्वारा प्राप्त होती है, जो एक दूसरे से पूर्णतया स्वतन्त्र होती हैं और कोई किसी के अधिकार क्षेत्र में विघ्न नहीं डालता है। परन्तु एकिक शासन प्रणाली में केन्द्रीय सरकार अपने सुदृढ़ शासन के लिए अपनी कुछ शक्तियाँ स्थानीय संस्थाओं को दे देता है जिससे स्थानीय संस्थाएँ सदैव ही केन्द्रीय सरकार के आश्रित रहती हैं। संघ-शासन में केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र संविधान में स्पष्ट रूप से लिखे रहते हैं इसलिए राज्य सरकारें अपने अधिकार क्षेत्र में पूर्णरूपेण स्वतन्त्र रहती हैं और वे केन्द्रीय सरकार द्वारा हस्तक्षेपित नहीं होती हैं। इसके विपरीत एकिक शासन प्रणाली में स्थानीय संस्थाओं को केन्द्र सरकार

से अधिकार मिलते हैं इसीलिए केन्द्र सरकार को सदैव उन अधिकारों में संशोधन, परिवर्तन एवं समाप्त करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है। उपरोक्त बातों से यह निश्चित हो जाता है कि संघीय शासन प्रणाली में राज्य-सरकारों को एकिक राज्य प्रणाली से अधिक अधिकार एवं शक्तियाँ प्राप्त रहती हैं।

संघ-शासन में संघीय सरकार की शक्तियाँ

संघ-शासन प्रणाली में कुछ ऐसी शक्तियाँ होती हैं जो संघ सरकार को ही अपने पास रखना पड़ता है। उदाहरणार्थ सभी विदेशी मामले संघीय सरकार द्वारा ही कार्यान्वित किये जाते हैं क्योंकि विदेशी मामलों में सम्पूर्ण देश का हित छिपा रहता है। अतः यदि संघ सभी उपराज्यों को विदेशी मामलों में अपनी एक स्वतन्त्र वाणी रखने का अधिकार दे दे तो वह राष्ट्रीय एकता के लिए विष का काम करेगी और संघ की जड़ सदा के लिए समाप्त कर देगी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि संसार के सभी देश जहाँ पर संघ शासन विद्यमान है विदेशी विषय संघ सरकार के पास ही है। सोवियत संघ में यद्यपि राज्यों को विदेशों से अप्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है परन्तु वह केवल सैद्धान्तिक रूप में ही है। वास्तविकता में संघीय सरकार ही विदेशी मामलों को तय करती है। यहाँ तक कि सन् १९२४ के पूर्व शक्तिहीन आस्ट्रो-हंगेरियन राज्यों ने भी विदेशी मामलों को संघ के हाथों में दे रखा था। स्विट्ज़रलैण्ड में भी यद्यपि राज्यों को अपने पड़ोसी राज्यों से व्यापारिक एवं सीमा सम्बन्धी संधियाँ करने का अधिकार प्राप्त है। परन्तु कोई भी संधि बिना केन्द्र सरकार द्वारा पारित हुए पूर्ण नहीं समझी जाती है।

इसके अतिरिक्त सेना सम्बन्धी शक्ति भी संघ सरकार के पास रहना आवश्यकीय है, क्योंकि इसी शक्ति पर विदेशी विषय निर्भर रहते हैं और इसी शक्ति द्वारा संघ सरकार की रक्षा होती है। कोई भी संघ-सरकार बिना सेना सम्बन्धी शक्ति के विदेशी शक्तियों से अपना सम्बन्ध स्थापित करने का उत्तरदायित्व नहीं ले सकती है। रक्षा, जो कि प्रत्येक स्वतन्त्र राज्य के अस्तित्व के लिए बहुत ही आवश्यकीय अंग है, केन्द्र सरकार अथवा राष्ट्र सरकार के पास रहना आवश्यक है क्योंकि यदि यह शक्ति उप-राज्यों को दे दी जाय और यदि कहीं रक्षा के प्रश्न को लेकर आपस में भेदभाव उत्पन्न हो जाय तो देश की रक्षा निश्चित रूप से खतरे में पड़ जावेगी। संघ सरकार की शक्तियों का वर्णन करते हुए हमिल्टन ने कहा है कि "संघ सरकार को यह आवश्यक है कि वह अपनी सेना को बढ़ावे और उसके लिए कानूनों का निर्माण करे और उन शक्तियों का उपयोग करे।"[1]

1. The Federalist, No. XXII.

यदि अमरीका के प्रत्येक राज्य को अपनी सेना पर नियंत्रण रखने का अधिकार होता तो उत्तराधिकार के युद्ध में उनकी क्या दशा होती या सैन्डरवुड के प्रमुख स्विस प्रसंधि के इतिहास की क्या दशा होती यदि उसके कैन्टन अपनी स्वतन्त्र फौज रखते होते। क्या संघीय सरकार अपने अधिकारों का प्रयोग बिना शक्ति रखे हुए राज्य सरकारों पर कर सकती है ? सन् १८४८ की आस्ट्रेलिया की फेडरल कौंसिल को सेना सम्बन्धी कोई भी शक्ति नहीं दी गयी थी कि वह अपनी सेना की वृद्धि कर सके और उसको रख सके। इसी शिथिलता के कारण विदेशी झगड़ों के भय से अपनी रक्षा न कर सकी। इसी कारण मध्यकालीन एवं आधुनिक प्रसंधानों एवं संघों के निर्माण में यह दो विषय अर्थात् विदेशी मामले और सेना तथा उनकी शाखाओं को संघ सरकार को ही दिया गया है।[1] उपरोक्त बात भारत के संघ निर्माण में भी लागू की गयी है। सन् १९५० के समाप्त होते ही भारतीय राजाओं की सेना सम्बन्धी शक्ति या तो समाप्त कर दी गयी है या उन्हें भारतीय सेना में मिला लिया गया है।

दूसरा जो सब से महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि जिन सेवाओं में सम्पूर्ण देश के नागरिकों का हित छिपा रहता है वह भी सेवाएँ केन्द्र सरकार के पास रहना आवश्यकीय हैं उनमें डाकघर, तार तथा टेलीफोन आदि भी सम्मिलित हैं। यदि उपरोक्त अधिकार प्रत्येक उपराज्य को अलग अलग दे दिये जाएँ तो बिना प्रयोजन ही परेशानियाँ एवं कठिनाइयाँ खड़ी हो जावेंगी। इसी कारण उपरोक्त अधिकार कोई भी संघ उपराज्यों को नहीं देता है। इसी प्रकार व्यापार सम्बन्धी मामलों में जिसमें आवागमन के साधन, नापतौल, सिक्के, व्यापारिक कानून भी सम्मिलित है, सभी आधुनिक संघ निर्माताओं ने संघ सरकार को दे रखे हैं क्योंकि यदि यह अधिकार संघ सरकार के पास रहते हैं तो व्यापार में बड़ी आसानी से उन्नति की जा सकती है। यातायात के साधन जिसमें रेल तथा सड़कें भी सम्मिलित हैं संघ सरकार के पास रहना आवश्यक है क्योंकि इन्हीं के द्वारा व्यापार में शीघ्रताशीघ्र उन्नति की जा सकती है और आसानी से प्रत्येक वस्तु एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजी जा सकती है। इसके अतिरिक्त जनसंख्या, धर्म भी केन्द्रीय सरकार के पास रहना आवश्यक हो जाता है। इसी अधिकार के द्वारा अमरीका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने दक्षिण राज्यों की दास जनसंख्या को दासवृत्ति से मुक्त करने के लिए युद्ध की घोषणा की थी।

उपरोक्त शक्तियों को कार्य रूप में लाने के लिए प्रत्येक सरकार को धन की

---

१. विदेशी मामलों में राजदूतों को विदेशों में नियुक्त करना तथा विदेशी राजदूतों को ग्रहण करना एवं युद्ध तथा शक्ति की घोषणा करना भी सम्मिलित है।

आवश्यकता पड़ती है अत: करों को लगाने तथा देश के हित के लिए ऋण लेने के अधिकार को भी संघ सरकार को अपने हाथों में रखना चाहिए। इसीलिए संघ सरकार को देश की सम्पत्ति तथा जनता को कर्ज एवं बैंक की स्थापना पर भी अधिकार होना चाहिए। यही कारण है कि उपरोक्त शक्तियों को आधुनिक सभी संघों ने संघ सरकार को दे रखा है। अमरीका, स्विट्ज़रलैण्ड, आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा भारत इसके सप्रमाण उदाहरण हैं।

अमरीका में संघ-सरकार की शक्तियाँ

संयुक्त राज्य अमरीका की केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ निश्चित रूप से वर्णित एवं निश्चित की हुई हैं जिन्हें सरकार के भिन्न भिन्न अंग कार्यान्वित करते हैं कांग्रेस (जिसमें सीनेट व प्रतिनिधि-सदन दो सभाएँ हैं) को संविधान के प्रथम अनुच्छेद की ८वीं धारा के अनुसार निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त हैं :—

(१) विविध प्रकार के कर लगाना और मुद्रा एकत्रित करना, ऋण चुकाना, संयुक्त राज्य की सुरक्षा और सार्वजनिक-हित साधन का प्रबन्ध करना, किन्तु सब प्रकार के कर सारे संयुक्त-राज्य में एक समान होंगे।

(२) संयुक्त-राज्य की सम्पत्ति के आधार पर ऋण लेना।

(३) विदेशी राष्ट्रों से उपराष्ट्रों के बीच व मूल निवासियों के व्यापार सम्बन्धी नियम बनाना।

(४) नागरिक बनाने व दिवालिया निश्चित करनेवाले एक समान नियम व अधिनियम सारे संयुक्त-राज्य के लिए बनाना।

(५) मुद्रा बनाना, उसका मूल्य स्थिर करना, विदेशी मुद्रा का मूल्य स्थिर करना और माप तौल स्थिर करना।

(६) संयुक्त-राज्य से नकली प्रचलित मुद्रा व ऋण के प्रमाण पत्रों को बनाने पर दंड का विधान करना।

(७) डाकघर स्थापित करना और डाकमार्ग बनवाना।

(८) लेखकों व वैज्ञानिकों को अपने लेख व अन्वेषण के उपयोग का कुछ समय के लिए अनन्य अधिकार देकर उपयोगी कला व विज्ञान की उन्नति करना। सर्वोच्च न्यायालय से छोटे संघ न्यायालय स्थापित करना।

(९) समुद्री लूट-पाट रोकने की व्यवस्था करना व उसके लिए दंड का विधान करना; अन्तर्राष्ट्रीय अधिनियम के विरुद्ध किए अपराधों के लिए दंड देना।

(१०) युद्ध की घोषणा करना, बदला लेने के लिए आज्ञापत्र देना और युद्ध में

प्राप्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में नियम बनाना।

(११) सेना एकत्रित करना व शिक्षित करके तैयार रखना। किन्तु इस काम के लिए दो वर्ष से अधिक समय के लिए एक साथ मुद्रा का आयोजन नहीं हो सकता।

(१२) जल सेना संगठित कर उसका भरण-पोषण करना।

(१३) स्थल सेना व जल सेना के शासन व नियमन सम्बन्धी नियम बनाना।

(१४) संघ के अधिनियमों को कार्यान्वित करने के लिए, विद्रोह को दबाने के लिए और आक्रमण से रक्षा के लिए सेना बुलाने का आयोजन करना।

(१५) सेना को संगठित, शिक्षित व सुसज्जित करने और उसके उस भाग पर नियंत्रण रखने का आयोजन करना जो संयुक्त राज्य की सेवा में उपयोग किया जा रहा हो। उपराज्यों को, बचे हुए सेना के भाग को, कांग्रेस द्वारा निश्चित शिक्षण के अनुसार शिक्षित करने का व सेना के अफसरों को नियुक्त करने का अधिकार देना।

(१६) ऐसे जिले में जिसका क्षेत्रफल १० वर्गमील से अधिक न हो, जिसे उपराज्यों ने संघ सरकार के सिपुर्द कर दिया हो व कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया हो, और इस प्रकार स्वीकृत होकर जो संघ सरकार का निवास-स्थान बन गया हो, उसमें अनन्य रूप से शासन करना। वैसा ही शासन उन सब जगहों में करना जो सरकार ने उपराज्यों की विधान मण्डल की सम्मति से खरीद ली हों और जिनमें किले, बारूदखाने, अस्त्रागार, बन्दरगाह व दूसरी आवश्यक इमारतें बनी हों। और उन सब निर्बन्धों को बनाना जो पूर्वोक्त शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक व उचित हों जो संविधान ने संयुक्तराज्य की सरकार या उसके किसी शासन विभाग या अफसर में निहित कर दी हों।

प्रथम अनुच्छेद की ९वीं धारा ने नकारात्मक प्रतिबन्ध लगाकर कांग्रेस की शक्तियाँ और भी सीमित कर दी हैं, जैसे:—

(१) जब तक वास्तव में विद्रोह या आक्रमण न हुआ हो कांग्रेस अपराधी को न्यायालय में उपस्थित किये जाने अथवा बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) का आदेश दिलवाने की सुविधा को स्थगित नहीं कर सकती।

(२) यह कोई गतानुदर्शी अधिनियम (Export Facto Law) पास नहीं कर सकती।

(३) यह उच्चता की कोई उपाधि (Title of nobility) नहीं दे सकती।

सन् १८८७ में जब संविधान का निर्माण हुआ, नागरिकों के अधिकारों को संविधान में घोषित करने का प्रश्न इतना महत्वशाली न हुआ था क्योंकि उस समय संघ सरकार की शक्तियों के विरुद्ध उपराष्ट्रों को क्या अधिकार होने चाहिए, यह

प्रश्न अधिक महत्व रखता था। चार वर्ष बाद सन् १७९१ में लगभग १० संशोधन संविधान में किये गये जिनमें से ९ संशोधनों से नागरिकों के अधिकार प्रत्याभूत (Guaranteed) हुए और इस प्रकार संघ सरकार की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश रख दिया गया कि :—

(१) कांग्रेस कोई ऐसी विधि नहीं बनावेगी जो किसी धर्म विशेष की स्थापना करे, अथवा धार्मिक स्वतन्त्रता में बाधक हो; अथवा विचार प्रगट करने की, मुद्रणालय की अथवा लोगों के शान्तिपूर्वक एकत्रित होने की, और अपने कष्टों का निवारण के निमित्त सरकार से प्रार्थना करने की स्वतन्त्रता को कम करें;

(२) लोगों को अस्त्र रखने और प्रयोग करने के अधिकार का उल्लंघन नहीं होगा।

(३) किसी भी मकान में उसके स्वामी की आज्ञा के बिना, शान्तिकाल में कोई सैनिक नहीं रखे जावेंगे;

(४) लोगों के शरीर, मकानों, कागजातों और सम्पत्तियों की रक्षा, अकारण तलाशी और जब्ती न करने से की जावेगी और बिना वारन्ट के जो किसी शपथ पर आधारित हो, किसी की तलाशी न ली जावेगी।

(५) बिना जूरी (Jury) की सहायता के किसी भी व्यक्ति को घृणित व अन्य जुर्म के लिए बन्दी न किया जावेगा, और न किसी को एक ही दोष के लिए दो बार दंडित किया जावेगा;

(६) किसी भी फौजदारी के अभियोगों में दोषी को शीघ्रातिशीघ्र और सार्वजनिक फैसला कराने का अधिकार होगा;

(७) असैनिक अथवा व्यवहारिक (Civil) मामलोंमें बीस डालर से अधिक के झगड़ों में जूरी द्वारा निर्णाय कराया जायगा;

(८) न तो अत्यधिक जमानत माँगी जावेगी, न अधिक जुर्माना किया जावेगा और न असाधारण अथवा क्रूर दंड दिया जावेगा;

(९) इस संविधान में वर्णित अधिकारों का यह आशय नहीं कि लोगों को अन्य अधिकार प्राप्त नहीं हैं अथवा उनमें कोई कमी है;

(१०) गुलामी वा अनेच्छा सेवा (जो किसी दंड रूप में न हो) संयुक्त-राज्य में न रहेगी ;

(११) संविधान द्वारा केन्द्री सरकार को न दी गयीं शक्तियां उपराज्यों अथवा लोगों को सुरक्षित हैं;

(१२) मताधिकार जनता को बिना जाति, वर्ण व पूर्व स्थिति के भेदभाव के सभी को प्राप्त होगा।

(१३) संयुक्त-राज्य में नागरिकों के अधिकार स्त्री-पुरुष सभी के लिए बिना भेदभाव प्राप्त रहेंगे।

इस प्रकार अमरीका के संविधान में जनता के अधिकारों का समावेश १२ अनुच्छेदों द्वारा किया गया है जिसमें नागरिकों की स्वतन्त्रता विभिन्न प्रकार से सुरक्षित है। इन अधिकारों की रक्षा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा होने का भी प्रबन्ध है।

सन् १७९१ में हुए संविधान के दसवें संशोधन में कहा गया है कि संविधान ने जिन शक्तियों को संघ सरकार के सिपुर्द नहीं किया है व जिन व्यक्तियों का उपराज्यों द्वारा कार्यान्वित किये जाने का संविधान से निषेध किया गया है वे शक्तियाँ उपराज्यों या जनता के लिए सुरक्षित हैं। किन्तु संघ सरकार की शक्तियों पर इन सब प्रबन्धों के रहते हुए और शेष शक्तियाँ उपराज्यों को दिये जाने पर भी संघ सरकार की शक्ति धीरे धीरे कई कारणोंवश बढ़ती जा रही है। पहला कारण यह है कि न्यायाधीश मार्शल की अध्यक्षता में सर्वोच्च न्यायालय ने अर्थविदित शक्तियों का सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers) प्रतिपादित किया और संविधान की धाराओं का ऐसा व्यापक अर्थ लगाया कि केन्द्रीय सरकार को अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया। दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को बढ़ाने और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की उन्नति होने से संघ सरकार बिना उपराज्यों के अधिकारों के समर्थकों को अप्रसन्न किये बिना अपनी शक्तियों को बहुत बढ़ा लिया है। तीसरे संविधान को व्यवहार में लाने से जो अनुभव हुआ उसके फलस्वरूप जो संशोधन किये गये उनसे संघ सरकार की शक्ति बढ़ गयी। उदाहरण के लिए प्रथम अनुच्छेद की ९ वीं धारा के पैरा ४ को लीजिए। इसके अनुसार संघ सरकार कुछ बड़ी शर्तों के पालन करने पर ही प्रत्यक्ष कर लगा सकती थी, किन्तु १६वें संशोधन ने यह शर्तें हटा दीं और कांग्रेस को यह शक्ति दे दी कि वह किसी भी प्रकार से प्राप्त हुई आय पर कर लगा सकती है और इस कर से प्राप्त धन को किसी भी कारण या संख्या का ध्यान रख उपराज्यों में न बाटा जायेगा। अन्तिम कारण यह है कि संसार की परिस्थिति ही कुछ समय से ऐसी हो गयी है जैसे प्रशान्त महासागर की समस्या, आर्थिक संकट और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, कि उसका प्रभाव सब राष्ट्रों पर पड़ा और परिणामस्वरूप संघ सरकार ने प्रजा की स्पष्ट सम्मति से अधिकाधिक शक्ति अपने हाँथ में कर ली है।

संयुक्त-राज्य अमरीका का संविधान केन्द्रीय सरकार की व्यवस्थापिका एवं प्रशासनीय शक्तियों में कोई भेद नहीं रखता है। यह तो केवल यह स्पष्ट करता है कि

किन विषयों पर कांग्रेस कानून बना सकती है। तात्पर्य यह है कि केन्द्र सरकार की प्रशासनीय शक्तियाँ तथा उसकी विधायिनी शक्तियाँ सह-प्रसारित हैं। संघ तथा राज्य सरकारें एवं उनके कर्मचारी बहुत से कानूनों को कार्यान्वित करने के लिए मिलकर कार्य करते हैं। इसलिए उन दोनों में कभी आपसी झगड़ा नहीं खड़ा होता है। संघ न्यायपालिका जिसे सुप्रीमकोर्ट कहते हैं वह कांग्रेस द्वारा बनाये हुए कानूनों की व्याख्या करता है और राज्य न्यायालय उसके नियंत्रण में कार्य करते हैं।

स्विस संघीय सरकार की शक्तियाँ

स्विटज़रलैण्ड के संविधान में केन्द्रीय सरकार की शक्तियों का स्पष्ट वर्णन कर दिया गया है और शेष शक्तियाँ कैन्टनों को दे दी गयी हैं। संविधान में केन्द्र सरकार की व्यवस्थापिका , कार्यपालिका एवं न्यायपालिका सम्बन्धी शक्तियों का पूर्णरूपेण वर्णन किया गया है। व्यवस्थापिका सम्बन्धी शक्तियों का वर्णन नहीं किया गया है जैसा कि अमरीकन संविधान में पाया जाता है। इसलिए संघ की शक्तियों का वर्णन उनके धाराओं के साथ नीचे किया जाता है:—

केन्द्रीय सरकार सेना सम्बन्धी कानून बना सकती है। सेना का संगठन, युद्ध की घोषणा, संधि करना, सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्धी, इन सब की व्यवस्था संघ-अधिनियमों से होती है। (धारा २०)

सेना के लिए व्यायामशाला एवं अन्य आवश्यकताओं के लिए कैन्टनों की इमारतों को संघ सरकार ले सकती है। (धारा २२)

फेडरल असेम्बली उन कार्यों के करने को मना कर सकती है जिनमें सेना को विपदा का सामना करना पड़े। (धारा २३)

जल-विद्युत शक्ति, डाक व तार, संघ की सड़कें और पुल, नौपरिवहन (Aerial Navigation), विदेशी मुद्रा की कीमत, मुद्रा बनाना, माप व तोल, बारुद को बनाना व बेचना तथा प्रत्यर्पण आदि पर संघ सरकार का अनन्य स्वामित्व है। (धारा २४)

मछली और शिकार के लिए भी यह प्रसंघि कानून बना सकती है। प्रसंधि विशेषतया पहाड़ों में जंगली जानवरों की रक्षा एवं कृषि के लिए लाभदायक जानवरों का विशेष ध्यान रखती है। (धारा २५)

यद्यपि प्रारम्भिक शिक्षा का संगठन, संचालन तथा निरीक्षण कैन्टनों के अधिकार में है, संघीय सरकार का यह कर्तव्य है कि यदि कैन्टन उन सार्वजनिक स्कूलों में यदि कोई धार्मिक भेदभाव पैदा करे तो केन्टनों के विरुद्ध संघीय सरकार को उचित कार्यवाही करने का अधिकार है। (धारा २७)

संघ सरकार फैक्टरियों में काम करनेवाले बच्चों तथा कर्मचारियों के काम करने के घंटों एवं विपदाजनक व्यापार में कार्य करनेवाले मजदूरों की रक्षा आदि के लिए नियम बना सकती है।

व्यापार सम्बन्धी मामलों में, व्यापार के कानूनी प्रश्नों के बारे में, चल सम्पत्ति के हस्तान्तरण, साहित्यिक व कलात्मक प्रतिलिप्याधिकार (Copy Right), औद्योगिक अन्वेषण, ऋण चुकाने के अभियोग और दिवालियापन आदि के सम्बन्ध में संघ सरकार को अधिनियम बनाने का अधिकार है।

आय के सम्बन्ध में संविधान के ४१ वें अनुच्छेद से संघ सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह हुंडियों, बीमें की रसीदों, अधिकार पत्रों व अन्य सामान्य पर्चों पर मुद्रांक शुल्क (Stamp Duty) लगा सकती है। किन्तु इस कर से जो धन एकत्रित हो व्यय घटाकर उसका ५वाँ भाग कैन्टनों को लौटाना पड़ता है। ४२वें अनुच्छेद में कुछ और आगम स्रोतों का वर्णन है। जैसे संघ सम्पत्ति की आय, सीमा पर उघाया हुआ संघ कर, डाक व तार से प्राप्य आय, या बारुद बनाने के एकाधिकार से प्राप्त धन, कैन्टनों में सैनिक सेवा से मुक्त किये हुए व्यक्तियों से प्राप्त कर का आधा भाग (स्विटज़रलैण्ड में सैनिक सेवा अनिवार्य है, जो व्यक्ति इससे मुक्त होना चाहते हैं उनसे कुछ कर वसूल किया जाता है)।

संघ कला एवं व्यापार के लिए कानून बना सकती है धारा ३४ (ब)। स्विट्ज़रलैण्ड का डाकघर एवं तार संघ के पास है। धारा ३६ । संघ सम्पूर्ण पुलों एवं सड़कों पर नियंत्रण रखती है। (धारा ३७) संघ सायकिल तथा मोटर सायकिल के लिए कानून बना सकती है। धारा ३७ (अ)

कनाडा में संघीय सरकार की शक्तियाँ

कनाडा में संघ सरकार की शक्तियाँ प्रान्तीय सरकारों की शक्तियों से अधिक हैं। जितने विस्तृत अधिकार कनाडा में संघ सरकार को मिले हुए हैं, वैसे बहुत कम संघ शासन विधान केन्द्रीय सत्ता को देते हैं। विधान के ९१ वें अनुच्छेद के अनुसार[1] निम्नलिखित विषयों में संघ सरकार को ही अनन्य रूप से अधिकार प्राप्त हैं :—

(१) राज्य ऋण और जायदाद !

(२) व्यापार का नियम;

(३) किसी भी रीति से कर वसूल कर मुद्रा एकत्रित करना;

---

1. Dawson, Constitutional Issues in Canada 1909-1931, p. 431.

(४) राज्य के मात्रा के आधार पर ऋण उधार लेना;
(५) डाक सेवायें;
(६) जनगणना और संख्यिकी (Statistics);
(७) स्थल व जल सेना व सुरक्षा;
(८) कनाडा की सरकार के कर्मचारियों के वेतन निश्चित करना और उसके दिये जाने का प्रबन्ध करना;
(९) विपदसूचक संकेतों, आकाशदीपों, तैरते हुए निशानों का प्रबन्ध करना।
(१०) नौतरण व नौपरिवहन,
(११) छूत की बीमारियों वाले पोत से संसर्ग निषेध और नाविक चिकित्सालयों की स्थापना;
(१२) सागर तट व देश के भीतर की मछलियाँ;
(१३) किसी प्रान्त और दूसरे ब्रिटिश देश या विदेश के बीच या दो प्रान्तों के बीच नाव से पार जाने की व्यवस्था;
(१४ चलार्थ व मुद्रा (Currency)
(१५) बैंको और नोटों को निकालना;
(१६) सेविंग बैंकें;
(१७) भार व माप;
(१८) प्रतिज्ञा अर्थपत्र व हुंडी;
(१९) ब्याज;
(२०) ऋण चुकाने की कानूनी वस्तु;
(२१) दिवालियापन;
(२२) अन्वेषणों के सुरक्षित प्रयोगाधिकार;
(२३) प्रतिलिप्याधिकार;
(२४) मूल निवासी और उनके लिए सुरक्षित भूमि;
(२५) जनपद बनाना और अन्यदेशीय निवासी;
(२६) विवाह और तलाक;
(२७) केवल दंड देने वाले न्यायालय की स्थापना छोड़कर परन्तु दंड विषयों में कार्य-प्रणाली को निश्चित करने के काम को शामिल कर दंड विधि;
(२८) शोधनालयों की स्थापना व उनकी देखभाल करना ; और
(२९) वे विषय जो स्पष्टतया प्रान्तों को दिये हुए विषयों में से निकालकर एक्ट में बतला दिये गये हैं। इनके अतिरिक्त वे विषय जो उपर्युक्त विषयों के

अन्तर्गत आते हैं। वे स्थानीय विषयों को उस श्रेणी में नहीं समझे जायेंगे जो प्रान्तों को ही केवल सौंप दिये गये हों।

अस्ट्रेलिया की संघीय सरकार की शक्तियां

संघ शासन आने के पूर्व आस्ट्रेलिया के उपनिवेश राज्य अपने आन्तरिक मामलों में एक दूसरे से स्वतन्त्र थे। वे स्वतन्त्रता को खोने के लिए तैयार न होते थे इसीलिए शक्ति वितरण में (Distribution of Powers) उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका के शासन विधान का अनुकरण किया और केन्द्र को केन्द्रीय शक्तियाँ सौंपी गयीं। शेष शक्तियाँ उपनिवेशों के पास रह गयी। संघ सरकार की विधायिनी शक्तियाँ निम्नलिखित हैं:—

(१) दूसरे देशों एवं राज्यों से व्यापारिक सम्बन्ध।
(२) कर, परन्तु दूसरे राज्य अथवा उसके भाग में अन्तर न रखना।
(३) उत्पादन एवं बाहर भेजे जाने वाले माल पर कर लगाना।
(४) कामनवेल्थ की माँग पर ऋण उधार लेना।
(५) पोस्ट, टेलीग्राफ, टेलीफोन और दूसरी सेवायें।
(६) कामनवेल्थ तथा अन्य राज्यों की स्थल एवं जल सेना।
(७) विपदासूचक संकेतों, आकाशदीपों एवं तैरते हुए निशानों का प्रबन्ध करना।
(८) खगोल विद्या एवं अन्तरिक्ष विद्या की देख-रेख।
(९) संक्रामक रोग से ग्रस्त होने पर यात्रा करने के लिए नियम बनाना।
(१०) सीमा के बाहर आस्ट्रेलिया के जल में मछली-शिकार के विषय में नियम बनाना।
(११) जनगणना और सांख्यिकी।
(१२) चलार्थ एवं मुद्रा तथा ऋण चुकाने की कानूनी बस्तु।
(१३) राज्य बैंकों के अतिरिक्त बैंक तथा नोटों को निकालना।
(१४) राज्य बीमा के अतिरिक्त बीमा।
(१५) नाप और तौल।
(१६) प्रतिज्ञा, अर्थपत्र व हुंडी।
(१७) दिवालियापन।
(१८) प्रतिलिप्याधिकार तथा अन्वेषणों का सुरक्षित अधिकार तथा व्यापारिक चिह्न।

(१९) जनपद बनाना एवं अन्य देशीय निवासी ।

(२०) विदेशी निगम, व्यापार, एवं धन सम्बन्धी निगमों की स्थापना ।

(२१) विवाह ।

(२२) तलाक, विवाह सम्बन्धी कारण तथा पैतृक सम्बन्ध एवं बच्चों की संरक्षणता ।

(२३) वृद्धावस्था व अशक्त व्यक्तियों की पेन्शन ।

(२४) सम्पूर्ण कामनवेल्थ की नागरिक एवं फौजदारी सेवायें तथा उनकी वृद्धि तथा राज्यकीय न्यायालयों द्वारा दिये हुए निर्णयों पर विचार करना।

(२५) कानून, नियम तथा रिकार्ड को ग्रहण करना तथा राज्य द्वारा दिये हुए न्यायिक निर्णय पर विचार करना ।

(२६) किसी भी राज्य के प्राचीन निवासियों को छोड़कर अन्य जातियों के लिए विशेष नियम बनाना ।

(२७) प्रवास तथा अप्रवास ।

(२८) कैदियों का अन्तःप्रवेश ।

(२९) बाहरी मामले ।

(३०) दूसरे प्रदेशों के साथ कामनवेल्थ का सम्बन्ध ।

(३१) किसी भी उपराज्य से अपने अधिकार में रहनेवाले काम के लिए उचित शर्तों पर जायदाद खरीदना जिस पर पार्लियामेन्ट अपना कानून बना सकती हो ।

(३२) कामनवेल्थ को जल एवं थल सेना के लिए रेल द्वारा सामान भेजना तथा उस पर नियंत्रण रखना ।

(३३) उपराज्य की सलाह से उस राज्य की रेलवे को खरीदना ।

(३४) रेलवे को बनाना एवं उसको विस्तृत करना । इसके लिए जो रेल जिस राज्य से सम्बन्धित होती है उससे कामनवेल्थ को सलाह लेनी पड़ती है।

(३५) एक उपराज्य की सीमा के बाहर तक फैले हुए औद्योगिक झगड़ों को निपटाने व रोकने के लिए पंच फैसला या राजीनामा आदि ।

(३६) वे मामलें जिन पर पार्लियामेन्ट कानून न बनावें प्रान्तीय सरकार के पास रहते हैं ।

(३७) वे मामले जिनके सम्बन्ध में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट या आस्ट्रेलिया की संघ समितियाँ संविधान बनाते समय कार्यवाही कर सकती थी, उनमें

उन सब उपराज्यों की पार्लियामेन्टों की प्रार्थना करना जो कार्यवाही से प्रत्यक्षरूप से प्रभावित हो ।

(३८) संविधान ने जो शक्ति पार्लियामेन्ट, संघ कार्यपालिका या न्यायपालिका को या किसी शासन विभाग या अफसर को प्रदान की हो उसके उपभोग के सम्बन्ध में आवश्यक अधिकारों का प्रयोग करने की शक्ति संघ सरकार को हैं ।

सोवियत रूस की केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ

सोलह सोवियत समाजवादी प्रजातन्त्र राज्यों के मिलने से संघ का निर्माण हुआ है । इन सब राज्यों को समान अधिकार प्राप्त हैं । राज्य की राजधानी मास्को है । संविधान में १४ वीं धारा के अनुसार निम्नलिखित शक्तियाँ संघ को दी गयी हैं ।

(क) अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में संघ का प्रतिनिधित्व करना, परराष्ट्रों से संधि करना और उनको पूरा करना और संघ, उपराज्यों एवं विदेशी राज्यों के बीच सम्बन्धों के बारे में सामान्य प्रणाली निश्चित करना ।

(ख) युद्ध और शान्ति सम्बन्धी प्रश्न ।

(ग) सोवियत रूस में नये प्रजातन्त्रात्मक उपराज्यों को शामिल करना ।

(घ) संघ शासन-विधान के पालन की देखभाल करना जिससे उसके अनुसार ही सब कार्य हों ।

(ङ) उपराज्यों की सीमाओं को परिवर्तन करने की स्वीकृत देना ।

(च) उपराज्यों में नये स्वाधीन प्रदेशों, प्रान्तों व प्रजातन्त्रों के बनाने की स्वीकृत देना ।

(छ) सोवियत रूस की सुरक्षा का प्रबन्ध, उसकी सैन्य शक्ति का संचालन और उपराज्यों में सैन्य शक्ति का संगठन करने के लिए निर्देशक सिद्धान्तों को स्थिर करना ।

(ज) राज्य के एकाधिकार के अधिकार पर वैदेशिक व्यापार ।

(झ) राज्य की सुरक्षा का बचाव ।

(ञ) सोवियत रूस की आर्थिक योजनाओं को कार्यान्वित करना ।

(ट) सारे संघ का एक बजट (आय-व्यय का एक लेख) बनाकर स्वीकार करना ।

(ठ) उद्योगों, कृषि सम्बन्धी संस्थाओं, बैंकों और सारे सोवियत रूस के लिए महत्व-पूर्ण व्यापार-योजनाओं का प्रबन्ध ।

(ड) यातायात के साधन, डाक व तार आदि का प्रबन्ध।
(ढ) मुद्रा व उदार-प्रणाली का संचालन।
(ण) राजकीय बीमा का प्रबन्ध।
(त) ऋण लेना या देना।
(थ) भूमि, जंगल, खान, जल आदि के प्रयोग के सम्बन्ध में मूल सिद्धान्तों को स्थिर करना।
(द) शिक्षा के सम्बन्ध में, सार्वजनिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में मूल सिद्धान्तों को स्थिर करना।
(ध) देश के लिए हिसाब-किताब रखने की एक ही प्रणाली का आयोजन करना।
(न) श्रम के सम्बन्ध में कानून के आधारभूत सिद्धान्तों को निश्चित करना।
(प) न्याय-संगठन व न्याय प्रणाली के सम्बन्ध में कानून बनाना।
(फ) नागरिकता और विदेशियों के सम्बन्ध में कानून बनाना।
(ब) सारे संघ के बंदियों को मुक्त करने का आदेश देना।

१४वें अनुच्छेद में वर्णित शक्तियों को छोड़ कर शेष शक्तियाँ संघ के उपराज्यों को हैं। संघ उनमें उपराज्यों की सत्ता की रक्षा करता है। प्रत्येक उपराज्य का शासन विधान पृथक् पृथक् है क्योंकि वह अपनी निजी विशेषताओं के अनुकूल बनाया गया है, किन्तु उसका रूप संघ शासन विधान के रूप के समान ही है। सिद्धान्तः प्रत्येक उपराज्य को संघ से पृथक् होने का अधिकार है। किसी भी उपराज्य के प्रदेश में उसकी सम्मति के बिना परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

संघ के सारे निवासी संघ के नागरिक हैं। संघ के अधिनियम सब उपराज्यों में लागू रहते हैं और संघ अधिनियम में टक्कर होने पर संघ अधिनियम ही मान्य होता है।

भारतीय गणतन्त्र में संघ-सरकार की शक्तियाँ

भारतीय संविधान की अनुसूची ७ में ३ सूची अधिकारों की दी हुई हैं जिसमें संघीय विधायिनी के अन्तर्गत संघीय सरकार की विधायिनी शक्तियों का वर्णन किया गया है। राजकीय विधायिनी शक्तियों के अन्तर्गत राज्यों के अधिकारों का वर्णन है, और तृतीय सूची के अन्तर्गत संवर्ती शक्तियों का वर्णन है जिस पर केन्द्र तथा राज्य दोनों सरकारों का वर्णन है परन्तु यदि किसी विषय पर राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार में भेदभाव खड़ा हो जाय तो संविधान के २५४वें अनुच्छेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ऐसी दशा में संघ के कानून ही लागू होंगे।

अनुच्छेद २४८ में कहा गया है कि संसद को ऐसे किसी विषय के बारे में जो समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में प्रगणित नहीं है, विधि बनाने की अनन्य शक्ति है। अनुच्छेद २५० के अनुसार दो या दो से अधिक राज्य यदि चाहे तो संघ सरकार से किसी भी विषय पर जो राज्य सरकार के अन्तर्गत है उस पर नियंत्रण करने के लिए प्रार्थना कर सकती है। अनुच्छेद २४९ संसद को कुछ विशेष शक्तियाँ देता है जो केवल एक वर्ष तक कार्य में लागू हो सकती हैं परन्तु राज्य सभा के पास करने पर एक वर्ष से दूसरे वर्ष तक लागू हो सकती है। इसलिए अनुच्छेद २४९ के अनुसार :—

(१) इस अध्याय के पूर्वगामी उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्य-सभा ने उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों की दो तिहायी से अन्यून संख्या द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित किया है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक तथा इष्टकर है कि संसद राज्य सूची में प्रगणित और उस संकल्प में उल्लखित किसी विषय के बारे में विधि बनाये तो जब तक वह संकल्प प्रवृत्त है। संसद के लिए उस विषय के बारे में भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र अथवा उसके लिए विधि बनाना विधि-संगत होगा।

(२) खण्ड (१)के अधीन पारित संकल्प एक वर्ष से अनधिक ऐसी कालावधि के लिए प्रवृत्त रहेगा जैसी कि उसमें उल्लिखित हो।

परन्तु यदि, और जितनी बार, किसी ऐसे संकल्प को प्रवृत्त बनाये रखने का अनुमोदन करनेवाला संकल्प खण्ड (१) में उपबन्धित रीति से पारित हो जाये तो ऐसा संकल्प उस तारीख के आगे, जिसको इस खण्ड के अधीन अथवा प्रवृत न रहता, एक वर्ष की और कालावधि तक प्रवृत रहेगा।

(३) संसद द्वारा निर्मित कोई विधि, जिसे संसद खण्ड (१) के अधीन संकल्प के पारण के अभाव में बनाने में सक्षम न होती, संकल्प के प्रवृत्त न रहने से छः मास की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक उन बातों के अतिरिक्त प्रभावी न होगी जो उक्त कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गयी या की जाने से छोड़ दी गई है।

आगे अनुच्छेद २५० में कहा गया है कि संसद को, जब तक आपात का उद्-घोषणा प्रवर्तन में है, भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र के अथवा उसके किसी भाग के लिए राज्य-सूची में प्रमाणित विषयों में से किसी के बारे में विधि बनाने की शक्ति होगी और अन्तिम रूप से अनुच्छेद २५३ के अन्तर्गत कहा गया है 'कि संसद को किसी अन्य देश या देशों के साथ की हुई संधि, करार या अभिसमय अथवा किसी अन्तर्रा-

ष्ट्रीय सम्मेलन, संस्था या अन्य निकाय में किये गये किसी विनिश्चय के परिपालन के लिए भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए कोई विधि बनाने की शक्ति है ।"

अनुच्छेद २४६ के अन्तर्गत संसद की विधायिनी शक्तियाँ निम्नलिखित हैं :

प्रथम सूची—संघ-सूची

(१) भारत की तथा उसके प्रत्येक भाग की प्रतिरक्षा जिसके अन्तर्गत प्रतिरक्षा के लिए तैयारी तथा सारे ऐसे भी कार्य हैं, जो युद्ध काल में युद्ध को चलाने और उसकी समाप्ति के पश्चात् सफलतापूर्वक सैन्य-वियोजन में सहायक हों ।

(२) नौ, स्थल और विमान बल; संघ के कोई अन्य सशस्त्र बल ।

(३) कटक-क्षत्रों का परिसीमन, ऐसे क्षेत्रों में स्थानीय स्वायत्त शासन, ऐसे क्षेत्रों के अन्दर कटक प्राधिकारियों का गठन और शक्तियाँ, तथा ऐसे क्षेत्रों में गृह-वासन का विनियमन (जिसके अन्तर्गत किराये का नियंत्रण भी है) ।

(४) नौ, स्थल और विमान बल की कर्मशालायें ।

(५) शस्त्रास्त्र, अग्नेयास्त्र, युद्धोपकरण और विस्फोटक ।

(६) अणुशक्ति तथा उसके उत्पादन के लिए आवश्यक खनिज सम्पत्ति ।

(७) संसद-निर्मित विधि द्वारा प्रतिरक्षा के प्रयोजन के लिए अथवा युद्ध चलाने के लिए आवश्यक घोषित किये गये उद्योग ।

(८) केन्द्रीय गुप्तवार्ता और अनुसंधान विभाग ।

(९) भारत की प्रतिरक्षा, विदेशीय कार्य या सुरक्षा सम्बन्धी कारणों से निवारक निरोध, इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति ।

(१०) विदेशी कार्य, सब विषय जिनके द्वारा संघ का किसी विदेश से सम्बन्ध होता है।

(११) राजनयिक, वाणिज्य-दूतिक और व्यापारिक प्रतिनिधित्व ।

(१२) संयुक्त राष्ट्र-संघटन ।

(१३) अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संस्थाओं और अन्य निकायों में भाग लेना तथा उनमें किये गये विनिश्चयों की अभिपूर्ति ।

(१४) विदेशों से संधि और करार करना तथा विदेशों से की गयी संधियों, करारों और अभिसमयों की अभिपूर्ति ।

(१५) युद्ध और शांति ।

(१६) विदेशीय क्षेत्राधिकार ।

(१७) नागरिकता, देशीयकरण तथा अन्य देशीय ।

(१८) प्रत्यर्पण ।

(१९) भारत में प्रवेश और उसमें से उत्प्रवासन और निर्वासन; पार-पत्र और दृष्टांक।

(२०) भारत के बाहर के स्थानों की तीर्थयात्रायें।

(२१) महासमुद्र या वायु में की गयी जलदस्युता और अपराध; स्थल या महा-समुद्र या वायु में राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध किये गये अपराध।

(२२) रेल।

(२३) राज-पथ जिनमें संसद-निर्मित विधि के द्वारा या अधीन राष्ट्रीय राज्य-पथ घोषित किया गया है।

(२४) यंत्र-चालित जलयानों के विषय में ऐसी अन्तर्देशीय जल-पथों में नौ-वहन और नौ-परिवहन जो संसद-निर्मित विधि द्वारा राष्ट्रीय जल-पथ घोषित किये गये हैं तथा ऐसे जलपथों के पथ नियम।

(२५) समुद्र-नौवहन और नौ परिवहन जिसके अन्तर्गत ज्वार-जल नौवहन और नौ-परिवहन भी हैं; वणिक-पोतीय शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए उपबन्ध तथा राज्यों और अन्य अभिकरणों द्वारा दी जाने वाली ऐसी शिक्षा और प्रशिक्षण का विनियमन।

(२६) प्रकाश स्तम्भ, जिनके अन्तर्गत प्रकाशद्वीप, आकाश द्वीप तथा नौवहन और विमानों की सुरक्षा के लिए अन्य उपबन्ध भी हैं।

(२७) वे पत्तन जिनको संसद-निर्मित विधि या वर्तमान विधि के द्वारा या अधीन महा-पत्तन घोषित किया गया है, जिसके अन्तर्गत उनका परिसीमन तथा उनमें पत्तन प्राधिकारियों का गठन और शक्तियाँ भी हैं।

(२८) पत्तन-निरोधा, जिसके अन्तर्गत उसके सम्बन्ध चिकित्सालय भी हैं, नाविक और समुद्रीय चिकित्सालय।

(२९) वायु-पथ, विमान और विमान-परिवहन, विमान क्षेत्रों का उपबन्ध, विमान-यातायात और विमान-क्षेत्रों का विनियमन और संगठन, वैमानिक शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए उपबन्ध तथा राज्यों और अन्य अभिकरणों द्वारा दी गयी ऐसी शिक्षा और प्रशिक्षण का विनियमन।

(३०) रेल-पथ, समुद्र या वायु से यंत्रचालितयानों में राष्ट्रीय जल पथों से यात्रियों और वस्तुओं का वहन।

(३१) डाक और तार, दूरभाष, बेतार, प्रसारण और अन्य समरूपसंचार

(३२) संघ की सम्पत्ति और उससे उत्थित राजस्व किन्तु किसी राज्य में अवस्थित सम्पत्ति के विषय में, जहाँ तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे

वहाँ तक, उस राज्य के विधान के अधीन रहते हुए।

(३३) देशी राज्यों के शासकों की सम्पत्ति के लिए प्रतिपालक-अधिकरण।

(३४) संघ का लोक-ऋण।

(३५) चलार्थ, टंकण और विधिमान्य, विदेशीय विनिमय।

(३६) विदेशी ऋण।

(३७) भारत का रक्षित बैंक।

(३८) डाक घर, बचत बैंक।

(३९) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार द्वारा संघटित लाटरी।

(४०) विदेशों के साथ व्यापार और वाणिज्य, शुल्क सीमान्तों पार करनेवाले आयात और निर्यात; शुल्क सीमान्तों की परिभाषा।

(४१) अन्तर्राज्यिक व्यापार और वाणिज्य।

(४२) व्यापारिक निगमों का, जिनके अन्तर्गत महाजनी, बीमाई और वित्तीय निगम भी हैं सहकारी किन्तु संस्थायें नहीं हैं, निगमन, विनियमन और समापन।

(४३) विश्वविद्यालयों को छोड़ कर ऐसे निगमों का, चाहे वह व्यापारिक हों या नहीं, जिनके उद्देश्य एक राज्य तक सीमित नहीं हैं, निगमन, विनियमन और समापन।

(४४ महाजनी।

(४५) विनिमय-पत्र, चेक, बचन-पत्र तथा ऐसी अन्य लिखतें।

(४६) बीमा।

(४७) श्रेष्ठि-चत्वर और वादा बाजार।

(४८) एकस्व, आविष्कार और रूपांकन, प्रतिलिप्पाधिकार, व्यापारचिह्न और पण्यचिह्न।

(४९) बाटों और मापों का मान स्थापन।

(५०) भारत के बाहर निर्यात की जाने वाली अथवा एक राज्य से दूसरे राज्य को भेजी जाने वाली वस्तुओं के गुणों का मान स्थापन।

(५१) वे उद्योग जिनके लिए संसद ने विधि द्वारा घोषणा की है कि लोकहित के लिए उन पर संघ का नियंत्रण इष्टकर है।

(५२) तैल-क्षेत्रों और खनिज तेल सम्पत्ति का विनियमन और विकास, पैट्रोलियम और पैट्रोलियम उत्पादन संसद के विधि द्वारा भयानक रूप से ज्वालाग्रही घोषित अन्य तरल और द्रव्य।

(५३) उन सीमा तक खानों का विनियमन और खनिजों का विकास जिस तक

संघ के नियंत्रण में वैसे विनियमन और विकास को संसद विधि द्वारा लोक-हित के लिए इष्टकर घोषित करे ।

(५४) श्रम का विनियमन तथा खानों और तैल-क्षेत्रों में सुरक्षितता ।

(५५) उस सीमा तक अन्तर्राज्यिक नदियों और नदी-दूनों का विनियमन और विकास जिस तक संघ के नियंत्रण में वैसे विनियमन और विकास को संसद् विधि द्वारा लोक-हित के लिए इष्टकर घोषित करे ।

(५६) जल प्रांगण से परे मछली पकड़ना और मीन क्षेत्र ।

(५७) संघ अभिकरणों द्वारा लवण का निर्माण, सम्भरण और वितरण, अन्य अभिकरणों द्वारा लवण का निर्माण, सम्भरण और वितरण का विनियमन और नियंत्रण ।

(५८) अफीम की खेती, निर्माण तथा निर्यात के लिए विक्रय ।

(५९) प्रदर्शन के लिए चल-चित्रों की मंजूरी ।

(६०) संघ के नौकरों के संपृक्त औद्योगिक विवाद ।

(६१) इस संविधान के प्रारम्भ पर राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, साम्राज्यिक युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया स्मारक, भारतीय युद्ध स्मारक, नामों से ज्ञात संस्थायें तथा भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्त-पोषित तथा संसद् से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित ऐसी कोई अन्य तद्रूप संस्था ।

(६२) इस संविधान के प्रारम्भ पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय के नामों से ज्ञात संस्थायें तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था ।

(६३) भारत सरकार से पूर्णतया या अंशत: वित्त-पोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की संस्था घोषित, वैज्ञानिक या शिल्पिक शिक्षा संस्थायें ।

(६४) संघ-अभिकरण और संस्थायें जो—

(क) वृत्तिक, व्यावसायिक या शिल्पि-प्रशिक्षण, जिनके अन्तर्गत आरक्षी पदाधिकारियों का प्रशिक्षण भी है, के लिए हैं; अथवा

(ख) विशेष अध्ययनों के गवेषणा की उन्नति के लिए हैं, अथवा

(ग) अपराध के अनुसंधान या पता चलाने में वैज्ञानिक या शिल्पिक सहायता के लिए हैं ।

(६५) उच्चतर शिक्षा या गवेषणा की संस्थाओं में तथा वैज्ञानिक और शिल्पिक संस्थाओं में एक सूत्रता लाना और मानों का निर्धारण

(६६) संसद् द्वारा निर्मित विधि के द्वारा या आधीन राष्ट्रीय महत्व के घोषित,

प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक और अभिलेख तथा पुरातत्त्वीय स्थान और अवशेष ।

(६७) भारतीय भूपरिमाप, भूतत्त्वीय, वानस्पतिक, नरतत्त्वीय, प्राणकीय परिमाप, अन्तरिक्षशास्त्रीय संस्थायें ।

(६८) जनगणना ।

(६९) संघ-लोक सेवायें, अखिल भारतीय सेवायें, संघ-लोक सेवा आयोग ।

(७०) संघ-निवृत्ति-वेतन अर्थात् भारत सरकार द्वारा या भारत की संचित निधि में से दिये जाने वाले निवृत्ति-वेतन ।

(७१) संसद और राज्यों के विधानमण्डलों के लिए तथा राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के पदों के लिए निर्वाचन, निर्वाचन आयोग ।

(७२) संसद के सदस्यों, राज्य-सभा के सभापति और उपसभापति तथा लोक-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते ।

(७३) संसद के प्रत्येक सदन की तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियाँ, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ, संसद की समितियों अथवा संसद द्वारा नियुक्त आयोगों के सामने साक्ष्य देने या दस्तावेज पेश करने के लिए व्यक्तियों की उपस्थिति वाध्य करना ।

(७४) राष्ट्रपति और राज्यपालों की उपलब्धियाँ, भत्ते, विशेषाधिकार तथा अनुपस्थिति-छुट्टी के बारे में अधिकार, संघ के मंत्रियों के वेतन और भत्ते, नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक के वेतन, भत्ते और अनुपस्थिति, छुट्टी के बारे में अधिकार तथा अन्य सेवा शर्तें ।

(७५) संघ के और राज्यों के लेखाओं की लेखापरीक्षा ।

(७६) उच्चतम न्यायालय का संगठन, क्षेत्राधिकार और शक्तियों (जिसके अन्तर्गत उस न्यायालय का अवमान भी है) तथा उसमें ली जाने वाली फीसें; उच्चतम न्यायालय के सामने विधि-व्यवसाय करने का हक रखनेवाले व्यक्ति ।

(७७) उच्च न्यायालयों के पदाधिकारी और सेवकों के बारे में उपबन्धों को छोड़कर उच्च न्यायालयों का गठन और संगठन; उच्च न्यायालयों के सामने विधि व्यवसाय करने का हक रखनेवाले व्यक्ति ।

(७८) किसी संघ राज्य क्षेत्र में से या किसी उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का विस्तार अथवा किसी उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का अपवर्जन ।

(७९) किसी राज्य के आरक्षी बल के सदस्यों की शक्तियाँ और क्षेत्राधिकार का उस राज्य में न होनेवाले किसी क्षेत्र पर विस्तार, किन्तु इस प्रकार नहीं

कि एक राज्य का आरक्षी, उस राज्य में न होनेवाले किसी क्षेत्र में बिना उस राज्य की सरकार की सम्मति के, जिसमें कि ऐसा क्षेत्र स्थित है, शक्तियाँ और क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सके; किसी राज्य की आरक्षी दल के सदस्यों की शक्तियाँ और क्षेत्राधिकार का उस राज्य के बाहर रेल-क्षेत्रों पर विस्तार

(८०) अन्तर्राज्यीय प्रवचन, अन्तर्राज्यीय निरोधा।

(८१) कृषि आय को छोड़कर अन्य आय पर कर।

(८२) सीमा-शुल्क जिसके अन्तर्गत निर्यात-शुल्क भी है।

(८३) भारत में निर्मित या उत्पादित तम्बाकू तथा

(क) मानव उपभोग के मद्यसारिक पानों;

(ख) अफीमा, भाँग और अन्य पिनक लाने वाली औषधियों तथा स्वापकों; को छोड़कर, किन्तु ऐसी औषधीय और प्रसाधनीय सामग्री के अन्तर्गत करके, जिनमें कि मद्यसार अथवा उक्त प्रविष्टि की उपकंडिका (ख) में का कोई पदार्थ अन्तर्विष्ट हो, अन्य सब वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क।

(८४) निगम कर।

(८५) व्यक्तियों या समवायों की आस्ति में से कृषिभूमि को छोड़कर उसके मूलधन मूल्य पर कर, समवायों के मूलधन पर कर।

(८६) कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार के बारे में शुल्क।

(८७) रेल या समुद्र या वायु से ले जाने वाली वस्तुओं या यात्रियों पर सीमा-कर, रेल के जन भाड़े और वस्तु भाड़े पर कर।

(८८) कृषि भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पत्ति के बारे में सम्पत्ति शुल्क

(८९) मुद्रांक-शुल्क को छोड़ कर श्रेष्ठ-चत्वर और वादा बाजारों के सौदों पर कर।

(९०) विनिमय पत्रों, चेकों, वचनपत्रों, वहनपत्रों, बीमापत्रों, अंशों के हस्तान्तरण, ऋणपत्रों, प्रतिपत्रियों और प्राप्तियों के सम्बन्ध में लगने वाले मुद्रांक शुल्क की दर।

(९१) समाचार पत्रों के क्रय या विक्रय पर तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।

(९२) समाचार-पत्रों से भिन्न वस्तुओं पर क्रय या विक्रय पर उस सूरत पर कर जिसमें कि ऐसा क्रय या विक्रय अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य की चर्या में हो।

(९३) इस सूची के विषयों में से किसी के प्रयोजनों के लिए जाँच, परिणाषा और सांख्यकी ।

(९४) इस सूची के विषयों में से सम्बन्ध विषयों के विरुद्ध अपराध ।

(९५) उच्चतम न्यायालय को छोड़ कर अन्य न्यायालयों के इस सूची में के विषयों में किसी के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ, न्यायाविकरण क्षेत्राधिकार।

(९६) किसी न्यायालय में लिये जाने वाली फीसों को छोड़ कर उस सूची में के विषयों में से किसी के सम्बन्ध में फीस ।

(९७) सूची (२) या (३) में से किसी में अवर्णित किसी कर के सहित उन सूचियों में अप्रगणित कोई अन्य विषय ।

इस प्रकार सम्पूर्ण शक्तियों को देख कर स्पष्ट विदित होता है कि संसद को विधायिनी क्षेत्र में बहुत ही अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं अतः कुछ आलोचकों का कहना है कि भारतीय गणतंत्र शांति के समय में एक संघ राज्य है परन्तु आपत्कालीन समय में एकिक शासन प्रणाली के अन्तर्गत ज्ञात होता है । यह निःसंदेह सत्य है कि भारत की केन्द्रीय को सरकार बहुत ही अधिक शक्तियाँ प्राप्त है ।

संघ-प्रणाली में राज्य सरकार की शक्तियाँ

विभिन्न संघों की स्थापना में राज्य की विभिन्न परिस्थितियों के कारण संघ और राज्यों के बीच शक्ति वितरण हुआ है । कभी-कभी राज्यों को बहुत ही कम शक्तियाँ प्राप्त हैं और उनकी शक्तियाँ संविधान में उल्लिखित कर दी हैं जबकि शेष शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार को दे दी गयी हैं । दूसरे स्थान पर प्रान्तों को अनन्य शक्तियाँ प्राप्त हैं जबकि केन्द्र को बहुत तुच्छ । पूर्व के मामले में दक्षिण अफ्रीका और कनाडा का संविधान जीता-जागता उदाहरण है । दूसरे में संयुक्त राज्य अमरीका, स्विटजरलैण्ड, आस्ट्रेलिया उल्लेखनीय हैं।

कनाडा में राज्यों को ब्रिटिश नार्थ अमरीका एक्ट द्वारा शक्तियाँ निश्चित कर दी गयी हैं । एक्ट की ९२वें धारा के अनुसार प्रान्तीय विधान मंडलों को निम्नलिखित विषयों के आने वाले मामलों के सम्बन्ध में कानून बनाने के अधिकार हैं:

(१) लेफ्टीनेन्ट गवर्नर के पद को छोड़ कर प्रान्तीय शासन विधान में समय समय पर संशोधन करना ।

(२) प्रान्तीय आवश्यकताओं के लिए प्रान्त में प्रत्यक्ष कर लगाना ।

(३) प्रान्त की धन सम्पति पर ऋण लेना ।

(४) प्रान्तीय सरकारी पदों की स्थापना करना और उन पर अफसरों को नियुक्त कर उन्हें वेतन देना ।

(५) प्रान्तीय भूमि व उस पर उगे हुए वन व लकड़ी की देखभाल करना व बेचना।
(६) प्रान्त में बंदीगृहों की स्थापना करना व उनकी देखभाल करना।
(७) प्रान्त में अस्पतालों, आश्रमों आदि की स्थापना, प्रबन्ध व देखभाल रखना।
(८) नगरपालिकायें।
(९) दूकानों, सरायों, भोजनालयों आदि के लाइसेन्स देना जिससे प्रान्तीय, स्थानीय व नागरिक कामों के लिए धन इकट्ठा हो सके।
(१०) स्थानीय निर्माण व योजनायें, निम्नलिखित को छोड़ कर :—
(क) जलपोत, रेल. नहर, तार या दूसरी योजनायें जो प्रान्त के बाहर तक जाती हों या एक प्रान्त को दूसरे प्रान्त से मिलाती हों।
(ख) जलपोत या किसी ब्रिटिश या अन्य देश के बीच चलते हो।'
(ग) वे योजनायें जो यद्यपि प्रान्त में स्थित हों पर उनके पूरी होने से पूर्व या बाद जिनको कनाडा की सरकार ने सारे कनाडा या एक से अधिक प्रान्त के हितार्थ में घोषित कर दिया हो।
(११) प्रान्तीय लाभ के लिए कम्पनियों को संगठित करना।
(१२) विवाहों को मान्य करना।
(१३) प्रान्त में जायदाद सम्बन्धी व नागरिक सम्बन्धी अधिकार।
(१४) प्रान्त में न्याय का प्रबन्ध करना और उसके लिये न्यायालयों को स्थापित कर उनका प्रबन्ध करना व उनमें कार्यप्रणाली को निश्चित करना। ये न्यायालय व्यवहार व अपराध सम्बन्धी दोनों प्रकार के हो सकते हैं।
(१५) इस धारा में गिनाये हुए विषयों के अन्तर्गत आने वाले मामलों के सम्बन्ध में किसी प्रान्तीय कानून को लागू करने के लिए जुर्माना करके व कारावास करके दंड देना।
(१६) सामान्य वे सब मामले जो प्रान्त में स्थानीय या वैयक्तिक प्रकार के हों।

इन उपर्युक्त शक्तियों को वर्तने के अतिरिक्त कुछ शर्तों के साथ जिनमें प्रान्तीय सरकार का अधिकार कम हो जाता है, प्रान्तीय धारा सभा प्रान्त के भीतर शिक्षा सम्बन्धी कानून बना सकती है। नोवास्कोशिया, औन्टेरिया और न्यू ब्रंसविक प्रान्तों में केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि वह जायदाद व्यावहारिक अधिकारों के सम्बन्ध में एक समान कानून बना सकती है। प्रान्तीय विधान मण्डल, कृषि व विदेशियों को बसने के सम्बन्ध में कानून बना सकती है। इससे यह प्रकट है कि समवर्ती शक्तियों का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है।

तत्पश्चात् उपरोक्त वर्णित संघों के अतिरिक्त ऐसे भी संघ हैं जिनमें राज्य

सरकारों को संघ सरकार से अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं उसमें अमरीका, स्विटज़रलैण्ड एवं कामनवेल्थ आस्ट्रेलिया उल्लेखनीय है। सन् १७८७ के पूर्व अमरीका का राज्य एक शिथिल प्रसंधि था जिसमें राज्य सरकारों को अनन्य अधिकार प्राप्त थे और वे संप्रभुतायुक्त थे। उसके बाद जे (Jay), हमिल्टेन (Hamiltan) और मैडीसन (Madeson) ने फैडरलिस्ट द्वारा संघीय सरकार की स्थापना में प्रचार किया। ऐसी स्थितियों में जब संघ की स्थापना हुई उस समय केन्द्र को कम शक्तियाँ दी गयीं और राज्यों के पास अधिक। संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान सम्भवत: विश्व के सभी संविधानों से छोटा है विशेषतया संघ सरकार की शक्तियों के आरक्षित में। इसी कारण संयुक्त राज्य अमरीका का प्रत्येक राज्य विधि और नियम, व्यवहारिक एवं फौजदारी कानून, स्थानीय सरकार, शिक्षा, जनसाधारण स्वास्थ्य, सैनिक की वृद्धि, सर्वसाधारण पुलिस शक्ति सम्बन्धी अधिकारों का उपयोग करता है।[1] इन अधिकारों से स्पष्ट होता है कि संविधान में वर्णित अधिकारों के पश्चात् राज्यकीय एवं संघीय झगड़े उठने का बहुत ही थोड़ा क्षेत्र रह जाता है किन्तु कुछ समय से देखने में आ रहा है कि उच्चतम न्यायालय के फैसलों एवं बढ़ती हुई अन्तर्राष्ट्रीय, व्यापारिक सम्बन्धों की पेचदगी और कुछ राष्ट्रों की शक्ति लोलुपता के कारण उपराज्य केन्द्रीय सरकार पर अधिकाधिक परावलम्बी होते जा रहे हैं। इसलिए वे धीरे धीरे उस स्वतन्त्रता और उन अधिकारों को खोते जा रहे हैं जिनकी उन्होंने बड़े यत्न से संघ के प्रारम्भिक काल में रक्षा की थी।

स्विटजरलैण्ड के संविधान निर्माताओं ने भी संघ सरकार को कम शक्तियों से विभूषित किया है। इन लोगों ने अमरीकन संविधान का उदाहरण लिया जो इससे लगभग ६० वर्ष पूर्व निर्मित हुआ था। स्विटज़रलैण्ड में कैन्टनों को अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं। कैन्टनों को गरीबी का निवारण, जनस्वास्थ्य, अस्पताल, कृषि, उद्योग, शिक्षा, धर्म आदि पर अधिकार प्राप्त है। और सब से अधिक अधिकार उन्हें अपने कैन्टनों पर कर लगाने का अधिकार है।

आस्ट्रेलिया का कामनवेल्थ ऐक्ट उस समय पास किया गया जब कि आस्ट्रेलिया कानाडा एवं संयुक्तराज्य अमरीका की दशाओं को देख चुका था। अत: आस्ट्रेलिया ने दोनों देशों के मध्य का मार्ग निकाला और उन दोनों संविधानों की त्रुटियों को ध्यान में रखा। आस्ट्रेलिया के संघ निर्मित होने के पूर्व वहाँ के प्रान्त आन्तरिक मामलों में एक दूसरे से पूर्ण स्वतन्त्र थे। अत: संघ बनते समय प्रान्तों ने संघ को

1. Sir Freerick Whyte, **India A Federation ?** pp. 67-68.

वही शक्तियाँ प्रदान की जो सार्वजनिक कार्यों के लिए आवश्यक थीं। इस प्रकार सूक्ष्म में संघीय सरकार एवं राज्य सरकारों के बीच का शक्ति-वितरण का सिद्धान्त प्रचलित है।

भारत में राज्यों के अधिकार

भारत गणतन्त्र की स्थापना के पूर्व भारतीय उपनिवेश के राज्य प्रान्त कहलाते थे। अनुच्छेद २४६ (३) के अनुसार राज्य सरकारों को निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त हैं :

सूची २—राज्य सूची

(१) सार्वजनिक व्यवस्था (किन्तु असैनिक शक्ति की सहायता के लिए संघ के नौ, स्थल, या विमान बलों के प्रयोग को अन्तर्गत न करते हुए)।

(२) आरक्षी, जिसके अन्तर्गत रेल या और ग्राम आरक्षी भी हैं।

(३) न्याय-प्रशासन, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों का गठन और संगठन, उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारी और सेवक, भाटक और राजस्व न्यायालयों की प्रक्रिया, उच्चतम न्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों में ली जाने वाली फीसें।

(४) कारागर, सुधारालय, वोरस्टल संस्थायें और तद्रूप अन्य संस्थायें और उनमें निरुद्ध व्यक्ति, कारागारों और अन्य संस्थाओं के उपभोग के लिए अन्य राज्यों से प्रबन्ध।

(५) स्थानीय शासन अर्थात् नगर-निगम, सुधार-प्रन्यास, जिला-मंडलों खनिज-बस्ती प्राधिकारियों तथा स्थानीय स्वशासन या ग्राम्य प्रशासन के लिए अन्य स्थानीय प्राधिकारियों का गठन और शक्तियाँ।

(६) सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता, चिकित्सालय और औषधालय।

(७) भारत के बाहर के स्थानों की तीर्थयात्राओं को छोड़ कर अन्य तीर्थयात्रायें।

(८) मादक पानों अर्थात् मादक पानों का उत्पादन निर्माण कब्जा; परिवहन, क्रय और विक्रय।

(९) अंगहीनों और नौकरी के लिए अयोग्य व्यक्तियों की सहायता।

(१०) शव गाड़ना और कब्रिस्तान, शवदाह और श्मशान।

(११) सूची १ की प्रविष्टियों ६३, ६४, ६५ और ६६ तथा सूची ३ की प्रविष्टि २५ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए शिक्षा, जिसके अन्तर्गत विश्वविद्यालय भी हैं।

(१२) राज्य के नियंत्रित या वित्त-घोषित पुस्तकालय, संग्रहालय, या अन्य समतुल्य संस्थायें (संसद द्वारा निर्मित विधि के द्वारा या अधीन राष्ट्रीय महत्व के घोषित) से भिन्न प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक और लेख।

(१३) संचार अर्थात् सड़कें, पुल, नौका और घाट तथा सूची १ में अनुल्लिखित संचार के अन्य साधन, ट्राम-पथ, रज्जु-पथ, अन्तर्देशीय जल-पथ और उन पर यातायात, वैसे जल-पथों के विषय में सूची १ और सूची ३ में के उपबन्धों के अधीन रहते हुए यंत्रचालित यानों को छोड़ कर अन्य यान।

(१४) कृषि, जिसके अन्तर्गत कृषि-शिक्षा और गवेषणा, मरकों से रक्षा तथा उद्‌भिद् रोगों का निवारण भी है।

(१५) पशु के नस्ल का परिरक्षण, संरक्षण और उन्नति तथा पशुओं के रोगों का निवारण, शालिहोत्री, प्रशिक्षण और व्यवसाय।

(१६) पश्वरोध और पशुओं के अतिचार का निवारण।

(१७) सूची १ की प्रविष्टि ५६ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए जल अर्थात् जल-सम्भरण, सिंचाई और नहरें, जल निस्सारण और बंध, जल संग्रह और जल-शक्ति।

(१८) भूमि अर्थात् भूमि में या पर अधिकार, भूधृति जिसके अन्तर्गत भूस्वामी और किसानों का सम्बन्ध भी है। तथा भाटक का संग्रहण, कृषि भूमि का हस्तांतरण और अन्य संक्रमण, भूमि सुधार और कृषि सम्बन्धी उधार, उपनिवेषण।

(१९) वन।

(२०) वन्य प्राणियों और पक्षियों की रक्षा।

(२१) मीन-क्षेत्र।

(२२) सूची एक की प्रविष्टि ३४ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए प्रतिपालक अधिकरण, भारग्रस्त और कुर्क सम्पदायें।

(२३) संघ के नियंत्रणाधीन विनियमन और विकास के सम्बन्ध में सूची १ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए खानों का विनियमन और खनिज़ों का विकास।

(२४) सूची १ की (प्रविष्टि ७ और ५२) के उपबन्धों के आधीन रहते हुए उद्योग।

(२५) गैस, गैस-कर्मशालायें।

(२६) सूची ३ की प्रविष्टि ३३ में उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य के अन्दर व्यापार और वाणिज्य।

(२७) सूची ३ की प्रविष्टि ३३ में उपबन्धों के अधीन रहते हुए वस्तुओं का उत्पादन, संभरण और वितरण ।

(२८) बाजार और मेले ।

(२९) मान स्थापन को छोड़कर बाट और माप ।

(३०) साहूकारी और साहूकार, कृषि भणिता का उद्धार ।

(३१) पान्थशाला और पान्थशालापाल ।

(३२) सूची १ में उल्लिखित निगमों से भिन्न निगमों का और विश्वविद्यालयों का निगमन, विनियमन और समापन, व्यापारिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, धार्मिक और अन्य अनिगमित समाजें और संस्थायें; सहकारी समाजें ।

(३३) नाट्यशाला, नाटक अभिनय, प्रथम अनुसूची की प्रविष्टि ६० के उपबन्धों के अधीन रहते हुए चलचित्र-क्रीड़ा, आमोद और विनोद ।

(३४) पण लगाना और जुँआ ।

(३५) राज्य में निहित या उसके स्ववश में की कर्मशालायें, भूमि और भवन ।

(३६) संसद-निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य के विधान मण्डल के लिए निर्वाचन ।

(३७) राज्य के विधान मंडल के सदस्यों के, विधान-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के तथा, यदि विधान-परिषद् है तो, उसके सभापति और उप-सभापति के वेतन और भत्ते ।

(३८) विधान-सभा और उसके सदस्यों और समितियों की तथा, यदि विधान-परिषद् हो तो उस परिषद्, और उसके सदस्यों और समितियों के सामने साक्ष्य देने या दस्तावेज पेश करने के लिए व्यक्तियों की उपस्थिति बाध्य करना ।

(३९) राज्य के मंत्रियों के वेतन और भत्ते ।

(४०) राज्य-लोक सेवायें, राज्य-लोक-सेवा आयोग ।

(४१) राज्य-निवृत्ति-वेतन अर्थात् राज्य द्वारा अथवा राज्य की संचित निधि में से देय निवृत्ति-वेतन ।

(४२) राज्य का लोक-भरण ।

(४३) निरवात निधि ।

(४४) भू राजस्व जिसके अन्तर्गत राजस्व का निर्धारण और संग्रहण, भू-अभिलेखों को बनाये रखना, राजस्व प्रयोजनों के लिए और स्वत्व-अभिलेखों के लिए परिमाप और राजस्व का अन्य-संक्रामण भी है ।

(४५) कृषि-आय पर कर ।

(४६) कृषि-भूमि के उत्तराधिकार के विषय में शुल्क ।

(४७) कृषि भूमि के विषय में सम्पत्ति-शुल्क ।

(४८) भूमि और भवनों पर कर ।

(४९) संसद से, विधि द्वारा, खनिज-विकास के सम्बन्ध में लगायी गई परिसीमाओं के अधीन रहते हुए खनिज-अधिकार पर कर ।

(५०) राज्य में निर्मित या उत्पादित निम्नलिखित वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क तथा भारत में अन्यत्र निर्मित या उत्पादित तत्सम् वस्तुओं पर उसी या कम दर में प्रति शुल्क—

(क) मानव उपभोग के लिए मद्यसारिक पान;

(ख) अफीम, भाँग और अन्य पिनक लाने वाली औषधियाँ और स्वापक ऐसी औषधीय और प्रसाधनीय सामग्रियों को छोड़कर जिनमें मद्य-सार अथवा इस प्रविष्टि के उपकंडिका (ख) में का कोई पदार्थ अन्तर्विष्ट हो ।

(५१) किसी स्थानीय क्षेत्र में उपभोग, प्रयोग या विक्रय के लिए वस्तुओं के प्रवेश पर कर ।

(५२) विद्युत के उपभोग या विक्रय पर कर ।

(५३) सूची १ की प्रविष्टि ९२ क के उपबन्धों के आधीन रहते हुए, समाचार पत्रों से भिन्न वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर ।

(५४) समाचारपत्रों में प्रकाशित होनेवाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर ।

(५५) सड़कों या अन्तर्देशीय जल-पथों पर ले जाये जाने वाली वस्तुओं और यात्रियों पर कर ।

(५६) सड़कों पर उपयोग के योग्य यानों पर, चाहे वह यंत्रचालित हों या न हों तथा जिनके सूची ३ की प्रविष्टि ३५ के उपबन्धों के अधीन ट्राम गाड़ियाँ भी अन्तर्गत हैं, कर ।

(५७) पशुओं और नौकाओं पर कर ।

(५८) पथ-कर ।

(५९) वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर कर ।

(६०) प्रति-व्यक्ति कर ।

(६१) विलास वस्तुओं पर कर, जिनके अन्तर्गत आमोद, विनोद, पण लगाने और जुआँ खेलने पर भी कर हैं।

(६२) मुद्रांक-शुल्क की दरों के सम्बन्ध में सूची (१) के उपबन्धों में उल्लिखित दस्तावेजों को छोड़ कर अन्य दस्तावेजों के बारे में मुद्रांक शुल्क की दर।

(६३) इस सूची में के विषयों में से किसी से संबद्ध विधियों के विरुद्ध अपराध।

(६४) इस सूची के विषयों में से किसी के बारे में उच्चतम न्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों का क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ।

(६५) किसी न्यायालय में ली जाने वाली फीसों को छोड़कर इस सूची के विषयों में से किसी के बारे में फीस।

इसके अतिरिक्त राज्यकीय विधान मण्डल प्रचलित विधायिनी सूची के विषयों पर भी कानून बना सकते हैं परन्तु इन शक्तियों पर संघ सरकार द्वारा जिन पर उसका नियंत्रण हैं रोक लगी हुई है।

संघ की अवशिष्ट शक्तियाँ

शक्ति-वितरण के सिद्धान्त में अवशिष्ट शक्तियों को किस स्थान पर रखना चाहिए बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। यह शक्तियाँ या तो राज्य सरकारों को दी जाती हैं या संघ सरकार को या दोनों को अर्थात् राज्य सरकारों को तथा संघ सरकार को। कनाडा में यह शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार के पास है। जर्मनी में कुछ शक्तियाँ केन्द्र के पास तथा अन्य राज्यों के पास थी परन्तु राज्य सरकारें केन्द्रीय शक्तियों का भी उपभोग कर सकती थीं। यह संविधान के १४वें अनुच्छेद में दिया हुआ था। यही बात कामनवेल्थ आस्ट्रेलिया के संविधान में पायी जाती है। परन्तु अधिकतर संघ प्रणालियों में यह पाया जाता है कि जब भी अवशिष्ट शक्तियों पर केन्द्र तथा राज्य में मतभेद हो जाता है केन्द्र के कानून ही मान्य होते है। वास्तविकता में संघ की जड़ सुदृढ़ करने के लिए यह आवश्यकीय भी है नहीं तो जिन कारणों से संघ की स्थापना की गई वह सदा के लिए समाप्त हो जावेंगे।

कुछ संघों में अवशिष्ट शक्तियों का उपभोग राज्य सरकारें एवं संघ सरकार दोनों करते हैं। समवर्ती शक्तियाँ या तो संविधान में स्पष्ट रूप से लिख दी जाती हैं जैसा कि भारतीय गणतन्त्र राज्य में किया गया है या बिना संविधान में स्पष्ट किये हुए रीतियों पर उपयोग की जाती हैं। जैसा कि अमरीका के संविधान में पाया जाता है। अमरीका में संघ सरकार अपने आर्थिक दान द्वारा भी राज्य सरकार के अधि-

कारों का उपभोग करती है। इन शक्तियों में मनुष्यों की आर्थिक, सामाजिक उत्थान भी सम्मिलित रहे हैं।

भारतीय गणतंत्र का संघ राज्य ४७ विषयों पर केन्द्र तथा राज्य सरकारें समवर्ती शक्तियों पर अपना अधिकार रखती है। वे निम्नलिखित हैं।

सूची ३—समवर्ती सूची

(१) दंड-विधि जिसके अन्तर्गत वह सब विषय हैं जो इस संविधान के प्रारम्भ पर भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत हैं किन्तु सूची १ या सूची २ में उल्लिखित विषयों में से किसी से सम्बन्ध विषयों के विरुद्ध अपराधों को छोड़कर तथा असैनिक शक्ति की सहितार्थ नौ, स्थल और विमान बलों के प्रयोग को छोड़कर।

(२) दंड-प्रक्रिया जिसके अन्तर्गत वह सब विषय हैं जो इस संविधान के प्रारम्भ पर दंड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत है।

(३) राज्य की सुरक्षा से, सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने से अथवा समुदाय के लिए अत्यावश्यक संभरणों और सेवाओं को बनाये रखने से संसक्त कारणों के लिए निवारक निरोध; ऐसे निरुद्ध व्यक्ति।

(४) कैदियों, अभियुक्त व्यक्तियों तथा इस सूची की प्रविष्टि ३ में उल्लिखित कारणों से निवारक-निरोध में किये गये व्यक्तियों का एक राज्य से दूसरे राज्य को हटाया जाना।

(५) विवाह और विवाह-विच्छेद, शिशु और अवयस्क दत्तक ग्रहण ,इच्छापत्र, इच्छापत्रहीनत्व और उत्तराधिकार; अविभक्त कुटुम्ब और विभाजन; वे सब विषय जिनके सम्बन्ध में न्यायिक कार्यवाहियों में पक्ष इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहिले अपना स्वीय विधि के अधीन थे।

(६) कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्तियों का हस्तान्तरण. विलेखों और दस्तावेजों का पंजीयन।

(७) संविदा जिनके अन्तर्गत भागिता, अभिकरण, परिवहन संविदा और अन्य विशेष प्रकार की संविदायें भी हैं किन्तु कृषि भूमि सम्बन्धी संविदायें नहीं हैं।

(८) अभियोज्य दोष।

(९) दिवाला और शोधा क्षमता।

(१०) न्यास और न्यासी।

(११) महाप्रशासक और राज्य न्यासी ।

(१२) साक्ष्य और शपथें, विधियों, सार्वजनिक कार्यों और अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाहियों का अभिज्ञान ।

(१३) व्यवहार-प्रक्रिया, जिसके अन्तर्गत वे सब विषय हैं जो इस संविधान के प्रारम्भ पर व्यवहार-प्रक्रिया-संहिता के अन्तर्गत हैं, परिसीमा और मध्यस्थ निर्णय ।

(१४) न्यायालय-अवमान, किन्तु जिसके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय का अवमान नहीं है ।

(१५) आहिण्डन, अस्थिरवासी और प्रवासी आदिम जातियाँ ।

(१६) उन्माद और मनोवैकल्य जिसके अन्तर्गत उन्मत्तों और मनोविकलों के रखने या उपचार के स्थान भी है ।

(१७) पशुओं के प्रति निर्दयता का निवारण ।

(१८) खाद्य पदार्थों और अन्य वस्तुओं में अपमिश्रण ।

(१९) अफीम विषयक सूची १ की प्रविष्टि ५९ में के उपबन्धों के रहते हुए औषधि और विष ।

(२०) आर्थिक और सामाजिक योजना ।

(२१) वाणिज्यिक और औद्योगिक एकाधिपत्य और न्यास ।

(२२) व्यापार संघ, औद्योगिक और श्रमिक विवाद ।

(२३) सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा और नौकरी तथा बेकारी ।

(२४) श्रमिकों का कल्याण जिसके अन्तर्गत कार्य की शर्तें, भविष्य-निधि, नियोजक दायित्व, कर्मकार प्रतिकर, असमर्थता और वार्धक्य-निवृत्ति वेतन और प्रसूति।सुविधायें भी हैं ।

(२५) श्रमिकों का व्यावसायिक और शिल्पी-प्रशिक्षण ।

(२६) विधि-वृत्तियाँ, वैद्यक वृत्तियाँ और अन्य वृत्तियाँ ।

(२७) भारत और पाकिस्तान को डोमिनियनों के स्थापित होने के कारण अपने मूल निवास-स्थान से विस्थापित व्यक्तियों की सहायता और पुनर्वास ।

(२८) पूर्त और पूर्त-संस्थायें, पूर्त और धार्मिक धर्मस्व और धार्मिक संस्थायें ।

(२९) मानवों, पशुओं और उद्भिदों पर प्रभाव डालने वाले सांक्रमिक और सांसर्गिक रोगों और मारकों के एक राज्य से दूसरे राज्य से फैलने का निवारण ।

(३०) जीवन सम्बन्धी सांख्यकी, जिसके अन्तर्गत जन्म और मृत्यु की पंजीयन भी है ।

(३१) संसद-निर्मित विधि या वर्तमान विधि के द्वारा या अधीन महा-पत्तन घोषित पत्तनों से भिन्न पत्तन ।

(३२) राष्ट्रीय जल-पंथों के विषय में सूची १ के उपवन्धों के अधीन रहते हुए अन्त-र्देशीय जल-पंथों पर यात्रियों और वस्तुओं का परिवहन ।

(३३) (क) जहाँ संसद द्वारा, विधि द्वारा किसी उद्योग के संघ द्वारा नियंत्रण लोकहित में इष्टकर घोषित किया गया है वहाँ उस उद्योग में के उत्पादनों में, और उसी प्रकार के आयात किये गये मालों को ऐसे उत्पादनों के रूप में।

(ख) खाद्य पदार्थों का, जिनके अन्तर्गत खाद्य तिलहन और तेल भी हैं।

(ग) कच्ची रूई का, चाहे धुनी हुई हो या बिना धुनी हुई हो और बिनौले का, और

(घ) जानवरों के चारे का, जिनके अन्तर्गत खली और अन्य सारकृत चारे हैं।

(ङ) कच्चे पटसन का व्यापार और वाणिज्य तथा उत्पादन, संभरण और वितरण ।

(३४) मूल्य नियंत्रण ।

(३५) यंत्र चालित यान जिनके अन्तर्गत वे सिद्धान्त भी हैं जिनके अनुसार ऐसे यानों पर कर लगाया जाना है ।

(३६) कारखाने ।

(३७) वाष्प यंत्र ।

(३८) विद्युत ।

(३९) समाचार पत्र, पुस्तकें और मुद्रणालय ।

(४०) (संसद द्वारा निर्मित विधि के द्वारा या अधीन राष्ट्रीय महत्व के घोषित) से भिन्न पुरातत्व सम्वन्धी स्थान और अवशेष ।

(४१) विधि द्वारा निष्क्राम्य घोषित सम्पति की कृषि भूमि सहित अभिरक्षा, प्रवन्ध और व्ययन ।

(४२) सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण ।

(४३) किसी राज्य में उस राज्य से बाहर पैदा हुए कर विषयक दावों तथा अन्य सार्वजनिक अभियाचनाओं की जिसके अन्तर्गत भूराजस्व का बकाया और इस प्रकार वसूल की जाने वाली बकाया भी है वसूली ।

(४४) न्यायिक, मुद्रांकों द्वारा संग्रहीत शुल्कों या फीसों को छोड़कर अन्य मुद्रांक शुल्क, किन्तु इसके अन्तर्गत मुद्रांक शुल्क की दरें नहीं हैं ।

(४५) सूची २ या सूची ३ में उल्लिखित विषयों में से किसी के प्रयोजनों के लिए जाँच और सांख्यकी।

(४६) उच्चतम न्यायालय को छोड़कर अन्य न्यायालयों की इस सूची के विषयों में से किसी के बारे में क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ।

(४७) इस सूची के विषय में से किसी के बारे में फीसें किन्तु इनके अन्तर्गत किसी न्यायालय में ली जाने फीसे नहीं हैं।

अध्याय ७

संघीय संस्थायें—कार्यपालिकायें

संघीय शासन प्रणाली में कार्यपालिका का वास्तविक स्वरूप भले ही पूर्ण-रूप से संघीय सिद्धान्त के आधार पर सम्बन्धित न हो, परन्तु कार्यपालिका का संगठन एवं उसकी कार्यप्रणाली निःसन्देह ही संघीय संस्था पर प्रभाव डालती है। क्या संघीय कार्यपालिका अपने संगठन में इकाइयों के स्वत्व को स्वीकार करती है ? क्या कार्यपालिका राज्य के अधिकारों का संरक्षण करती है ? उपरोक्त प्रश्नों के आधार पर हम कुछ आधुनिक संघों के साथ कार्यपालिका के सम्बन्धों का वर्णन करेंगें जो कि आधुनिक संघीय सरकार की कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालेंगे।

संघीय कार्यपालिका के स्वरूप—आधुनिक संघों में दो प्रकार की कार्यपालिकायें पाई जाती हैं (१) संसदीय कार्यपालिका, जिसका उत्तरदायित्व विधानमण्डल पर आधारित रहता है। इस प्रकार की कार्यपालिका कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं भारत में पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त जर्मनी के प्रजातन्त्रात्मक राज्य ने भी इस सिद्धांत को अपनाया है। सिद्धान्त रूप में राष्ट्र मंडल के दोनों ही संविधानों ने ब्रिटिश-नृप अथवा उसके प्रतिनिधि में सभी कार्यपालिका शक्तियाँ निहित की हैं, अर्थात् भारत में राष्ट्रपति को एवं उपनिवेश में गवर्नर जनरल को। परन्तु वास्तविक व्यवहार में गवर्नर जनरल प्रत्येक उपनिवेश के विधान मण्डल के बहुमत दल के नेता को मंत्रिमण्डल बनाने के लिए कहता है। यह प्रणाली ग्रेट ब्रिटेन से ग्रहण की गयी है। कनाडा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। ब्रिटिश नार्थ-अमरीका कानून की घोषणा में कहा गया है कि "कनाडा, नोवास्कोटिया तथा न्यूब्रन्सविक नामक प्रान्तों ने स्वयं ग्रेटब्रिटेन तथा आयर्लैण्ड की क्षत्रछाया में रह कर एक संघीय उपनिवेश बनाने की इच्छा प्रगट की थी, जिनका संविधान भी यूनाइटेड किंगडम के सिद्धान्तों पर आधारित है।"[1] परन्तु दोनों उपनिवेशों की कार्यपालिका की कार्यप्रणाली का ढंग पूर्णरूप से एक नहीं है। कनाडा का गवर्नर जनरल प्रान्तीय गवर्नरों की नियुक्तियाँ

---

1. Newton, **Federal and Unified Constitutions**, p. 200.

करता है। इस प्रकार वह प्रान्तीय कार्यपालिकाओं पर आंशिक नियंत्रण भी रखता है। आस्ट्रेलिया की राज्यकीय कार्यपालिकायें किंचित भी कामनवेल्थ की कार्य-पालिका से प्रभावित नहीं है। राज्यों के राज्यपालों की नियुक्तियाँ प्रत्यक्ष रूप से राजा द्वारा की जाती हैं। कनाडा की कार्यपालिका में संघीय सिद्धान्त पूर्णरूप से निहित है यहाँ तक कि उपनिवेशिक मंत्रिमण्डल में प्रधानमंत्री एक ही प्रान्त के मंत्रियों की नियुक्तियाँ नहीं कर सकता है। इसके लिए यह निश्चित है कि वह मंत्रियों की नियुक्तियाँ विभिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधियों में से करे। इस प्रकार भले ही शासन-क्षेत्र में इसका प्रभाव अच्छा न हो परन्तु एक प्रान्त के सभी मंत्री होने का भय जो बना रहता है वह अवश्य ही समाप्त हो जाता है। यह केवल कनाडा की जातीय शत्रुता को बचाने तथा संघ स्थापित होने के पूर्व बड़े प्रान्तों के अधिक सदस्यों द्वारा विभिन्न प्रान्तों को न दबाने के लिए किया गया था।

संघों में जहाँ संसदीय सरकार न होकर अध्यक्षात्मक सरकार है वहाँ की कार्यपालिका का उत्तरदायित्व संसदीय सरकार की कार्यपालिका से बिलकुल भिन्न है। उदाहरणार्थ, अमरीका के राष्ट्रपति का चुनाव राष्ट्रपति निर्वाचक मण्डल द्वारा होता है इस निर्वाचक मण्डल के सदस्य सभी राज्यों के नागरिकों द्वारा चुने जाते हैं। यह इसलिए किया गया है कि संघीय पदाधिकारी की नियुक्ति में सभी राज्य अपनी वास्तविक एवं प्रभावशाली वाणी रखें। इस प्रकार राष्ट्रपति एक निर्वा-चित न्यायाधीश होता है। जो चार वर्ष तक अपने पद का भार सँभालता है और इस काल में वह केवल अभियोग द्वारा ही हटाया जा सकता है। उसकी कार्यपालिका-शक्तियाँ बहुत ही अधिक हैं जितनी किसी भी प्रजातन्त्रामक देश के कार्यपालिका के अध्यक्ष की नहीं हैं। वह स्वयं अपने मंत्रिमण्डल के मंत्रियों की नियुक्ति करता है जो कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी न होकर राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। वे स्वयं अपनी योजनाओं को स्पष्ट करने के लिए किसी भी सदन की बैठक में भाग ले सकते हैं परन्तु वह राष्ट्रपति की आज्ञाओं के आधार पर कार्य करते हैं। राष्ट्र-पति सभी आवश्यकीय मामलों में विशेषत: विदेशी राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सीनेट से परामर्श लेता है। सीनेट में सभी राज्यों से बरावर सदस्य चुनकर आते हैं।

स्विट्जरलैण्ड की कार्यपालिका जिसको फेडरल कौंसिल का नाम दिया हुआ है एक अनोखे प्रकार की है। राजशास्त्री ब्राइस ने इसकी अनुपमता का वर्णन इस प्रकार किया है, "किसी दूसरे प्रजातन्त्र राज्य में ऐसी प्रथा नहीं कि कार्यकारिणी सत्ता एक व्यक्ति को न देकर एक समिति के हाँथ में रखी गयी हो, और ऐसा कोई दूसरा

देश न होगा जहाँ कार्यकारिणी सत्ता दलबन्दी से इतनी अप्रभावित हो। यह कौंसिल मंत्रिपरिषद् नहीं है जैसा कि ब्रिटेन में है या उन देशों में है जिन्होंने ब्रिटेन की परिषद् प्रणाली का अनुकरण किया है क्योंकि यह विधान-मंडल में नेतृत्व नहीं करती और उसके द्वारा हटाई भी नहीं जा सकती है। संयुक्त राज्य अमरीका की कार्य-पालिका के समान यह विधान-मण्डल के तन्त्र के बाहर भी नहीं है। यद्यपि इसमें परिषद्-प्रणाली और अध्यक्षात्मक प्रणाली दोनों के कुछ कुछ गुण पाये जाते हैं, यह दलबन्दी से परे रहने के कारण दोनों से भिन्न है। यह पक्ष के बाहर स्थिति रहती है। इसका निर्वाचन किसी राजनैतिक पक्ष विशेष के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए नहीं किया जाता। यह किसी पक्ष की नीति निर्धारित नहीं करती किन्तु फिर भी पक्ष के रंग से कुछ न कुछ रंगी अवश्य होती है"[1]।

फेडरल कौंसिल में सात सदस्य होते है, जिनको फेडरल असेम्बली संयुक्त बैठक में चार वर्ष के लिए चुनती है। असेम्बली ही आकस्मिक रिक्त स्थानों को रिक्त करने के शेष समय वाले सदस्य के लिएसदस्यों की नियुक्ति करती है। कोई भी स्विस नागरिक जो नेशनल कौंसल का सदस्य बनने के योग्य हो फेडरल कौंसिल में चुना जा सकता है. किन्तु एक ही कैन्टन के दो निवासी फेडरल कौंसिल के सदस्य नहीं बन सकते। निर्वाचन की पद्धति पर कानून से एक रोक और लगा दी गयी है। एक से अधिक ऐसे व्यक्ति एक ही समय फेडरल कौंसिल के सदस्य नहीं बन सकते जो विवाह से या जन्म से किसी भी पीढ़ी तक सीधी लाइन में और चार पीढ़ी तक पार्श्ववर्ती लाइन में सम्वन्धित हों। जो व्यक्ति गोद लेने से सम्वन्धित हो गये हों उन पर भी यह प्रतिबन्ध लागू होगा। जो कोई विवाह से इस प्रकार के सम्बन्ध में बँधेगा वह फेडरल कौंसिल की सदस्यता त्याग देगा।[2] प्रचलित प्रथा के अनुसार बड़े ज्यूरिच व बर्न कैन्टनों का एक एक निवासी कौंसिल का सदस्य अवश्य होता है, बचे हुए पाँच स्थानों को दूसरे कैन्टनों में बाँट दिया जाता है। प्राय: एक या दो स्थान उन कैन्टनों के निवासियों से भरे जाते हैं जहाँ फ्रेंच या इटैलियन भाषा अधिकतर बोली जाती है। फेडरल कौंसिल का कार्यकाल केवल ४ वर्ष है परन्तु साधारणतया कौंसिल के सदस्य पुनर्निर्वाचित हुआ करते हैं ऐसे व्यक्तियों के भी उदाहरण मौजूद हैं जो २५-३० वर्ष तक कौंसिल के सदस्य रहे। संविधान में यद्यपि इस सम्वन्ध में कोई

---

1. **Modern Democracles**, Part I, pp. 393-394.

2. Brooks, **Government and Politics of Switzerland**, pp. 104-105.

प्रतिबन्ध नहीं है फिर भी प्राय: ये कौंसिल के सदस्य नेशनल कौंसिल या कौंसिल ऑफ स्टेट के सदस्यों से ही छाँटकर नियुक्त किए जाते हैं किन्तु फेडरल कौंसिल के सदस्य बन जाने पर ये विधान मण्डल के सदस्य नहीं रह सकते। इससे विधान-मण्डल और कार्यपालिका दोनों बिलकुल पृथक् रखे जाते हैं।

प्रतिवर्ष फेडरल कौंसिल के सदस्यों में से असेम्बली एक को प्रेसीडेंट निर्वाचित करती है। एक उप-प्रेसीडेंट भी निर्वाचित होता है। पिछले वर्ष का उप-प्रेसीडेन्ट प्राय: अगले वर्ष के लिए प्रेसीडेन्ट चुन लिया जाता है। कोई भी व्यक्ति लगातार दो वर्षों तक प्रेसीडेन्ट या उप-प्रेसीडेन्ट नहीं रह सकता। प्रेसीडेन्ट केवल फेडरल कौंसिल का सभापति ही रहता है। वह उत्सवों में संघ का प्रतिनिधित्व करता है, कौंसिल का कार्य संचालन करता है, सामान्य रूप से उसके कामों की देखभाल करता है और अत्यावश्यक मामलों में कौंसिल की ओर से कार्यवाही भी करता है। कौंसिल में निर्णय के समय यदि दो पक्षों के मत बराबर हों तो वह निर्णायक मत दे सकता है। किन्तु स्विस प्रेसीडेन्ट को विधान मण्डल के कानूनों को प्रतिषेध (Veto) करने का अधिकार नहीं है,और वह अन्य सदस्यों के समान ही किसी एक विभाग का अध्यक्ष रहता है। उसके कोई विशेष अधिकार नहीं है वह अन्य बातों में भी नाममात्र का अध्यक्ष समझा जाता है, उसको "बिना किसी महत्व का प्रेसीडेन्ट" कहकर उसका वर्णन किया जाता है। इस कथन में कुछ तथ्य भी है क्योंकि उसका कार्यकाल बहुत थोड़ा है और फ्रेंच प्रेसीडेन्ट या अमरीका के प्रेसीडेन्ट में जो शक्तियाँ निहित हैं वैसी किसी शक्ति का वह उपभोग भी नहीं करता है। फिर भी इस पद का बड़ा गौरव है और राजनैतिक क्षेत्र में महत्वाकांक्षियों के लिए सबसे अधिक ऐश्वर्य का पद है जिस पर पहुँचने का वे प्रयत्न करते हैं। फेडरल कौंसिल के प्रत्येक सदस्य को प्रति वर्ष ४८,००० फ्रेंक वेतन मिलता है तथा प्रेसीडेन्ट को केवल ३,००० फ्रेंक और अधिक मिलते हैं।

संविधान के १०२ वें अनुच्छेद से प्रदान की हुई शक्तियों के अधीन, फेडरल कौंसिल संघ के आदेशों के अनुसार सम्पूर्ण संघ का काम करती है। संघ-विधान के पालन और संघ के कानूनों, आदेशों व समझौतों के अनुकरण को यह निरापद करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करती है, कैन्टनों के शासन-विधानों के पालन की सुरक्षा करती है, फेडरल असेम्बली के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले अधिनियमों व आदेशों का मसविदा तैयार करती है, और कैन्टनों व अन्य कौंसिलों द्वारा भेजे हुए प्रस्तावों पर अपनी रिपोर्ट देती है।[1] फेडरल कौंसिल संघ अधिनियमों को संघ न्यायालय

1. **Government and Politics of Switzerland,** p. 110.

के निर्णयों को कैन्टनों के बीच हुए समझौतों को कार्यरूप देती है। वह उन शासन-पदों पर व्यक्तियों की नियुक्ति करती है जो असेम्बली द्वारा नहीं भरे जाते हैं। यह विदेशी राज्यों से की हुई संधियों को और कैन्टनों के बीच की हुई सन्धियों की परीक्षा कर अपनी सहमति देती है, राष्ट्र के सब वैदेशिक व्यवहार को चलाती और आवश्यकता पड़ने पर स्विट्जरलैण्ड की घरेलू व बाहरी सुरक्षा का प्रबन्ध करती है। यह शान्ति व सुरक्षा की रक्षा के लिए सेना बुलाती है और सेना पर आधिपत्य रखती है। यह संघ के आय-व्यय का प्रबन्ध करती है, अपने कार्य का विवरण असेम्बली के सम्मुख रखती और अपने कार्य के सम्बन्ध में उन विशेष रिपोर्टों को प्रस्तुत करती है जो असेम्बली द्वारा माँगी जाती है।

उपर्युक्त विभिन्न कार्यकलापों का संचालन करने के लिए फेडरल कौंसिल ने सात प्रशासन विभागों का निर्माण किया। परराष्ट्र विभाग, न्याय व पुलिस विभाग, गृह-विभाग, युद्ध विभाग, अर्थ विभाग, उद्योग व कृषि विभाग और डाक व रेल विभाग, यह सात प्रशासन-विभाग असेम्बली के आदेशों को कार्यरूप देते हैं। कुछ समय पूर्व प्रेसीडेन्ट पराराष्ट्र विभाग को अपने हाँथ में रखता था परन्तु हाल में ही यह प्रथा टूट गयी है। अब प्रतिवर्ष शासन-विभागों का राजमंत्रियों में नये ढंग से वितरण किया जाता है। प्रत्येक प्रशासन-विभाग के लिए मुख्य अध्यक्ष के अतिरिक्त एक दूसरा अध्यक्ष निश्चित कर दिया जाता है जो स्वयं किसी दूसरे विभाग का मुख्य अध्यक्ष होता है। अतएव फेडरल कौंसिल का प्रत्येक सदस्य एक प्रशासन-विभाग का मुख्य अध्यक्ष और किसी अन्य प्रशासन-विभाग का उपाध्यक्ष होता है। इस युक्ति से शासन के कार्य का सुसंचालन पक्का हो जाता है क्योंकि बारी-बारी से सब प्रशासन-विभागों के कार्य की पेचीदगी का अनुभव सदस्यों को हो जाता है।

फेडरल कौंसिल की बैठक सप्ताह में दो बार बर्न (Berne) नामक नगर में होती है। गणपूरक चार सदस्यों की उपस्थिति होती है मताधिक्य से सब निर्णय होते हैं। "कौलिजियेट" (Collegiate) ढंग की कार्यपालिका होने के कारण कौंसिल के सदस्य अपने साथी सदस्यों से प्रस्तुत की हुई योजनाओं के विरुद्ध प्रकट रूप से असेम्बली में बोल सकते हैं। यह इसलिए सम्भव है कि प्रत्येक सदस्य अपने कार्यों के लिए ही उत्तरदायी है, कौंसिल सामुदायिक रूप से विधान मण्डल को उत्तरदायी नहीं है जिस प्रकार ब्रिटिश मंत्रि-परिषद् पार्लियामेन्ट को उत्तरदायी है ऐसी योजना भी जो फेडरल कौंसिल की सर्वसम्मति से असेम्बली के सम्मुख रखी गयी हो यदि असेम्बली द्वारा अस्वीकार हो जाय तो "राजमंत्रियों को अपने त्याग-पत्र या पद से हटाये जाने, इन दोनों बातों में एक को पसंद करने की स्वतंन्त्रता नहीं

रहती वे उस निर्णय को शिरोधार्य करते और उसके अनुसार कार्यारम्भ कर देते हैं।" वे अपने पदों पर बराबर पदान्वित रहते हैं ,पद त्याग नहीं करते। इस प्रथा के कारण कौंसिल दूसरे देशों की सिविल सर्विस से मिलती जुलती है, केवल अन्तर यह है कि इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रति चार वर्ष बाद होता है। केवल फेडरल कौंसिल के सदस्य विधान मण्डल के किसी भी सदन में उपस्थित हो सकते हैं और बोल सकते हैं। वे वाद-विवाद में बिना किसी प्रतिबन्ध के भाग ले सकते हैं। वहाँ उन्हें प्रश्नों के उत्तर भी देने पड़ते हैं। किन्तु असेम्बली के सदस्य न होने के कारण वे वहाँ वोट नहीं दे सकते। वे स्विस राजनीति में अन्तिम अधिकार रखने वाली असेम्बली की इच्छा को कार्यान्वित करते हैं।

फेडरल कौंसिल की शक्ति-संविधान प्रदत्त है "वह राष्ट्र की किसी अन्य कार्य-कारिणी सत्ता की ओर से काम नहीं करती है। इसकी रचना बहुसंख्यक पक्ष से बनाई जाने वाली मंत्रि-परिषद् के ढंग पर नहीं होती। इसमें कोई प्रधान मंत्री नहीं होता जो सब मंत्रियों को अपने ही पक्ष के व्यक्तियों में से चुनता हो। इसके सदस्य विभिन्न राजनैतिक पक्षों से ही नहीं वरन् विरोधी पक्षों से भी चुने जाते हैं। तिस पर भी वे लोग कौंसिल के प्रति सद्भावना व अपने इस संगठन के ऊपर अभिमान दिखाते हैं। अपनी नीति के लिए यह असेम्बली पर निर्भर रहती है। यह विधान मण्डल का विघटन नहीं करा सकती और उसके द्वारा अपने पक्ष में निर्णय करने को जनता से अपील नहीं कर सकती।"[1] इन अनुपम बातों के रहते हुए भी कौंसिल अपना काम बड़ी कुशलता से, मिलकर व उत्तम ढंग पर करती है। इसका कारण यह है कि यह छोटी संस्था है जिसके सदस्योंको लम्बे समय का अनुभव रहता है और यह लोग अपने अपने पक्षों के व्यक्तियों की सहायता से असेम्बली में अपना बड़ा प्रभाव रखते हैं। नियुक्तियाँ करने की शक्ति होने के कारण भी उनका बड़ा दबदबा रहता है। सन् १९१४-१८ के महायुद्ध में असेम्बली ने फेडरल कौंसिल को असीमित अधि-कारदे दिये थे जिनकी सहायता से वह स्विट्जरलैण्ड की सुरक्षा, पूर्णता व तटस्थता की रक्षा के लिएसब प्रकार का प्रबन्ध कर सके और स्विट्ज़रलैण्ड की आर्थिक स्थिति व विश्वास की रक्षा कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कौंसिल को खर्चा करने और कर्ज लेने की असीमित शक्ति दे दी गयी थी। केवल प्रतिबन्ध इतना था कि उसे असेम्बली की आगे होने वाली बैठक में पूर्व बैठक के बाद से इन असीमित शक्तियों के प्रयोग का पूरा विवरण देना पड़ता था। उस समय कौंसिल को जो

1. **Government and Politics of Switzerland,** p. 112-113.

शक्तियाँ दी गयीं उनसे कौंसिल का प्रभाव सदा के लिए बढ़ गया है।

राजनीतिज्ञ ब्राइस ने स्विस कार्यपालिका की प्रशंसा इस प्रकार की है कि इस प्रणाली से ऐसी संस्था की स्थापना होती है, जो जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व को कम किए बिना शासक असेम्बली को प्रभावित कर केवल परामर्श ही नहीं दे सकती किन्तु दलबन्दी से दूर रहने के कारण यह आवश्यकता पड़ने पर दो लड़नेवाले पक्षों में मध्यस्थ का काम भी कर सकती है। इसके द्वारा सिद्ध-बुद्धि प्रशासक राष्ट्र की सेवा में लगे रहते हैं चाहे उनके विचार कुछ भी हों जिनके कारण तत्कालीन राजनीतिक पक्षों में विभेद हो। इसके द्वारा परम्परा की रक्षा होती है और नीति की अविच्छिन्नता बनी रहती है।

फेडरल कौंसिल की बहुत कुछ आलोचना व इसके सुधार के लिए अनेक सुझावों के होते हुए भी यह दृढ़ विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि "स्विस कार्यपालिका ने अपनी शक्तियों व अवसरों की सीमा के भीतर उच्च श्रेणी की दक्षता प्राप्त कर ली है। और इस छोटे देश में रहनेवाली तीन जातियों का संतुलन करने में यह कृतकार्य हुई है।"

स्विस कार्यपालिका का वर्णन समाप्त करने से पूर्व चांसलर जो संघ का एक उच्च पदाधिकारी होता है, का वर्णन कर देना भी आवश्यक है। इस पदाधिकारी का नाम संविधान की १०५ वीं धारा में पाया जाता है, इसको प्रति चार वर्ष बाद फेडरल असेम्बली चुनती है। वह फेडरल असेम्बली व कौंसिल के जनरल सेक्रेटरी के समान कार्य करता है और उसी के कार्यकाल तक अपने पद पर काम करता है। विशेष रूप से वह फेडरल कौंसिल के आधीन रहता है। चांसलर के कर्तव्यों में उल्लेख पत्रों का रखना, प्रलेखों की रक्षा, निर्वाचनों, लोकनिर्णयों, निर्बन्ध उपक्रम आदि का विधिवत प्रबन्ध करना, ये सब काम गिने जाते हैं। संघ के सब निर्बन्धों पर उसके हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं। उसको वैध करने के लिए नहीं किन्तु सही होने को प्रमाणित करने के लिए। अतः वह एक 'उच्च हेड क्लर्क' के समान है और उसके नाम से किसी को जर्मन चांसलर का भ्रम नहीं होना चाहिए जो जर्मनी में एक बड़ी शक्तिशाली विभूति के रूप में हुआ करता था।

अमरीका की संघीय कार्यपालिका

संविधान के द्वितीय अनुच्छेद में लिखा हुआ है कि "कार्यपालिका शक्ति संयुक्त राज्य अमरीका के प्रेसीडेन्ट में निहित रहेगी।" वह चार वर्ष तक अपने पद पर स्थित रहेगा। दिन प्रतिदिन के व्यवहार में शासन विभागों के अध्यक्ष ही शासन कार्य करते

रहते हैं। कांग्रेस इन शासन विभागों को जन्म देती है और उन पर अपना नियंत्रण रखती है, किन्तु अध्यक्षों की नियुक्ति प्रेसीडेन्ट ही सीनेट की अनुमति से करता है।

प्रेसीडेन्ट पद के अभ्यर्थी के लिए कुछ अर्हताएँ होना आवश्यक हैं वे संविधान के अनुच्छेद २ के पैरा ५ में वर्णित हैं। इसमें लिखा है कि "कोई भी व्यक्ति जो इस संविधान के अंगीकार होने के समय संयुक्त राज्य अमरीका का नागरिक नहीं है। प्रेसीडेन्ट के पद का पात्र न होगा; और न वह व्यक्ति पात्र होगा जिसकी आयु ३५ वर्ष की न होगी और जो १४ वर्ष तक संयुक्त राज्य अमरीका का निवासी न रह चुका हो। इन योग्यताओं के अतिरिक्त इस पद के लिए अभ्यर्थी देखते समय राजनीतिक पक्ष ऐसे व्यक्ति को ही छाँटते हैं जो अधिक से अधिक मतदाताओं को अपने पक्ष में करने को सफल हो सकता है। इसलिए यह अभ्यर्थी ऐसा होना चाहिए जो सामाजिक जीवन के किसी एक क्षेत्र में सफल कार्यकर्त्ता सिद्ध हुआ हो, चाहे कांग्रेस में, किसी उपराज्य के गवर्नर के पद पर, किसी बड़े नगर के मेयर के पद पर, मंत्रिपद पर स्यात राजदूत या न्यायाधीश के पद पर या वह एक साधारण ख्याति प्राप्त पत्रकार रहा हो।"[1] अधिकतर सीनेट के सदस्य ही प्रेसीडेन्ट के पद पर निर्वाचित हुए हैं। उप-प्रेसीडेन्ट के लिए भी ये ही योग्यताएँ आवश्यक हैं।

एक प्रेसीडेन्ट का कार्यकाल ४ वर्ष है। संविधान में एक ही व्यक्ति के पुनर्निर्वाचन के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है। किन्तु संयुक्त-राज्य के प्रथम प्रेसीडेन्ट जार्ज वाशिंगटन तथा टौमस जैफरसन ने यह प्रथा चला दी थी कि एक ही व्यक्ति प्रेसीडेन्ट के पद के लिए एक बार ही पुनर्निर्वाचन हो सकता है। सन १८४० तक कोई भी प्रेसीडेन्ट लगातार दो बार न चुना गया था। सन् १८७५ में जनरल ग्रांट तीसरी बार चुने जाने के लिए कुछ कुछ इच्छुक हुए थे परन्तु प्रतिनिधि-सदन ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास करके उस इच्छा को जड़ से ही समाप्त कर दिया; "इस सभा की समझ में प्रेसीडेन्ट वाशिंगटन व अन्य संयुक्त-राज्य के प्रेसीडेन्टों ने प्रेसीडेन्ट के पद से दूसरे कार्यकाल के पश्चात् अवकाश लेने का जो उदाहरण रखा था वह सर्वमान्य होकर हमारी प्रजातन्त्र शासन प्रणाली का ऐसा अंग बन चुका है कि इस चिरकाल सम्मानित प्रथा के प्रतिकूल चलना अविवेकपूर्ण, देश प्रेम के विरुद्ध और हमारी स्वतन्त्र संस्थाओं के लिए भयपूर्ण होगा।" थियोडोर रूजवेल्ट (Theodor Roosevelt) लगातार तीसरी बार निर्वाचन के लिए खड़ा हुआ किन्तु उसके प्रतिद्वन्द्वी उम्मेदवार ने उसको निर्वाचित होने में सफल न होने दिया किन्तु सन् १९४० में फ्रैंकलिन रूजवैल्ट

1. **Modern Democracies,** Vol. II, p. 73.

(Franklin D. Roosevelt) जिसका कार्यकाल सन् १९४१ में समाप्त हो रहा था। यूरोपियन युद्ध-जनित विपत्ति-पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के कारण तीसरी बार प्रेसीडेन्ट निर्वाचित हो गया और सन् १९४४ में वह चौथी बार निर्वाचित हुआ क्योंकि दूसरा महायुद्ध समाप्त न हुआ था और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति गम्भीर और जटिल थी। अब २७ फरवरी १९५१ के संविधान संशोधन अनुच्छेद २२ से यह निश्चित कर दिया गया है कि कोई भी व्यक्ति संयुक्त राज्य अमरीका का प्रेसीडेन्ट दो बार से अधिक नहीं हो सकता है। इस प्रकार प्रचलित प्रथा पर आघात लगा, प्रेसीडेन्ट का कार्यकाल ३६६ दिन वाले वर्ष के पश्चात् आने वाले वर्ष का २० जनवरी की दोपहर को समाप्त हो जाता है। यह दिनांक शासन विधान के १८ वें संशोधन में निश्चित हुआ था जो १५ अक्टूबर सन् १९३३ से लागू हुआ था।

प्रेसीडेन्ट का निर्वाचन सीधे जनता न करके वरन् प्रेसीडेन्ट निर्वाचक द्वारा होता है। इस प्रेसीडेन्ट-निर्वाचकों को ३६६ दिन वाले वर्ष के दिसम्बर मास में प्रथम सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार के दिन जनता स्वयं चुनती है। किन्तु प्रेसीडेन्ट के चुनाव की लड़ाई ५ या ६ माह पूर्व मई या जून से आरम्भ हो जाती है। दुनिया में यह सबसे बड़ी राजनीतिक लड़ाई समझी जाती है। फिर भी "अमरीकन राजकीय जीवन की यह विशेषता है कि वह पूर्व शासक के आसन छोड़ने और नये शासक के आसनारूढ़ होने से अशान्ति की एक लहर भी नहीं उठती।" इसका कारण यह है कि अमरीकन जनता शलाका की सन्दूक (Ballot Box) की विजय को शान्तिपूर्वक शिरोधार्य कर लेती है।

प्रेसीडेन्ट के निर्वाचकों के चुनाव की तिथि से कुछ मास पूर्व राजनैतिक पक्ष सारे देश में अपना प्रचार आरंभ कर देते हैं। वे गत ग्रीष्म ऋतु में प्रेसीडन्ट व उप-प्रेसीडेन्ट के पदों के लिए अपने अपने उम्मीदवार निश्चित करते हैं। नवम्बर मास में प्रथम सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार के दिन सब मतधारक व्यक्ति अपने अपने उप-राज्य में एकत्रित होकर इन निर्वाचकों के चुनाव के लिए अपना मत देते हैं। इस निर्वाचन में उम्मीदवारों की योग्यता पर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता केवल उनका किस पक्ष से सम्बन्ध है इसी का ध्यान रखा जाता है। मतधारक अपने अपने झुकाव के अनुकूल रिपब्लिकन (Republican) या डेमोक्रेट (Democrat) पक्ष के उम्मीदवारों को निर्वाचक बनाने के लिए अपना मत देते हैं। किसी उपराज्य से चुने जाने वाले प्रेसीडेन्ट निर्वाचकों की संख्या उस उपराज्य के प्रतिनिधि-सदन में बैठने वाले निवासी व सीनेट में भेजे हुए प्रतिनिधियों (सीनेटरों) की संख्या के योग के बराबर होती है।

प्रेसीडेन्ट निर्वाचक दिसम्बर मास के दूसरे बुधवार के बाद आने वाले सोमवार के दिन अपने अपने उपराज्य की राजधानी में एकत्रित होकर प्रेसीडेन्ट व उप-प्रेसीडेन्ट चुनने के लिए अपना मत देते हैं। इसलिए निर्वाचन के परिणाम के सम्बन्ध में तीन प्रमाण-पत्र तैयार किये जाते हैं। एक जिले के न्यायालय में रख दिया जाता है, दूसरा सीनेट के प्रेसीडेन्ट को डाक से भेज दिया जाता है, तीसरा उसी को पत्रवाहक के द्वारा भेज दिया जाता है। इसके बाद ६ जनवरी को सीनेट व प्रतिनिधि-सदन की संयुक्त बैठक में कांग्रेस का अधिवेशन होता है। सीनेट का सभापति उन प्रमाणपत्रों को खोलता है। तब दोनों सदनों से दो दो व्यक्ति इन्हें गिनने के लिए नियुक्त किये जाते हैं। जो उम्मीदवार सब प्रेसीडेन्ट निर्वाचकों का मताधिक्य प्राप्त करते हैं वे प्रेसीडेन्ट व उप-प्रेसीडेन्ट घोषित कर दिये जाते हैं। इन निर्वाचकों की संख्या ५३१ है इसलिए जिस प्रेसीडेन्ट पद के लिए उम्मीदवार को या उप-प्रेसीडेन्ट के उम्मीदवार को २६६ या अधिक मत मिल जाते हैं वह प्रेसीडेन्ट या उप-प्रेसीडेन्ट चुन लिया जाता है किन्तु यदि इतने मत पाने वाला कोई उम्मीदवार न हो तो प्रथम अधिकतम मत पाने वाले उम्मीद-वार में से प्रतिनिधि सदन एक को प्रेसीडेन्ट चुन लेता है। इसी प्रकार सीनेट उप-प्रेसीडेन्ट को चुनती है। इस चुनाव में उपराज्य के सब प्रतिनिधियों को एक ही मत देने का अधि-कार होता है और जो उम्मीदवार बहुसंख्यक उपराज्यों के मत प्राप्त करता है वह प्रेसीडेन्ट चुन लिया जाता है। यदि प्रतिनिधि-सदन ४ मार्च तक किसी को प्रेसीडेन्ट नहीं चुन पाता तो पूर्व उप-प्रेसीडेन्ट अपने आप प्रेसीडेन्ट बन जाता है और जो उप-प्रेसीडेन्ट के पद का उम्मीदवार इस पद के चुनाव में अधिकतम मत प्राप्त करता है वह सीनेट द्वारा उप-प्रेसीडेन्ट घोषित कर दिया जाता है।

इस प्रणाली से यह स्पष्ट है कि प्रेसीडेन्ट या उप-प्रेसीडेन्ट के चुनाव के लिए प्रेसी-डेन्ट-निर्वाचकों का मताधिक्य ही आवश्यक है, प्रजा के प्राथमिक मतदाताओं का मताधिक्य होना आवश्यक नहीं है। सन् १८७६ में हेज (Hayes) और सन् १८८८ में हरिसन (Harison) प्रेसीडेन्ट निर्वाचकों के बहुमत में चुने गये थे किन्तु उनके विरोधी टिल्डैन और क्लीविलैण्ड को प्रजा का बहुमत प्राप्त था। प्राथमिक मतदाताओं ने अधिक संख्या में इनको चुनना चाहा था किन्तु प्रेसीडेन्ट-निर्वाचकों की अधिक संख्या ने हेज और हरिसन को चाहा। प्रेसीडेन्ट की मृत्यु होने पर, उसके पदत्याग करने पर या हटाये जाने पर उप-प्रेसीडेन्ट अपने आप प्रेसीडेन्ट बन जाता है। यदि ऐसे अवसर पर उप-प्रेसीडेन्ट भी इस योग्य न हो कि प्रेसीडेन्ट बना दिया जाय, उसके पदत्याग करने से, मृत्यु होने से, अस्वस्थ या हटाये जाने से, तो सेक्रेट्री आफ स्टेट (Secre-tary of State) अन्तरिम प्रेसीडेन्ट बन जाता है। यदि वह यह कार्यभार नहीं

ले सकता तो युद्ध-सेक्रेट्री प्रेसीडेण्ट का पद ग्रहण करता है इसी क्रम से एटारनी जनरल (Attorney General) अर्थात् महान्यायवादी, पोस्ट मास्टर जनरल, नौ सेना-सेक्रेटरी, गृह सेक्रेटरी जिसमें भी पद के लिए आवश्यक योग्यताएँ हों। आवश्यकता पड़ने पर पद के लिए नियुक्त होते हैं। परन्तु जब रूजवेल्ट (Rosevelt) की अचानक मृत्यु हो जाने पर उप-प्रेसीडेण्ट ट्रूमेन (Truman) उत्तराधिकारी प्रेसीडेण्ट हुए तो उन्होंने यह समझकर कि तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट एडवर्ड आर० स्टेटीनियस, जूनियर (Edward R. Stettinius Jr.) को राजनीति अनुभव नहीं हैं संघ के राजकीय संदेशों में (Messages on the State of the Union) अप्रैल सन् १९४५ तथा जनवरी सन् १९४६ में यह सिफारिश की कि पद के उत्तराधिकारीक्रम में परिवर्तन किया जावे। अत: १९४७ में एक नया अधिनियम बनाया गया जिसमें यह स्पष्ट किया गया कि प्रेसीडेण्ट या उप-प्रेसीडेण्ट के पद के कर्तव्यपालन में कोई असमर्थता हो तो प्रेसीडेण्ट पद के लिए उत्तराधिकारी निम्न क्रम से होंगे : प्रतिनिधि सदन का स्पीकर, सीनेट का प्रेसीडेण्ट-प्रोटेम्पोर, राज्य विभागों के अध्यक्ष (१८८६ के अधिनियम के अनुसार) और सेक्रेटरी ऑफ कृषि, व्यापार तथा श्रम। परन्तु यदि प्रेसीडेण्ट के जीवित रहते हुए भी वह कार्यभार में अयोग्य हो तो उस दशा में कार्य करने के लिए अभी तक कोई अधिनियम नहीं बना है।

निर्वाचन समाप्त होने के पश्चात् अभिषेक के लिए प्रेसीडेण्ट को एक जुलूस के साथ ह्वाइट ले जाया जाता है। उसे यह शपथ लेनी पड़ती है, "मैं यह शपथ लेता हूँ (या प्रतिज्ञा करता हूँ) कि मैं प्रेसीडेण्ट के कार्य को निष्ठापूर्वक करूँगा, और अपनी सारी योग्यता से संयुक्त-राज्य के संविधान को बनाये रखूँगा, उसकी रक्षा करूँगा और उसकी रक्षा के लिए प्रयत्न करूँगा।"

सबसे शक्तिशाली शासनाध्यक्ष

"अमरीका के प्रेसीडेण्ट पर जितनी जिम्मेदारियाँ हैं और उसकी जितनी शक्ति है उतनी इस देश में या दुनिया के किसी देश में किसी व्यक्ति को नहीं है। यह दुनिया के शासकों में सबसे प्रथम है।"[1] प्रेसीडेण्ट की शक्ति का उपर्युक्त वर्णन बिलकुल सत्य है, इसमें यदि कोई अपवाद हैं तो वे कम्पनियों के डारेक्टर हैं जिन्होंने पिछले कुछ वर्षों से अपने हाथ में बहुत शक्ति केन्द्रित कर रखी है। प्रेसीडेण्ट की शक्ति में विशेषता इस बात की है कि उसका वैधानिक महत्व बहुत है और उसे लोक समर्थन प्राप्त है। एक समय जो यह भय हुआ था कि प्रेसीडेण्ट स्यात् निरंकुश शासक बन जाय,

१. हैसकिन-दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० ५६-५७।

वह निर्मूल सिद्ध हुआ है "... राष्ट्र के मन में अमरीकन शासक के सिद्धान्तों की जड़ें इतनी गहरी जमी हुई हैं कि उनको उल्लंघन करने की थोड़ी सी भी प्रवृत्ति से विरोध की आँधी चलने लगेगी।" [1] ब्रिटिश सम्राट अपनी सरकार का दिखावटी अध्यक्ष है। उसका कोई भी कार्य तब तक वैध नहीं होता जब तक उसका समर्थन कोई मंत्री न करे। वह राज्य करता है पर शासन नहीं करता। उसके बारे में यह कहा जाता है कि वह कोई अपराध नहीं कर सकता। इस कथन में बहुत सच्चाई है क्योंकि शासन के मामले में वह स्वयं कोई आज्ञा नहीं देता। सब शासन शक्ति मंत्रिमण्डल के पास रहती है। इस मंत्रिमण्डल का अध्यक्ष प्रधान मंत्री होता है और वही प्रमुख शासक रहता है। सम्राट का व्याख्यान भी मंत्रिमण्डल तैयार करता है जिसमें इनकी शासन नीति रहती है। फ्रांस का प्रेसीडेण्ट भी अपनी सरकार का दिखावटी अध्यक्ष है, वहाँ भी सारी शासन शक्ति मंत्रिपरिषद् के हाथ में रहती है। फ्रांस का प्रेसीडेण्ट न राज्य करता है न शासन ही। इसके विपरीत संयुक्त-राज्य अमरीका के प्रेसीडेण्ट के पास कई शक्तियाँ हैं और वह वास्तव में शासन करता है।

विधायिनी शक्तियाँ (Legislative Powers) :— प्रेसीडेण्ट अपने संदेशों द्वारा कांग्रेस के सम्मुख अधिनियम सम्बन्धी प्रस्ताव रखता है। पहले प्रेसीडेण्ट प्रतिनिधि-सदन और सीनेट की संयुक्त बैठक में स्वयं जाकर कांग्रेस को संदेश दिया करता था। बाद में यह प्रथा छोड़ दी गयी और केवल संदेश उसकी ओर से पढ़कर सुना दिया जाने लगा। किन्तु प्रेसीडेण्ट विलसन ने स्वयं जाकर अपने संदेश देने की प्रथा को फिर से चालू किया। यह संयुक्त अधिवेशन प्रतिनिधि-सदन के भवन में होता है। "कभी कभी प्रेसीडेण्ट का संदेश किसी ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन कर देता है कि वह मौलिक तत्व के रूप में मान्य हो जाता है और इस प्रकार वह सिद्धान्त या नियम देश के संविधान का वैसा ही भाग बन जाता है मानों संविधान में विधिपूर्वक उसे समिलित कर लिया हो।" मुनरो सिद्धान्त (Monro Doctrine) के नाम से जो प्रसिद्ध है, उसकी सृष्टि प्रेसीडेण्ट मुनरो द्वारा इसी प्रकार हुई थी। प्रेसीडेण्ट मुनरों ने यह घोषणा की कि "संयुक्त राज्य अमरीका पश्चिमी गोलार्द्ध में यूरोपियन राज्यों के आधिपत्य और प्रभाव का बढ़ना सहन नहीं करेगा" [2] प्रेसीडेण्ट के यह संदेश कांग्रेस के विधायक कार्य पर बड़ा प्रभाव डालते हैं, विशेषकर उस समय जब प्रेसीडेण्ट के ही पक्ष का कांग्रेस

---

1. **Modern Democracies,** Vol. II., p. 79.
2. **The American Government,** p. 65.

में वहुमत होता है। इसी प्रकार मध्यपूर्व के सम्बन्ध में प्रेसीडेण्ट आयज़न हावर का संदेश आयज़न हावर सिद्धान्त प्रसिद्ध हो गया है।

प्रेसीडेण्ट का प्रतिषेवात्मक अधिकार (Veto Power)—प्रेसीडेण्ट कांग्रेस के वनाये हुए विधेयकों को रद्द भी कर सकता है। जो विधेयक दोनों सदनों से स्वीकार हो चुका हो, उसे प्रेसीडेण्ट अपनी विरुद्ध युक्तियों सहित दस दिनों के भीतर लौटा सकता है। इस प्रकार लौटाया हुआ विवेयक तव तक कानून नहीं बन सकता है जब तक कि दोनों सदनों में दो तिहाई मत से वह फिर जैसे का तैसा पास न हो जाय। यदि दो तिहाई मत से वह पास न हो तो वह रद्द समझा जाता है। प्रेसीडेण्ट कांग्रेस का अतिरिक्त अधि-वेशन कर सकता है। कांग्रेस सत्र के अन्तिम १० दिन में आये विधेयकों को यदि प्रेसीडेण्ट वापस न करे तो वे रद्द हो जाते हैं। इसे पाकेट विटो (Pocket Veto) कहा जाता है। प्रेसीडेण्ट की यह विधायिनी शक्ति ७३ प्रतिनिधियों और १७ सीनेटरों के बराबर है। ऐसी शक्ति न ब्रिटिश सम्राट के पास है न फ्रांस के प्रेसीडेण्ट के पास। अमरीका के प्रेसीडेण्ट ने सन् १८८९ तथा १९५२ के बीच में ६०० बार इस शक्ति का प्रयोग किया। सन् १९३३-४४ के बीच रूजवेल्ट ने साधारण प्रतिषेवात्मक अधिकार का ३६९ बार जिनमें कांग्रेस ने ९ को विफल कर दिया और पाकेट विटो को २६० बार, और ट्रूमेन ने १९४५-५२ तक क्रमशः १८२ और पाकेट विटो का ७० बार उपयोग किया। "यह ऐसी शक्ति है जिसमें कुछ व्यय नहीं करना पड़ता है और जिसके प्रयोग करने में सफलता की आशा तो रहती है, दंड का भय नहीं रहता। देश के विधान मण्डल में लड़ी हुई व्यवस्था सम्बन्धी लड़ाई को कांग्रेस का कोई भी पक्ष केवल इतने समय में हार सकता है जितनी देर में प्रेसीडेण्ट 'नहीं' व कुछ दूसरे व्याख्यात्मक शब्द लिखने में लगावे। इस 'नहीं' का उल्लंघन पुनर्विचार और दो तिहाई मत से ही हो सकता है जो कांग्रेस की बहुलता और दोनों सदनों में पक्षों की विभिन्नता के कारण सम्भव नहीं है।"[1] वास्तव में प्रेसीडेण्ट ने विधायक कार्य का बहुत कुछ नेतृत्व अपने हाथ में कर लिया है।

कार्यकारिणी शक्तियाँ:—शासन क्षेत्र में प्रेसीडेण्ट की शक्तियाँ बड़ी ही विस्तृत हैं। वह राष्ट्र का प्रमुख मजिस्ट्रेट अर्थात् शासक है। वह सेना का मुख्य सेनापति है। विदेशी राजदूतों को वह ही स्वीकार करता है तथा अपने राजदूतों की नियुक्तियाँ भी वही करता है। वह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की भी नियुक्ति करता है।

---

1. **Theory and Practice of Modern Government,** Vol. II., p. 1033.

उसका यह प्रमुख काम रहता है कि वह यह देखे कि संयुक्त राज्य अमरीका के कानूनों का भलीभाँति पालन हो रहा है। सीनेट की अन्तिम स्वीकृत से वह संधि कर सकता है। परराष्ट्र विभाग का वह अकेला कर्ता-धर्ता है[1] इस नियंत्रित शक्ति का वह इस प्रकार प्रयोग कर सकता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय जिससे कांग्रेस को सिवाय प्रेसीडेण्ट की नीति का समर्थन करने के और कोई चारा ही न रह जाय। शासन-सम्बन्धी नियुक्तियों में उसे सीनेट से सलाह लेनी पड़ती है। व्यवहार में वह जिस उपराज्य में नियुक्ति करनी होती है उसी के सीनेटरों से सलाह लिया करता है। किन्तु, जब सीनेट की बैठक न हो रही हो, उस समय अस्थायी रूप से रिक्त पदों के भरने का उसे पूरा अधिकार है ऐसी नियुक्तियाँ वह ऐसे ढंग से कर सकता है कि सीनेट की इच्छा के विरुद्ध भी वह नियुक्ति पक्की बनी रहे। रिक्त पदों पर वह अपने मित्रों व राजनैतिक पक्ष के साथियों को नियुक्त कर अपने पक्षानुराग का खुले तौर पर परिचय देता है। पदाधिकारियों की नियुक्ति की शक्ति का प्राय: ऐसा उपयोग किया गया है कि घरेलू व वैदेशिक मामलों में प्रेसीडेण्ट की ही मनचाही बात होती है छोटे पदाधिकारियों को प्रेसीडेण्ट बिना सीनेट से पूछे ही नियुक्त कर सकता है। क्षमादान करने की शक्ति प्रेसीडेण्ट को ही दी गयी है। और प्रेसीडेण्ट ही छुट्टियाँ घोषित करता है।

स्वविवेकी शक्तियाँ (Discretionary Powers) :—प्रेसीडेण्ट को कुछ ऐसी भी शक्तियाँ प्राप्त हैं जिनका उपयोग वह अपने विवेक से ही करता है इन शक्तियों के बल पर प्रेसीडेण्ट किन्हीं व्यक्ति या व्यक्ति समूहों को किसी काम को करने को रोक सकता है या किसी काम को करने के लिए उन्हें बाध्य कर सकता है। इस शक्ति के प्रयोग में न्यायालय भी रुकावट नहीं डाल सकते। वास्तव में न्यायसत्ता और प्रेसीडेण्ट में कठिनता से ही टक्कर होती है। प्रेसीडेण्ट की शक्ति इतनी अधिक है कि एक अवसर पर जब प्रधान न्यायाधीश मार्शल ने प्रेसीडेण्ट जैकसन की इच्छा के प्रतिकूल एक निर्णय दिया तो प्रेसीडेण्ट जैकसन ने कहा, "मार्शल ने अपना निर्णय दे तो दिया परन्तु वह उसको कार्यान्वित भी करे।" इसने दिखला दिया कि न्यायालय भी अपने निर्णय को कार्यान्वित करने में प्रेसीडेण्ट पर भी निर्भर है।

प्रेसीडेण्ट पर अभियोग :—प्रेसीडेण्ट पर दुर्व्यवहार व महापराध का अभियोग लगाया जा सकता है। प्रतिनिधि-सदन में अभियोग लगाने का निर्णय पहले होता है। तब सीनेट में यह अभियोग लगाया जा सकता है और उसकी जाँच की जा सकती

---

1. Ibid, p. 1044.

है। प्रेसीडेण्ट को अपराधी ठहराने और दंड देने के लिए सीनेट का निर्णय दो तिहाई बहुमत से होना चाहिए।

प्रेसीडेण्ट की मंत्रिपरिषद् :—प्रेसीडेण्ट की मंत्रिपरिषद् में शासन विभागों के अध्यक्ष होते हैं जिनको प्रेसीडेण्ट सीनेट की सम्मति से नियुक्त करता है। "ये लोग प्रेसीण्ट के ऐसे निकटस्थ सहायक होते हैं कि यदि सीनेट प्रेसीडेण्ट से चुने हुए व्यक्तियों को नियुक्त करने से इन्कार कर दे तो यह केवल खेदजनक भद्दी बात ही न हो वरन् यदि ऐसे विरोधों की संख्या अधिक हो तो शासन सत्ता ही छिन्न-भिन्न हो जाय।" "प्रेसीडेण्ट की मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को वैसी ही शक्तियाँ प्राप्त नहीं है जैसे ब्रिटिश या फ्रांस की संसदीय या अन्य मंत्रिपरिषद के सदस्यों को मिली हुई रहती है। इसका कारण यह है कि अमरीकन कार्यपालिका शक्ति केवल प्रेसीडेण्ट में ही निहित है। यह एकात्मक कार्यपालिका है और इसलिए फ्रांस व इंगलैण्ड की अनेकात्मक कार्यपालिका से भिन्न है। अमरीका की कार्यपालिका स्थायी अध्यक्षात्मक कार्यपालिका है जो विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं है जैसी कि संसदात्मक कार्यपालिका होती है। अमरीका के प्रेसीडेण्ट को यह अधिकार है कि वह अपने मंत्रियों की राय को पलट सकता है।

संघीय कार्यपालिका का संसदीय रूप

ब्रिटिश राज्य एवं कामनवेल्थ के कुछ उपनिवेशों में संघात्मक शासन प्रणाली के प्रचलन के पश्चात संघीय विधान मण्डल तथा संघीय कार्यपालिका के सम्बन्ध एक हो जाने से अमरीकन एवं स्विस संविधान के निर्माताओं से परे हो गये। उपरोक्त संघात्मक एवं संसदात्मक समझौते से एकता एवं राजनीति बनाये रखने के लिए ठोस मंत्रिमण्डल तथा संघीय सरकार की कार्यकारिणी शाखा में संघीय इकाइयों के आपसी झगड़ों को समाप्त कर दिया।

यह समस्या सर्वप्रथम कनाडा के संविधान निर्माण में ग्रहण की गयी। क्यूबेक कान्फ्रेन्स के प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि कनाडा के प्रान्तों की यह इच्छा है कि वह ब्रिटिश सरकार के आधार पर संघात्मक शासन प्रणाली की स्थापना करें। अतः कनाडा निवासियों ने अपने पड़ोसी अमरीका राज्य के संविधान के उदाहरण मानने के लिए इन्कार कर दिया जहाँ पर शासन एक व्यक्ति द्वारा होता है और कार्य-पालिका विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी रहती है और जब तक विधान मण्डल चाहता है तभी तक वह कार्य कर सकती है। तत्पश्चात् कनाडा के उदाहरण को आस्ट्रेलिया ने सन् १९०१ में, सोवियट यूनियन ने १९३६ में (केवल सिद्धान्त में) तथा भारत ने

(१) कनाडा की संघ-कार्यपालिका

ब्रिटिश नार्थ अमरीका एक्ट की ९ वीं धारा यह है "कनाडा की और कनाडा में कार्यपालिका सत्ता व अधिकार रानी में बने रहने की घोषणा की जाती है।" जब यह ऐक्ट पास हुआ था उस समय ब्रिटिश राजा इस सत्ता के उपभोग का अधिकारी समझा गया था। परन्तु जब कनाडा के अन्तर्राष्ट्रीय या यों कहिए कि साम्राज्य-सम्बन्धी पद में परिवर्तन हुआ तो राजा से अभिप्राय सम्राट न समझा जाकर कनाडा का राजा समझा जाने लगा। वास्तव में सरकार के कार्यकारी विभाग के समान दूसरे सभी विभागों में विधान की लिखित धाराओं से प्रचलित वैधानिक-पद्धति का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इंगलैण्ड की तरह कनाडा में भी बहुत सी वैधानिक प्रथाएँ हैं जिनका अध्ययन किये बिना वास्तविक शासन पद्धति समझ में नहीं आ सकती। प्रधान मंत्री का वार्षिक वेतन २५,००० डालर तथा अन्य मंत्रियों का १५,००० डालर है। मंत्रिमण्डल के प्रत्येक सदस्य को २,००० डालर वार्षिक मोटरकार शुल्क मिलता है।

कनाडा की प्रिवी कौंसिल : संविधान की ११ वीं धारा के अनुसार "कनाडा की सरकार को सहायता देने व परामर्श करने के लिए एक कौंसिल होगी जिसका नाम 'कनाडा के लिए रानी की प्रिवी कौंसिल' होगा और जो व्यक्ति इस कौंसिल के सदस्य होने जा रहे हों वे समय समय पर गवर्नर जनरल द्वारा चुने जाकर बुलाये जायेंगे और उन्हें प्रिवी कौंसिल के सदस्य बनने की शपथ लेनी पड़ेगी और इस कौंसिल के सदस्य समय समय पर गवर्नर जनरल द्वारा हटाये जा सकेंगे।" ब्रिटिश संविधान के ढाँचे का जितना अनुकरण कनाडा ने प्रिवी कौंसिल की स्थापना करने में किया है उतना किसी और दूसरी बात में नहीं। पर कनाडा की प्रिवी कौंसिल न्याय सम्बन्धी कार्य नहीं करती।

व्यवहार में गवर्नर जनरल केवल वैधानिक कार्यकारी अध्यक्ष है। वास्तव में कार्य करनेवाली तो कार्यपालिका समिति है जिसको डोमिनियन कैबिनेट कहते हैं, जिसमें कनाडा के राजा के मंत्री सदस्य होते हैं और प्रधान मंत्री अध्यक्ष होता है। मंत्रिपरिषद्, हाउस ऑफ कामंस में बहुमत रखने वाले दल के नेता के द्वारा मंत्री नियुक्त किये जाते हैं जैसे ब्रिटेन में प्रधान मंत्री की नियुक्ति राजा करता है उसी प्रकार कनाडा के प्रधान मंत्री की नियुक्ति वहाँ का गवर्नर जनरल करता है। तत्पश्चात् प्रधानमंत्री अपने मंत्रिमण्डल का चुनाव करता है उसमें प्रधानमंत्री इस बात का प्रयत्न करता है कि प्रत्येक प्रान्त का प्रतिनिधि मंत्रिमण्डल में अवश्य हो। यद्यपि इस सिद्धान्त की कड़ाई से पालन करने में योग्य व्यक्ति परिषद् में नहीं आ पाते परन्तु परिषद् को संवा-

त्मक रूप देने से यह पक्का हो जाता है कि परिषद् को सदन के बहुमत का समर्थन प्राप्त होता रहता है। परिषद् हाउस को उत्तरदायी है, इसलिए यदि हाउस इसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे या इसकी नीति का समर्थन न करे तो इसे पदत्याग कर देना पड़ता है। परन्तु प्रधानमंत्री ऐसा होने से पूर्व गवर्नर जनरल से यह प्रार्थना कर सकता है कि वह सदन का विघटन कर दे और नया सामान्य निर्वाचन करे जिससे जनता का मत मालूम हो जाय। पहिले तो ऐसी प्रार्थनाएँ प्रायः अस्वीकार कर दी जाती थीं जैसा कि १८५८ व १८६० में किया गया। क्षमादान के विशेषाधिकार का उपयोग करने में भी गवर्नर-जनरल ने प्रधानमंत्री की सलाह मानने से इनकार कर दिया था। परन्तु समय के बीतने से सब बातें बदल गयी और अब गवर्नर-जनरल व मंत्रिपरिषद् के सम्बन्धों में बराबर उन्नति होती चली आ रही है। "ब्रिटेन में जैसे राजा है उसी प्रकार कनाडा में गवर्नर-जनरल सरकार की सब से महत्वशाली मूर्ति है। अपने मूल आदर्श अर्थात् ब्रिटिश सम्राट के समान उसका इतिहास निरंकुशता से धीरे-धीरे, बिना प्रदर्शन हुए व अनचाहे घटते-घटते बिलकुल शक्तिहीन होने की कहानी से भरा हुआ है।"[1] इस परिवर्तन से विधान के लेख पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि वह वैसा ही अब भी वर्तमान है जैसा १८६७ में था, केवल शासन-व्यवहार ही उससे प्रभावित हुआ है। "गवर्नर को जो निश्चित अधिकार दिये गये थे या जो शक्तियाँ रितियाँनुसार उसकी समझी जाती थीं वे या तो विधिपूर्वक बदल दी गयीं या अधिकतर चुपचाप त्याग दी गयीं। पूर्ववर्ती उदाहरण छूटते गये और उनके स्थानों पर उदाहरणों की संख्या बढ़ने लगी। इन सब के पीछे जो प्रेरक शक्ति थी वह कनाडा निवासियों का यह आग्रह था कि स्वायत्त शासन की अधिकाधिक मात्रा बढ़े। गवर्नर-जनरल की स्थिति पर इस इच्छा ने दो प्रकार से आघात किया। सरकार पर अधिक प्रजातन्त्रात्मक नियंत्रण की इच्छा के बलवती होने से उसका महत्व कम होने लगा क्योंकि वही सरकार-संगठन की जंजीर में केवल तन्त्रहीन कड़ी के समान था। दूसरे राष्ट्रीय स्वतंत्रता के विकास के कारण उसके साम्राज्य सम्बन्धी कार्य बहुत कम हो गये।"[2] इस प्रकार वास्तविक कार्यसत्ता अब एक उत्तरदायी मंत्रिपरिषद् के हाथ में आ गयी। यह परिषद् धारासभा को मार्ग दिखलाती, देश पर शासन करती और दूसरी बातों में वही स्थान ग्रहण किये हुए है, जो ब्रिटेन में ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् को प्राप्त है। गवर्नर-जनरल की नियुक्ति भी सम्राट अब कनाडा की मंत्रिपरिषद् की

1. **Constitutional Issues in Canada**, p. 65.

2. **Ibid**, p. 36.

सलाह से करता है जिसके साथ उसे वैधानिक अध्यक्ष के समान बर्तना पड़ता है। इस प्रकार वह अब ब्रिटिश सरकार का मातहत कर्मचारी नहीं रह गया है।

मंत्रिपरिषद् की बनावट—मंत्रिपरिषद् ही इसलिए कनाडा में वास्तविक शासन करती है क्योंकि मंत्रिपरिषद् संगठित रूप से कार्य करती है, और सदन में संयुक्त रूप से उत्तरदायी रहती है। ब्रिटेन की भाँति मंत्रिपरिषद् पक्ष प्रणाली के अनुसार कार्य करती है। इस समय मंत्रिपरिषद् में १० मंत्री हैं, वह हैं : प्रधानमंत्री, अर्थमंत्री, पोस्ट मास्टर जनरल, व्यापार मंत्री, सेक्रेटरी आँफ स्टेट, सार्वजनिक सुरक्षा व स्वास्थ्य मंत्री, पेंशन मंत्री, मालमंत्री, मत्स्य मंत्री, श्रममंत्री, यातायात मंत्री, कृषि मंत्री और दो अतिरिक्त मंत्री। प्रधानमंत्री को १५,००० पौण्ड प्रति वर्ष वेतन मिलता है दूसरे मंत्रियों को १०,००० पौण्ड प्रति वर्ष मिलता है। अतिरिक्त मंत्रियों को जिनके पास कोई शासन विभाग नहीं है, कोई वेतन नहीं मिलता। मंत्रियों के अतिरिक्त उपसचिव भी होते हैं।

आस्ट्रेलिया की संघ-कार्यपलिका :—आस्ट्रेलिया संघ की कार्यपालिका सत्ता राजा में निहित है और इस सत्ता का भोग गवर्नर-जनरल राजा का प्रतिनिधि होने के नाते करता है। गवर्नर जनरल नौ सेना व स्थल सेना का सेनापति भी है।

कनाडा की भाँति आस्ट्रेलिया के संघ-शासन में शासनकार्य चलाने के लिए तथा गवर्नर-जनरल को मंत्रणा देने के लिए एक कार्यपालिका का आयोजन है। इस परिषद् के सदस्यों को गवर्नर जनरल आमंत्रित कर उन्हें कार्यपालिका परिषद् के सदस्य बनाने की शपथ दिलाता है। यह सदस्य उसके अनुग्रह प्राप्त करते रहने पर अपने पद पर स्थित रहते हैं। यह तो संविधान का आयोजन है पर व्यवहार में गवर्नर जनरल प्रतिनिधि सदन के बहुमत दल के नेता को बुलाकर प्रधानमंत्री नियुक्त करता है और वह अपने मित्रों को मंत्री पद पर नियुक्त करता है जिन्हें गवर्नर जनरल विधिवत् कार्यपालिका से सलाह कर नियुक्त कर देता है। इस समय प्रधानमंत्री सहित कार्यपालिका के कुल सदस्य ११ हैं। प्रधानमंत्री अपनी इच्छानुसार एक शासन विभाग अपने अन्तर्गत रख लेता है, बाकी मंत्रियों को शासन विभाग का एक एक विभाग बाँट देता है। वे परिषद् के उपसभापति और सीनेट के नेता, व्यापार-मंत्री, एटार्नी जनरल, उद्योग-मंत्री, वैदेशिक कार्य मंत्री, पोस्ट मास्टर जनरल, आयात-निर्यात कर व व्यापार मंत्री, कोषाध्यक्ष व विकास और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक तथा अन्वेषण प्रबन्धक मंत्री, वायुयान व निर्माण मंत्री, सुरक्षा मंत्री, स्वास्थ मंत्री और गृह मंत्री हैं। प्रधानमंत्री ही कार्यों का बटवारा मंत्रियों में करता है और उनकी नीति भी निर्धारित करता है। उसे ४००० पौण्ड प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। वैधानिक प्रथा के अनुसार परि-

षद् प्रतिनिधि-सदन के प्रति उत्तरदायी है और उसका विश्वास खो देने पर पदत्याग कर देती है। परिषद् ही सामान्य शासन नीति निश्चित करती है। और सिविल सर्विस उस नीति को कार्यरूप देती है।

मंत्रिपरिषद् की रचना : परिषद् के बनाने में प्रधानमंत्री उपराज्यों की इच्छा का समुचित आदर करता है और ऐसा प्रयत्न करता है कि प्रत्येक उपराज्य का कम से कम एक व्यक्ति मंत्री अवश्य हो। परिषद् सामुदायिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करती है पर यदि कोई मंत्री अपने मित्रों से कोई मौलिक मतभेद रखता है तो वह पदत्याग कर देता है। परिषद् स्वयं ही अपनी नीति निर्धारित करती है और विधानमण्डल के कार्य में उसके मार्ग प्रदर्शक का कार्य करती है पर श्रमिक पक्ष के मंत्रिमण्डल के पदारूढ़ होने पर यह नीति, पक्ष की गुप्त समिति द्वारा निर्धारित होने लगी है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि कामनवेल्थ की वास्तविक कार्यपालिका सत्ता मंत्री परिषद् में निहित है यद्यपि सिद्धान्तः यह गवर्नर-जनरल में विहित है। गवर्नर-जनरल परिषद् की बैठक में उपस्थित नहीं होता वैधानिक प्रथानुसार इतनी महत्वपूर्ण होती जा रही है कि गवर्नर-जनरल की नियुक्ति भी सम्राट उसकी सलाह से ही करता है।

भारत की संघीय-कार्यपालिका

हमारे भारतीय संविधान-निर्माताओं ने भारत के संघीय गणतन्त्रात्मक संविधान के निर्माण में विश्व के संविधानों की उन धाराओं एवं व्यवस्थाओं को मुक्त रूप से अपने संविधान में ग्रहण कर लिया जो उन देशों में सफल रही थीं और भारत की परिस्थितियों के अनुकूल थीं। संविधान के भाग ५ के अध्याय १ में, जिसमें संघीय कार्यपालिका का वर्णन किया गया है, जितना अधिक दूसरे विदेशी संविधानों से ग्रहण किया है उतना सम्भवतः अन्य स्थानों पर नहीं। उपरोक्त भाग में २७ धारायें हैं (५२ से ७८ तक)। इन धाराओं में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा मंत्रिमण्डल के सदस्यों का वर्णन किया गया है। उनको अध्ययन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है कि भारतीय संविधान संसदीय प्रणाली पर आधारित है अथवा अध्याक्षात्मक प्रणाली पर। संविधान के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि भारत का राष्ट्रपति केवल नाममात्र का अध्यक्ष नहीं है परन्तु अमरीका के राष्ट्रपति की भाँति अधिक शक्तिशाली भी नहीं है। मंत्रिमण्डल जो दिन-प्रतिदिन के कार्यों को करता है और वास्तविक कार्यपालिका है वह भी राष्ट्रपति की व्यव-

स्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका सम्बन्धी शक्तियों के कारण ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल की भांति अधिक शक्तिशाली नहीं है।

भारत का राष्ट्रपति:—संविधान की धारा ५२ में कहा गया है कि "भारत का एक राष्ट्रपति होगा" यद्यपि इन शब्दों का अर्थ बहुत ही साधारण है परन्तु इनका वास्तविक मूल्य उस समय ज्ञात होता है जब कि हम धारा ५३,७३,७७ एवं ७८ का अध्ययन करते हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि भारत का राष्ट्रपति केवल नाम-मात्र का शासक नहीं है किन्तु वास्तविक कार्यपालिका का अध्यक्ष है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मण्डल द्वारा होता है। निर्वाचक मण्डल संघीय संसद और राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा बनता है।[1] निर्वाचक मण्डल के प्रत्येक सदस्य के मत का समान मूल्य नहीं होता है। निर्वाचक मण्डल के सदस्यों को मतदान का अधिकार इस सिद्धान्त के आधार पर नहीं मिलता कि एक व्यक्ति को एक मत देने का अधिकार है, किन्तु प्रत्येक सदस्य के मतों की संख्या जितनी जनसंख्या का वह प्रतिनिधित्व करता है उसके अनुपात से निश्चित होती है। यही कारण है कि प्रत्येक सदस्य की मत संख्या एक समान न होकर भिन्न भिन्न होती है। राष्ट्रपति के निर्वाचन का फल मतों की साधारण गणना करके नहीं किन्तु उनके महत्व के अनुसार निश्चित होता है। राष्ट्रपति का निर्वाचन निम्न-लिखित प्रकार से होता है जैसा कि संविधान के ५५ वें अनुच्छेद में कहा गया है कि

(१) जहाँ तक व्यवहार्य हो, राष्ट्रपति के निर्वाचन में भिन्न भिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व एक से मापमान से होगा।

(२) राज्यों में आपस में ऐसी एकरूपता तथा समस्त राज्यों और संघ में सम-तुल्यता प्राप्त कराने के लिए संसद् तथा प्रत्येक राज्य की विधान सभा का प्रत्येक निर्वाचित सदस्य इस निर्वाचन में जितने मत देने का हकदार है उनकी जनसंख्या नीचे लिखे प्रकार से निर्धारित की जाती है—

(क) किसी राज्य की विधान-सभा के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के उतने मत होंगे जितने कि एक हजार से गुणित, उस भागफल में हो जो राज्य की जनसंख्या को उस भाग के निर्वाचित सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या से भाग देने से आयें;

(ख) एक हजार से उक्त गुणितों को लेने के बाद यदि शेष ५०० से कम न हो तो उपखण्ड (क) में लिखित प्रत्येक सदस्य के मतों की संख्या में एक और जोड़ दिया जावेगा;

१. अनुच्छेद ५४।

(ग) संसद के प्रत्येक सदन के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के मतों की संख्या वही होगी जो उपखण्ड (क) तथा (ख) के अधीन राज्यों की विधान-सभाओं के सदस्यों के लिए नियत सम्पूर्ण मत संख्या को, संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या से भाग देने से आये, जिसमें आधे से अधिक भिन्न को एक गिना जायेगा तथा अन्य भिन्नों की उपेक्षा की जायेगी ।

(३) **राष्ट्रपति का निर्वाचन, अनुपाती प्रतिनिधित्व**—पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होगा तथा ऐसे निर्वाचन में मतदान गूढ़ शलाका द्वारा होगा। इस प्रक्रिया का पहला लक्ष्य यह है कि प्रथम तो राज्यों के राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी प्रभाव में एकरूपता रहे, और दूसरे राज्यों और संघीय संसद के प्रभाव में भी समतुल्यता रहे । विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं के सदस्य ही समान जनसंख्या का प्रतिनिधित्व नहीं करते। कुछ राज्यों के निर्वाचन क्षेत्र जनसंख्या की दृष्टि से बड़े हैं तो कुछ राज्यों के छोटे । अतः राज्यों की एकरूपता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि निर्वाचक मण्डल के प्रत्येक सदस्य को उसी अनुपात में मत प्राप्त हों जितनी जनसंख्या का वह प्रतिनिधित्व करता है ।

राष्ट्रपति का कार्यकाल:—राष्ट्रपति का निर्वाचन ५ वर्ष की अवधि के लिए होता है । राष्ट्रपति का स्थान यदि आसनारूढ़ राष्ट्रपति की मृत्यु, त्यागपत्र या पदच्युति के कारण रिक्त होता है तो रिक्त स्थान की पूर्ति ६ मास के भीतर हो जानी चाहिए । जब तक निर्वाचन द्वारा स्थान पूर्ति नहीं होती उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति का कार्य करता है । नया राष्ट्रपति पूरे ५ वर्ष की अवधि के लिए निर्वाचित होता है पूर्ववर्ती राष्ट्रपति की अवशिष्ट अवधि के लिए नहीं ।[1] राष्ट्रपति का पुनर्निर्वाचन भी किया जा सकता है । संविधान के विरुद्ध आचरण करने पर राष्ट्रपति को महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है । महाभियोग की प्रक्रिया संसद का कोई भी सदन आरम्भ कर सकता है किन्तु उसकी पहली शर्त यह है कि महाभियोग के प्रस्ताव की सूचना १४ दिन पूर्व दी जानी चाहिए और उस सूचना पर उस सदन के कम से कम एक-चौथाई सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए । यदि प्रस्ताव सदन की कुल संख्या के दो तिहाई मतों से पारित हो जाय तो उसे दूसरे सदन के पास अनुसंधान तथा निर्णय के लिए भेज दिया जाता है और यदि दूसरा सदन भी दो-तिहाई

---

१. अनु० ६२ (२)

बहुमत से राष्ट्रपति के विरूद्ध लगाये गये अभियोगों को स्वीकार कर उस प्रस्ताव को पारित कर देता है तो राष्ट्रपति को पद त्याग करना पड़ता है। जिस राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग लगाया गया हो उसे इस बात का अधिकार है कि वह अनु-संधान करने वाले सदन के समक्ष जाकर अपनी पैरवी कर सके और अभियोगों से अपनी रक्षा करने के लिए जो कुछ कहना हो कह सके।[1] यह इसलिए किया गया है कि राष्ट्रपति संविधान की सीमाओं के अन्तर्गत ही कार्य करे और उसका उल्लंघन न कर सके।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ:—राष्ट्रपति को बहुत सी व्यक्तिगत उन्मुक्तियाँ और सार्वजनिक शक्तियाँ प्राप्त हैं। वह अपने कार्यकाल में पद के कर्तव्यों की पूर्ति के लिए जो भी कार्य करता है वह उसके लिए किसी न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। वह न तो बंदी बनाया जा सकता है और न ही गिरफ्तार ही किया जा सकता है। पदावधि में उनके विरुद्ध दंड विधि की कोई प्रक्रिया लागू नहीं की जा सकती। उसका किसी भी अधिकारी के समक्ष कोई राजनीतिक उत्तरदायित्व नहीं है।

राष्ट्रपति स्वयं संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता है किन्तु उसे संसद की रचना सत्रों तथा विधि निर्माण आदि के सम्बन्धों में बहुत सी शक्तियाँ प्राप्त हैं। वह राज्य परिषद् में १२ सदस्यों को मनोनीत कर सकता है इसी प्रकार लोक-सभा में दो ऐंग्लो इण्डियन सदस्यों को मनोनीत कर सकता है। वह लोक सभा को किसी भी समय विघटित कर सकता है।[2] यदि किसी विधेयक के सम्बन्ध में दोनों सदनों में मतभेद हो जाय तो वह उसे दूर करने के लिये दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन करा सकता है। वह चाहे तो किसी समय भी एक या दोनों सदनों को संदेश भेज सकता है। राष्ट्रपति किसी भी विधेयक को अस्वीकृत कर सकता है और धन सम्बन्धी विधेयकों को छोड़ कर किसी भी विधेयक को संसद के पास पुनर्विचारार्थ वापस भेज सकता है। परन्तु पुनर्विचार के लिए आने पर संसद् यदि उस विधेयक को दूसरी बार भी संशोधित या बिना संशोधन के पारित कर देती है तो राष्ट्रपति उस विधेयक पर हस्ताक्षर करने के लिए वाध्य है।

अनुच्छेद १२३ में कहा गया है कि उस समय को छोड़ कर जबकि संसद के दोनों सदन सत्र में हों यदि किसी समय राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि तुरन्त कार्यवाही करने के लिए उसे बाधित करने वाली परिस्थितियाँ वर्तमान हैं तो वह

---

१. अनु० ६१, (८०)

२. अनु० ८५ (२)

ऐसे अध्यादेशों को प्रख्याप कर सकेगा जो उसे परिस्थितियों से अपेक्षित प्रतीत हों। इस प्रख्यापित अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा जो संसद के अधिनियम का होता है। संविधान-निर्माताओं का यह निश्चित लक्ष्य था कि किसी भी आपत्ति-कालीन अवस्था के समय राष्ट्रपति तुरन्त ही अध्यादेश जारी कर सके। संविधान के अनुच्छेद ३५२ में राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त है कि यदि उसे यह निश्चय हो जाय कि भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा बाह्य आक्रमण या आन्तरिक उत्पात होने की आशंका के कारण खतरे में है तो वह आपत्काल की घोषणा कर सकता है। इस प्रकार की घोषणा करने के लिए कहीं युद्ध छिड़ जाने या उत्पात आरम्भ हो जाने की प्रतीक्षा किये जाने की आवश्यकता नहीं है। राष्ट्रपति यह घोषणा संकट का आभास पाते ही तत्काल कर सकता है। इस शक्ति का प्रयोग अक्टूबर सन् १९६२ में राष्ट्रपति ने चीनी आक्रमण के समय किया था। बाद को संसद ने सन् १९६२ का भारतीय रक्षा नियम के रूप में पारित कर दिया। आगे अनुच्छेद ३५६ में कहा गया है कि यदि राज्य का शासन संविधान में दी गयी व्यवस्थाओं के अनुसार ही नहीं चल पा रहा हो तो राष्ट्रपति संविधान की विफलता की घोषणा या तो स्वयं अपने आप कर सकता है या राज्यपाल अथवा राजप्रमुख की रिपोर्ट के आने पर कर सकता है। यदि किसी राज्य की सरकार संघ सरकार द्वारा किसी संघीय विषय में दिये निर्देश का पालन करने में असफल या असमर्थ सिद्ध होती है तो भी यह घोषणा की जा सकती है। वित्तीय आपत्काल की घोषणा राष्ट्रपति उस समय कर सकता है जब उसकी राय में भारत या उसके किसी भी भाग की वित्तीय स्थिरता या साख खतरे में हों।

संविधान के अनुच्छेद ६३ में कहा गया है कि भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा। इसका चुनाव संसद के दोनों सदन एक संयुक्त बैठक में गुप्त मतदान द्वारा एकल हस्तान्तरणीय मतदान द्वारा करते हैं। इस पद की अर्हतायें तथा कार्यकाल राष्ट्रपति की भाँति ही हैं। राष्ट्रपति की भाँति ही उपराष्ट्रपति भी संसद या किसी राज्य विधान मण्डल का सदस्य नहीं होता है और न किसी लाभ वाले अन्य सरकारी पद को ग्रहण कर सकता है। उपराष्ट्रपति अपनी ५ वर्षों की अवधि के समाप्त होने के पूर्व भी राज्यपरिषद् के प्रस्ताव द्वारा जिससे लोक सभा भी सहमत हो, हटाया जा सकता है। उपराष्ट्रपति की मृत्यु, पदत्याग के कारण पद के रिक्त होने पर जो नया व्यक्ति निर्वाचित होगा वह पूरे ५ वर्ष तक उस पद पर रहेगा। पूर्ववर्ती उपराष्ट्रपति के कार्यकाल के अवशिष्ट समय मात्र के लिए नहीं। उपराष्ट्रपति राज्यपरिषद् का सभापति भी होता है और इसलिए उसे वेतन मिलता है।

जव राष्ट्रपति का पद किसी कारण से रिक्त हो जाता है. तो उसके लिए पुनः चुनाव होने तक, उपराष्ट्रपति स्थानापन्न रूप से राष्ट्रपति का कार्य करता है। राष्ट्रपति के रुग्ण हो जाने पर या किसी कारण से अनुपस्थित होने पर भी उपराष्ट्रपति ही उसका कार्यभार सँभालता है। डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद की बीमारी के समय में एक बार डा० राधाकृष्णन ने राष्ट्रपति के कार्य को सँभाला था।

मंत्रिपरिषद् :—संघीय मंत्रिमण्डल का औपचारिक नाम मंत्रि-परिषद् है। इसमें एक प्रधानमंत्री तथा आवश्यकतानुसार अन्य मंत्री होते हैं। संविधान में मंत्रियों की संख्या की कोई सीमा निर्धारित नहीं की गयी है। प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति भी प्रधानमंत्री की सलाह से राष्ट्रपति करता है। प्रत्येक मंत्री के लिए यह अनिवार्य है कि सामान्यतः संसद के किसी एक सदन का सदस्य हो। संसद की सदस्यता रहित मंत्री अपने पद पर छः महीने से अधिक नहीं बना रह सकता। सभी मंत्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपने पदों पर बने रहते हैं और लोकसभा के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। व्यवहार में राष्ट्रपति लोकसभा के बहुमत वाले दल के नेता को प्रधान मंत्री नियुक्त करता है और वह अपने मंत्रिमंडल के सहयोगियों को चुनता है, जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा उसी की सिफारिश पर की जाती है। प्रधानमंत्री को अपने सहयोगियों को चुनने में कुछ स्वतन्त्रता अवश्य रहती है परन्तु वह भी इस मामले में पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं रहता। राष्ट्रपति ही मंत्रियों को कौन-कौन पद दिये जायँ तय करता है। इस कार्य में राष्ट्रपति प्रधानमंत्री से सलाह लेता है। राष्ट्रपति ही शासन कार्य के विभिन्न भागों की कार्यप्रणाली को विभक्त करता है। इस प्रकार भारत का राष्ट्रपति फ्रांसीसी राष्ट्रपति से कहीं अधिक शक्तिशाली है। अनुच्छेद ७८ में प्रधानमंत्री के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि प्रधानमंत्री का कर्तव्य है कि वह संघ कार्यों के प्रशासन सम्बन्धी मंत्रि-परिषद् के समस्त विनिश्चयों तथा विधान के लिए प्रस्थापनायें राष्ट्रपति को पहुँचायें तथा संघ कार्यों के प्रशासन सम्बन्धी एवं विधान विषयक प्रस्थापनाओं सम्बन्धी जिस जानकारी को राष्ट्रपति मँगावें उसे दे और किसी विषय को, जिस पर किसी मंत्री ने विनिश्चय कर दिया हो, किन्तु मंत्रि-परिषद् ने विचार नहीं किया हो, राष्ट्रपति की अपेक्षा करने पर परिषद् के सम्मुख विचार के लिए रखने का कर्तव्य है। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री एवं उसके अन्य मंत्रियों को किसी कार्य के लिए अपनी सलाह दे सकता है और किसी कार्य को करने के लिए कह सकता है। इंगलैण्ड की रानी विक्टोरिया ने अनेको बार अपने मंत्रियों को सलाह दी और कार्य करने को कहा। संयुक्त राज्य अमरीका

के राष्ट्रपति लिंकन ने तो अपने सचिवों को यह कह कर घोषित किया कि "लिंकन राष्ट्रपति हैं।" इसी प्रकार भारत का राष्ट्रपति भी अपने मंत्रियों को सलाह एवं आज्ञा दे सकता है क्योंकि वह स्वयं एक निर्वाचन मण्डल द्वारा चुनकर आता है। इसलिए उसे अत्याधिक मताधिक्य प्राप्त होता है। इस प्रकार भारतीय कार्यपालिका अध्यक्षात्मक एवं संसदात्मक प्रणालियों का मिश्रण है।

अध्याय ८

संघीय संस्थायें—विधान मण्डल

अमरीका ने सन् १८८७ में एक नवीन संविधान को जन्म दिया जो इंग्लैण्ड की संसदीय सरकार से विलकुल भिन्न था। अमरीका का संविधान संघीय सिद्धान्तों पर आधारित है। संघीय-प्रशासन प्रणाली के अन्तर्गत विधानमण्डल की शक्तियाँ एवं उसका अधिकारक्षेत्र निश्चित होता है। और उसी अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत वह कार्य करते हैं। यदि वह ऐसा न करें तो उनका संविधान भी समाप्त हो जावेगा। अतः संघीय शासन प्रणाली में विधानमण्डल ही सर्वेसर्वा नहीं होता है। उदाहरणार्थ अमरीकन कांग्रेस को आज भी इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट से बहुत कम शक्तियाँ प्राप्त हैं। अमरीकन कांग्रेस की शक्तियों का वर्णन तो संविधान के अनुच्छेद १ की धारा ८ में कर दिया गया है जब कि इंग्लैंड की पार्लियामेन्ट की शक्तियाँ अपरमित हैं।

द्विसदनीय-मंडलों की व्यवस्था

अब यह प्रश्न विचारणीय है कि संघीय शासन प्रणाली में विधान मण्डल एक गृही (Unicameral) होना चाहिये अथवा द्विगृही (Bicameral)। इस प्रश्न का उत्तर संघीय विचारों को दृष्टिकोण में रखते हुए ज्ञात करना है। द्विगृही विधानमण्डल का जन्म इंगलैण्ड में हुआ था, परन्तु इसके जन्म की सही तिथि बताना कठिन है। सम्भवतः इसकी भी उत्पत्ति अन्य राजनैतिक संस्थाओं की भाँति हुई हो,[1] परन्तु यह निश्चित है कि प्रारम्भ में इंग्लैण्ड में भी एक गृही विधान मण्डल था किन्तु सन् १९१३ से १९३० के मध्य में राजनैतिक एवं सामाजिक विभिन्नताओं के कारण वहाँ के नागरिकों में भेदभाव खड़ा हो गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि एक गृही विधान मण्डल के स्थान पर द्विगृही विधानमण्डल को जन्म दिया गया। इस द्विगृही विधानमण्डल में सन् १९१० तक कोई विशेष भेदभाव न पैदा हुआ और विधानमण्डल की लगभग सभी शक्तियाँ हाउस ऑफ कामंस के पास

---

1. **Second Chambers in Federations**, pp. 1-6.

रहती रहीं। यह बात लगभग सभी एकात्मक शासन प्रणाली के राज्यों के साथ रही।

परन्तु अमरीकी राजनीतिज्ञों एवं राजभक्तों ने सन् १७८७ में एक फिलाडेल्फिया कांग्रेस बुलायी, जिसमें द्वितीय सदन की शक्तियों पर बल दिया गया। इसके उद्धरण १७८७ की कन्वेन्शन में तथा फेडरलिस्ट में पाये जाते हैं। "कन्वेन्शन सीनेट की स्थापना में, न केवल संघीय आवश्यकताओं के लिये, किन्तु अंग्रेजी शासन समाप्त होने से शासन प्रणाली असंयम रूप से चल रही थी, उत्तेजित किया।"[1] ऊपरी सदन के निर्माण में अमरीकी देशभक्तों के सम्मुख तीन प्रमुख आधार थे। प्रथम सीनेट, जो कांग्रेस का द्वितीय सदन था, उसकी रक्षा करना तथा एक गृही विधान मण्डल को केन्द्रीकरण से बचाना एवं केन्द्रीय सरकार में विरोधी भावनाओं को समाप्त करना था। मेडीसन जो कि ऊपरी सदन की स्थापना में जी-जान से कार्य कर रहे थे उनके भी दो मुख्य ध्येय थे। सर्वप्रथम वह शासक से प्रजा की रक्षा चाहते थे। द्वितीय वह स्वयं शासकों को निरंकुशता से बचाना चाहते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने स्वतन्त्रता की रक्षा पर भी बल दिया था जो केवल ऊपरी सदन की स्थापना में ही सम्भव था। उसने कहा था "वहाँ पर ऋणी और महाजन, कृषक एवं व्यापारी एवं शिल्पी होंगे, धनी एवं निर्धन होंगे अतः हम सम्पूर्ण जन समुदाय में एकता नहीं ला सकेंगे, वहाँ पर प्रत्येक वस्तु का प्रभाव प्रत्येक की इच्छा पर पड़ेगा। मेरी यह आकांक्षा है कि मैं जिस कार्यप्रणाली को जन्म दूँ वह वर्षों तक चलती रहे। क्योंकि जनसंख्या के बढ़ जाने से परिश्रम से कार्य करनेवाले मनुष्यों की आवश्यकतायें भी बढ़ जायँगी और वे लोग सदैव समान बटवारे के लिए गुप्त रूप में आहें भरेंगे। कभी यह भी समय आ सकता है कि यह भावनायें बहुत अधिक बढ़ जायँ और बाद को मतदाताओं द्वारा यह शक्ति पूर्व लोगों के हाँथों में चली जाय। किसी भी ग्रामीण का देश की उन्नति की ओर ध्यान न होगा, बल्कि रहने के लक्षण ही होंगे जैसा कि हम ने बहुत सी भविष्य में होने वाली विपदाओं को होते देखा है। ऐसी देशा में अल्प संख्यक लोगों की रक्षा कैसे होगी? अतः उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए आपत्तिकालीन समय में रक्षा करने के लिए द्वितीय सदन की स्थापना होनी ही चाहिए।"[2]

1, **Theory and Practice of Modern Government,** Vol. I, p. 680.

2. **Farrand,** Vol. 1, p. 431.

मेरीलैण्ड (Mary Land) के हेनरी द्वितीय, सदन की स्थापना पर बल देते हुए कहते हैं कि "हमारे संविधान के प्रमुख प्रजातन्त्रात्मक भाग से ही विपदा का जन्म होता है। शासन प्रणाली की शाखा, जो प्रजा द्वारा कार्यान्वित होती है वह दूसरी शाखा को अपने में मिला लेती है। किसी भी संविधान में प्रजातन्त्र के विरोध में कोई भी रोकथाम की व्यवस्था नहीं की गयी है। वर्जीनिया की अल्प शक्तिवाली सीनेट केवल आभास के रूप में है। मेरीलैण्ड में आति ही शक्तिशाली सीनेट है परन्तु बाद की कठिनाइयों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि वह शक्तिहीन है। न्यू-यार्क तथा मैसाचेस्टस (Massa Chestts) के संविधान में अब भी प्रजातन्त्र के विरोध में शक्तिशाली रोकथाम का प्रयोजन है परन्तु इन सबमें त्रुटियाँ हैं।" कन्वेन्शन एक मत से दूसरे सदन की स्थापना में सहमत थी, परन्तु अभाग्यवश जब द्वितीय सदन के कार्यकाल का प्रश्न आया तो आपस में विभिन्नतायें खड़ी हो गयीं, क्योंकि कुछ लोगों ने विचार किया कि कदाचित् कहीं ऐसा न हो जाय कि यह सदन धीरे-धीरे बाद को बहुत शक्तिशाली हो जाय। इस डर से इसका विरोध किया गया।[1] हमिल्टन ने ऊपरी सदन पर बल दिया और उन लोगों के विवाद को समाप्त कर दिया जो सीनेट के दीर्घकाल के कारण डर रहे थे। आपने इंग्लैण्ड के "हाउस ऑफ लार्ड्स" की सराहना की।[2] कन्वेशन का मत था कि द्वितीय सदन का कार्यकाल दीर्घ हो अतः संविधान के अनुच्छेद १ की धारा ३ की उपधारा १ में कहा गया कि सीनेट में प्रत्येक राज्य अपने दो सदस्य, जो राजकीय विधान मण्डलों द्वारा चुने जावेंगे, भेजेगा। जिनका कार्यकाल ६ वर्ष होगा और प्रत्येक सीनेटर का एक मत होगा। इस प्रकार अमरीका के संविधान में प्रत्येक राज्य को चाहे छोटा हो अथवा बड़ा सभी को बराबर का प्रतिनिधित्व दिया गया है। राजकीय विधान-मण्डलों द्वारा चुने जाने वाले सीनेटरों को संघात्मक विधानमण्डल के सिद्धान्त की मान्यता दी गयी, जबकि निचले सदन में जनता के प्रतिनिधि प्रतिनिधित्व करते हैं। जहाँ तक सीनेटरों की योग्यता का प्रश्न है। संविधान में प्रत्येक सीनेटर की आयु कम से कम ३० वर्ष रखी गयी है। उसके अतिरिक्त चुनाव के समय कम से कम वह देश का ९ वर्षीय नागरिक रह चुका हो। राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा सीनेटरों के चुनाव के बारे में हमिल्टन कहते हैं कि इस प्रकार के चुनाव में जनता की समान वाणी रहती है। इससे दो लाभ होते हैं। प्रथम तो राजकीय सरकारें

1. **Ibid,** Vol.1,26,27.
2. **Ibid,** Vol. 1, 426, Wilson.

संघीय सरकार की स्थापना में अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करती हैं और द्वितीय दोनों सरकारों में सम्बन्ध स्थापित रहता है।[1]

सीनेटरों का चुनाव न केवल इसलिये आवश्यक है कि इनसे संघीय सरकार में राज्यसरकारों का प्रतिनिधित्व रहेगा, किन्तु इससे संघीय सरकार स्थायी रहेगी; क्योंकि राज्य विधान मण्डल जो भी सीनेटर चुनकर भेजेंगे वह योग्य एवं अनुभवी होंगे तथा प्रत्येक कार्य बहुत ही सोच-विचार कर करेंगे।

प्रत्येक राज्य से दो सीनेटरों का चुनाव भी कन्वेन्शन के अथक परिश्रम का ही फल था। यह तो राज्यों का समझौता ही था जिसमें बिना संख्या के विचार के प्रत्येक राज्य को अपने दो सदस्य भेजने का अधिकार दिया गया था। प्रसंघान की अनुसूचियों की घोषणा में कहा गया था कि सभी राज्यों की प्रभुसत्ता अपने में निहित रहेगी। अनुसूची २ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रत्येक राज्य की अपनी प्रभुसत्ता, स्वतन्त्रता तथा प्रत्येक प्रकार के अधिकार एवं शक्तियाँ अपने में निहित रहेंगी।[२] संविधान के निर्माण के दो वर्ष बाद ही उसको कार्यान्वित किया गया। तत्पश्चात् उसमें कुछ संशोधन भी किये गये। संविधान में जो शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार को नहीं दी गयीं थी अथवा जिन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया था, वह सभी राज्यों के लिए स्थायी कर दी गयीं।[3] यह संशोधन इसलिए और किया गया था कि जो सीनेटर राजकीय विधान मण्डलों द्वारा चुन कर आयेंगे वह संघात्मक-शासन-प्रणाली के द्वितीय सदन, प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) के सदस्यों, जो जनमत द्वारा निर्वाचित होंगे, उनसे अपने अधिकारों की रक्षा करेंगे। इसके अतिरिक्त जो सीनेटर दीर्घकाल के लिये चुनकर आये थे उनसे आशा की जाती थी कि वह सरकार की स्थिरता पर ध्यान देंगे। सीनेटरों का चुनाव १३ राज्यों के आपस के समझौते के आधार पर हुआ था, जिन्हें स्वयं अवशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त थीं।

फेडरलिस्ट के लेखकों ने अमरीकन द्विसदनीय विधानमण्डल की रक्षा की। ऊपरी सदन के प्रतिनिधित्व का यह एक तरीका था जो कि प्राचीन अथवा मध्यकालीन गणराज्योंके सिद्धान्तों से भिन्न था। उदाहरणार्थ एथेन्स में सोलन (Solon) सुधारों में भी वार्षिक निर्वाचित ९ सदस्यों द्वारा शासन होता था। उन्होंने इस बात का भी खण्डन किया कि सीनेट के सदस्यों के बारे में जो कहा जाता है

1. **The Federalist**, No. L XI.

२. अनुच्छेद, २

३. संविधान का १० संशोधन, १७९१।

कि वह प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित होकर नहीं आते हैं, जिनका कार्यकाल ६ वर्ष है और जिनसे विपदाओं का डर बना रहता है और यह भी हो सकता है कि थोड़े दिनों में यह राज्य निरंकुश एवं निर्दयी राज्य में परिवर्तित हो जाय। उन्होंने इसके उत्तर में कहा कि किसी भी आंदोलन के प्रभाव के पूर्व सर्वप्रथम आंदोलनकारी पथभ्रष्ट होंगे तब राज्यों की विधान सभायें। तत्पश्चात् प्रतिनिधि सदन, उसके बाद बड़ी संख्या में जनसंख्या और कहीं अन्त में जाकर सीनेट के सदस्य पथभ्रष्ट होंगे। परन्तु इस प्रकार के परिवर्तन को कोई मनुष्य सोच भी नहीं सकता है। इस प्रकार अमरीकन राजनीति में सीनेट अपना एक विशेष महत्व रखती है। फिलाडेल्फिया में जिस संविधान का निर्माण किया था उसके द्वितीय सदन की स्थापना में निम्नलिखित विशेषतायें विद्यमान थीं। (अ) व्यख्यात सदन से छोटी संस्था। (ब) राज्यों द्वारा सीनेट के सदस्यों का अप्रत्यक्ष चुनाव। (स) सीनेट के सदस्यों की आयु, योग्यताओं एवं कार्यकाल पर विशेष ध्यान, जो राज्यों के विचारों का प्रतिनिधित्व करते थे। (द) निचले सदन की वैधानिक शक्तियों की समानता के साथ साथ कार्यकारिणी एवं न्यायायिक शक्तियों का अधिक प्राप्त होना। (य) विना किसी सीमा आदि के प्रश्न पर विचार किये हुए राज्यों का संघ शासन प्रणाली में प्रतिनिधित्व।

विश्व में जितने भी नवीन संघात्मक शासन प्रणाली के आधार पर संविधानों का निर्माण हुआ, सभी संविधान निर्माताओंने अमरीका के ऊपरी सदन को उदाहरण के रूप में लिया। सन् १८६७ ई० में कनाडा निवासियों ने अमरीकन सीनेट का उदाहरण लेकर ब्रिटिश सरकार से कनाडा संघ शासन की स्थापना पर वल दिया जिसमें प्रान्तों को बराबर का प्रतिनिधित्व करने के लिए भी कहा गया तथा सीनेटरों की नियुक्तियों के लिए भी सिफारिश की गयी। अत: आनटैरियो तथा क्यूबेक नामक प्रान्तों को प्रत्येक को २४ सीनेटरों की नियुक्तियों का अधिकार दिया गया इसके अतिरिक्त अन्य प्रान्तों का एक समूह बना दिया गया जिससे २४ सीनेटर चुन कर आने के लिए कहा गया। सीनेटरों की आजीवन सदस्यता केवल ब्रिटिश सदन का अनुकरण ही था। अमरीकन सीनेट की भाँति कनाडा की सीनेट को कार्यकारिणी तथा न्याय सम्बन्धी विशेष शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं।

जिस समय अफ्रीका के संविधान का निर्माण हो रहा था उसी समय जर्मनी के संविधान का भी निर्माण किया गया जो संघात्मक शासन प्रणाली के आधार पर निर्मित किया गया। इस संविधान में द्विसदस्यीय विधानमण्डल का प्रयोजन किया गया, जिसका ऊपरी सदन अमरीकन सीनेट के आधार पर बनाया गया। जर्मनी

संविधान के अनुच्छेद ६ में कहा गया है कि[1] "प्रसंघान की कौंसिल प्रसंघान प्रतिनिधियों द्वारा निर्मित होगी जिसमें कुल ५७ सदस्य होंगे। १७ सदस्य प्रसिया के होंगे शेष ४० सदस्य अन्य राज्यों के जिसमें ववेरिया ६, सैक्सोनी ४, वर्टेम्वर्ग ४, वदेन ३, हस ३, मीकलेम्वर्ग स्चोरिन २ और अन्य राज्यों को एक एक सदस्य भेजने का अधिकार दिया गया। इस प्रकार प्रत्येक राज्य से बराबर सदस्य भेजने की प्रथा इस संविधान में नहीं अपनायी गयी। सभी सदस्य साधारणतय: अपनी सरकारों के मतों के अनुसार ही कार्य करते थे। इस प्रकार जर्मनी ने द्वितीय सदन के सिद्धान्त को आंशिक रूप से अपनाया। जैसा कि अमरीका के राजनीतिज्ञों ने अपनी शक्तिशाली सरकार का निर्माण किया था, उसी प्रकार प्रसिया भी अपने १७ सदस्यों को ऊपरी सदन में भेजकर अपने को शक्तिशाली बना लिया था, क्योंकि किसी भी मामले को नष्ट करने के लिए १४ विरोधी मत ही पर्याप्त थे। संविधान के अन्तर्गत प्रसिया को विटो करने का अधिकार दिया गया था। लोवेल के शब्दों में बुन्डेसरथ विधान मण्डल कार्यकारिणी अपील करने का न्यायालय एवं राजदूतों की संस्था का विशेष मिश्रण है।[2]

सभी राजदूत बर्लिन में रहते थे उन्हें वहाँ विदेशी राजदूतों की भाँति सभी प्रकार के सुख एवं आराम दिये जाते थे। उनकी नियुक्तियाँ एवं पदत्याग जिस राज्य से चुनकर वे आते थे उनकी इच्छा पर आधारित रहते थे। वे अपना मत भी राज्य-निर्देशन पर देते थे। बुन्देसरथ के आन्तरिक संगठन में संघीय विशेषतायें विद्यमान थी।[3] अमरीकन सीनेट की भाँति बुन्डेसरथ को भी न केवल वैधानिक शक्तियाँ ही प्राप्त थीं, किन्तु कार्यकारिणी एवं न्यायायिक शक्तियाँ भी प्राप्त थीं।[4] जर्मनी संविधान के निर्माताओं ने अमरीकन सिद्धान्तों के आधार पर जर्मनी के द्वितीय सदन की स्थापना की थी। जर्मन राजनीतिज्ञों का विचार था कि राज्यों के संप्रभुतायुक्त पुरुषों को अपने राज्यों के निर्देशन पर बुन्डेसरथ में प्रतिनिधित्व अवश्य करना चाहिये। हरमन फिनर का कहना है कि "जिस प्रकार सोते से तालाब का जन्म होता है उसी प्रकार प्रतिनिधि मतों का जन्म प्रभुसत्ता से हुआ है जो अपनी अपनी राज-

---

1. Newton, A. P., **Federal and Unified Constitutions,** p. 245.

2. Lowell, **Government and Parties in Continental Europe** Vol. I., p. 259.

3. **Ibid,** p. 265.

4. **Ibid,** pp. 665-69.

धानी में रहते हैं ।"[1]

स्विज़ प्रसंधान के निर्माताओं ने सन् १८७४ में जर्मनी के इस संविधान को अपनाया । स्विज़ संविधान का ऊपरी सदन जो स्टैन्डरथ कहलाता है उसमें छोटे-छोटे कैन्टनों के संघीय विचार विद्यमान हैं । जर्मन राज्य की भाँति स्विज़ प्रसंधान में भी प्रभुसत्ता उसके राज्य के सदस्यों में विद्यमान है । प्रसंधान के अन्तर्गत सभी कैन्टनों को अपने बराबर प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है ।

संघ में ऊपरी सदन की उपयोगिता

संघात्मक शासन प्रणाली में द्वितीय सदन का एक विशेष महत्व रहता है । वह कानून निर्माण में प्रथम सदन की जल्दीबाजी को रोकता है इसके अतिरिक्त कुछ मामलों में संशोधन भी कर सकता हैं । संघीय प्रणाली में इकाई राज्यों के अधिकारों की रक्षा भी करता है ।

द्विसदनीय विधान मण्डलों के माननेवालों का विचार है कि संघात्मक संविधान में ऊपरी सदन बहुत ही आवश्यक है । उनका सबसे बड़ा मत यह है कि ऊपरी सदन में सभी छोटे एवं बड़े राज्यों का समान प्रतिनिधित्व रहता है । इस प्रकार राज्यों के अधिकारों की समान रूप से रक्षा होती है यदि ऐसा न हो तो निचले सदन में जिस प्रकार बड़े राज्यों के सम्मुख छोटे राज्यों का कोई भी महत्व नहीं रहता है उसी प्रकार ऊपरी सदन में भी होगा । इस प्रकार से संघात्मक शासन प्रणाली के आधारों पर कुठाराघात होगा । अतः यह पूर्णरूप से मान लिया गया है कि संघात्मक शासन-प्रणाली में ऊपरी सदन का होना अति ही आवश्यक है । और इसी सिद्धान्त के आधार पर आधुनिक संघीय संविधानों में उपरोक्त सिद्धान्त को कार्यरूप में ग्रहण किया गया है ।

संयुक्त राज्य अमरीका के ५० राज्यों में से प्रत्येक राज्य से २ सदस्य चुनकर आते हैं । इस प्रकार ऊपरी सदन के सदस्यों की संख्या १०० है । सन् १९१३ के पूर्व तक इन सदस्यों का चुनाव राज्य के विधान मण्डल करते थे। परन्तु सन् १९१३ से उक्त सदस्यों का चुनाव राज्य की जनता प्रत्यक्ष रूप से करने लगी है । अमरीकन सीनेट को किसी भी विधेयक को संशोधित करने के अधिकार के कारण उसे न्याय सम्बन्धी भी अधिकार प्राप्त है । इसके अतिरिक्त सीनेट को कार्यपालिका सम्बन्धी भी अधिकार प्राप्त हैं क्योंकि कुछ विशेष बातों में प्रेसीडेण्ट को सीनेट से परामर्श लेना पड़ता है । विशेषतया विदेशी मामलों में । कनाडा के चारों प्रान्त अर्थात् क्यूबेक,

---

1. **Theory and Practice of Modern Government**, p. 289.

आनटैरिओ (Ontario), मारीटाइम तथा पश्चिमी प्रान्तों को २४ सीनेटर, प्रत्येक प्रान्त को चुनने का अधिकार प्राप्त है तथा न्यूफाउन्डलैण्ड को ६। इस प्रकार कनाडा के ऊपरी सदन के सदस्यों की कुल संख्या १०२ है। कनाडा के सीनेटरों की नियुक्तियाँ गवर्नर जनरल उनके जीवन काल के लिए करता है। अर्थात् निचले सदन में जो भी दल बहुमत में होता है वही रिक्त स्थानों के लिए सदस्यों का चुनाव करता है। परन्तु अमरीका में एक तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष बाद अपना पद त्याग कर देते हैं। इस प्रकार सदन में सदैव ही दो तिहायी पुराने सदस्य रहते हैं। आस्ट्रेलिया के ६ उपराज्य प्रत्येक १० सदस्य चुनता है इस प्रकार उनके कुल सदस्यों की संख्या ६० है जिसमें से आधे प्रति ३ वर्ष बाद अवकाश ग्रहण कर लेते हैं। इन सदस्यों का चुनाव राज्यों द्वारा होता है। सम्पूर्ण राज्य सीमा का एक निर्वाचन क्षेत्र होता है। उपरोक्त तीन संघों में राज्यों को समान अधिकार दिये गये हैं और सभी राज्यों को ऊपरी सदन में समान प्रतिनिधित्व का अधिकार प्राप्त है। इन सीनेटरों से आशा की जाती है कि वे राज्य के अधिकारों की रक्षा करेंगे परन्तु वास्तविक रूप में सीनेट अपना कार्य कुशलपूर्वक नहीं कर पाती है। उदाहरणार्थ अमरीका के चुनावों तथा विधान मण्डल की कार्यप्रणाली में सीनेटर दलों के आधार पर कार्य करते हैं। वे अपने को भूल जाते है कि वे अमुक राज्य की जनता द्वारा चुनकर आये हैं। वे तो स्वयं अपने को देखते हैं कि वे किस राजनैतिक दल से निर्वाचित होकर आये हैं। इसी प्रकार कनाडा में भी कन्जरवेटिव एवं लिबरल दल के आधार पर कार्य करते हैं न कि प्रान्तों के आधार पर। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया में भी सीनेटर दलों के आधार पर कार्य करते हैं। अतः आधुनिक संघात्मक सरकारों में राज्य के अधिकारों पर ध्यान न देकर राष्ट्र के अधिकारों पर विशेष ध्यान दिया जाता है वास्तविकता में जब भी राज्य अपने सदस्यों को चुनकर संघीय विधान मण्डल के ऊपरी सदन में भेजते हैं तो वे स्वयं समझ लेते हैं कि उनके अधिकारों की रक्षा नहीं होगी। संघ में इकाइयों की रक्षा के लिए यदि कार्यकारिणी में ही अपने सदस्यों का समावेश कर दिया जाय तो राज्यों अथवा प्रान्तों के अधिकारों की रक्षा भली प्रकार हो सकती है। यद्यपि कनाडा एवं फ्रांसीसी निवासी अपने अधिकारों की रक्षा में वास्तविक रूप से संरक्षक हैं। परन्तु वह किसी भी प्रकार से इस सुधार को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। सीनेट को कभी भी समय न मिल सका कि वह प्रान्तीय मामलों में वाद-विवाद कर सके। वास्तव में कनाडा के संविधान में तभी संशोधन होता है जब कि सम्पूर्ण उपनिवेश का सम्बन्ध होता है, क्योंकि कनाडा में संघीय प्रणाली संघीय संस्था के आधार पर कार्य करती है, वहाँ पर सभी कार्य प्रतिनिधि सदन (House of Represen-

tatives) में ही होता है। अतः यदि राज्य के अधिकारों की रक्षा करना है तो वह प्रतिनिधि सदन में ही हो सकते हैं। परन्तु संघ के निर्माण के समय सीनेट में सभी छोटे प्रान्तों के अधिकारों का रक्षक माना गया था। सन् १८६४ की क्यूवेक सम्मेलन के वाद-विवाद में राज्य की विशेषताओं पर विशेष ध्यान दिया गया था। यद्यपि अलेक्जेण्डर मैकेनाइज ने कहा था कि "संसदीय शासन प्रणाली एक सदनीय विधान मण्डल द्वारा चल सकती है। उसका विचार था कि "द्वितीय सदन से जागीरदारी प्रथा का उदय होगा और इस प्रकार से प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली नष्ट हो जावेगी।"[1] सीमैक्डोनल्ड ने भी सीनेट की स्थापना पर बल दिया था।[2] इस प्रकार उपरोक्त विचारों द्वारा संघ शासन के निर्माण में ऊपरी सदन की स्थापना हुई जिसमें सभी प्रान्तों को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया।

संघीय विधान मण्डल में दोनों सदनों का सम्बन्ध

(१) **अमरीकन कांग्रेस**:—संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस संघ की व्यवस्थापिका सभा का अंग है जिसके दो सदन हैं (१) सीनेट, (२) प्रतिनिधि सदन। सन् १७८७ के संविधान के प्रथम अनुच्छेद तथा सन् १९१३ के १७ वें संशोधन में दोनों सदनों के संगठन, सम्बन्ध एवं शक्तियों का वर्णन है।

प्रतिनिधि सदन अमरीकन कांग्रेस का निचला सदन है, जिसके सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा होता है। जनसंख्या तथा राज्यों के बढ़ने के साथ साथ प्रतिनिधियों की संख्या भी बढ़ती गयी और अब ६५ से बढ़कर ४३० हो गयी है। प्रत्येक राज्य अपनी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधि चुनकर भेजता है परन्तु कम से कम प्रत्येक राज्य एक सदस्य का अवश्य ही निर्वाचन करेगा। प्रत्येक राज्य कितने सदस्य भेजेगा वह कांग्रेस के नियमों द्वारा निश्चित होता है।

अमरीका के सभी निवासियों की जिनकी आयु २१ वर्ष हो चुकी है और जिन्हें देश की नागरिकता प्राप्त है उन्हें मत देने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। सदन का कार्यकाल २ वर्ष निश्चित कर दिया गया है नवम्बर माह में नए सदन का चुनाव होता है परन्तु नये सदस्य आगामी ३ जनवरी को ही सदन में प्रवेश करते हैं उसी समय से सदन का कार्यकाल निश्चित होता है। सदन के प्रतिनिधि प्रान्तों के ज़िलों से चुनकर

---

1. **Ibid**, p. 50.

2. **Conference Debates 36 quolid Ibid**

आते हैं इस प्रकार वे वास्तविकता में स्थानीय प्रतिनिधित्व करते हैं। सदन को अपनी कार्यप्रणाली पर पूर्ण नियंत्रण रखने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। वह अपने प्रतिदिन का लेख्य तैयार करता है और समय-समय पर प्रकाशित करता रहता है परन्तु कुछ विशेष बातों को गुप्त भी रखता है।

सदन में सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण समिति पद्धति भी अपनायी गयी है। इन समितियों की संख्या १९ है जो सदन स्वयं नियुक्त करता है जिसमें अल्प एवं बहुसंख्यक वाले भी सदस्य होते हैं, किन्तु उपरोक्त समितियों में ६ समितियाँ ही उल्लेखनीय हैं। सबसे प्रभावपूर्ण नियोजन-विनयोग समिति (Appropriation Committee) तथा आगम समिति (Ways and Means Committee) ही हैं। छोटी कमेटियों की बैठकें कठिनाई से ही होती हैं। प्रत्येक विधेयक प्रथम वाचन के पश्चात् प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए उससे सम्बन्धित समिति के सिपुर्द कर दिया जाता है। समिति उसकी परीक्षा व संशोधन प्रारम्भ कर देती है उसके बाद जब सदस्य अपने प्रस्ताव पक्ष और विपक्ष में रखते हैं तब दूसरा वाचन प्रारम्भ होता है। किसी भी योजना पर कोई सदस्य एक बार से अधिक नहीं बोल सकता है और वह भी एक घंटे से अधिक नहीं। तीसरे वाचन के पश्चात् स्पीकर योजना पर मत लेने के लिए प्रस्तुत करता है। मत देने के लिए तीन रीतियाँ अपनायीं जाती हैं।

(१) मुखोच्चारण के स्वर से यदि दूसरे ढंग अपनाने की माँग न की जाय।

(२) सदस्यों को स्पीकर द्वारा नियुक्त गिननेवाले व्यक्तियों के सामने चलाने से (गणपूरक के ५वें भाग के बराबर संख्या में सदस्यों से माग हो सकती है) और

(३) सब सदस्यों के नाम पुकारकर और उनसे 'हाँ' या 'ना' कहलाकर। इसमें बहुत देर लगती है। विरोधीदल अड़ंगा लगाने के लिए प्रयोग करते हैं। उपस्थित सदस्यों के ५वें भाग से माँग किये जाने पर यह ढंग काम में लाया जाता है।

जब कोई योजना सदन से पारित हो जाती है तब वह सीनेट में भेज दी जाती है यदि सीनेट उसे अस्वीकार कर देता है तो वह वहीं समाप्त हो जाता है किन्तु यदि सीनेट उसमें संशोधन करता है तो वह पुन: उसे प्रतिनिधि सदन में लौटा दी जाती है। यदि प्रतिनिधि सदन सीनेट के संशोधनों को अस्वीकार कर देता है तो उसकी सूचना सीनेट को पुन: दे दी जाती है। सीनेट सूचना मिलने पर चाहे तो बराबर संख्या में दोनों सदनों के सदस्यों को संयुक्त मीटिंग बुलाने की माँग कर सकता है। इन सदस्यों को मैनेजर कहते हैं। इस प्रकार विधेयक अन्तिमत: पारित होने के पश्चात् स्पीकर तथा सीनेट के सभापति के पास हस्ताक्षर होने के लिए प्रस्तुत किया जाता

है। तत्पश्चात् विधेयक संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति के पास हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता है। यदि राष्ट्रपति उससे सहमत होता है तो वह उस पर सम्मतिसूचक हस्ताक्षर करके वापस भेज देता है तब वह विधेयक अधिनियम का रूप धारण कर लेता है। किन्तु यदि राष्ट्रपति उससे सहमत नहीं होता है तो वह अपने संशोधन सहित उसे उसी सदन को वापस कर देता है जिसमें वह विधेयक प्रारम्भ हुआ था। परन्तु इस प्रकार लौटाये जाने पर यदि दोनों सदन पृथक् पृथक् दो तिहायी मताधिक्य से पास कर देते हैं तो वह विधेयक राष्ट्रपति की असम्मति होने पर भी अधिनियम बन जाता है। यदि राष्ट्रपति किसी विधेयक पर १० दिन के अन्दर हस्ताक्षर नहीं करता तो भी वह विधेयक स्वयं अधिनियम बन जाता है। अधिनियम बन जाने के वाद प्रत्येक विधेयक सेकरेटरी ऑफ स्टेट के कार्यालय में जमा हो जाता है।

सभी मुद्रा विधेयक प्रतिनिधि सदन में ही सर्वप्रथम आरम्भ होते हैं। यद्यपि सीनेट को उसमें संशोधन करने का अधिकार है। अमरीका के राष्ट्रपति के चुनाव के अन्तिम दिनों तक यदि किसी उम्मीदवार को आवश्यक मताधिकार प्राप्त नहीं होता तो प्रतिनिधि सदन को ही अधिकार प्राप्त है कि वह राष्ट्रपति का चुनाव करे।

अमरीकन संघ विधान का ऊपरी सदन सीनेट कहलाता है। यह उपराज्यों का प्रतिनिधित्व करता है। उपराज्यों की समानता इसे मान्य है। क्योंकि प्रत्येक उपराज्य को इसमें दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त है जिस समय संविधान का निर्माण हो रहा था उस समय उपराज्यों के समर्थकों ने इस बात पर बल दिया था कि सभी उपराज्यों को समान माना जाय उनकी यह माँग पारस्परिक मेल और प्रेमभाव बनाये रखने के लिए स्वीकार कर ली गयी थी। फेडरिल के रचयिता का ठीक ही कहना है कि "प्रत्येक उपराज्य को एक मत देना उसकी अवशिष्ट संज्ञा को वैधानिक मान्यता प्रदान करना है। और साथ साथ उस अवशिष्ट सत्ता रखने के हेतु वह एक आय भी हैं।"[1]

जैसा कि संविधान के अन्तर्गत कहा गया है कि सीनेट के उम्मीदवार की कम से कम ३० वर्ष आयु होनी चाहिए। अत: सीनेट के सदस्य योग्य, बुद्धिमान एवं देशभक्त होते हैं। साधारणतय: जिस उपराज्य से वह निर्वाचित होकर आते हैं वह वहाँ के किसी न किसी राजनैतिक कार्यालय में विशेष पद ग्रहण करते है। उडरो विलसन के अनुसार "The Senate is just what the mode of its election and the conditions of public life in the Country made it. Its members are

1. **The Federalist,** No.L XII.

chosen from the rank of active politicians,........if contains the most perfect product of polities, whatever that product may be."

संयुक्त राज्य अमरीका का उपराष्ट्रपति सीनेट का सभापति होता है वह स्वयं सीनेटर नहीं होता है। साधारणतय: उपराष्ट्रपति का कार्य सीनेट के सभापतित्व के भार को सँभालना होता है।

सीनेट की शक्तियाँ

संविधान के अनुच्छेद १ की धारा १ में सभी विधायिनी शक्तियाँ कांग्रेस में निहित कर दी गयी हैं। सीनेट को प्रतिनिधि सदन के बराबर ही शक्तियाँ प्राप्त हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि मुद्रा-विधेयक प्रतिनिधि सदन में ही प्रारम्भ होते हैं सीनेट में नहीं। परन्तु सीनेट दूसरे विधेयकों की भाँति उनमें संशोधन कर सकती है। संविधान द्वारा सीनेट को शक्तियाँ प्राप्त हैं कि वह अपनी कार्यप्रणाली को स्वयं निर्धारित करे। इस प्रणाली को समय समय पर प्रकाशित कर सकती है। अपने सदस्यों को अनुचित बरताव पर सजा दे सकती है और दो तिहायी मताधिक्य से किसी भी सदस्य को उसके पद से हटा सकती है। अपने सदस्यों की योग्यताओं पर विचार कर सकती है। सीनेट को अभियोग लगाने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। अभियोग लगाने के पूर्व सदस्यों को शपथ लेनी पड़ती है। जब कभी अभियोग अमरीका के राष्ट्रपति के ऊपर लगाया जाता है उस समय प्रधान-न्यायाधीश सभापति का पद ग्रहण करता है। किसी भी मनुष्य के प्रति तब तक अभियोग नहीं लगाया जा सकता है जब तक अभियोग का प्रस्ताव दो तिहायी उपस्थित सदस्यों से पास न हो[1]। संविधान के अन्तर्गत कहा गया है कि किसी के अभियोग की सजा केवल उसका पद त्याग[2] ही हो सकता है।

कार्यकारिणी शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होने के कारण भी राष्ट्रपति कुछ बातों में सीनेट से परामर्श लेता है। कोई भी समझौता अथवा संधि तभी मान्य समझी जाती है जब उसे सीनेट अपने दो तिहायी मत से स्वीकृत कर दें। प्रेसीडेण्ट बिना सीनेट के परामर्श से राजदूतों, मंत्रियों, सुप्रीमकोर्ट के न्यायाधीशों तथा अन्य ऑफीसरों के नियुक्तियाँ नहीं कर सकता है। परन्तु प्रेसीडेंट चाहे तो निम्न श्रेणी की नियुक्तियाँ स्वयं कर सकता है।[3] जब सीनेट का सत्र न चल रहा हो उस समय कोई

१. अनुच्छेद १ धारा ५।

२. धारा ३।

३. अनुच्छेद ३ की धारा २ की उपधारा २।

स्थान रिक्त होता है तो प्रेसीडेंट को पूर्ण अधिकार प्राप्त है कि वह उस स्थान के लिए किसी भी मनुष्य को नियुक्त कर दे। जब तक सीनेट का अगला सत्र नहीं चलेगा तब तक के लिए उसकी नियुक्ति मान्य होगी।[1]

सीनेट को विधायिनी शक्तियों में भी प्रतिनिधि सदन के बराबर शक्तियाँ प्राप्त हैं जैसा कि दूसरे देशों के संविधानों में भी पाया जाता है। केवल मुद्रा विधेयक प्रतिनिधि सदन में ही रखे जा सकते हैं परन्तु सीनेट को उनमें संशोधन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। प्रो० मुनरो का कथन है कि कुछ वर्ष पूर्व "प्रतिनिधि सदन में एक चुंगी विधेयक जो मुद्रा विधेयक था प्रस्तुत किया गया। उस विधेयक में सीनेट ने बहुत से संशोधन लगाकर पुनः प्रतिनिधि सदन को वापस कर दिया। इस बात पर प्रतिनिधि सदन में बहुत वाद-विवाद हुआ कि यह तो हम लोगों का विशेषाधिकार है।" परन्तु बाद को सीनेट के संशोधित विधेयक को मान लिया गया। यहाँ तक कि संविधान में भी मुद्रा सम्बन्धी विधेयकों पर सीनेट को संशोधन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है जैसा कि प्रो० मुनरो ने कहा है कि कभी कभी सीनेट उपरोक्त विषयों में ठीक ही कार्य करती है। सीनेट को मुद्राविधेयकों में संशोधन करने का अधिकार जो संविधान से प्राप्त है इस अधिकार द्वारा सीनेट ने कभी कभी पूरे मुद्रा विधेयक को ही बदल दिया जो बिलकुल ठीक ही निकले।

सीनेट को सभी प्रकार के अभियोग लगाने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार अमरीका ने इंग्लैण्ड से ग्रहण किया। इंग्लैण्ड में यह अधिकार हाउस ऑफ कामंस को प्राप्त था, जो सम्राट के परामर्शदाताओं के विरुद्ध लगाया जाता था। इस अधिकार की रक्षा करते हुए हमिल्टन का कहना है कि यह अधिकार यदि सुप्रीम कोर्ट को दिया जावे तो ठीक न होगा क्योंकि इतने बड़े भयंकर कार्य के लिए यह आवश्यक है कि वह मुट्ठी भर लोगों द्वारा न किया जाय।[2]

परन्तु अभियोग के इस अधिकार का प्रयोग अधिकतर ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है क्योंकि अभी तक केवल १० ही संघीय अभियोग लगाये गये हैं जिनमें से पिछले ५० वर्षों में केवल ३ ही बार इस अधिकार का प्रयोग किया गया है, पर जब भी इस अधिकार का प्रयोग सीनेट ने किया उस समय सीनेट ने बड़े ही सुचारु एवं सुन्दर ढंग से किया। सन् १९२४ में राष्ट्रपति कालिज (Coolidge) ने कहा था कि "सीनेट के संवैधानिक एवं कानूनी अधिकारों का रक्षण प्रत्येक समय होना ही चाहिए और यही बात कार्यकारिणी के लिए भी कहा था इन अधिकारों के प्रयोग में

१. अनुछेद २ की धारा २ की उपधारा ३।
2. **The Federalist**, No. K XV.

छल एवं कपट का सहारा नहीं लेना चाहिए। कार्यकारिणी को चाहिए कि वह इस बलात्कार की ओर विशेष ध्यान दें।"[1]

उपरोक्त अधिकार के प्रयोग का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण अब्राहम लिंकन की मृत्यु के बाद राष्ट्रपति एन्ड्रयू जोहन्सन (Andrew Johnson) का है। राष्ट्रपति एन्ड्रयू जोहन्सन के विरुद्ध ११ अभियोग लगाये गये थे जिसमें एक यह भी अभियोग सम्मिलित था कि उन्होंने बिना सीनेट के परामर्श से कुछ कर्मचारियों को पदच्युत कर दिया था। जब अभियोग का प्रस्ताव पारित होने के लिए रखा गया उस समय दो तिहायी मताधिक्य में केवल एक मत की कमी रह गयी थी। अतः राष्ट्रपति एन्ड्रयू जोहन्सन के विरुद्ध अभियोग सिद्ध न हो सका दूसरे अभियोग का उदाहरण सुप्रीमकोर्ट के न्यायाधीश सामुल चेज (Samuel Chase) का है। इनके विरुद्ध न्यायालय आचरण का दोष लगाया गया था परन्तु इनके विरुद्ध भी दो तिहायी मताधिक्य प्राप्त न हो सका था।

संविधान में राष्ट्रपति को संधि अथवा समझौता करने का पूर्ण अधिकार दिया गया है परन्तु इसके लिए आवश्यक कर दिया गया है कि इस प्रकार के प्रस्ताव सीनेट के दो तिहायी मताधिक्य से मान्य हो ।[२] विदेशी मामलों में राष्ट्रपति को अपने सम्बन्ध स्थापित करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है परन्तु उनकी सूचना राष्ट्रपति को समय समय पर सीनेट को देना पड़ता है। परन्तु इतना होते हुए भी वह सीनेट के परामर्श से ही विदेशी मामलों में एकाधिकार स्थापित कर सकता है। युद्ध की घोषणा के लिए भी यह आवश्यक है कि युद्ध घोषणा का प्रस्ताव दोनों सदनों के दो तिहायी मताधिक्य से पारित होना चाहिए। वास्तविकता में इस अधिकार का प्रयोग प्रथम विश्व महायुद्ध में राष्ट्रपति विलसन के समय में हुआ था। पहले अमरीका महायुद्ध में भाग ले रहा था परन्तु (Pearl Harbour) की दुर्घटना के बाद उसने जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी। किसी देश से संधि स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रपति सीनेट से परामर्श ले। कोई भी राष्ट्रपति अपनी मानमर्यादा के लिए भी ऐसा नहीं कर सकता कि वह सीनेट से परामर्श न ले। केवल सन् १९१९ में राष्ट्रपति विड्रो विलसन ने ऐसी गलती की थी कि बिना सीनेट के परामर्श के संधि कर ली थी अतः जब अमरीका योरुप की ह्विर्लपूल (Whirlpool) की राजनीति में व्यस्त था उस समय सीनेटरों ने बोरह (Borah) के

1. K. Smallie, **The American Federal System**, (United in) p. 132.

२, अनुछेद २, धारा ३।

नेतृत्व में वर्साई की संधि को मना कर दिया था। जब कोई भी संधि का प्रस्ताव सीनेट में भेजा जाता है तो सीनेट विदेश सम्बन्धी समिति में भेज देता है। जव समिति अपने विचारों सहित प्रस्ताव को सीनेट में वापस भेज देती है। उस समय सीनेट समिति की रिपोर्ट पर विचार विनमय करती है। साधारणतय: सीनेट समिति की रिफारिशों को मान लेती है। सीनेट को पूर्ण अधिकार प्राप्त है कि वह उसमें संशोधन कर सके अथवा ज्यों का त्यों मान ले। सुप्रीमकोर्ट ने इस अधिकार पर नियम बना दिया है कि संविधान द्वारा चूँकि सीनेट को यह अधिकार प्राप्त है कि वह संधि के मामलों में राष्ट्रपति को सलाह दे अत: उसे संशोधन करने का भी पूर्ण अधिकार प्राप्त है।[1] जब तक कोई संधि सीनेट द्वारा अन्तिम रूप से स्वीकार नहीं कर ली जाती है तबतक अमरीका द्वारा मान्य नहीं समझी जाती है। बहुत से मामलों में सीनेट ने संशोधन कर दिये परन्तु विरोधी लोगों ने नहीं माना अत: संधियाँ ज्यों की त्यों रह गयीं।

संघीय शासन विधान सम्बन्धी नियुक्तियों में राष्ट्रपति को बहुत सी शक्तियाँ प्राप्त हैं परन्तु व्यवहार में अब जब भी कोई राष्ट्रपति अपने पद का भार सँभालता है तो वह बहुत सी नयी नियुक्तियाँ करता है। इस अधिकार का गलत प्रयोग न हो इसलिए सन् १७८७ के सम्मेलन में यह नियम बना दिया गया था कि सभी आवश्यकीय संघीय नियुक्तियों में राष्ट्रपति सीनेट से परामर्श ले। साधारण नियुक्तियाँ राष्ट्रपति स्वयं करता है। सभी राजदूतों, सुप्रीमकोर्ट के न्यायाधीशों, मंत्रिमण्डल के सदस्यों की नियुक्तियाँ राष्ट्रपति सीनेट की सलाह से करता है। कभी कभी तो ऐसा भी होता है कि राष्ट्रपति के दिये हुए नामों को सीनेट नहीं मानती। पहले नियुक्तियों की संख्या बहुत कम थी परन्तु जनसंख्या के बढ़ने के साथ साथ राज्यों की संख्या भी बढ़ गयी जिससे अब हजारों की संख्या में राष्ट्रपति नियुक्तियाँ करता है।

परिणाम

अमरीकन राजनीति में सीनेट अपना एक विशेष महत्व रखती है। जार्ज वाशिंगटन का कहना है कि विधानमण्डल में सीनेट केतली में चाय ठंडा करने के पात्र के समान है।[2] यह राष्ट्रपति के एकाधिकार की शक्तियों पर नियंत्रण रखती है। सीनेट में अनुभवी एवं योग्य पुरुष होने के कारण वे सीनेट के कार्यों में वहुत कुछ

1. **Haver Versus Yaker**, 9 Wallace, 32, (1870).
2. F. J. Haskin, **The American Government**, p. 317.

सफलता प्राप्त करते हैं। सभी राज्यों को सीनेट के अन्तर्गत बराबरी का अधिकार प्राप्त है। न्यूयार्क जिसकी जनसंख्या १० लाख है वह भी अपन दो सदस्यों को चुनकर सीनेट में भेजता है जबकि निवेदा भी जिसकी संख्या केवल ८० हजार है वह भी दो सदस्य सीनेट में भेजता है। इस प्रकार १८उपराज्य ३६ सदस्य सीनेट में चुनकर भेजते हैं जबकि उनकी जनसंख्या किसी भी प्रकार न्यूयार्क से अधिक नहीं है।

स्विट्ज़रलैण्ड का संघीय विधान मण्डल

स्विट्जरलैण्ड का विधानमण्डल फेडरल एसेम्बली अर्थात् संघपरिषद् के नाम से पुकारा जाता है। इसमें दो सदन हैं, एक को नेशनल कौंसिल और दूसरे को कौंसिल आँफ स्टेट्स कहते हैं।

नेशनल कौंसिल, विधान मण्डल का निचला सदन है। इसके सदस्यों को सब प्रौढ़ नागरिक अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर चुनते हैं। प्रति २२,००० नागरिकों का एक प्रतिनिधि चुना जाता है। कैन्टनों के ज़िले निर्वाचित क्षेत्र रहते हैं। सन् १९३३ के अनुसार इसका कार्यकाल ४ वर्ष निश्चित कर दिया गया है। ४ वर्ष के पूर्व इस सदन का विघटन नहीं हो सकता है क्योंकि कार्यपालिका नेशनल कौंसिल के प्रति उत्तरदायी नहीं है। चुनाव प्रति ४ वर्ष पश्चात् अक्टूबर के अन्तिम रविवार को होता है। राज्य का प्रत्येक नागरिक जिसने अपनी आयु के २१ वर्ष पूरे कर लिये हैं। मत देने का अधिकारी है और पादरियों को छोड़कर कोई भी मतधारक प्रतिनिधि चुना जा सकता है। किन्तु एक ही व्यक्ति दोनों सदनों का सदस्य एक समय नहीं रह सकता है। प्रत्येक सदस्य को आने-जाने के व्यय के साथ-साथ सदन में उपस्थित रहन के २० फ्रैन्क के हिसाब से प्रतिदिन का भत्ता मिलता है। सदन का सत्र लगातार वर्ष में चार बार मार्च, जून, सितम्बर और दिसम्बर में होता है। हर एक सत्र के लिये सदन सभापति व उपसभापति चुनता है। पूर्व सभापति या उपसभापति को लगातार दूसरे सत्र में अर्थात् दूसरे वर्ष में फिर से सभापति या उपसभापति नहीं चुना जा सकता है। एक वर्ष में जितनी बैठकें होती हैं वह सबकी एक सत्र में मिलती होती हैं। समान मत होने पर सभापति को निर्णायक मत देने का अधिकार है। अतएव साधारण प्रश्नों पर वह दो मत दे सकता है, किन्तु समितियों के सदस्यों के निर्वाचन में वह दूसरे सदस्यों के समान ही मतदान करता है।

फेडरल असेम्बली का दूसरा सदन कौंसिल ऑफ स्टेट्स है। अमरीका व आस्ट्रेलिया की सीनेट की भाँति कौंसिल आँफ स्टेट्स में कैन्टनों के प्रतिनिधि सदस्य होते

हैं। इस प्रकार २२ कैन्टनों से ४४ सदस्य चुनकर आते हैं प्रत्येक कैन्टन दो सदस्य चुनकर भेजता है। अर्ध कैन्टन एक सदस्य चुनकर भेजता है। यह एक अनोखी बात है कि संविधान में इन प्रतिनिधियों के चुनाव के बारे में कोई प्रावधान नहीं है। न इनकी योग्यता ही निर्धारित की गयी है। यह सब बातें कैन्टनों पर ही छोड़ दी गयी हैं, संविधान में यह भी नहीं कहा गया है कि पादरी लोग इसके सदस्य नहीं हो सकते हैं। संविधान में केवल यह निर्धारित कर दिया गया है कि अपने प्रतिनिधियों को वे वेतन स्वयं देंगे। फिर भी कैन्टनों में यह प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है कि वे एक ही प्रणाली का अनुसरण करें। यह बात इससे स्पष्ट हो जाती है कि अधिकतर कैन्टनों में कौंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्य सीधे प्रजा द्वारा चुने जाते हैं जब कि केवल थोड़े कैन्टनों में कैन्टन की विधान मण्डल इन प्रतिनिधियों को चुनती है। उपरोक्त प्रतिनिधियों का चुनाव अधिकतर कैन्टन ४ वर्ष के लिए करते हैं परन्तु कहीं कहीं इनका चुनाव १ वर्ष के लिए भी किया जाता है। कैन्टनों को यह पूरा अधिकार मिला हुआ है कि वह अपने प्रतिनिधियों को वापस बुला सकते हैं, और उनके स्थान पर दूसरे प्रतिनिधि भेज सकते हैं किन्तु संविधान के ९१ वे अनुच्छेद में कहा गया है कि कौंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्यों को अपना मत देने में स्वतन्त्रता प्राप्त है उन पर कैन्टनों का कोई भी दबाव नहीं डाला जा सकता है जो उपरोक्त भाव के प्रतिकूल प्रतीत होता है। कैन्टन अपने प्रतिनिधियों को वेतन, भत्ता और आने-जाने का मार्गव्यय उसी दर से देते हैं जो संघ सरकार नेशनल कौंसिल के सदस्यों को निश्चित करती है। यदि कौंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्य किन्हीं विधायिनी समितियों के सदस्य बनने पर कार्य करते हैं तो संघ सरकार उन्हें भत्ता देती है। कोई भी सदय दोनों सदनो का एक साथ सदस्य नहीं हो सकता है। कौंसिल ऑफ स्टेट्स के संविधान एवं शक्तियों से स्पष्ट होता है कि योरुप और संभवतः विश्व में कोई ऐसा दूसरा सदन नहीं है जिसकी कार्यप्रणाली में ऐसा कोई अन्तर हो।[1] स्विज़ संविधान के निर्माताओं ने यह विचार अमरीका के संविधान से ग्रहण किया परन्तु ऊपरी सदन को वह शक्तियाँ न प्राप्त हो सकीं जो अमरीकन सीनेट को हैं। यद्यपि देखने में स्विट्ज़रलैण्ड की कौंसिल ऑफ स्टेट्स बिलकुल अमरीकन सीनेट ऐसी है परन्तु जहाँ तक उनकी शक्तियों का सम्बन्ध है उनमें वे एक-दूसरे से भिन्न हैं। यद्यपि कौंसिल ऑफ स्टेट्स में सभी कैन्टनों से दो दो सदस्य चुनकर आते हैं परन्तु अमरीकन सीनेटरों की भाँति वह कैन्टनों के अधिकारों की रक्षा

---

1. Marriot, **Second Chamber**, p. 129.

नहीं करते हैं। कैन्टनों के अधिकारों का रक्षण दूसरी प्रकार से होता है। किसी भी कानून को वापस लेने के लिए ५ कैन्टनों की इच्छा ही पर्याप्त है। ८ कैन्टन किसी भी कानून को दनाने में काफी हैं। संविधान के संशोधन में कैन्टनों का मताधिक्य ही होना चाहिए। संविधान में कहा गया है कि कैन्टनों की प्रभुसत्ता उन्हीं में निहित है।

कौंसिल ऑफ स्टेट्स ने अपने कार्यों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि वास्तविकता में संघीय कार्यप्रणाली में द्वितीय सदन कितना उपयोगी होता है। यद्यपि अमरीकन सीनेट की भाँति यह अपने को अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं कर सका है। सन् १८७० के एक प्रस्ताव में कौंसिल ऑफ स्टेट्स को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया था, परन्तु नेशनल कौंसिल के सदस्यों ने इसे ६४ मतों से अमान्य कर दिया। कौंसिल ऑफ स्टेट्स छोटी संस्था होने के कारण प्रत्येक कार्य बहुत ही सोच-विचार कर करती है। जैसा कि ब्रुक्स ने कहा है कि "यह द्विगृही विधान मण्डल ने अपने कार्यों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि वह कितना उपयोगी है।"[1]

दूसरे देशों की सरकारों की भाँति जहाँ संसदीय प्रणाली प्रचलित है कौंसिल ऑफ स्टेट्स अपने को अधीन नहीं साबित किया, परन्तु उनकी समता की दशा पर न पहुँच सकी क्योंकि संघीय कौंसिलर नियम के अनुसार नेशनल असेम्बली से चुने जाते हैं। इसके अतिरिक्त कौंसिल ऑफ स्टेट्स एक छोटी संस्था है अतः यहाँ पर सभी कार्य शीघ्रतापूर्वक होते हैं।[2] साधारणतयः जब भी कभी दोनों सदनों में भेदभाव उत्पन्न हो जाता है तो वे आपस में समझौता कर लेते हैं।

कौंसिल ऑफ़ स्टेट्स निचले सदन की भाँति अपना सभापति एवं उपसभापति स्वयं चुनती है। किन्तु एक ही कैन्टन के सदस्य एक सत्र में दोनों पदों के लिए नहीं चुने जा सकते हैं। न ही एक कैन्टन के सभापति व उपसभापति दो सत्रों तक लगातार चुने जा सकते हैं।[3] प्रचलित प्रथानुसार पहले सत्र का उपसभापति दूसरे सत्र का सभापति बना दिया जाता है।

फेडरल कौंसिल सभी अवनियम योजनाओं को तैयार करता है चाहे वह याचना विधेयक रूप में हो या दूसरे प्रस्ताव के रूप में। विधानमण्डल के सदस्य या दूसरे सामान्य व्यक्ति (उस दशा में जब वे स्वयं किसी योजना का प्रस्ताव रखते हैं।)

---

1. Books, **Government of Switzerland**, p. 72.

2. A. L. Lowell, **Government and Parties in Continental Europe**, pp. 210-211.

३. अनुछेद ८२।

किसी योजना के प्रस्ताव की सूचना दे सकते हैं। और फेडरल कौंसिल तब उस प्रस्ताव का मसविदा तैयार करती है। कभी-कभी प्रस्ताव करनेवाले स्वयं ही अपना मसविदा कौंसिल के सामने भेज देते हैं। जब सत्र आरम्भ होने वाला होता है उस समय फेडरल कौंसिल उस सत्र में विचारार्थ रखनेवाले विधेयकों और प्रस्तावों की पूरी सूची कौंसिल ऑफ स्टेट्स और नेशनल कौंसिल के सभापतियों के पास भेज देती हैं। यह दोनों सदन आपस में विचार करके यह निर्णय कर लेते हैं कि कौन से प्रस्तावों पर दोनों सदनों में पहले विचार किया जाय। यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि जब एक सदन में कोई योजना स्थापित हो जाती है तो वह फेडरल असेम्बली में स्थापित हुई समझी जाती है, इसलिए एक सदन में कोई योजना यदि अस्वीकृत कर दी जाय फिर भी दूसरे सदन में वह विचाराधीन समझी जाती है। दोनों सदनों को समान अधिकार प्राप्त हैं। दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न होने पर प्रत्येक सदन एक समिति नियुक्त करता है। यह दोनों समितियाँ आपस में सलाह करती हैं और प्रायः किसी न किसी समझौते पर पहुँच जाती है। यदि दोनों का आपस में समझौता नहीं होता है तो योजना या प्रस्ताव समाप्त हो जाता है। स्विटजरलैण्ड में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जब इस प्रकार के मतभेद से कोई वैधानिक गठबन्धन खड़ा हो गया हो। दूसरे संविधानों की भाँति स्विज़ संविधान में ऐसा कोई प्राविधान नहीं है जिससे दोनों सदनों में मतभेद होने पर किसी प्रश्न का निर्णय हो सके। किन्तु स्विटज़रलैण्ड में इन मतभेदों की संख्या बहुत ही कम होती है और अधिक गम्भीर नहीं होते हैं क्योंकि अपनी रचना के कारण कौंसिल ऑफ स्टेट्स नेशनल कौंसिल से अधिक उन्नत विरोधी नहीं होती। अधिनियम निर्माण में सारी प्रजा के अन्तिम नियंत्रण का अधिकार होने से संविधान में इस कमी का कोई महत्व नहीं रह जाता है।[1]

असेम्बली को संघ अधिकार क्षेत्र के सब विषयों में व्यवस्था करने का अधिकार है। सदनों के इन अधिकारों या शक्तियों का वर्णन संक्षेप में इस प्रकार किया जा सकता है। (१) विदेशी राज्यों से व्यवहार करने में, युद्ध या संधि करने में, संघ सेना के लिए अधिनियम बनाने में, स्विटजरलैण्ड की बाहरी सुरक्षा व तटस्थता बनाये रखने के लिए सब प्रकार का प्रबंध करने में ये सदन संघ की सर्वाधिकारी सत्ता का उपभोग करते हैं। (२) कैन्टनों व संघ के बीच में संघ के अधिकारों की रक्षा करते हैं, इसके साथ साथ व यह भी ध्यान रखते हैं कि कैन्टनों के संविधानों

(1) **Modern Democracies**, Vol. I., p. 336.

की सुरक्षा-सम्बन्धी-संघ द्वारा दी हुई प्रत्याभूति के पालन हेतु के लिए आवश्यक अधिनियम भी बनते रहें और फेडरल कौंसिल के प्रार्थना किये जाने पर कैन्टनों में आपस में किये हुए या किसी कैन्टन और विदेशी राज्य के बीच किये हुए समझौते या संधि के वैध अवैध होने का निर्णय भी करते हैं। (३) वे संघ की सामान्य नियम शक्ति को कार्यान्वित भी करते हैं और इस बात का विशेष प्रयत्न करते हैं कि शासन-विधान कार्यान्वित हो और संघ के कर्तव्यों का भली प्रकार पालन हो। (४) वे संघ के आय-व्यय के लेखे को स्वीकार करते हैं और संघ की आर्थिक स्थिति पर नियंत्रण रखते हैं। (५) वे संघ के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों का प्रबन्ध करते हैं। आवश्यक शासन विधानों की रचना पर उनके अफसरों के वेतन आदि का उचित प्रबन्ध करते हैं। (६) वे संघ सरकार की व संघ न्यायपालिका की कार्यवाहियों पर दृष्टि रखते हैं। शासन-सम्बन्धी मुकदमों में फेडरल कौंसिल के निर्णयों के विरुद्ध वे शिकायतें सुन कर उन पर अपना निर्णय देते हैं। और (७) जनता की सम्मति से वे संघ-शासन-विधान में संशोधन भी करते हैं।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि फेडरल असेम्बली को विधायिनी, कार्यकारिणी व न्यायायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं और वह उसका प्रयोग भी करती हैं, क्योंकि स्विटज़रलैण्ड में मान्टेस्क्यू के शक्ति विभाजन के सिद्धान्त का अनुकरण नहीं किया गया है। यहाँ की कार्यपालिका विधानमण्डल को अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होती बल्कि असेम्बली की इच्छाओं को व्यवहार रूप में देती है। संयुक्त-राज्य-अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के समान यहाँ न्यायपालिका सर्वोच्च न्यायसत्ता नहीं है।

असेम्बली के दोनों सदन फेडरल कौंसिल का निर्वाचन करने के लिए संयुक्त अधिवेशन में सम्मिलित होते हैं। ऐसी संयुक्त बैठक में ही फेडरल कौंसिल के सभापति व उप-सभापति का चुनाव किया जाता है। फेडरल चांसलर व अन्य प्रमुख संघ-अधिकरी भी इसी संयुक्त बैठक में चुने जाते हैं। असेम्बली की कार्यवाही का उल्लेख जर्मन, फ्रैंच व इटैलियन तीनों भाषाओं में रखा जाता है। सदस्यों को किसी भी भाषा में वक्तृत्व देने का अधिकार है।

कनाडा का संघीय विधान मण्डल

कनाडा का संघीय विधान मण्डल द्विसदनीय है, जो लगभग ब्रिटिश ढंग पर आधारित है। दोनों सदनों में से एक को हाउस ऑफ कामंस (House of Commons) कह कर पुकारा जाता है और दूसरे को सीनेट (Senate)। दोनों सदनों को मिला-

कर पार्लियामेन्ट कहा जाता है। कनाडा की पार्लियामेन्ट अमरीका की कांग्रेस तथा स्विटजरलैण्ड की फेडरल असेम्बली से भिन्न है। कनाडा यद्यपि अमरीका का पड़ोसी राज्य है परन्तु उसने अमरीकन शासन पद्धति को नहीं अपनाया और न स्विटजर-लैण्ड की शासन प्रणाली का ही अनुकरण किया। कनाडा की शासन प्रणाली संघात्मक एवं संसदात्मक प्रणालियों का मिश्रण है। इसकी प्रणाली लगभग ब्रिटिश शासन प्रणाली पर आधारित है जिसको क्रमशः बाद को आट्रेलिया और भारत ने अपनाया।

हाउस ऑफ कामंस कनाडा की संघीय प्रणाली का निचला सदन है। प्रारम्भ में हाउस ऑफ कामंस के सदस्यों की संख्या १८१ रखी गयी थी परन्तु संविधान की ५१वीं धारा में यह आयोजन कर दिया गया है कि कनाडा की पार्लियामेन्ट प्रति दसवर्षीय जनगणना के पश्चात् प्रतिनिधियों की संख्या को आगे बतलाये हुए नियमों के अनुसार घटा-बढ़ा सकती है। वे नियम यह हैं कि क्विबैक के प्रतिनिधियों की संख्या ६५ में कोई परिवर्तन न होगा। दूसरे प्रान्तों में प्रतिनिधि जनसंख्या के उसी अनुपात से होंगे जो अनुपात क्विबेक की जनसंख्या और ६५ में होगा। इस घटती-बढ़ती में किसी भी प्रान्त के प्रतिनिधियों की संख्या तब तक न घटाई जायगी जब तक कि जनसंख्या ५ प्रतिशत या उससे अधिक न घटी हो। परन्तु क्विबैक के प्रतिनिधियों की संख्या किसी दशा में भी ६५ से कम न की जावेगी। इस समय सदन की संख्या २६५ है। सदन की बैठक की गणपूरक संख्या २० है। सदन अपना स्पीकर स्वयं चुनता है। सदन की अवधि ५ वर्ष है परन्तु इसके पहले ही इसका विघटन हो सकता है, यदि गवर्नर जनरल प्रधानमंत्री की इस सम्बन्ध में सलाह मान ले। सदन के निर्णय बहुमत से होते हैं। स्पीकर को अपना मत देने का तभी अधिकार है जब कि किसी प्रश्न पर सदन में अनुकल एवं विरोध में बराबर मत हों अन्यथा नहीं। सदन के प्रतिनिधियों का निर्वाचन प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर होता है। सन् १९२० के डोमिनियन एक्ट के अनुसार प्रत्येक पुरुष व स्त्री को मत देने का अधिकार है यदि वह अपने आप को ब्रिटिश जनपद का निवासी मानता हो और यदि वह कनाडा में दो वर्ष व अपने निर्वाचित क्षेत्र में दो मास से वास करता हो

सीनेट का संघटन :—सीनेट कनाडा संघ-विधान मण्डल का उच्च सदन है सीनेट के संगठन का वर्णन क्विबैक कान्फ्रेन्स के प्रस्ताव ७ और ८ में किया गया है, जिनके अनुसार सम्पूर्ण कनाडा ३ भागों में विभाजित कर दिया गया है प्रथम ऊपरी कनाडा, द्वितीय निचला कनाडा तथा तृतीय नोवास्कोटिया, जिसमें न्यूब्रंसविक एवं प्रिंस एडवर्ड द्वीप सम्मिलित हैं। सभी भागों से विधान परिषद् में बरावर सदस्य अपना प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रस्ताव ८ में कहा गया है कि विधान परिषद् में ऊपरी कनाडा २४, निचला कनाडा २४ तथा समुद्री प्रान्त भी २४ सदस्य चुनकर भेजेंगे जिनमें १० न्यूब्रंसविक, ४ प्रिंस एडवर्ड द्वीप एवं नोवास्कोटिया १० सदस्य भेजेंगे।

प्रस्ताव ९ में कहा गया है कि जब भी भविष्य में न्यूफांडलैण्ड संघ में मिला लिया जावेगा तब वह भी परिषद् में अपने ४ सदस्य भेजा करेगा।

प्रस्ताव ११ में कहा गया है विधान परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति ब्रिटिश राज्यसत्ता के आधार पर होगी जिनकी आयु ३० वर्ष से कम न होगी और कम से कम ४ हजार डालर की संपत्ति होनी चाहिए। प्रस्ताव १४ में एक विशेष प्रथम-परिषद् की नियुक्ति के बारे में कहा गया है। कानून सम्बन्धी नियमों के निर्माण में दोनों सदनों को बराबर अधिकार दिये गये हैं।

उपरोक्त प्रस्तावों को इसलिए बनाया गया था कि द्वितीय सदन में सभी प्रान्तों को बराबर का प्रतिनिधित्व मिले और वे अपने आजीवन काल तक सदस्य बने रहें। मैक्डोनल, द्वितीय सदन की विशेषताओं, आवश्यकताओं एवं सिद्धान्तों पर जोर देते हुए कान्फ्रेंस में कहा गया था कि "ऊपरी सदन में सदस्यों की समानता एवं निचले सदन की सदस्यता जनसंख्या के आधार पर आधारित होना चाहिए। कुछ लोगों का मत है कि ऊपरी सदन के सदस्यों की नियुक्ति चुनाव द्वारा होनी चाहिए तथा अन्य लोगों का मत है कि उनकी नियुक्ति राजा द्वारा होनी चाहिए परन्तु मेरा जहाँ तक अनुभव है वह यह है कि ऊपरी सदन के सदस्यों की नियुक्ति राजा द्वारा मनोनीत ढंग से होनी चाहिए, जिसमें सदस्य के लिए अधिक सम्पत्ति की योग्यता आवश्यकीय करदेनी चाहिए।"[1] समुद्री प्रान्त, विशेषतया प्रिंस एडवर्ड द्वीप से ऊपरी सदन में बराबर सदस्यों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए क्योंकि ऐसा होने से छोटे प्रान्त निचले सदन में अधिक संख्या रखने वाले प्रान्तों से अपनी रक्षा कर सकेंगे और अपनी वाणी को उनके सामने रख सकेंगे। अन्त में जो प्रस्ताव रखे गये थे वह पास कर दिये गये और सभी प्रान्तों को बराबर प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दे दिया गया। जार्ज ब्राउन ने कान्फ्रेंस में कहा था कि "हमारे निचले कनाडियन मित्रों ने अपनी जनसंख्या के आधार पर निचले सदन में अपने सदस्य भेजने के लिए तैयार हो गये हैं और ऊपरी सदन में बराबर सदस्य भेजने का अधिकार रखते हैं इस प्रकार अन्य बातों में प्रगति थी।[2]

1. **A. A. Macdonalds Notes.** p. 31.
2. **Conf. Debates** p. 88.

जहाँ तक दोनों सदनों की विधायिनी शक्तियों के सम्बन्धों का प्रश्न था उनमें उनको समान शक्तियाँ प्राप्त न थीं। अलेक्जेण्डर मैकेनज (Alexender Mackenzie) की इच्छा थी कि दूसरे सदन को केवल संशोधन करने का ही अधिकार मिलना चाहिए, जबकि अन्य लोगों की धारणा थी कि प्रजातन्त्रात्मक सरकार तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि निचले सदन पर ऊपरी सदन अपना नियंत्रण न रखे। मैक्डोनल का तो यहाँ तक कहना था कि "ऊपरी सदन जब तक निचले सदन की विधायिनी अधिकारों में संशोधन आदि नहीं कर सकता है तब तक उसका कोई उपयोग ही नहीं है अतः ऊपरी सदन पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होनी चाहिए और अपनी इच्छानुसार कार्य करने की भी उसे स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। जो भी कार्य प्रणाली निचले सदन में हो उस पर नियंत्रण रखने का अधिकार ऊपरी सदन को होना चाहिए जिससे वह निचले सदन की जल्दबाजी एवं अनियमित रूप से कार्य करने के ढंग को रोक सके।"[1] इसके अतिरिक्त सम्मेलन में यह भी कहा गया था कि सीनेट के सदस्यों की अन्य योग्यताओं के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि वह सम्पत्तिशाली हो। सीनेट के सदस्यों की निर्वाचन प्रणाली को सम्मेलन ने नहीं माना क्योंकि सर्वप्रथम निर्वाचित सीनेटर सदैव ही प्रतिनिधि-सदन के सदस्यों के समान ही अपना पद समझेंगे। जिससे संसदीय कार्यप्रणाली सरकार के कार्यों को शान्तिपूर्वक चलाने में बाधा पड़ेगी। द्वितीय, निर्वाचन प्रणाली में बहुत सा धन व्यय होगा। मैक्डोनल ने तो यहाँ तक कहा था कि "इस प्रकार के निर्वाचन में ३ और ४ हजार पौण्ड के बीच में ही व्यय होगा।"[2] सीनेट का सदस्य होने के लिए आवश्यकीय कर दिया गया था कि सीनेटर की आयु ३० वर्ष होनी चाहिए। वह या तो जन्म से ही ब्रिटिश जानपद हो या ब्रिटिश पार्लियामेन्ट या कनाडा की किसी धारा सभा के किसी कानून से जानपद बन गया हो तथा ४ हजार डालर की उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति हो तथा ४ हजार मूल्य का भूस्वामी हो।

जहाँ तक सीनेट की विधायिनी शक्तियों का सम्बन्ध है, धन विधेयक को छोड़कर अन्य कोई भी विधेयक उपस्थित किया जा सकता है, परन्तु अमरीकन सीनेट की भाँति कनाडा की सीनेट धन विधेयकों में संशोधन नहीं कर सकती है। केवल वह उन्हें निचले सदन को उस पर पुनः विचार करने के लिए भेज सकती है। निचले सदन को ही धन विधेयक को पारित करने में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है।

1. **Ibid**, 36.
2. **Ibid**, 25.

सीनेट, प्रान्तों की रक्षा करने में असमर्थ रही है। इसके कई कारण है, सर्वप्रथम सीनेट का मुख्य कार्य ही संघीय विधान मण्डल के दूसरे सदन के रूप में रहा है। वह केवल प्रतिनिधि सदन के बनाये हुए विधायकों में संशोधन कर सकती है। जब संघीय राजनीति में प्रान्तीय अधिकारों का प्रश्न हुआ उस समय संघीय शक्तियों के मामलों में शांतिमय वातावरण रहा। और न ही उनकी सीमा सम्बन्धी प्रश्न खड़ा हुआ। अतः सीनेट ने बहुत ही कम मामलों में प्रान्तीय अधिकारों के बारे में अपनी इच्छा जाहिर की। इस बात के बहुत से उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं, जहाँ पर प्रान्तीय मामलों में सीनेट ने अपनी इच्छा प्रगट नहीं की और कोई भी रुचि नहीं ली। सन् १८७४ ई० में मैकेनज (Mackenzie) सरकार द्वारा उपस्थित नागरिक सम्बन्धी अधिकार को सीनेट ने संशोधित कर दिया था। पुनः १८८२ में नोवास्कोटिया की प्रान्तीय सरकार ने रेलवे कर्मचारियों के नागरिक सम्बन्धी अधिकार का अपहरण कर लिया था और जब वह विधेयक सीनेट के सम्मुख रखा गया उस समय सीनेट ने उसमें संशोधन कर दिया। सन् १८४८ में न्यूब्रंसविक, नोवास्कोटिया तथा मेनीटोवा के न्यायालयों में, धन सम्बन्धी मत देने के अधिकार के लिये, अपील करने के लिए संशोधन कर दिया। भाषा एवं शिक्षा के आधार पर प्रान्तों के विभाजन में प्रान्तों की बातों पर सीनेट ने ध्यान न दिया, किन्तु प्रतिनिधि सदन की ही बात मान ली। सीनेट के सदस्य देश के विभिन्न राजनैतिक दलों के इशारे पर ही कार्य करते हैं और अपने दल का ही प्रतिनिधित्व करते है। कभी भी इस बात की चिन्ता नहीं करते है कि वह अमुक प्रान्त के हैं अतः उन्हें अपने प्रान्त की भलाई को दृष्टिकोण में रखते हुए कार्य करें। कभी कभी यह भी देखा गया है कि एक ही प्रांत के दो सीनेटर अपनी अपनी अलग राय रखते हैं यद्यपि प्रान्त स्वयं अपने विशेष प्रश्न पर रुचि रखता है। परन्तु सीनेटर अपने प्रान्त की भलाई को ध्यान में न रख कर राजनैतिक दल का ही ध्यान रखते है और उसी की राजनीति के आधार पर कार्य करते हैं। गवर्नर जनरल सम्राट की ओर से सीनेट के सदस्यों की नियुक्ति करता है परन्तु व्यवहार में प्रधान मंत्री की राय से ही गवर्नर जनरल सीनेट के सदस्यों को नियुक्त करता है क्योंकि वह ही बहुमत दल का नेता होता है। केवल कनाडा के न्यायालयों द्वारा ही प्रान्तों के अधिकारों की रक्षा होती है और कनाडा का हाईकोर्ट ही ऐसा न्यायालय है जो कानूनों की वास्तविकता पर ध्यान देता है चाहे वह प्रान्तीय हों अथवा संघीय।

द्वितीय सीनेट का संगठन स्वयं ही प्रान्तों के साथ समक्ष की भावना में रोड़ा अटकाता है। संविधान के निर्माताओं को यह आशा थी कि सम्राट की ओर से नियुक्त किये हुए सीनेट के सदस्य प्रान्तों के विशेषाधिकारों की रक्षा में अपना प्रतिनिधित्व

करेंगे। परन्तु व्यवहार में गवर्नर जनरल प्रधान मंत्री की सलाह से ही सीनेट के सदस्यों की नियुक्ति करता है जिसका परिणाम यह होता है कि प्रधानमंत्री अपने दल के सदस्यों की नियुक्ति के लिए ही बल देता है। उदाहरणार्थ सर विल्फ्रेड लाउरीर (Sir Wilfried Laurier) ने ८१ सीनेटरों की नियुक्ति की थी जो सभी उसके मित्र थे और उसने यह बात स्पष्ट रूप से मान भी ली थी और कहा भी था कि "मैंने सुना है कि गवर्नर जनरल क्यों नहीं विभिन्न राजनैतिक दलों से सीनेटरों की नियुक्ति करता हैं ? मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि सरकार का संगठन मनुष्यों द्वारा हुआ है और वे मानवी हैं।"[1]

तृतीय वास्तव में केवल संघीय मंत्रिमण्डल है जो प्रान्तों के आंशिक रुचियों की रक्षा करता है। क्योंकि प्रधान मंत्री जब अपना मंत्रिमण्डल बनाता है तो उसमें वह प्रयत्न करता है कि प्रत्येक प्रान्त का मंत्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व रहे। इस प्रकार मंत्रिमण्डल के सदस्य अपने प्रान्त की भलाई के लिए लड़ते हैं।

इसके अतिरिक्त सीनेट न तो सरकार की नीति को ही बदल सकती है और न ही मंत्रिमण्डल को बदल सकती है। इसलिए वह सरकार को किसी बात के लिए बल नहीं दे सकती है कि वह अमुक कार्य के लिए अमुक प्रान्त की ओर विशेष ध्यान रखे। केवल प्रतिनिधि सदन के सदस्य ही प्रान्तों का ध्यान रखते हैं, क्योंकि वह प्रान्तों की जनता द्वारा ही चुनकर आते हैं। मंत्रिमण्डल प्रतिनिधि-सदन का समर्थन पाता है इसलिए प्रान्तों के प्रतिनिधियों को प्रसन्न रखने के लिए प्रान्तों के अधिकारों का ध्यान रखता है। यह स्पष्ट रूप से मान लिया गया है कि प्रधान मंत्री जो भी नियुक्तियाँ करता है वह अपने दल, प्रान्त एवं स्थानीय रीतिरिवाजों को ध्यान में रखते हुए अपने दल के नेताओं की ही नियुक्तियाँ करता है।

आस्ट्रेलिया का संघीय विधान मण्डल

आस्ट्रेलिया के संविधान निर्माताओं ने कनाडा के संविधान के सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए आस्ट्रेलिया के संविधान की रचना की। यही कारण है कि आस्ट्रेलिया का संविधान संसदात्मक प्रणाली पर आधारित है जो सीनेट नामक उच्च सदन एवं प्रतिनिधि सदन निचले सदन द्वारा सुशोभित है।

सीनेट जो संघ का ऊपरी सदन है उसमें आरम्भ में ३६ ही सदस्य थे, प्रत्येक उपराज्य अपने ६ सदस्यों को चुनकर भेजता था, परन्तु सन् १९४८ के प्रतिनिधि

1. Less-Smith, **Second Chambers**, p. 67.

अधिनियम (Representation Act of 1948) से यह संख्या ६० कर दी गयी है और अब प्रत्येक उपराज्य अपने १० सदस्य चुनकर भेजता है। सीनेट के सदस्यों की नियुक्ति ६ वर्ष के लिए की जाती है, जिसमें से आधे प्रति ३ वर्ष बाद हट जाते हैं। इस प्रकार यह अविच्छिन्न संस्था है। सीनेट के सदस्यों के निर्वाचन के लिए प्रत्येक राज्य एक निर्वाचन क्षेत्र रहता है, परन्तु प्रत्येक नागरिक अपना केवल एक ही मत दे सकता है। कोई भी नागरिक जो प्रतिनिधि सदन के लिए निर्वाचित होने योग्य है वह सीनेट के लिए भी चुनाव लड़ सकता है। यदि किसी सीनेटर का स्थान उसके समय के पूर्व ही रिक्त हो जाता है तो राज्य सम्बन्धी संसद के दोनों सदन संयुक्त बैठक में अन्य पुरुष को चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार चुना हुआ सीनेटर केवल उसी समय तक कार्य करेगा जितना समय पहले सीनेटर का शेष रह गया हो। परन्तु जब राजकीय संसद का सत्र न हो रहा हो तो उस समय राज्य का गवर्नर राज्य की कार्यपालिका की सलाह से सीनेटर की नियुक्ति करता है। इस प्रकार से नियुक्त किया हुआ सीनेटर राजकीय संसद के अग्रिम सत्र के प्रारम्भ होने के १४ दिन पश्चात् तक ही कार्य करेगा या जब तक नये सीनेटर का चुनाव न हो जाय। सीनेट अपना सभापति स्वयं चुनती है। सब प्रश्न बहुमत से निर्णय किये जाते हैं। प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार है। सभापति भी केवल एक मत दे सकता है। परन्तु जब पक्ष व विपक्ष के मत बराबर होते हैं तो प्रस्ताव अस्वीकृत समझा जाता है। सीनेट की गणपूर्ति उनकी तिहाई संख्या है।

क्या सीनेट से जो आशायें की जाती थी उन्हें पूरा किया ? इसका उत्तर है नहीं। क्विक तथा गैरन (Quick and Garran) ने सीनेट की स्थापना का लक्ष्य बताते हुए कहा है कि "संसार के जितने भी संविधान संघात्मक हैं उनमें बिना किसी प्रश्न के सीनेट अपना एक विशेष महत्व रखती है। सीनेट देश के सभी राजनैतिक दलों को मिलाकर एक सार्वजनिक सरकार की स्थापना करती है ....यह वह सदन है जिसमें प्रान्त अपना अलग अस्तित्व रखते हैं और कामनवेल्थ के भागों को मिलाता है। इस प्रकार सीनेट में विभिन्न प्रान्तों एवं दलों का प्रतिनिधित्व रहता है। सीनेटर संवैधानिक अधिकारों की रक्षा करते हैं।"[1] परन्तु सीनेट ने अपने को राज्य-अधिकारों का रक्षक न सिद्ध कर सका। इसके कई कारण है। सर्वप्रथम राज्यों के पास ही अवशिष्ट शक्तियाँ हैं जिससे केन्द्र के पास सभी शक्तियाँ नहीं रह सकी।

---

1. **Annotated Constitution of the Australian Common—wealth**. p. 414.

द्वितीय प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली के आधार पर सीनेटरों का चुनाव होता है जिससे चुनाव के समय किसी विशेष प्रान्त का कोई विशेष महत्व नहीं रहता है। सभी चुनाव राजनैतिक दलों के आधार पर होते हैं और कोई भी दल प्रान्त के किसी भी कार्य के लिए अपना कार्यक्रम नहीं बनाता है। सीनेटर भी अपने दल का ही ध्यान रखते हैं। प्रान्तों का नहीं। जब कभी सीनेट तथा प्रतिनिधि सदन में एक ही दल शक्ति में होता है तो जो भी प्रस्ताव प्रतिनिधि सदन पारित करता है उसे ज्यों का त्यों सीनेट मान लेता है। परन्तु जब सीनेट में किसी एक दल का बहुमत होता है और प्रतिनिधि-सदन में नहीं तो दोनों सदनों में वास्तविक झगड़ा पैदा होता है। पर इतना होते हुए भी वह केवल राजनैतिक दलों तक ही सीमित रह जाता है प्रान्तों में नहीं।

आस्ट्रेलिया के लेबर दल की बढ़ती हुई शक्ति ने भी अपने को अन्य राजनैतिक दलों से अधिक संगठित कर लिया है। अतः लेबर दल की अधिकता से सीनेट में क्या परिवर्तन होंगे कहा नहीं जा सकता। लेबर दल की इच्छा है कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति बढ़े। अतः प्रान्तों का महत्व धीरे-धीरे क्षीण होता जा रहा है।

धीरे-धीरे कार्यकारिणी शक्ति में भी सीनेट के स्थान की आवश्यकता में कमी होती जा रही है जिससे वह न तो सरकार की ओर ही ध्यान देती है और न ही जनता की ओर। जहाँ पर संघात्मक एवं संसदात्मक प्रणालियों का मिश्रण होता है वहाँ पर निचला सदन सदैव ही उच्च सदन पर आश्रित रहता है। चाहे उनकी शक्ति का प्रश्न हो अथवा प्रभाव का। लीज स्मिथ (Lees Smith) ने ठीक ही कहा है कि "आस्ट्रेलिया की सीनेट न तो अपने विशेष कर्तव्यों की ही पूर्ति की और न ही दूसरे सदन के प्रस्ताओं को।"[1] यदि दोनों सदनों में मतभेद हो जाय तो सीनेट का विघटन हो सकता है इसके अतिरिक्त लोकमत संग्रह (Referendum) द्वारा जनता भी किसी सदन का विघटन कर सकती है। जैसा ब्राइस (Bryce) ने कहा है कि "सीनेट से जो आशा की जाती थी वह पूरी नहीं हुई। उपराज्यों के हितों की रक्षा नहीं की है क्योंकि उन हितों पर कोई प्रश्न ही नहीं उठा केवल न्यूसाउथ वेल्स और विक्टोरिया के झगड़े को छोड़कर। न यह ज्ञानी पुरुषों का सदन ही रहा क्योंकि कुशल राजनीतिज्ञ प्रतिनिधि सदन में चले जाते हैं जहाँ संघर्ष के पश्चात मंत्रिपद मिलता है। वैदेशिक नीति या उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति पर नियंत्रण जैसा कोई विशेष कर्तव्य न होने के कारण जिससे अमरीकन सीनेट को कुछ शक्ति प्राप्त

---

1. **Second Chamber in Theory & Practice.**, p. 111.

है, आस्ट्रेलिया की सीनेट प्रतिनिधि-सदन की एक निम्न श्रेणी की प्रतिलिपि भर ही है।"[1]

प्रतिनिधि सदन में सन् १९४८ के प्रतिनिधि कानून के अनुसार इस समय १२४ सदस्य हैं जो उपराज्यों में जनसंख्या के आधार पर वितरित हैं। इस सदन का कार्य-काल ३ वर्ष है परन्तु इसके पहले भी यह विघटित किया जा सकता है। सदन का विघटन गवर्नर जनरल मंत्रिमण्डल की सलाह से करता है सभी प्रौढ़ नागरिक चाहे वह स्त्री हों अथवा पुरुष, मतधारक हैं। प्रत्येक नागरिक जो मतदान कर सकता है वह प्रतिनिधि सदन के निर्वाचन के लिए खड़ा हो सकता है। उसके लिए यह भी आवश्यक है कि वह कम से कम कामनवेल्थ का ३ वर्ष निवासी रह चुका हो और ब्रिटिश नागरिक हो। प्रतिनिधि सदन स्वयं अपना सभापति चुनती है। सभापति को साधारणतया मत देने का अधिकार नहीं होता है। सभा के सब निर्णय बहुमत से होते हैं और अपनी कार्य पद्धति के नियम सभा स्वयं बनाती है। कोई भी सदस्य दोनों सदनों का एक साथ सदस्य नहीं हो सकता है।

विधान मण्डल की शक्तियाँ : दोनों सदनों को समान शक्तियाँ प्राप्त हैं पर कर लगाने वाले व आगम से सम्बन्ध रखने वाले अर्थात् मुद्रा विधेयक निचले सदन में आरम्भ होते हैं। कर लगाने वाले विधेयकों में सीनेट संशोधन नहीं कर सकती तथा राजकोष से साधारण वार्षिक सेवाओं के लिए धन का प्रयोग कराने वाले विधेयकों में भी सीनेट संशोधन नहीं कर सकती। सीनेट किसी भी विधेयक में ऐसा संशोधन नहीं कर सकती जो जनता पर प्रस्ताविक आर्थिक भार को बढ़ा दे। "राजकीय जीवन में निचला सदन ही शक्ति केन्द्र है पर इसकी शक्ति उस समय से घट गयी जब श्रमिकों के गुप्त पक्ष की स्थापना हुई क्योंकि इस गुप्त पक्ष में सीनेट के श्रमिक-सदस्य व निचले सदन के श्रमिक सदस्य मिलकर नीति का निर्णय पहले ही कर लेते हैं और प्रतिनिधि-सदन की कार्यवाही व्यर्थ-सी रहती है।"[2] यह गुप्त पक्ष ही शक्ति का केन्द्र बन गया है। संविधान की ५७वीं धारा में दोनों सदनों के मतभेद होने पर कहा गया है कि यदि निचला सदन किसी विधेयक को पास कर दे और सीनेट उसे पास न करे, रद्द कर दे या ऐसे संशोधनों से पास करे ज ोनि चले सदन को स्वीकार न हो और यदि वह सदन तीन महीने बाद उसी सत्र में या दूसरे सत्र में उसी विधेयक को सीनेट के द्वारा किये हुए या सुझाये हुए संशोधनों सहित या उनके बिना पुनः पास कर दे और सीनेट उसे रद्द कर दे या पास न करे या ऐसे संशोधनों से पास करे जो

1. **Modern Democracies,** Vol. II. p. 204.
2. **Modern Democracies,** Vol. II. p. 206.

निचले सदन को पसंद न हो, तो गवर्नर जनरल सीनेट और प्रतिनिधि-सदन दोनों का एक साथ विघटन कर दे। पर ऐसा विघटन निचले सदन की अवधि साधारण समाप्ति छः माह पूर्व वाले समय में नहीं हो सकता।

यदि ऐसे विघटन और नये निर्वाचन के पश्चात् निचला सदन उस प्रस्तावित विधेयक को सीनेट से सुझाये हुए या सीनेट द्वारा स्वीकार या समावेश किये हुए संशोधनों के साथ या बिना उसके पास कर दे और सीनेट उसे पास न करे या रद्द कर दे या ऐसे संशोधनों से पास करे जो निचले सदन को स्वीकार न हो, गवर्नर जनरल दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में सदस्य मिलकर विचार करेंगे और मिलकर ही मत देंगे। चाहें तो एक सदन के द्वारा वे स्वीकार किये हुए और दूसरे से अस्वीकार हुए संशोधनों पर विचार करें या न करें। सीनेट व प्रतिनिधि सदन की कुल संख्या बहुमत (Absolute Majority) से जो संशोधन स्वीकृत हो जावेंगे वे ही पास समझे जायेंगे। इससे यह स्पष्ट है कि आस्ट्रेलिया की सीनेट को अमरीका या कनाडा की सीनेट से अधिक शक्तियाँ मिली हुई हैं। सीनेट के सदस्यों को योग्यता व उनके निर्वाचन की प्रजातन्त्रात्मक विशेषता देखते हुए यही आशा की जाती थी। जब दोनों सदन किसी कानून को पास कर देते हैं तो लागू होने के पूर्व उसे गवर्नर जनरल की सम्मति प्राप्त होनी चाहिए।

भारतीय संघ का विधान मण्डल

भारतीय संविधान द्विसदनीय विधान मण्डल द्वारा शोभित है। वह है राज्य सभा और लोकसभा। लोकसभा सदन का निचला सदन है। लोकसभा में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गये अधिक से अधिक ५०० सदस्य हो सकते हैं। इन सदस्यों का निर्वाचन राज्य प्रत्यक्ष मतदान द्वारा निर्वाचित करते हैं। निर्वाचन के लिए पूरे राज्य विभिन्न कई भागों में बाँट दिये जाते हैं। प्रत्येक सदस्य ५ से ७॥ लाख तक निर्वाचकों का प्रतिनिधित्व करता है।[1] लोकसभा का कार्यकाल ५ वर्ष का है। यह ५ वर्ष निर्वाचित लोकसभा के प्रथम सत्र के आरम्भ होने की तिथि से गिने जाते हैं। जिस दिनांक को ५ वर्ष पूरे हो जाते हैं उसी दिन लोकसभा स्वयमेव विघटित हो जाती है। परन्तु यदि राष्ट्रपति चाहे तो लोकसभा को और भी शीघ्र विघटित कर सकता है। आपात काल की घोषणा के काल में संसद की विधि द्वारा लोकसभा की अवधि एक बार में एक-एक वर्ष करके चाहे जितनी बार बढ़ाई जा सकती है, परन्तु

1. **The Constitution of India,** Art. 81.

आपात उद्घोषणा की समाप्ति के ६ मास के अन्दर वह अवश्य विघटित हो जाना चाहिए।[1] लोकसभा का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है और कोई भी मतदाता जिसकी आयु २५ वर्ष हो चुकी है लोकसभा के निर्वाचन के लिए उम्मीदवार हो सकता है।

राज्य सभा संसद का उच्च या द्वितीय सदन है। भारतीय संविधान में राज्य-सभा की सदस्यता के लिए समानता के सिद्धान्त को नहीं अपनाया गया है जैसा कि अन्य संघात्मक शासन-विधानों में पाया जाता है।

संविधान में कहा गया है कि

(१) राज्य-सभा—

(क) राष्ट्रपति द्वारा खण्ड (३) के उपबन्धों के अनुसार नाम निर्देशित किये जाने वाले १२ सदस्यों से, तथा

(ख) राज्यों के दो सौ अड़तीस से अनाधिक प्रतिनिधियों से मिलकर बनेगी।

(२) राज्य-सभा में राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा भरे जाने वाले स्थानों का बँटवारा चतुर्थ अनुसूची में अन्तर्विष्ट तद्विषयक उपबन्धों के अनुसार होगा।

(३) खण्ड १ के उपखण्ड (क) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा नाम निर्देशित किए जाने वाले सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्हें निम्न प्रकार के विषयों के बारे में विशेष ज्ञान अनुभव है अर्थात् समाहित्य, विज्ञान, कला और साजिक सेवा। २० मार्च सन् १९६० के चुनाव में आन्ध्र प्रदेश ने १८ सदस्य, आसाम ७, बिहार २२, बम्बई २७, केरल ९, मध्यप्रदेश १६, मद्रास १७, मैसूर १२, उड़ीसा १०, पंजाब ११, राजस्थान १०, उत्तर प्रदेश ३४, पश्चिमी बंगाल १६ जम्मू और कश्मीर ४, दिल्ली, हिमांचल प्रदेश २, मैनिपुर १, त्रिपुरा[1]।

राज्य-सभा स्थायी सदन है उसका विघटन नहीं हो सकता। इस सदन के सदस्यों का चुनाव ६ वर्ष के लिए किया जाता है। तथापि इसके एक तिहायी सदस्य प्रति दूसरे वर्ष अवकाश ग्रहण कर लेते हैं।[2] भारत का उपराष्ट्रपति इस सदन का पदेन सभापति होता है।

राज्य-सभा के सदस्य के लिए आवश्यक है कि वह भारत का नागरिक हो और कम से कम ३० वर्ष की आयु रखता हो।

---

1. **Ibid**, Art. I. 83 (2).
2. **Ibid**, Article 83.

भारतीय संसद की शक्तियाँ

जहाँ तक दोनों सदनों की शक्तियों का प्रश्न है यह निश्चित है कि राज्य सभा को लोकसभा से अधिक अधिकार प्राप्त हैं। कोई भी विधेयक केवल धन विधेयक को छोड़कर किसी भी सदन में उपस्थित किया जा सकता है।[1] परन्तु धन विधेयक केवल लोकसभा में ही उपस्थित किये जा सकते हैं। धारा १०८ तथा १०९ के अनुसार कोई भी विधेयक बिना दोनों सदनों के पारित किये हुए कानून का रूप नहीं धारण कर सकता है।[2] संयुक्त बैठक के लिए भारतीय संविधान के धारा १०८ में कहा गया है कि धन विधेयकों को छोड़कर यदि किसी भी विधेयक पर दोनों सदनों का मतभेद है तो राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है।

लेकिन धन विधेयक केवल लोकसभा में ही उपस्थित किये जा सकते हैं।[3] जब कोई भी धन विधेयक लोकसभा में पास हो जाता है तो वह राज्य-सभा के पास भेज दिया जाता है जिससे कि वह उस विधेयक के सम्बन्ध में अपना मत प्रगट कर सके। यह कार्य राज्य-सभा को १४ दिन के भीतर कर डालना पड़ता है। यदि राज्य-सभा ऐसा नहीं करती तो लोक सभा द्वारा पारित विधेयक ही कानून बन जाता है। यदि धन विधेयक के सम्बन्ध में राज्य सभा लोकसभा से कुछ सिफारिशें करता है तो लोकसभा उन सिफारिशों को स्वीकार करने या न करने के मामले में पूर्ण स्वतन्त्र है। वह चाहे माने या न माने।

राज्यसभा एवं लोकसभा को संवैधानिक संशोधनों में समान अधिकार प्राप्त हैं। संविधान में संशोधन तभी किया जा सकता है जब संशोधन विधेयक प्रत्येक सदन की सदस्य-संख्या के बहुमत और उपस्थित तथा मतदान में भाग लेनेवाले सदस्यों. के दो तिहायी बहुमत से पारित हो जाय। इस प्रकार संशोधन विधेयक पास होने के बाद हस्ताक्षर करने के लिए राष्ट्रपति के सम्मुख रखा जाता है।

प्रतिबन्ध यह है कि यदि संवैधानिक संशोधन धारा ५४, ५५, ७३, १६२ या २४१ या भाग ५ के अध्याय ४, भाग ६ के अध्याय ५, भाग ९ के अध्याय १ या अनुसूची ७ की किसी भी सूची या राज्यों का संसद में प्रतिनिधित्व के बारे में होता है तो उसके लिए आवश्यक है कि वह राज्यों के कम से कम आधे राज्यों द्वारा मान्य होना चाहिए।

इस प्रकार से राज्य-सभा को लोकसभा के बराबर ही अधिकार प्राप्त है। विशे-

1. **Ibid,** Art. 107.
2. **Ibid,** Article 107 (2)
3. **Ibid,** Article 109.

घतया संविवान के संशोधन में। संविधान का संशोधन तब तक मान्य न होगा जब कि राज्य अथवा उनके प्रतिनिधि उसे न मान लें। इससे स्पष्ट हो जाता है कि राज्य-सभा राज्यों का भंडार है। और इस प्रकार भारतीय संविवान वास्तविक रूप में संघात्मक शासन विधान है।

राज्य-सभा को एक विशेष अविकार प्राप्त है जो लोकसभा को नहीं है वह है कि यदि राज्य-सभा अपने दो तिहायी मतों से संकल्प द्वारा यह पारित कर दे कि अमुक कानून जो राज्यों की सूची में आता है और राष्ट्र के हित में है संसद उसे पारित करे उस समय संसद के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सम्पूर्ण भारत के लिए अथवा उसके कुछ भाग के लिए कानून बनावे।

राज्य सभा के दो तिहायी मत ही इस बात के द्योतक हैं कि राज्य अमुक कानून के निर्माण में इच्छुक हैं। इस प्रकार राज्य-सभा राज्यों के अविकारों का संरक्षक हैं। उसके सदस्य जिस राज्य से चुनकर आते हैं वे अपने राज्य के अविकारों की रक्षा करते हैं।

अध्याय ९

संघीय संस्थायें—न्यायपालिकायें

अमरीकी संविधान की संसार के राजनैतिक क्षेत्र में अनेक नवीन देन है, परन्तु उसकी सबसे प्रमुख देन है उसकी संघीय न्यायपालिका की स्थापना जो सम्पूर्ण रूप से स्वतन्त्र एवं शक्तिशाली होने के अतिरिक्त संविधान में अपना एक विशेष महत्व रखती है और आधुनिक संघ प्रणाली के उत्थान में पथ प्रदर्शक के रूप में है।

अमरीकी संघ की न्यायपालिका

चार्ल्स वेरेन (Charles Warren) ने ठीक ही कहा है कि "संयुक्त राज्य अमरीका का इतिहास कांग्रेस के सदनों, कार्यकारिणी के कार्यालयों एवं युद्धक्षेत्र में नहीं लिखा गया है बल्कि अधिकतर सुप्रीमकोर्ट के महलों में।" अमरीकन संविधान के निर्माताओं ने यह पहले ही सोच रखा था और हमिल्टन ने फेडरलिस्ट में स्पष्ट रूप से कहा है कि "यदि कोई राजनीति स्वत: सिद्ध सत्य है, तो उनमें एक यह है कि राज्य की न्यायिक शक्ति उसकी विधायिनी शक्ति के समक्षेत्र को (Co-extensive) होनी चाहिए...सभी राज्यों को एक ऐसे न्यायालय की स्थापना आवश्यकता हुई जो अन्य न्यायालयों के ऊपर शक्तिवान हो, जो सामान्य निरीक्षण करे और जिसे असैनिक न्यायविधि में एकरूपता का अधिनियम निश्चित करने का अधिकार हो।"

प्रो० मुनरो का कहना है कि "संघीय शासन प्रणाली की सफलता के लिए शक्तिशाली न्यायपालिका का होना अति ही आवश्यकीय है। जो, राज्यों एवं उसके निवासियों के झगड़ों का निपटारा कर सके। संघ शासन में यह आवश्यकीय है कि राष्ट्र और राज्य के बीच शक्तियों का अलग-अलग बटवारा हो और उनके बीच उठने वाले झगड़ों का निपटारा करने के लिए शक्तिशाली न्यायपालिका का होना अति ही आवश्यक है।"[1]

फिलाडेल्फिया कन्वेन्शन ने शक्ति विभाजन के सिद्धान्त के आधार पर एवं राष्ट्रीय न्यायपालिका की आवश्यकताओं को दृष्टिकोण में रखते हुए संघीय न्यायपालिका

---

1. **The Government of the United States**, p. 507.

की स्थापना की। कन्वेशन के सामने राष्ट्रीय न्यायपालिका की स्थापना के लिए बहुत सी बातें रखी गयीं और बाद को कन्वेन्शन ने राष्ट्रीय न्यायपालिका की स्थापना के लिए अपनी राय दे दी जो संविधान के अनुच्छेद २, धारा ६ में रखा गया।

तत्पश्चात् कन्वेन्शन ने धारा ३ के अनुच्छेद २ और तीन में संघीय न्यायिपालिका के अधिकार क्षेत्र का प्रालेख्य किया, परन्तु इसमें सुप्रीमकोर्ट के संगठन तथा नम्न श्रेणी के न्यायालयों तथा उनके अधिकारों, तथा संगठन पर विचार नहीं किया गया। संघीय न्यायालय की कार्यप्रणाली आदि प्रश्नों को प्रथम कांग्रेस के विधानमण्डल द्वारा निश्चित किया गया।

प्रथम कांग्रेस में सबसे महत्वपूर्ण कार्य न्यायपालिका सम्ब धी नियमों को पारित किया गया। ७ अप्रैल सन् १७८९ को सीनेट ने हेनरी रिचर्ड की अध्यक्षता में एक कमेटी की नियुक्ति की जिससे कहा गया कि वह न्यायायिक विधेयक पर अपना विचार प्रकट करे। १२ जून सन् १७८९ को ली द्वारा इस विधेयक पर आख्या दी गयी और उस पर २२ जून एवं ७ जुलाई को द्वितीय एवं तृतीय वाचन हुआ। ८, ९, १० और ११ जुलाई को उस पर मतदान हुआ और १७ जुलाई को सीनेट द्वारा पास कर दिया गया। ली ने इसके विरुद्ध अपना मत दिया। उसके पश्चात् सदन में भेज दिया गया जहाँ पर २० जुलाई से १७ सितम्बर तक बहस हुई और कुछ संशोधनों के साथ विधेयक पास कर दिया गया। तत्पश्चात् विधेयक प्रतिनिधि सदन में भेज दिया गया जहाँ पर सीनेट द्वारा संशोधित विधेयक को मान लिया गया और इस प्रकार २१ सितम्बर को उक्त विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया गया। २४ सितम्बर सन् १७८९ को राष्ट्रपति ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। इस विधेयक में एक सर्वोच्च न्यायालय तथा १ मुख्य न्यायाधीश एवं ५ अन्य न्यायाधीश के लिए कहा गया। १३ जिला न्यायालय (District Courts) और ३ सर्किट कोर्ट का भी प्रयोजन किया गया। परन्तु जैसे जैसे संयुक्त राज्य के उपराज्यों की संख्या और संघ का क्षेत्रफल बढ़ता गया भ्रमणशील (Circuit Courts) और जिला न्यायालयों की संख्या भी बढ़ती गई। इस प्रकार संघीय न्यायपालिका में अब एक सर्वोच्च न्यायालय, १० भ्रमणशील न्यायालय और ९० जिला न्यायालय हैं। समस्त राज्य का क्षेत्रफल १० भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग के लिए १ भ्रमणशील न्यायालय है, और प्रत्येक भ्रमणशील न्यायालय का क्षेत्रफल बाँट कर प्रत्येक उपभाग के लिए एक जिला न्यायालय है। संघ न्यायपालिका का सम्बन्ध उपराज्यों की न्यायपालिकाओं से केवल इतना ही है कि कानूनी एवं संवैधानिक मामलों में उपराज्य की न्यायपालिका की निर्णय के विरुद्ध संघ न्यायपालिका में अपील की जा सकती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक उपराज्य की न्यायपालिका

पृथक् है जो संघ न्यायपालिका से स्वतन्त्र है।

किसी भी राज्य की न्यायपालिका की रचना में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह होती है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति किस प्रकार हो, कितनी अवधि के लिए और उनका वेतन आदि क्या हो ? क्योंकि जब तक न्यायपालिका में स्वतन्त्र, निडर, पक्ष-पात होने की भावना न रहेगी, नागरिकों को न तो न्याय ही प्राप्त होगा और न ही न्यायपालिका में उनका विश्वास ही होगा, फिर एक संघीय संविधान में तो न्याय-पालिका के स्वतन्त्र और निष्पक्ष तथा निडर होने की और भी अधिक आवश्यकता इसलिए है कि उसे (१) केन्द्र और उपराज्यों के बीच, उपराज्यों के पारस्परिक झगड़ों, (२) तथा संविधान के किसी भी अनुच्छेद, खण्ड अथवा भाग के अर्थ के विषय में उठे झगड़ों और विवादों को तय करना पड़ता है। संघ निर्माण के पूर्व (१७८७) अमरीकी राज्यों में जो न्यायालय थे उनके न्यायाधीशों की नियुक्ति वहाँ के विधान-मण्डल करते थे। परन्तु फिलाडेल्फिया सम्मेलन में एक यह भी प्रस्ताव रखा गया था कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति कांग्रेस करे। वर्जिनिया के प्रति-निधियों द्वारा प्रस्तुत योजना में भी यही कहा गया था कि न्यायाधीशों की नियुक्ति विधानमण्डल करे। एक दूसरी योजना पटर्सन ने प्रस्तुत की जिसमें कहा गया था कि न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ कार्यपालिका करे। इन दोनों प्रस्तावों पर काफी वाद-विवाद हुआ जिसमें जेम्स विलसन ने कहा "विधानमण्डल द्वारा नियुक्ति इसलिए अनुचित है कि बहुसंख्या के कारण दाँवपेंच, पक्षपात आदि की आशंका होती है।" मेडीसनने कहा कि "इस प्रकार नियुक्त न्यायाधीश न तो निष्पक्ष और स्वतन्त्र होते हैं और न तो योग्यतम व्यक्ति ही इस प्रकार नियुक्त होते हैं।" अन्त में मेसाचुसेट्स में प्रचलित प्रणाली को अधिक मान्य समझा गया जहाँ न्यायाधीशों की नियुक्ति सीनेट की सम्मति से गवर्नर करता था। अतएव संविधान सम्मेलन में संविधान के तीसरे अनुच्छेद में स्पष्ट कर दिया गया कि सर्वोच्च तथा अन्य आधीन न्यायालयों के न्याया-धीश जब तक सदाचारी रहेंगे अपने पद पर काम करते रहेंगे और उन्हें अपनी सेवा के लिए जो पारिश्रमिक मिलेगा वह उनके पदासीन रहते हुए घटाया नहीं जावेगा।[1] इससे न्यायाधीश स्वतन्त्रतापूर्वक तथा निष्पक्ष होकर कार्य करते हैं। संविधान के अनुच्छेद २ खण्ड २ पैरा २ में राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति सीनेट की अनुमति से करने का अधिकार दे दिया गया है।[2] अतएव सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति सीनेट की अनुमति से करता है।

१. धारा ३ का खण्ड १ अमरीकन संविधान।

२. धारा ३ का खण्ड २ का पैरा २।

इस नियुक्ति में राष्ट्रपति दलबन्दी की नीति का अधिक अनुकरण नहीं करता है। न्यायाधीशों की "नियुक्ति में राजनीति का बहुत थोड़ा पुट रहता है। अपने पक्ष का ध्यान न रखते हुए राष्ट्रपति रिक्त स्थान की पूर्ति करने के लिए सबसे योग्य व्यक्ति को ही नियुक्त करता है।"[1] सर्वोच्च न्यायालय के आधीन संघ के भ्रमणशील न्यायालयों व जिला न्यायालयों के न्यायाधीशों को राष्ट्रपति महान्यायवादी की सिफारिश पर नियुक्त करता है। न्यायवादी महाप्रभाकर्त्ता स्वयं सम्बन्वित उपराज्यों के सीनेटरों से सलाह लेता है। इससे स्पष्ट है कि संघ न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति में यह ध्यान रखा जाता है कि वे विधि-निर्बन्ध के सम्बन्ध में अनुपम योग्यता रखते हों। अतएव इन परिस्थितियों में संयुक्त-राज्य का सर्वोच्च न्यायालय, राष्ट्रपति, कांग्रेस और उपराज्यों के कार्यों को वैध-अवैध ठहराने की अपनी शक्ति के कारण तथा उस स्थायित्व के कारण जिसके होने से उसके बदलते हुए लोकमत का मुँह नहीं देखना पड़ता, संयुक्त-राज्य की शासन प्रणाली की बहुत सी बातों में एक बहुत प्रभावशाली हेतु बना हुआ है और दुनिया का सबसे बड़ा न्याय संगठन है।

जब किसी न्यायाधीश का पद रिक्त होता है तो राष्ट्रपति सोच विचार कर ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति सीनेट की अनुमति के लिए प्रस्तुत करता है जो राष्ट्रपति की दृष्टि में बहुत योग्य हों। सीनेट की अनुमति केवल नाममात्र की प्रथा नहीं है। सीनेट के सदस्यों ने कई बार राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत व्यक्तियों की नियुक्ति को अस्वीकृत किया है। उदाहरणार्थ अलैक्ज़न्डर बालकौट (Alexander Wolcott) की नियुक्ति का प्रस्ताव राष्ट्रपति ने ४ फरवरी १८११ को किया परन्तु सीनेट ने १८ फरवरी को उसे अस्वीकार कर दिया। जान जोर्डन (John Jordan) की नियुक्ति का प्रस्ताव १८ दिसम्बर १८२८ को किया गया परन्तु सीनेट ने १२ फरवरी १८२९ को उसे स्थगित कर दिया। इसी प्रकार एक बार रोजर टेनी (Roger Teney) की नियुक्ति स्थगित कर दी गयी थी। ९ जनवरी १८४४ को जॉन कौफील्ड स्पेन्सर (John Caufield Spencer) को राष्ट्रपति ने न्यायाधीश के पद के लिए नियुक्त किया परन्तु सीनेट ने उसे ३१ जनवरी को अस्वीकृत कर दिया। इसी प्रकार २३ दिसम्बर १८४५ को जार्ज वाशिंगटन वुडवर्ड को राष्ट्रपति द्वारा न्यायाधीश नियुक्त किया गया परन्तु सीनेट ने २२ जनवरी सन् १८४६ को अस्वीकृत कर दिया। सारांश यह है कि सीनेट ने अपने स्वीकृति देने के अधिकार का उपभोग स्वतन्त्र रूप से ही किया है। अस्वीकृति की आशंका उस परिस्थिति में अधिक होती है जब सीनेट में राष्ट्रपति के राजनीतिक दल के सदस्यों की संख्या विरोधी दल के सदस्यों से कम होती है।

1. **The American Constitution**, p. 295.

न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति के लिए संविधान में कोई भी अर्हतायें नहीं रखी गयी हैं। राष्ट्रपति जिस व्यक्ति को चाहे नियुक्त करे। परन्तु अनुभव से यह सिद्ध हो गया है कि राष्ट्रपति सदैव ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति सीनेट में प्रस्तुत करता है जो अपने कार्य में अत्यन्त कुशल हो, जिसे कानून का पूरा पूरा ज्ञान हो और जो इस महत्व-पूर्ण उत्तरदायी पद के लिए, जहाँ विधि का वैध और अवैध होने का अन्तिम निर्णय होता है। और संविधान का निर्वचन (Interpretation) होता है, सभी भाँति योग्य हो और जिसकी योग्यता जनता में सर्वमान्य हो चुकी हो। अधिकतर राष्ट्रपति के प्रस्तुत नाम सीनेट स्वीकार कर लेती है और जनता भी इन नियुक्तियों को ही श्रेष्ठ समझती है।

संविधान में कहा गया है कि न्यायाधीश अपने पद पर तब तक आसीन रहेंगे जब तक वे सदाचारी रहें। अर्थात् यदि कोई न्यायाधीश जीवन भर पद पर आसन्न रहना चाहता है तो रह सकता है। परन्तु कोई भी न्यायाधीश ७० वर्ष की आयु में यदि उसने कम से कम १० वर्ष तक पद पर कार्य किया है, पूरा निवृत्ति वेतन लेकर पद त्याग कर सकता है। न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति के लिए कोई न्यूनतम आयु निश्चित नहीं है। सब से कम आयु में (३२ वर्ष की आयु में) जोसेफ स्टोरी की नियुक्ति हुई थी जो १८११ से १८४५ तक पदासीन रहे। न्यायाधीशों का पारिश्रमिक कांग्रेस अपने अधिनियम द्वारा नियत करती है, जो किसी न्यायाधीश के पद-काल में घटाया तो नहीं जा सकता, बढ़ाया जा सकता है। इन सभी कारणों से न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता ही सुरक्षित नहीं है वरन् सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में जनता का पूर्ण विश्वास भी है।

न्यायालय के न्यायाधीश अयोग्यता अथवा ऐसे किसी आरोप के कारण पद से हटाये नहीं जा सकते। किन्तु संविधान के अनुच्छेद २ के चौथे खण्ड में वर्णित "देशद्रोह, घूसखोरी या अन्य भारी अपराध व अदाचार के लिए पदच्युत किया जावेगा। ऐसे आरोप लगाने के प्रस्ताव पर प्रतिनिधि सदन विचार कर महानियोग (Impeachment) की स्वीकृत देगा तो सीनेट न्यायालय के रूप में बैठकर उसकी सुनवाई करेगी और यदि दो तिहाई मत से अभियुक्त को दोषी ठहरावेगी तो वह दंड के रूप में केवल पद से हटा दिया जावेगा। ऐसा केवल एक ही अवसर आया जब सन् १८०४ में न्यायाधीश सेमुअल चेज (Samuel Chase) पर यह आरोप लगाया गया था कि बाल्टीमोर में ग्रान्डजूरी को आदेश देते समय उसने पक्षपात किया और कुछ वर्णित अभियोगों में उसने सुनवायी के समय अत्याचार बरता, परन्तु आरोपों का समर्थन सीनेट के दो तिहाई मताधिक्य से न हो सका। बाद को वह मुक्त हो गया और जीवनान्त

तक पद पर रहा।

संघ-न्यायपालिका का अधिकार क्षेत्र

हमिल्टन ने अपने लेख (फेडेरेलिस्ट सं० ३०) में उन सिद्धान्तों का वर्णन किया है जो संघीय न्यायालय की स्थापना करते समय दृष्टि में रखने चाहिए। उसके अनुसार (१) एक ऐसी वैधानिक प्रक्रिया होनी चाहिए जिससे संविधान की धाराओं का सुचारु रूप से पालन हो। (२) राष्ट्रीय विधियों के निर्वचन (Interpretation) अथवा व्याख्या करने में एकरूपता होनी चाहिए। (३) राष्ट्र और उसके सदस्य उपराज्यों अथवा नागरिकों के बीच उठे विरोधों का निर्णय राष्ट्रीय न्यायाधिकरण द्वारा ही होना चाहिए। (४) सम्पूर्ण की शांति एक भाग के ऊपर अवलम्बित न हो। (५) सामुद्रिक झगड़ों का निपटारा राष्ट्रीय न्यायपालिका द्वारा होना चाहिए। इन्हीं सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए अमरीकी संविधान के तीसरे अनुच्छेद के दूसरे खण्ड में संघ की न्यायिक शक्ति का अधिकार क्षेत्र इन शब्दों में निर्धारित किया गया है: "न्यायिक शक्ति उन सभी मामलों के निपटाने में रहेगी जो इस संविधान के अन्तर्गत राज्य द्वारा बनाए हुए कानूनों और सामान्य न्यायसिद्धान्त (Equity) से सम्बन्धित होंगे या संयुक्त राज्य अमरीका के कानून और इनके आधीन जो संधियाँ हुई हों, या भविष्य में हों इनके अन्तर्गत कानूनों के प्रावधानों के सम्बन्ध में, या प्राकृतिक न्याय के बारे में उठनेवाले प्रश्नों में, राजदूतों से सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नों में, सामुद्रिक व नवसेना के अधिकार क्षेत्र में उठनेवाले प्रश्नों में उन झगड़ों में जहाँ संयुक्त राज्य ही वादी या प्रतिवादी हो या दो से अधिक उपराज्यों के बीच के झगड़े में, एक उपराज्य और दूसरे उपराज्य के नागरिकों के झगड़ों में, विभिन्न उपराज्य के नागरिकों के झगड़ों में, एक ही उपराज्य के दो नागरिकों को विभिन्न राज्यों से मिले, भूमि अनुदान सम्बन्धी झगड़ों में, और एक उपराज्य व उसके नागरिकों तथा दूसरे किसी विदेशी राज्य व उसके नागरिकों में झगड़ा हो, इन सब बातों में संघ न्यायपालिका को निर्णय करने का अधिकार प्राप्त होगा।" संविधान ने सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक व पुनर्विचारक अधिकार क्षेत्र की सीमा भी इस प्रकार निश्चित कर दी है। "राजदूतों व किसी उपराज्य से सम्बन्धित मुकदमें सर्वोच्च न्यायालय में ही प्रारम्भ होंगे। अन्य उपर्युक्त मुकदमों में सर्वोच्च न्यायालय में कानून की व्याख्या व वास्तविकता के प्रश्न पर केवल पुनर्विचार हो सकता है, उन उपवादों को छोड़कर और उन नियमों के अनुसार जिन्हें कांग्रेस निश्चित कर दे।"

उपरोक्त अधिकार क्षेत्र तो संविधान में वर्णित हैं, किन्तु इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र में कई प्रकार से वृद्धि हो गई है। इन प्रकार के अधिकारों

में न्यायालय के न्यायिक पुनर्विलोकन अधिकार (Power of Judicial Review) अधिक महत्व रखता है। यों तो संविधान में कहीं भी यह नहीं लिखा है कि सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार होगा कि वह कांग्रेस अथवा किसी उपराज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्मित किसी भी विधि की यह जाँच अथवा पुनर्विलोकन करे कि यह संविधान के अनुकूल है अथवा प्रतिकूल है, और प्रतिकूल पाने पर उसे अवैध घोषित कर दे। किन्तु अपने कार्यक्रम में अवसर पाकर सर्वोच्च न्यायालय ने इस अधिकार को अपनी शक्ति अथवा क्षेत्र में कर लिया। प्रश्न यह है कि न्यायालय ने यह अधिकार कैसे पा लिया। इसका उत्तर यह है कि संविधान के छठे अनुच्छेद के दूसरे पैरा में यह कहा गया है कि "यह संविधान और संयुक्त राज्य की विधियाँ जो इसके अन्तर्गत बनेंगी, और सभी संधियाँ जो संयुक्त राज्य के अधिकार से बनेंगी, देश की सर्वोपरि विधि समझी जावेंगी और सभी उपराज्यों के न्यायाधीश उनसे बाध्य होंगे, भले ही किसी उपराज्य की विधि अथवा संविधान में वर्णित हो।" क्योंकि इस अनुच्छेद में संविधान को देश की "सर्वोपरि विधि" (Supreme Law) घोषित किया गया है और इसी संविधान पर सर्वोच्च न्यायालय आधारित है और उसी से शक्ति प्राप्त है, इससे यह स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय अपने कार्य सम्पादन में संविधान की सर्वोपरिता माने और उसके प्रतिकूल किसी भी अधिनियम अथवा आज्ञा व आदेश को अवैध समझे। सबसे पहले सन् १८०३ में मार्बरी बनाम मेडीसन (Marbury vs Madison) अभियोग में न्यायिक पुनर्विलोकन का प्रश्न उठा था। सन् १७८९ के जुडिशिरी ऐक्ट में यह कहा गया था कि सर्वोच्च न्यायालय को परमादेश लेख (Writ of Mandamus) देने का अधिकार होगा। सन् १८०१ की ३ मार्च की रात्रि को (अपने पद-काल की अवधि समाप्त होने के कुछ घंटे पूर्व, क्योंकि उस समय नये राष्ट्रपति की पद-अवधि ता० ४ मार्च को आरम्भ होती थी) राष्ट्रपति एडम्स ने मार्बरी को शांति न्यायाधीश पद पर नियुक्त करने की आज्ञा पर हस्ताक्षर किये थे। नये राष्ट्रपति जेफर्सन (Jefferson) जिसने दिनांक ४ मार्च को कार्यभार सम्भाला और उसके सचिव मेडीसन नें मर्बरी को नियुक्ति-पत्र नहीं दिया। इस पर मार्बरी ने सर्वोच्च न्यायालय में फरियाद की कि न्यायालय मेडीसन को परमादेश द्वारा (Mandamus) आज्ञा दे कि उसे नियुक्ति पत्र दे दिया जावे। प्रमुख न्यायाधीश मार्शल ने अदालत का निर्णय सुनाते हुए मार्बरी की प्रार्थना को रद्द कर दिया और कहा कि सन् १७८९ के न्यायिक अधिनियम (Judiciary Act) ने सर्वोच्च न्यायालय को परमादेश जारी करने का अधिकार देकर संविधान द्वारा निर्धारित न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की वृद्धि की है अतएव उस अधिनियम का उतना भाग संविधान के प्रतिकूल होने के कारण अवैध

है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की वृद्धि की गयी है।

उसी समय से सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार लिया है और जब कभी कोई अभियोग उसके सामने आता है तो वह इस बात को देखता है कि जिस विधि से वह मामला सम्बन्ध रखता है उसका निर्माण संविधान के अनुकूल हुआ है अथवा नहीं। यदि न्यायालय इस निर्णय पर पहुँचता है कि वह विधि संविधान के प्रतिकूल है तो क्योंकि संविधान सर्वोपरि राज्य विधि है, प्रतिकूल विधि (Conflicting Law) अथवा उसके किसी भी अंश को जो संविधान की अवहेलना करता है, अवैध घोषित कर देता है।

क्या न्यायिक पुनर्विलोकन अधिकार प्राप्त कर सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका की कांग्रेस (विधानमण्डल) का तीसरा सदन (Third House of Congress) बन गया है? कुछ आलोचकों ने जो न्यायालय के उक्त अधिकार को अनुचित समझते हैं कहा है कि इस अधिकार के उपभोग का यह अर्थ हुआ है कि सर्वोच्च न्यायालय कांग्रेस का तृतीय सदन बन गया है क्योंकि वह कांग्रेस द्वारा निर्मित विधि को रद्द कर देता है। परन्तु उनका यह विचार ठीक नहीं है। प्रथम न्यायालय कांग्रेस द्वारा निर्मित अथवा उपराज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्मित प्रत्येक विधि की वैधता की जाँच करता है। वह तो केवल उसी समय किसी विधि की वास्तविकता का विश्लेषण करता है जब कोई पक्ष किसी अभियोग से सम्बन्धित विधि का विरोध करता है। ऐसी दशा में न्यायालय का कर्तव्य है कि संविधान को सर्वोपरि राज्यविधि समझ कर उसकी कसौटी पर अन्य विधि की वैधता की जाँच करे और यदि वह विधि अथवा उसका कोई भाग संविधान के प्रतिकूल है तो उस प्रतिकूल भाग को अमान्य अथवा शून्य समझ कर अवैध घोषित कर दे। लगभग १२५ वर्ष हुए न्यायाधीश स्टोरी (Story) ने कहा था : "क्योंकि संविधान राज्य की सर्वोपरि विधि (Supreme law of the land) है, सर्वोच्च न्यायालय का यह कर्तव्य है कि यदि यह सर्वोपरि विधि के प्रतिकूल कोई भी विधि चाहे वह कांग्रेस द्वारा बनाई गई हो अथवा उपराज्यों द्वारा, यदि वह मूलविधि (संविधान) के प्रतिकूल है, तो उसे अमान्य समझे और केवल मूल विधि का ही अनुसरण करें... अन्यथा करने का फल यह होगा कि नागरिक अपनी राष्ट्रीय और उपराज्य की सरकारों की दया के शिकार बन जावेंगे।" सन् १९११ में सर्वोच्च न्यायालय ने मस्केट बनाम संयुक्त राज्य (Muscat vs United States) वाद (Case) का निर्णय किया था। न्यायालय की ओर से न्यायाधीश डे (Justic Day) ने निर्णय के अन्तर्गत कहा था कि "किसी विधि को अवैध घोषित करने का अधिकार इसलिए उठता है क्योंकि कांग्रेस की कोई विधि जिस पर वादी अथवा

प्रतिवादी का विश्वास है मूलविधि के प्रतिकूल है। इस अधिकार का उपभोग, जो न्यायालय के लिए अत्यन्त महत्व और कोमलता रखता है, न्यायालय को इसलिए प्राप्त नहीं है कि उसे कांग्रेस के रचित अधिनियमों (Acts of Congress) से पुनरीक्षण की शक्ति है, किन्तु इसलिए प्राप्त है कि वादी और प्रतिवादी के विरोधी दावों के कारण न्यायालय को यह तय करना पड़ता है कि वह मूल विधि को मान्य समझे अथवा अन्य को।"[1]

इस अधिकार को प्राप्त कर सर्वोच्च न्यायालय ने अपने अधिकार क्षेत्र को बहुत बढ़ा लिया है। अनुमान किया जाता है कि अब तक लगभग ८० विधियों को सर्वांश में, अथवा कुछ अंशों में अवैध घोषित किया गया है। यद्यपि न्यायालय के इस अधिकार का कुछ लोग विरोध करते हैं, और कभी-कभी (जैसे १९३७ में रूजवेल्ट तथा न्यायाधीशों में) न्यायालय और शासकों में भारी गरमा गरमीहो भी गयी, किन्तु यह अधिकार अब अमरीकन शासन प्रणाली का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मान्य सिद्धान्त हो गया है।

न्यायपालिका का अधिकार क्षेत्र

संविधान के तीसरे अनुच्छेद के दूसरे खण्ड के पैरा २ में संघीय न्यायालय का अधिकार क्षेत्र इन शब्दों में व्यक्त किया गया है कि "जहाँ पर राजदूतों व किसी मंत्री अथवा वकील का मुकदमा है अथवा एक उपराज्य का झगड़ा है वहाँ पर सभी मुकदमे सर्वोच्च न्यायालय में ही प्रारम्भ होंगे।" यह मुकदमे सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र (Orignal Jurisdiction) के अन्तर्गत आते हैं तथा अन्य मुकदमे अपील सम्बन्धी अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय को अपील एवं प्रारम्भिक मुकदमें सुनने का अधिकार प्राप्त है। संघीय न्यायालय का जो संगठन है उसमें अभियोगों को निपटाने के लिए पहले पहल जिला न्यायालय में फरियाद की जाती है। उस न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध भ्रमणशील न्यायालय अथवा सर्किट कोर्ट (Circuit Court) में अपील होती है, और सर्किट कोर्ट के निर्णय से असंतुष्ट रहने पर सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जाती है। किन्तु जिन दंड-विधि अभियोगों में जिला न्यायालय प्राणदण्ड देता है उनकी अपील सर्किट कोर्ट में न होकर सीधे सर्वोच्च न्यायालय में होती है ताकि अपराधी के दंड निर्णय में अधिक विलम्ब न हो। इससे यह स्पष्ट होता है कि सर्वोच्च न्यायालय संघीय विधि से सम्बन्धित सभी मामलों में सर्वोच्च अपील न्यायालय (Highest Appellate Tribunal) है

1. Amos, **The American Constitution**, pp. 38-39.

और संविधान में वर्णित कई प्रकार के मामलों में वह प्रारम्भिक न्यायालय है, जिसका उन मामलों में प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र है।

उन मुकदमों में जहाँ किसी संघ या उपराज्य के कानून के वैध-अवैध होने का प्रश्न होता है, सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है वैसे ही जिन मुकदमों में संघ सरकार या कोई उपराज्य सरकार एक पक्ष में हो सर्वोच्च न्यायालय में ही प्रारम्भ होते हैं, संयुक्त राज्य का सबसे बड़ा पुनर्विचारक न्यायालय होने के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय की वास्तविकता, महत्ता और अनुपमता इस बात में है कि वह शासन विधान की व्याख्या करता है और उसकी मान्यता को सुरक्षित रखता है। किन्तु अपनी इस शक्ति के प्रयोग का सूत्रपात वह न्यायालय स्वयं नहीं करता। इसका प्रयोग तभी होता है जब उसके सामने कोई ऐसा निश्चित उदाहरण उपस्थित किया जाता है, जिसमें संघ सरकार या उपराज्य सरकार के किसी कानून की वैधानिकता पर आपत्ति की गई हो। ऐसे मुकदमों का निर्णय देने में यह न्यायालय शासन विधान को सर्वोपरि मान कर उसकी कसौटी पर कानूनों को वैध-अवैध ठहराता है। राष्ट्रपति या कांग्रेस का कोई भी कार्य तभी वैध समझा जाता है जब उस कार्य का सम्बन्ध लिखित शासन विधान के किसी वाक्य या शब्द से हो। राष्ट्रपति विल्सन ने अपने पब्लिक पेपर्स में सच कहा है कि "हमारे न्यायालय हमारी विधान प्रणाली के आधीन हैं। वे हमारे राजकीय विकास के साधन हैं,हमारा राज्य संगठन कुछ ऐसे विशेष रूप से वैधानिक प्रकृति का है कि हमारी राजनीति वकीलों पर निर्भर रहती है। अतएव प्रत्येक मुकदमे में निर्णय देते समय सर्वोच्च न्यायालय को पहले यह निश्चित करना पड़ता है कि जिस शक्ति को कांग्रेस अपना कहती है वह विधान के किसी प्रावधान से जोड़ खाती है या नहीं और उसके बाद यह देखा जाता है कि उस प्राववान को कितना विस्तृत अर्थ लगाया जा सकता है।"

इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में निहित शक्तियों के सिद्धान्त द्वारा (Doctrine of Implied Powers) भी शक्ति की वृद्धि हुई। इस सिद्धान्त का जनक न्यायाधीश मार्शल था,जिसने मेक्ललां बनाम मेरीलैण्ड (Mecu-lloch vs Maryland) के वाद में इसका प्रतिपादन सन् १८१९ में किया था। इस सिद्धान्त से संघ सरकार की, अपने निर्धारित क्षेत्र में, संप्रभुता ही पक्की नहीं हुई किन्तु उसकी शक्तियों में वृद्धि भी हुई। यों तो इस सिद्धान्त का प्रथम बार समर्थन हमिल्टन ने किया था, किन्तु उसको प्रयोगिक रूप देना और उसके आधार का समर्थन कर उसकी व्याख्या करना मार्शल का ही काम था। मार्शल अपने निजी विश्वास से ही शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार का पक्षपाती था और उसने जान बूझकर इस सिद्धान्त

का प्रतिपादन कर कांग्रेस की विधायिनी शक्ति को विस्तृत कर दिया। मार्शल ने अपने पद काल के २५ वर्षों (१८०१-१८३५) में ११०६ निर्णयों में भाग लिया जिनमें से ५१९ उसने स्वयं लिखे। केवल ८ बार वह अल्पमत में रहा, अन्यथा अन्य सभी अवसरों पर उसके सह-न्यायाधीशों ने उसकी सूक्ष्म न्यायायिक बुद्धि और चतुराई से प्रभावित होकर उसके निर्णयों का समर्थन किया। यदि आज अमरीका के केन्द्रीय सरकार, विशेषतया कांग्रेस, बहुत शक्तिशाली है तो उसका अधिकतर श्रेय न्यायाधीश मार्शल को ही प्राप्त है। उसी ने तीसरे प्रकार से कांग्रेस की शक्ति बढ़ाकर न्यायालय का अधिकार क्षेत्र् भी बढ़ाया। उसने संविधान का ऐसा निर्वचन व अर्थ किया जिससे केन्द्रीय के अधिकारों की वृद्धि हो। न्यायाधीश टेनी ने निर्वचन दूसरे विपरीत भाव से किया।

स्विटज़रलैण्ड की न्यायपालिका

यद्यपि स्विट्ज़रलैण्ड के संविधान निर्माताओं ने संविधान के निर्माण में अमरीकन संविधान का अनुकरण किया परन्तु उन्होंने संघीय न्यायपालिका के निर्माण में अमरीकन न्यायपालिको का अनुकरण किंचित्मात्र भी न किया। व्यवस्थापिका सभा की शक्तियों को रेफरेन्डम एवं इनेशेटिव (Referendum and Initiative) द्वारा जनता के हाँथों में रखा लेकिन शक्तियों का विभाजन न होने के कारण अमरीकन न्यायपालिका की भांति यहाँ की न्यायपालिका न ही शक्तिशाली हो सकी और न ही प्रभावित।

संविधान द्वारा स्विट्ज़रलैण्ड में एक संघ-ट्रिब्यूनल अर्थात् न्यायालय की स्थापना की गयी है। जिसमें संघ-सम्बन्धी मामलों में न्याय का निर्णय किया जाता है। इस समय इसमें २६-२८ सदस्य हैं और ११ से १३ तक अतिरिक्त न्यायाधीश हैं। ये सब ६ वर्ष के लिए फ़ेडरल असेम्बली द्वारा चुने जाते हैं और इस अवधि के समाप्त होने पर पुनः चुने जा सकते हैं। इनमें से एक प्रेसीडेण्ट और एक उपराष्ट्रपति नियुक्त किए जाते हैं दोनों एक वर्ष के लिए नियुक्त होते हैं और लगातार दो बार निर्वाचित होकर नियुक्त नहीं किये जा सकते। प्रेसीडेण्ट का वेतन ३२००० फ्रेंक प्रति वर्ष है। दूसरे न्यायाधीशों को ३०,००० फ्रेंक मिलता है। स्विट्ज़रलैण्ड का कोई नागरिक जो नेशनल कौंसिल का सदस्य होने योग्य है,वह न्यायालय का सदस्य चुना जा सकता है। चाहे उसकी विधि सम्बन्धी जानकारी और योग्यता कुछ भी हो। पर प्रतिवन्ध यह है कि वह न्यायालय का सदस्य रहने के साथ-साथ विधानमण्डल का सदस्य नहीं रह सकता और न किसी और पद पर काम कर सकता है। यह एक विचित्र सी बात प्रतीत होती है कि कम से कम सिद्धान्ततः संविधान न्यायाधीशों के लिए कोई विधि-निर्बन्ध सम्बन्धी

जानकारी की योग्यता निश्चित नहीं करता है, हालाँकि व्यवहार में ऐसी जानकारी रखनेवाले व्यक्ति ही चुने जाते हैं ।

संघ-न्यायपालिका संघ और कैन्टन के बीच व्यवहार सम्बन्धी सब मुकदमें जो संघ व कम्पनियों या व्यक्तियों के बीच में हो, आपस में कैन्टनों के मुकदमे, या कैन्टनों व कम्पनियों या व्यक्तियों के बीच के मुकदमें निबटाना संघ न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में है। यह न्यायालय संघ के प्रति देशद्रोह के अपराध या शासन संविधान के विरुद्ध विद्रोह सम्बन्धी अपराधों की जाँच करने का भी अधिकारी है। राष्ट्रों के मध्य मान्य निर्बन्ध के विरुद्ध अपराधों या ऐसे अपराधों और राजनैतिक अवज्ञाओं की परीक्षा जिसमें संघ सेना के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो जाय, यह न्यायालय कर सकता है। संघ पदाधिकारियों के विरुद्ध लगाये गये अभियोगों को भी यही न्यायालय सुनकर निर्णय देता है। "क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में यदि संघ और कैन्टनों के अधिकारियों में झगड़ा हो जाय, या लोक निर्बन्ध के बारे में यदि कैन्टनों में मतभेद हो जाय, नागरिकों के वैधानिक अधिकारों के उल्लंघन की शिकायत हो, या समझौतों अथवा संधियों के तोड़ने की व्यक्तियों द्वारा शिकायत हो जाय तो इन सब मामलों की जाँच करने का संघ-न्यायालय को अधिकार है।"[1] मज़े की बात यह है कि विधानमण्डल द्वारा पास किए हुए अधिनियमों को वैध-अवैध निश्चित करने का अधिकार इस न्यायालय को नहीं है, जिससे यह अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के समान प्रभावशाली व गौरवपूर्ण न्यायालय नहीं रह जाता है। अमरीका में सर्वोच्च न्यायालय विधानमण्डल या कार्यपालिका के तंत्र से परे है किन्तु इस न्यायालय के "सीमित अधिकारों के कारण, न्यायाधीशों की निर्वाचन पद्धति होने से और विधानमण्डल का न्यायपालिका पर नियंत्रण होने से स्विट्ज़रलैण्ड के निवासी एक शक्तिशाली संघ न्यायपालिका बनाने में असफल रहे हैं। यह कमी इस बात से और भी अधिक खटकती है कि उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका की बहुत सी बातों में नकल की है।[2] यद्यपि यह सच है कि इस न्यायपालिका का अधिकार क्षेत्र बराबर विस्तृत होता जा रहा है फिर भी यह निश्चय है कि वह संयुक्त राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के महत्व को नहीं पा सकता। विशेषकर विधान मण्डल के बनाये हुए अधिनियमों को वह अवैध घोषित नहीं कर सकता। ऐसा करना स्विटज़रलैण्ड को ही नहीं वरन् योरोपीय परम्परा के भी विरुद्ध होगा। इसका कारण स्पष्ट है और वह यह है कि स्विटज़रलैण्ड में शक्ति

१. विधान की ११३ वीं धारा।

२. फेडरल पौलिटी, पृ० १८६-१८७।

विभाजन को अंगीकार नहीं किया है। विधानमण्डल ही राज्य-संगठन का सबसे शक्तिशाली अंग है और वह भी प्रजा की सतर्क देखरेख में सदा बनी रहती है, क्योंकि जनता लोक निर्णय (Referendum), निर्बन्ध उपक्रम (Initiative) और प्रत्याहरण (Recall) द्वारा लोक व्यवस्था पर अपना प्रत्यक्ष नियंत्रण रखती है।

न्यायाधीशों को इस ढंग से चुना जाता है कि वे तीनों राष्ट्रभाषाओं का प्रतिनिधित्व करें। न्यायालय की बैठक लूसेन नगर में होती ह। जो फ्रेंच भाषा-भाषियों के कैन्टन वोड (Vaud) में स्थित है। वर्न नगर के राजनैतिक वातावरण से न्यायालय को दूर रखने के लिए ऐसा किया गया था। न्यायालय तीन भागों में विभक्त है। प्रत्येक विभाग में ८ न्यायाधीश व्यवहार सम्वन्धी व कानून सम्बन्धी मुकदमों को सुन कर निर्णय करते हैं। अपराध सम्बन्धी मुकदमों का निपटारा करने में पंच सहायता करते हैं। यह संख्या में १२ होते हैं और ५४ नामों की सूची से १४ चुने हुए व्यक्तियों में से लाटरी द्वारा छाँट लिये जाते हैं। मुकदमों में प्रत्येक पक्ष को सूची के २० नामों के विरुद्ध आपत्ति करने का अधिकार होता है। इन पंचों के प्रतिदिन के काम के लिए २० फ्रेंक पारिश्रमिक वेतन मिलता है।

कनाडा की संघीय न्यायपालिका

सन् १८६७ के ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट में न्यायपालिका के संगठन का कोई भी विवरण नहीं किया गया था। अनुच्छेद ९६ से १०१ तक में उस समय के प्रान्तीय न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्तियों के बारे में केवल वर्णन किया गया था जो कि गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किये जाते थे। बाद को सन् १८७५ के कनाडा ऐक्ट द्वारा न्यायपालिका के शासन संगठन की पृथक व्यवस्था की गयी और एक सुप्रीमकोर्ट की स्थापना की गयी जिसमें सभी मुकदमों की अपील हो सकती थी। यह सर्वोच्च न्यायालय कनाडा का अन्तिम पुनर्विचारक न्यायालय रखा गया था, परन्तु प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध सीधे सम्राट् की प्रिवी कौंसिल की न्यायसमिति में अपील हो सकती थी, परन्तु सन् १९४९ में कनाडा की पार्लियामेन्ट ने एक कानून द्वारा प्रिवी कौंसिल की न्याय-समिति के इस अधिकार को सदा के लिए समाप्त कर दिया।

इस समय कनाडा में न्यायालयों की चार श्रेणियाँ है। सबसे ऊपर कनाडा का सर्वोच्च न्यायालय है जिसके न्यायाधीशों को गवर्नर जनरल नियुक्त करता है और वे सद्व्यवहार करते समय तक अपने पद पर बने रहते हैं उनको दोनों सदनों के प्रस्ताव पर ही हटाया जा सकता है। दूसरे न्यायालय को एक्सचेकर (Exchequer) न्यायालय कहते हैं, वह भी केन्द्रीय सरकार के अधीन है। इनके अतिरिक्त प्रान्तों में

प्रान्तीय उच्च न्यायालय हैं और उनके नीचे ज़िले की कचहरियाँ हैं। इन सब न्यायाधीशों की नियुक्ति, वेतन व पदच्युत करने का जहाँ तक सम्बन्ध है केन्द्रीय सरकार के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत है। बचे हुए विषयों में वे प्रान्तीय सरकार के अधिकार क्षेत्र में है। सीढ़ी के अन्तिम डंडे पर छोटे-छोटे प्रान्तीय न्यायालय हैं जो पूरी तरह से प्रान्तीय नियंत्रण में है। सर्वोच्च न्यायालय कनाडा का अन्तिम पुर्नविचारक न्यायालय है। परन्तु प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध सीधे सम्राट की प्रिवी कौंसिल की न्याय समिति में अपील हो सकती थी। जैसे-जैसे कनाडा की राष्ट्रीय भावना जागृत होती गयी वैसे-वैसे ऐसी अपीलों की संख्या कम होती गयी, परन्तु सन् १९५० से यह अधिकार कनाडा की पार्लियामेन्ट ऐक्ट द्वारा सदा के लिये छीन लिया गया।

आस्ट्रेलिया (कामनवेल्थ) की संघीय न्यायपालिका

यद्यपि आस्ट्रेलिया में संसदात्मक शासन प्रणाली प्रचलित है तब भी आस्ट्रेलिया के संविधान निर्माताओं ने संघीय न्यायालय की स्थापना में कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय का अनुकरण किया जो अमरीकन सर्वोच्च न्यायालय से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। जो भी उनमें अन्तर पाये जाते हैं वह वहाँ के ऐतिहासिक एवं अन्य प्रचलित प्रथाओं के कारण हैं। आस्ट्रेलिया में ६ स्वतन्त्र राज्य थे, जिन्होंने आपस में मिलकर के एक संघ न्यायालय की स्थापना की जिसमें उन्होंने अपने गिने-चुने अधिकार उसे दिया और बाकी शक्तियाँ अपने पास रख लीं। वास्तव में जिस प्रकार लगभग १७८७ में अमरीका में जो दशायें थीं वह सभी आस्ट्रेलिया में भी विद्यमान थीं इसीलिये जैसे अमरीका की संघीय न्यायपालिका को शक्तियाँ प्राप्त हुईं उसी प्रकार आस्ट्रेलिया की संघीय न्यायपालिका को भी।

संघ न्यायपालिका की शक्तियाँ

आस्ट्रेलिया की संघीय न्यायपालिका को हाईकोर्ट कहते हैं उसके अधिकार दो प्रकार के हैं (१) अपील सम्बन्धी, (२) प्रारम्भिक अधिकारक्षेत्र। अपील सम्बन्धी अधिकार क्षेत्र में यह न्यायालय सभी निर्णयों तथा डिग्री की अपील सुनता है।[1] संविधान की ७५वीं धारा में कहा गया है कि हाईकोर्ट निम्नलिखित कहे हुए विषयों में अपने प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है : जब किसी ऐसी संधि के अन्तर्गत कोई प्रश्न उठा हो जो वैदेशिक प्रतिनिधियों से सम्बन्ध रखता हो, या जब किसी संघ सरकार के अफसर के विरुद्ध यह आज्ञापत्र माँगा जा रहा हो,

1. Section 75 of the **Common wealth of Australia Act,** 1900.

कि उस अफसर की आज्ञाओं का पालन न हो या जिसमें संघ सरकार व उसकी ओर से कोई व्यक्ति वादी या प्रतिवादी हो, जब दो उपराज्यों व उसके निवासियों या एक उपराज्य के किसी निवासी के बीच झगड़ा हो। इसके अतिरिक्त यदि पालियामेन्ट कानून बनाकर किसी भी विषय में हाईकोर्ट को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार दे सकती है यदि वह विषय शासन विधान के अन्तर्गत उठा हो, या नावाधिकरण क्षेत्राधिकार तथा सामुद्रिक क्षेत्राधिकार सम्बन्धी पार्लियामेन्ट के किसी कानून के अन्तर्गत कोई प्रश्न उठाये या जब उस विषय का सम्बन्ध ऐसे मामलों से हो जो दो या अधिक उपराज्यों के कानून के भीतर आता है।[1] आस्ट्रेलिया में हाईकोर्ट सर्वोच्च न्यायसंस्था है। इसमें एक प्रधान न्यायाधीश व छह अन्य न्यायाधीश होते हैं। इन सबको गवर्नर जनरल नियुक्त करता है और ये न्यायाधीश जब तक सदाचार वर्तते हैं अपने पद पर सुरक्षित रहते हैं। यदि एक ही सत्र में दोनों सदन गवर्नर-जनरल से प्रार्थना करें कि किसी न्यायाधीश को उसके सिद्ध हुए दुराचार या अयोग्यता के कारण पद से हटा दिया जाय तो गवर्नर-जनरल मंत्रिमंडल की सलाह से उसे हटा सकता है। जब तक न्यायाधीश अपने पद पर रहते हैं उनका वेतन कम नहीं किया जा सकता। इन सब शर्तों से न्यायपालिका में स्वतन्त्रता व निरपेक्षता बनी रहती है। हाईकोर्ट अपने निर्णयों की निरपेक्षता के लिए प्रख्यात हो गयी है, इसलिए अमरीकन उपराज्यों की तरह यहाँ इस बात का कोई पक्का प्रयत्न नहीं किया गया है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति निर्वाचन के द्वारा हो। हाईकोर्ट के प्रारम्भिक अधिकार का भोग करनेवाले न्यायाधीशों के निर्णयों पर, उन छोटे न्यायालयों के निर्णयों पर जो संघ-अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य करते हैं और उन मुकदमों पर जो उपराज्य के सर्वोच्च न्यायालयों के पुनर्विचार करने के लिए भेजे गये हों, पुनर्विचार करने का हाईकोर्ट को अधिकार है और इस पुनर्विचार के पश्चात् हाईकोर्ट का निर्णय अन्तिम माना जाता है।

भारत की संघीय न्यायपालिका

यद्यपि भारत का शासन संघीय है परन्तु तो भी संविधान द्वारा देश में एकतापूर्ण न्यायपालिका और एक ही मौलिक विधियों के समूह की व्यवस्था की गयी है। संघीय न्यायालय केवल एक ही है अर्थात् उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों सहित शेष सभी न्यायालय राज्यों के हैं। परन्तु उच्च न्यायालयों की रचना और संगठन संघीय विषय हैं। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति

१. संविधान की धारा ७६।

द्वारा होती है और वह उनको एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय को स्थानान्तरित भी कर सकता है। उच्च न्यायालयों की अपीलें उच्चतम न्यायालय ही सुनता है तथा उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार भारतव्यापी है। राज्यों के न्यायालयों में संघीय विधियों से सम्बन्धित मामलों की सुनवाई होती है और वे ऐसे भी मामले तय करते हैं जिसमें संघीय संविधान की व्याख्या का प्रश्न अन्तर्गस्त रहता है। दूसरी ओर उच्चतम न्यायालय स्वविवेकानुसार अपनी विशेषानुमति द्वारा भारतीय क्षेत्र में स्थित किसी भी न्यायालय, किसी न्यायाधिकरण के निर्णय, डिग्री, दंड या आदेश की अपील सुन सकता है। देश के मौलिक कानूनों की एकता ब्रिटिश शासनकाल की एक देन है और नये संविधान में इसकी रक्षा फौजदारी कानून और प्रक्रिया दीवानी, प्रक्रिया, विवाह और विवाह-विच्छेद, दत्तक ग्रहण, वसीयत, उत्तराधिकार, सम्पति हस्तांतरण, संविदा, साक्ष्य आदि विषयों को समवर्ती सूची में रख कर बड़ी सावधानी से की गयी है। यह सच है कि परिवार, सम्पत्ति, उत्तराधिकार आदि के कानून विभिन्न समाजों और सम्प्रदायों में थोड़े भिन्न हैं, पर ये देश की कुल कानूनों की समष्टि के बहुत छोटे अंशमात्र हैं।

उच्चतम न्यायालय का संगठन

भारत की न्यायपालिका के शीर्ष पर भारत का उच्चतम न्यायालय अवस्थित है। उच्चतम न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा अधिक से अधिक सात अन्य न्यायाधीश होते हैं। संसद यदि चाहे तो विधि बनाकर न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि भी कर सकती है।[1] इस समय उच्चतम न्यायालय में एक मुख्य तथा सात सहायक न्यायाधीश अर्थात् कुल ८ न्यायाधीश हैं। संविधान में विशेष समयों तथा कार्यों के लिए विशिष्ट न्यायाधीशों (Advoc Judges) की नियुक्ति की भी व्यवस्था दी हुई है। इसके अतिरिक्त अवकाश प्राप्त न्यायधीशों को भी आवश्यकता पड़ने पर उच्चतम न्यायालय में बैठने के लिए बुलाया जा सकता है। विशेष अवसरों या कार्यों के लिए विशिष्ट न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत के प्रधान न्यायाधीश के बाद भारत के राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से किसी भी उच्च न्यायालय के उपयुक्त योग्यता वाले न्यायाधीशों में से आवश्यक अवधि के लिए कर सकते हैं। उपरोक्त प्रकार की नियुक्तियों की आवश्यकता उस समय पड़ती है जब उच्चतम न्यायालय से गणपूर्ति के लिए पर्याप्त न्यायाधीश उपलब्ध नहीं होते। जब इस प्रकार की नियुक्तियाँ नहीं की जाती है तो भारत का मुख्य न्यायाधीश जिस उच्च-न्यायालय के न्यायाधीश

---

१. अनुच्छेद १२४ (१) भारतीय संविधान।

को लेना चाहता हैं वहाँ के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से वहाँ के न्यायाधीश को ले लेता है।[1]

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के पद के उम्मीदवार के लिए संविधान में यह आवश्यक कर दिया गया है कि वह भारत का नागरिक हो और या तो कम से कम पाँच वर्ष तक किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका हो या किसी उच्च न्यायालय में कम से कम १० वर्ष वकालत करने का अनुभव रखता हो। या राष्ट्रपति की राय में सुविख्यात विधि-वेत्ता (Jurist) हो।[2] उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति उच्चतम और उच्चन्यायालयों के उन न्यायाधीशों के परामर्श से करता है जिनसे परामर्श लेना वह आवश्यक समझे। सहायक न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय यह आवश्यक है कि राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श ले।[3]

उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश ६५ वर्ष की आयु तक कार्य करता है। उसे राष्ट्रपति तभी हटा सकता है जब एक ही सत्र में संसद का प्रत्येक सदन अपनी कुल संख्या के बहुमत और उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहायी मत से इस आशय का अनुरोध करे। संसद इस प्रकार का अनुरोध केवल दो कारणों से ही कर सकती है, अर्थात् किसी न्यायाधीश के प्रमाणसिद्ध कदाचार या उसकी अक्षमता के आधार पर। न्यायाधीशों को हटाने के लिए इतनी कठिन प्रक्रिया इसलिए निर्दिष्ट की गयी है जिससे उनको कार्यकाल सम्बन्धी पूर्ण स्वतन्त्रता एवं सुरक्षा प्राप्त रहे और वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने कर्तव्यों को पूरा कर सकें। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए संविधान में यह व्यवस्था भी है कि किसी भी न्यायाधीश की सुविधाओं, वेतन और भत्तों में उसके कार्यकाल में कोई कमी नहीं की जा सकती।[4] प्रधान न्यायाधीश को ५०००) तथा अन्य न्यायाधीशों को ४०००) मासिक वेतन मिलता है। उसके अतिरिक्त प्रत्येक न्यायाधीश को बिना किराये का सरकारी निवास स्थान भी मिलता है। यदि उन्हें किसी सरकारी कार्य से बाहर जाने की आवश्यकता पड़े तो समुचित मार्ग व्यय तथा अन्य सुविधायें भी दी जाती हैं। अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय का कोई भी न्यायाधीश भारत के किसी भी न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता है।

१. अनु० १२७ भारतीय संविधान

२. अनु० १२४ (३) भारतीय संविधान

३. अनु० १२४ (२) भारतीय संविधान

४. अनु० १२५ भारतीय संविधान

उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को तीन विभागों में विभक्त किया जा सकता है, अर्थात् प्रारम्भिक (Original), अपीलीय (Appellate) और परामर्श सम्बन्धी (Advisory)। प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में उच्चतम न्यायालय भारत सरकार तथा किसी राज्य या राज्यों में, अथवा राज्यों में आपस में होने वाले उन विवादों का निर्णय करता है जिनमें कानून या तथ्य सम्बन्धी कोई ऐसा प्रश्न निहित हो जिस पर किसी वैधानिक अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर हो। भारत सरकार और किसी भाग (ख) राज्य के बीच संविधान के आरम्भ होने के पूर्व की हुई संधि या सनद की व्यवस्थाओं को लेकर उत्पन्न होने वाला विवाद, और किसी भी संधि या समझौते की किसी व्यवस्था से उत्पन्न कोई ऐसा विवाद जो उस संधि आदि की शर्तों द्वारा ही स्पष्ट रूप से उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार से अलग रखा गया हो, उक्त न्यायालय क्षेत्राधिकार में नहीं आते हैं।[1]

देश के संघीय शासन के दृष्टिकोण से उच्चतम न्यायालय के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार का बड़ा महत्व है। संघ व्यवस्था की मूल वस्तु है केन्द्र और राज्यों के बीच शक्ति-विभाजन और इस विभाजन को स्थिर रखने के लिए किसी ऐसी निष्पक्ष और स्वतन्त्र सत्ता का होना आवश्यक है जो यह देखती रहे कि, संघ तथा राज्य इन दोनों में से कोई भी पक्ष उक्त विभाजन का अतिक्रमण न कर सके। संघीय और राज्य-सरकारों के बीच बहुधा विधियों के बनाने की शक्ति को लेकर मतभेद उत्पन्न हो जाता है। मतभेद का रूप यह होता है कि एक पक्ष दूसरे पक्ष द्वारा निर्मित विधि को, उसकी शक्ति से परे और अवैध (Ultra Vires) कहने लगता है जिसका अर्थ होता है जिस पक्ष ने उस विधि को बनाया है उसे तद्विषयक विधि बनाने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार झगड़ों को निपटाने के लिए उच्चतम न्यायालय को संविधान में दिये हुए शक्ति विभाजन की व्याख्या करनी पड़ती है और उसके गूढ़ आशयों को पूरी तरह से स्पष्ट करना पड़ता है। इस प्रकार की न्यायिक व्याख्या संघीय संविधान के विकास की एक महत्वपूर्ण पद्धति मानी जाती है। संयुक्त राज्य अमरीका और आस्ट्रेलिया में इस प्रकार की व्याख्या द्वारा संघीय शक्तियों का पर्याप्त विस्तार हुआ है। न्यायाधीश मार्शल ने इसीलिए इसे संविधान की 'रचनात्मक व्याख्या' की संज्ञा दी है। भारत सरकार तथा किसी राज्य या राज्यों अथवा राज्यों में आपस ही, उनकी भौगोलिक सीमाओं के सम्बन्ध में भी विवाद हो सकता है। इन सब मामलों में उच्चतम न्यायालय को संघ के दोनों पक्षों के बीच निष्पक्ष

---

१. अनु० १३१, भारतीय संविधान।

और सामान्य न्याय करना होता है। इसीलिए श्री बख्शी टेकचन्द ने उच्चतम न्यायालय को संघीय और राज्य विधान मंडलों के बीच का संतुलन चक्र (The balance wheel) कहा था। इसका कार्य संघ तथा राज्य विधान मण्डलों को अपने-अपने उचित अधिकार क्षेत्रों के अन्दर ही रखना है।

उच्चतम न्यायालय नागरिकों के व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मूलअधिकारों का सर्वोच्च रक्षक भी है। संविधान में प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार दिया गया है कि वह मूल अधिकारों की उचित प्रक्रिया द्वारा कार्यान्वित करने की उच्चतम न्यायालय से प्रार्थना करे। संविधान में यह भी कहा गया है कि उसके लागू होते ही भारत में प्रचलित वे सारे कानून जो मूलाधिकारों के विरुद्ध हैं, उस हद तक प्रभावशून्य हो जावेंगे जहाँ तक उनका संविधान द्वारा प्रदत्त मूलाधिकारों से विरोध हो। मूलाधिकारों के विरुद्ध या उनका उल्लंघन करते हुए, विधियाँ बनाना वर्जित है। कोई भी सरकार या शासनाधिकारी चाहे वह संघीय हो अथवा राजकीय या स्थानीय, मूलाधिकारों की मर्यादाओं का उल्लंघन करते हुए कानून, नियम, उपनियम नहीं बना सकता। यह उच्चतम न्यायालय का कर्तव्य है कि सरकार की शक्तियों पर मूलाधिकारों के रक्षार्थ रोक लगाये और इन प्रतिबन्धों का उल्लंघन न होने दे। इस कर्तव्य के पालन के लिए उच्चतम न्यायालय को विभिन्न प्रकार के लेखादेश निकालने की शक्ति दी गयी है। उच्चतम न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण परमादेश, प्रतिषेध अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण के आदेश दे सकता है। मूलाधिकारों की रक्षा करना उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण अंग है। उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय भी है। अभिलेख न्यायालय का अर्थ है ऐसा न्यायालय जिसकी कार्रवाइयाँ और निर्णय सदा के लिए लिखित रूप से सुरक्षित रखे जाते और नजीर समझे जाते हैं तथा जो अपनी मानहानि करने वाले व्यक्ति को दंड देने की शक्ति भी रखता हो।

उच्चतम न्यायालय को दीवानी और फौजदारी मामलों में उच्च न्यायालयों के निर्णयों की अपील सुनने की शक्ति है। स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व प्रिवी कौंसिल उच्च न्यायालयों के सामान्य मामलों में फैसलों की, और संघीय न्यायालय उनके संवैधानिक मामलों में फैसलों की अपील सुनती थी। सन् १९४९ में प्रिवी कौंसिल क्षेत्राधिकार उन्मूलन अधिनियम पारित हुआ। इसके फलस्वरूप भारत में प्रिवी कौंसिल में अपीलों का जाना बन्द हो गया। अब उच्चतम न्यायालय ही देश का सबसे ऊँचा न्यायालय है। उच्चतम न्यायालय यदि चाहे तो अपने आदेशों और निर्णयों पर स्वयं पुनर्विचार कर सकता है, लेकिन उससे उच्चतर कोई ऐसा न्याया-

लय नहीं है जिसमें उसके आदेशों या निर्णयों की अपील की जा सके।[1]

उच्च न्यायालय के किसी निर्णय, डिग्री या अन्तिम आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने के तीन मार्ग हैं। (१) संबन्धित उच्च न्यायालय के प्रमाण पत्र द्वारा, (२) उच्चतम न्यायालय की विशेषानुमति द्वारा और (३) स्वाधिकार द्वारा। इनमें पहला मार्ग यह है कि उच्च न्यायालय प्रमाणित कर दे कि उसके द्वारा निर्णय किये हुए मामले में कोई ऐसा महत्वपूर्ण कानून का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। जिसका सम्बन्ध संविधान की व्याख्या से है। दूसरा रास्ता यह है कि यदि उच्च-न्यायालय उक्ताशय प्रमाणपत्र न दे तो उच्चतम न्यायालय की विशेषानुमति से उसके पक्ष अपील हो सकती है। विशेषानुमति प्राप्त करने की प्रार्थना इस आधार पर की जाती है कि उच्च न्यायालय ने अपील के लिए प्रमाणपत्र न देकर गलती की है। इस प्रकार विरोधी पक्ष भी किसी उच्च न्यायालय द्वारा अपील का प्रमाणपत्र दिये जाने के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में इस आधार पर अपील कर सकता है कि उसके प्रतिद्वंद्वी को उक्त प्रमाणपत्र गलत आधारों पर दिया गया है।[2] आशय यह है कि उच्च न्यायालय द्वारा अपील के प्रमाणपत्र दिये जाने या न दिये जाने के कृत्य की भी अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है। सामान्यतः उच्च न्यायालय ही के निर्णयों की अपील उच्चतम न्यायालय में की जाती है; लेकिन उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति है कि वह सैनिक न्यायालयों के अतिरिक्त भारत के किसी भी अन्य न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्णय की अपील स्वविवेक से विशेषानुमति देकर सुन सकता है।[3]

तीसरा और अन्तिम मार्ग है स्वाधिकार द्वारा अपील का। स्वाधिकार द्वारा अपील का यह अर्थ है कि उसके करने में किसी की भी अनुमति या प्रमाणपत्र की आवश्यकता न हो, किन्तु मुकदमे के मूल्य या प्रकार के ही आधार पर अपील हो सके, अथवा कोई प्रमाणपत्र आवश्यक भी हो तो वह मुकदमे के मूल्य या प्रकार के आधार पर स्वतः ही मिल जाय। दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मामलों की अपीलें उच्चतम न्यायालय में स्वाधिकार द्वारा की जा सकती हैं। दीवानी मामलों में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध स्वाधिकार द्वारा अपील तब तक की जा सकती है जब उच्च न्यायालय प्रमाणित कर दे कि सम्बन्धित मुकदमे की

---

१. अनु० १३७, भारतीय संविधान।

२. अनु० १३२, भारतीय संविधान।

३. अनु० १३६, भारतीय संविधान।

मालियत २०,०००) से कम नहीं है, अथवा वह मुकदमा किसी अन्य कारण से उच्चतम न्यायालय के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित करने योग्य है।[1] जबकि प्रिवी कौंसिल में १०,०००) रु० तक के मुकदमे सुनवायी के लिए भेजे जा सकते थे।

फौजदारी मामलों में यदि उच्च न्यायालय ने किसी अधीन न्यायालय द्वारा अभियुक्त की रिहाई के फैसले को उलट कर अभियुक्त को प्राणदंड दिया हो, या यदि उच्च न्यायालय ने किसी अधीन न्यायालय के विचाराधीन मामले को अपने यहाँ मँगा कर अभियुक्त को प्राणदंड दिया हो, या उच्च न्यायालय प्रमाणित कर दे कि मुकदमा उच्चतम न्यायालय के सम्मुख ले जाने योग्य है। संसद विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय के फौजदारी मामलों-सम्बन्धी अपील के क्षेत्राधिकार को और भी व्यापक बना सकती है।[2]

राष्ट्रपति सार्वजनिक महत्व के किसी भी तथ्य या विधि के प्रश्न को उच्चतम न्यायालय के पास भेज कर उसके सम्बन्ध में उसकी राय माँग सकता है।[3] यदि "ख" राज्यों से की हुई किसी भी संधि, सनद या अन्य कागज़-पत्र से सम्बन्धित विवाद में भी उच्चतम न्यायालय की राय माँगी जा सकती है। उच्चतम न्यायालय यथावश्यक सुनवाई करने के पश्चात् राष्ट्रपति को अपनी राय की रिपोर्ट देता है।[4]

संसद विधि द्वारा संघ-सूची में उल्लिखित किसी भी विषय को उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन कर सकती है और उसे मूलाधिकार की रक्षा के अतिरिक्त और कार्यों के लिए भी लेखादेश निकालने का अधिकार दे सकती है। भारत सरकार तथा किसी राज्य की सरकार या सरकारें पारस्परिक समझौते द्वारा उच्चतम न्यायालय को किसी भी ऐसे विषय में क्षेत्राधिकार दे सकते हैं जिनमें संसद ने ऐसे अधिकार दिये जाने की व्यवस्था की हो। उच्चतम न्यायालय को संसद विधियाँ बनाकर ऐसी समस्त अनुपूरक, सहायक और उपसहायक शक्तियाँ दे सकती है जो उसके कृत्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक तथा वांछनीय हो।[5] उच्चतम न्यायालय द्वारा दी हुई विधि-व्यवस्था भारत के सभी न्यायालयों को मान्य करनी

---

१. अनु० १३३, भारतीय संविधान।
२. अनु० १३४, भारतीय संविधान।
३. अनु० १४३, भारतीय संविधान।
४. अनु० १४३, भारतीय संविधान।
५. **Ibid**, १४० भारतीय संविधान।

होती है । उच्चतम न्यायालय किसी व्यक्ति या कागज-पत्र को अपने सामने उपस्थित किये जाने की आज्ञा दे सकता है और अपनी मानहानि के लिए दंड दे सकता है ।[1] राष्ट्रपति तथा शासन के अन्य निर्दिष्ट पदाधिकारियों का यह कर्तव्य है कि उच्चतम न्यायालय के आदेशों तथा डिग्रियों को लागू करायें ।

उच्चतम न्यायालय को अपनी प्रक्रिया और कार्य-प्रणाली को निश्चित करने के लिए नियम बनाने की व्यापक शक्ति है । जिन मुकदमों में कोई कानून सम्बन्धी या संविधान की व्याख्या संबंधी प्रश्न हो, उनकी सुनवाई कम से कम पाँच न्यायाधीशों की बेंच द्वारा होनी आवश्यक है । अन्य प्रकार के मामलों की सुनवाई एक ही न्यायाधीश या न्यायालय के नियम द्वारा निर्दिष्ट न्यायाधीशों की संख्या कर सकती है । उच्चतम न्यायालय के सभी निर्णय मामले की सुनवाई करनेवाले न्यायाधीशों के बहुमत से होता है । इनमें से कोई भी न्यायाधीश जो बहुमतवाले न्यायाधीशों के निर्णय से सहमत न हो, उसके विरुद्ध अपना निर्णय लिख सकता है । उच्चतम न्यायालय के निर्णय तथा राय उसकी खुली बैठकों में सुनाये जाते हैं ।[2]

सन् १९५० में प्रकाशित उच्चतम न्यायालय के नियमोंके अनुसार प्रत्येक मुकदमे और अपील जो संवैधानिक न हों, की सुनवाई न्यायाधीशों के एक मण्डल द्वारा की जाती है जिसमें कम से कम ३ सदस्य अवश्य होते हैं । इन सदस्यों का नामांकन मुख्य न्यायाधीश करता है । यदि यह न्यायाधीश-मण्डल समझे कि किसी मामले में तीन से अधिक न्यायाधीशों की आवश्यकता है तो वह प्रधान न्यायाधीश को सूचित करता है और वह आवश्यकतानुसार कार्यवाही करता है ।

उच्चतम न्यायालय को पूर्णतः स्वतन्त्र और निष्पक्ष बनाये रखने के लिए संविधान में जो कुछ आवश्यक हो सकता था, किया गया है । इसके न्यायाधीशों की पदावधि पूर्णतः सुरक्षित है । उनका वेतन संविधान द्वारा निश्चत है और उसका भार भारत की संचित निधि पर रखा गया है । उसके सम्बन्ध में संसद की वार्षिक स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं है । न्यायाधीशों को मनमाने ढंग से पदच्युत नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उनकी पदावधि संविधान द्वारा सुरक्षित है। उनके कार्यकाल में, उनकी नौकरी की शर्तों में उनके प्रतिकूल परिवर्तन नहीं किये जा सकते । पदग्रहण करने के पूर्व उन्हें इस बात की शपथ ग्रहण करनी या प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि वे अपने पद के कार्यों और कर्तव्यों का पालन भय, पक्षपात, राग और द्वेष से रहित

१. अनु० १४२ भारतीय संविधान ।

२. अनु० १४५ भारतीय संविधान ।

होकर करेंगे, तथा संविधान एवं विधि की रक्षा करेंगे।[१] अतः इस बात में कोई संदेह नहीं है कि उच्चतम न्यायालय संविधान और नागरिकों की स्वतन्त्रता तथा अधिकारों का सच्चा रक्षक सिद्ध होगा।

१. तृतीय अंनुसूची (४), भारतीय संविधान।

अध्याय १०

आधुनिक प्रवृत्तियाँ और वित्तीय पद्धतियाँ

प्राचीन एवं मध्यकालीन संघों में से अधिकांश संघ इसलिए असफल रहे क्योंकि उनके इकाई राज्यों के साथ सम्बन्ध अच्छे न थे। यहाँ तक कि बाद को जब वह अपने एक विशेष कार्य के लिए एकात्मक सरकार के रूप में भी संगठित हुए तो उनमें वह स्पर्धा जो पहले से ही विद्यमान थी समाप्त न हो सकी। इस प्रकार जो भी सरकारें स्थापित हुईं उनमें उनके पास साधनों की कमी होने के कारण वह अपने निर्णयों को लागू न कर सकीं। उपरोक्त कमी यहाँ तक आधुनिक प्रसंधियों की स्थापना के समय भी विद्यमान रही। ऑस्ट्रो-हंगेरियन (Austro-Hungarian) साम्राज्य के पास न ही अपनी आवश्यकीय विधायिनी एवं प्रशासकीय शक्तियाँ थीं और न ही सरकार को चलाने के लिये पर्याप्त मात्रा में धन ही था। अन्तिम अर्थात् धन-सम्बन्धी प्रश्न तो दोनों राज्य, जो अपने अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र थे, की शासन तथा वित्त नीति पर ही आधारित था। यह प्रणाली राष्ट्रीय सरकार के उत्तरदायित्व को बढ़ाने के साथ-साथ सफल न हो सकी। उपरोक्त न्यूनता सन् १७७६ में संयुक्त-राज्य अमरीका की प्रसंधि की स्थापना के अन्तर्गत विधायिनी, प्रशासनीय तथा स्वतन्त्र वित्तीय साधनों में विद्यमान रही थी। अतः १७७६ के फिलाडेल्फिया सम्मेलन में इस बात का अनुभव किया गया और जो कमियाँ रह गयीं थीं वह नवीन संविधान के निर्माण में पूरी कर दी गयीं। इस प्रकार फिलाडेल्फिया सम्मेलन ने सामान्य सरकार को विधायिनी, प्रशासनीय एवं वित्त सम्बन्धी शक्तियों की सीमा स्थिर कर दी। संयुक्त-राज्य अमरीका के संविधान निर्माताओं का उदाहरण विश्व के आधुनिक संघों के निर्माताओं द्वारा अनुकरण किया गया, जिसके फलस्वरूप आधुनिक संघों की वास्तविक कार्य-प्रणाली में बहुत कुछ अन्तर एवं परिवर्तन आ गये हैं, विशेषतः वित्त-प्रणाली में, जिसमें दो सरकारें अर्थात् केन्द्र तथा राज्य सरकारें आपस में बटवारा करती हैं।

सार्वजनिक वित्त प्रणाली में नवीन प्रवृतियाँ

फिलाडेल्फिया सम्मेलन में निर्मित संविधान के वित्तीय भाग की विशेषता

बतलाते हुए फेडरलिस्ट (No.XXX) के लेखक ने ठीक ही कहा है कि "राजनीति के अन्तर्गत वित्त सिद्धान्त का अपना एक विशेष महत्व है क्योंकि यही उसके (राजनीति) जीवन को दृढ़ तथा जीवित रखता है और अत्यावश्यकीय कार्यों के संचालन में सहायता देता है। अत: प्रत्येक संविधान में शासन को चलाने के लिये यह एक आवश्यक अंग है।"

राजनैतिक संघों का इतिहास जो विभिन्न कालों में लिखा गया है, उपरोक्त बात को प्रमाणित करता है। संयुक्त-राज्य अमरीका के प्रसंधान के अनुच्छेद सैद्धान्तिक रूप से वित्त सम्बन्धी अगणित अधिकार देते थे, परन्तु वित्त प्रणाली राज्यों की प्रत्याभूति पर आधारित थी अत: संघ सरकार को बहुत कम शक्तियाँ प्राप्त थीं। जैसे केन्द्रीय सरकार नागरिकों पर अपना स्वकर नहीं बढ़ा सकती थी। अत: फिलाडेल्फिया सम्मेलन ने केन्द्रीय सरकार को प्रत्यक्ष रूप से यह अधिकार दे दिया कि वह प्रत्यक्ष रूप से नागरिकों पर कर बढ़ा सकती है। राज्य सरकारों को भी अपने कार्य संचालन के लिये नागरिकों पर कर बढ़ाने का अधिकार दिया गया है ताकि सुचारु-रूप से अपना कार्य कर सकें। यह सिद्धान्त १७८७ के पश्चात् सभी संघों ने ग्रहण किया है। द्वितीय सिद्धान्त के अनुसार केन्द्र सरकार तथा राज्य-सरकारों के मध्य वित्तीय सम्बन्धी शक्तियों का विभाजन होना चाहिये और उन्हें इस बात का भी अधिकार होना चाहिये कि कार्य संचालन के लिये वे स्वतन्त्रतापूर्वक कर लगा सकें। संघ के अन्तर्गत बहुत से ऐसे मामले होते हैं जो सम्पूर्ण राष्ट्र से सम्बन्धित होते हैं अत: उन्हें कार्यरूप में लाने के लिये केन्द्र सरकार को प्रत्यक्ष रूप से कर लगाने का अधिकार होना चाहिए क्योंकि वह देश के सम्पूर्ण भाग पर नियंत्रण रखती है। अत: अप्रत्यक्षरूप से भी केन्द्रीय सरकार को कर लगाने का भी अधिकार होना चाहिये। तृतीय, अप्रत्यक्ष करों की वसूली में जैसे सीमा कर तथा आवकारी कर की वसूली में प्रत्यक्ष कर के मुकाबिले में कम व्यय होता है। अत: केन्द्रीय सरकार उपरोक्त करों की वसूली में प्रत्यक्ष करों की वसूली से अधोमुख रहती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि केन्द्रीय सरकार को प्रत्यक्ष कर लगाने अथवा वसूल करने का अधिकार ही न हो। अत: दोनों सरकारों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर लगाने तथा वसूल करने का अधिकार होना चाहिये। परन्तु इससे अच्छा तो यह होगा कि प्रत्यक्ष कर राज्य सरकारों को तथा अप्रत्यक्ष कर लगाने का अधिकार केन्द्र सरकार को होना चाहिये।

चतुर्थ सिद्धान्त के आधार पर वित्त सम्बन्धी स्रोतों का विभाजन केन्द्र तथा राज्य सरकारों के मध्य में होना चाहिये अर्थात् वित्त के व्यय-सम्बन्धी स्रोत इकाई राज्यों को देना चाहिये और व्यय से सम्बन्धित रहित स्रोत केन्द्रीय सरकार को देना चाहिये।

संघ में केन्द्रीय अथवा राष्ट्रीय सरकार के लिये आवश्यक है कि वह रक्षा, विदेशी मामलें, राष्ट्र के आवागमन-साधन, सिक्के, नाप-तौल नामक विषयों को अपने पास रखना चाहिये। इन विषय में शान्ति के समय वर्ष प्रति वर्ष कोई विशेष व्यय नहीं बढ़ता है जब कि राज्य सरकारों के पास बहुत से विभाग होते हैं और वे नागरिकों के दिन प्रतिदिन के जीवन से सम्बन्वित रहते हैं जैसे शिक्षा, जन स्वास्थ्य आदि। समाज में उपरोक्त विभागों से लाभ के लिये अत्याधिक धन की आवश्यकता होती है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि राज्य सरकारों को समाज कल्याण तथा प्रशासन के लिये धन की आवश्यकता पड़ती है।

परन्तु आपत्तिकालीन (जैसे विश्व युद्ध के समय आदि में) समय में केन्द्रीय सरकार का उत्तरदायित्व अधिक बढ़ जाता है क्योंकि उसे देश की रक्षा करनी पड़ती है। अतः ऐसे समय में केन्द्र सरकार को देश की रक्षा के लिये अत्यधिक कर लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इस सिद्धान्त का वर्णन करते हुए हमें यह न भूल जाना चाहिये कि केन्द्रीय सरकार सम्पूर्ण राष्ट्र की उन्नति के लिये प्रत्यक्ष रूप से कुछ विभागों पर नियंत्रण रखती हैं इन विभागों में श्रमिक कल्याण, वैज्ञानिक एवं कृषिक उन्नति, प्राकृतिक स्रोतों का शोषण, शैक्षिक उन्नति एवं जन स्वास्थ्य भी समिलित हैं। यद्यपि यह सभी विभाग राज्य सरकारों द्वारा नियंत्रित होते हैं परन्तु युद्धकालीन समय में जब यह विभाग केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रित होते हैं तो उनके परिणाम अच्छे रहते हैं। उदाहरणार्थ जल विद्युत विभाग यद्यपि राज्यों द्वारा नियंत्रित होता है परन्तु आपत्तिकालीन समय में यदि केन्द्र सरकार का उस पर नियंत्रण रहता है तो परिणाम सदैव अच्छे ही रहते हैं।

पंचम, परन्तु अन्तिम प्रश्न विचारणीय है कि कौन सरकार किस सरकार से कितना ऋण लेगी। इस प्रश्न को सुलझाने के लिये यह अच्छा ही होगा कि दोनों सरकारें पहले ही परस्पर में तय कर ले कितना ऋण कौन सरकार उसकी आवश्यकतानुसार देगी ताकि बाद को ऋण के प्रश्न को लेकर दोनों सरकारों में मतभेद न उत्पन्न हो। व्याज सम्बन्धी प्रश्न भी पहले ही निश्चित हो जाना चाहिये ताकि बाद को किसी प्रकार का झगड़ा न खड़ा हो जाय। यदि दोनों सरकारें ऐसा नहीं करती हैं और अपनी इच्छानुसार ऋण लेती हैं तो बाद को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जिससे सम्पूर्ण देश भी प्रभावित होता है।

अमरीकी राजस्व प्रणाली

अमरीका का सार्वजनिक वित्त सरकारी वित्त उत्थान के विषय में एक बहुत

ही महत्वपूर्ण कहानी से अवगत कराता है। १७७६ के अमरीकी प्रसंधान के आठवें अनुच्छेद में कहा गया था "युद्ध सम्बन्धी सभी व्यय तथा सार्वजनिक रक्षा के लिये अथवा सर्वसाधारण के कल्याण के लिये किये गये सभी व्यय संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस द्वारा पारित किये जावेंगे, यह व्यय सभी राज्यों द्वारा एकत्रित सामान्य कोषालय से अदा किये जायेंगे; यह कर प्रत्येक राज्य की भूमि की कीमत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति पर, पृथ्वी एवं इमारतों की उन्नति के अनुसार कांग्रेस की बैठक में निश्चित किया जावेगा, परन्तु उपरोक्त कर प्रत्येक राज्य के विधान मण्डल द्वारा कांग्रेस द्वारा निश्चित समय के अन्तर्गत लागू किये जावेंगे।"

उपरोक्त अनुच्छेद के अन्तर्गत सामान्य सरकार के पास न तो अपने राजस्व स्रोत ही थे और नहीं अधिकांश राज्यों द्वारा लगाये हुए करोंकी वसूली के लिये उसके स्वायंत्र ही थे। प्रसंधान कांग्रस द्वारा निश्चित किये हुए कर पर ही आधारित रहता था और निर्धारित कर भी कांग्रेस के निर्देशन पर ही राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा लागू किये जाते थे। इस प्रकार सामान्य सरकारको राज्य-सरकारों की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता था। यहाँ तक कि यदि कभी लालचवश राज्य-सरकारें समय के अन्तर्गत तथा सम्पूर्ण धन सामान्य सरकार को न देना चाहती थीं तो सामान्य सरकार राज्य-सरकारों को धन देने के लिये बाध्य नहीं कर सकती थी।

इस प्रणाली में अनेकों दोष थे अत: १७८७ के संविधान में संविधान निर्माताओं ने संघीय सरकार को कर लगाने तथा व्यय करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी। संविधान के अनुच्छेद ८ के खण्ड (१) में कहा गया है कांग्रेस को कर लगाने, इकट्ठा करने, शुल्क लगाने तथा इकट्ठा करने, सामान्य रक्षा तथा सार्वजनिक कल्याण के लिये ऋण देने का अधिकार दिया गया है परन्तु यह सब कर तथा शुल्क सम्पूर्ण संयुक्त राज्य अमरीका में एक से होंगे। अनुच्छेद ९ के खण्ड (४) तथा (५) में कांग्रेस द्वारा लगाये हुए करों पर प्रतिवन्ध भी लगाया गया है कि "जव तक जन संख्या के आधार पर कर नहीं लगाया जावेगा तव तक व्यक्ति विशेष पर भी कर नहीं लगाया जा सकता है इसी प्रकार किसी भी राज्य द्वारा निर्यात माल पर कर नहीं लगाया जावेगा।"

उपरोक्त संकेतों से स्पष्ट होता है कि जहाँ संघीय सरकार विना किसी रोक-टोक के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर लगा सकती है वहाँ पर उसे यह भी मानना पड़ता है कि वह राज्य द्वारा निर्यात किये हुए माल पर कर नहीं लगा सकती है। इसके साथ साथ जब तक जनसंख्या के आधार पर कर नहीं लगाया जा सकता तब तक व्यक्तिगत मनुष्य के ऊपर भी कर नहीं लगाया जा सकता है। यह प्रतिवन्ध संविधान के १६वें संशोधन तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये हुए निर्णयों पर ही लगाये गये हैं।

जब भी कभी संविधान के अन्तर्गत संघीय सरकार तथा राज्य सरकारों के मध्य कर सम्बन्धी विषयों का विभाजन नहीं होता है तो कभी कभी एक ही विषय पर संघ सरकार तथा राज्य सरकार अपना पृथक्-पृथक् कर लगा देती हैं। ऐसी स्थिति में दोनों सरकारों के बीच झगड़ा खड़ा हो जाता है। अतः दोहरी कर-पद्धति ठीक न होने के कारण संयुक्त राज्य अमरीका ने इस पद्धति को नहीं अपनायी। यह सत्य है कि सीमा शुल्क पर संघ सरकार का एकाधिकार होता है और राज्य सरकारें उसमें कुछ नहीं कर पाती हैं। परन्तु संघ सरकार केवल आयात कर ही लगा सकती हैं न कि दक्षिण राज्यों पर कृषि सम्बन्धी निर्यात कर अर्थात् दक्षिण राज्यों पर संघ सरकार कृषि सम्बन्धी निर्यात कर नहीं लगा सकती है। इस प्रकार संघीय सरकार पर सीमा शुल्क पर भी बहुत बड़ा प्रतिबन्ध लगा हुआ है। संविधान में आवश्यकीय कर जो देश, राज्यों एवं स्थानीय नगर महापालिकाओं द्वारा लगाये जाते हैं १५ भागों में विभाजित किये गये हैं (१) सम्पत्ति कर, (२) व्यक्तिगत तथा कारपोरेशन कर, (३) कारपोरेशन सम्पत्ति पर कर, (४) आयात कर, (५) पैतृक धन पर कर, (६) तम्बाकू आदि मद्य-वस्तुओं पर कर, (७) सामाजिक रक्षा के लिये वेतन पर कर, (८) व्यापार कर, (९) विधि-लेखपत्र पर टिकट कर, (१०) माल परिवर्तन पर कर, (११) जन साधारण की उपयोगिता के लिये नागरिक कर, (१२) बिक्री कर, (१३) गैसोलीन पर कर, (१४) वियोग पर कर, (१५) मनुष्यों पर मतदान सम्बन्धी कर।[1]

उपरोक्त कर राष्ट्रीय सरकार, राज्य सरकारों तथा स्थानीय सरकारों द्वारा लगाये जाते हैं परन्तु इनमें सम्पत्ति कर तथा मतदान कर प्रत्यक्ष कर हैं। यदि यह कर संघ सरकार लगाती है तो वह धन के आधार पर न लगाकर, किन्तु जनसंख्या के आधार पर लगाती है, क्योंकि संविधान में कहा गया है कि राज्य सरकारों पर संघ सरकार इस प्रकार का जो भी कर लगायेगी वह जनसंख्या के आधार पर ही लगायेगी।

कांग्रेस के द्वारा लगाये हुए करों पर यह भी प्रतिबन्ध है कि जो भी इस प्रकार के कर लगाये जायँ वे सभी संयुक्त राज्य के ऋण देने तथा सार्वजनिक रक्षा एवं सुख के लिये ही हों। जन कल्याण के लिये लगाये हुए कर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के हो सकते हैं। चूँकि आधुनिक सरकारें जन कल्याण के लिये बहुत से कार्य करती हैं अतः कांग्रेस किस सीमा तक जन कल्याण के लिये काम कर सकती है और कर लगा

1. Munro, **The Government of the United States**, pp. 353-54.

सकती है यह उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर आधारित रहता है क्योंकि संघीय सरकार की शक्तियाँ सीमित हैं। संघीय सरकार को कर लगाने के अतिरिक्त दूसरे प्रतिबन्ध का भी सामना करना पड़ता है वह यह है कि संघ सरकार जो भी कर लगायेगी वह सम्पूर्ण देश में एक समान होगा और एक से होंगे।

उच्चतम न्यायालय के प्रत्यक्ष कर के विश्लेषण से भी वित्त सम्बन्धी प्रश्न में बहुत कुछ उन्नति हुई है। संविधान के लागू होने के थोड़े दिनों पश्चात् ही उच्चतम न्यायालय ने हयल्टन वनाम संयुक्त राज्य (Hylton vs United States) नामक मुकदमें का निर्णय देते हुए कहा था कि मतदान तथा पृथ्वी कर ही प्रत्यक्ष कर हैं और सभी शेष कर प्रत्यक्ष कर की श्रेणी में गिने जाना चाहिये। गृहयुद्ध ने संघीय सरकार को इस बात के लिये विवश कर दिया था कि वह राज्यों की जनसंख्या पर आय कर लगावे। इस बात की पुष्टि के लिए कि संघ सरकार राज्यों की जनसंख्या पर आयकर लगा सकती है अथवा नहीं, मुकदमा उच्चतम न्यायालय में पेश किया गया। उच्चतम न्यायालय ने स्प्रिंगर वनाम संयुक्त राज्य (Springer vs United States) के मुकदमे का निर्णय देते हुए कहा कि मतदान कर तथा वास्तविक कर ही प्रत्यक्ष कर थे, परन्तु आयकर प्रत्यक्ष कर न था। इसी प्रकार १८९४ में जब कांग्रेस ने ४ हजार प्रति डालर पर २ प्रतिशत का आयकर लगा दिया जिसमें कृषि आय भी सम्मिलित थी। अतः यह प्रश्न तय करने के लिए कि कांग्रेस जनसंख्या के आधार पर इस प्रकार का आयकर लगा सकती है अथवा नहीं। जब मुकदमा उच्चतम न्यायालय के सम्मुख पेश किया तो उच्चतमन्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि यह कर असंवैधानिक है। जिसके फलस्वरूप सन् १९१३ के संविधान के १६ वें संशोधन में यह बात स्पष्ट कर दी गयी कि कांग्रेस को राज्यों के नागरिकों पर आयकर लगाने का पूर्ण अधिकार है।

संघ सरकार तथा राज्य-सरकारों द्वारा लगाये हुए करों पर कुछ उपलक्षित सीमाएँ भी हैं। प्रथम सामान्य उपाशय उच्चतम न्यायालय द्वारा मैकुलोक बनाम मैरीलैण्ड (Meccullock vs Maryland) नामक प्रसिद्ध मुकदमें के निर्णय में दिया गया था कि यदि राज्य-सरकारें संघ सरकार पर कर लगावेंगी तो संघीय सरकार को अपनी कार्यप्रणाली को कार्यान्वित करने में बाधायें पड़ेंगी और अब वही सिद्धान्त पूर्ण रूप से दोनों प्रकार की सरकारों के लिये सिद्ध प्रमाण हो गया है कि न तो संघ सरकार राजकीय कर्मचारियों के वेतन पर कर लगा सकती हैं और न राज्य सरकारें संघ के आफीसरों पर कर लगा सकती हैं। इसी प्रकार धन उत्पादन सम्बन्धी साहसी लोगों पर एक सरकार दूसरी सरकार के निवासियों पर कर

नहीं लगा सकती है। जिसका परिणाम यह हुआ है कि कि राज्य सरकारें राष्ट्रीय वन्धपत्रों (Bonds) द्वारा आय पर कर नहीं लगा सकती हैं। इसी प्रकार संघ सरकार भी राज्यों एवं स्थानीय वन्धपत्रों द्वारा आयी हुई आय पर कर नहीं लगा सकती है। इससे व्यापारियों को निःशुल्क परिपत्रों पर लाखों डालर व्यय करने का मौका मिल गया है।

गृह युद्ध ने संघीय सरकार को बहुत से नवीन करों को लगाने के लिये भी वाध्य किया था जिनमें से बहुत तो युद्ध समाप्त होने पर समाप्त हो गये और बहुत से आज तक विद्यमान हैं। दोनों विश्व महायुद्धों तथा अन्य आपत्तिकालीन समयों ने अमरीकी वित्त प्रणाली पर बहुत अधिक प्रभाव डाले हैं। सन् १९१७ में जब संयुक्त राज्य अमरीका ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी उस समय संघ सरकार को अपने कर सम्बन्धी कानूनों को दोहराना पड़ा था जिसके परिणामस्वरूप बहुत से अन्य कानून पारित किये गये थे, कर बढ़ाये गये थे और नये संघीय कर लगाये गये थे। तम्बाकू पर भी कर बढ़ा दिया गया था। नये करों में डाक-तार, रेल, आभूषण आदि कर सम्मिलित थे। कारपोरेशन तथा व्यक्तिगत लोगों पर भी कर बढ़ाये गये थे। यह वह समय था जब कि अमरीकन इतिहास में सर्वप्रथम व्यापार के लाभ पर कर लगाया गया था। इस प्रकार राष्ट्र की आय कई भागों में विभाजित हो गयी थी। युद्धकालीन समय में संयुक्त राज्य अमरीका का व्यय बहुत अधिक बढ़ गया था अतः युद्ध समाप्त होने पर नवीन अथवा बढ़ाये हुए कर समाप्त न किये गये थे, क्योंकि अमरीका के ऊपर बहुत ऋण हो गया था उसका उसे व्याज चुकता करना था इसके अतिरिक्त कर्मचारियों का वेतन तथा पेंशन भी देना था।

राष्ट्रीय व्यय का दूसरा कारण यह था कि सन् १९२९ में राष्ट्र के ऊपर आर्थिक आपत्ति आ पड़ी थी इसलिये संघीय सरकार द्वारा लगाये हुए कर अधिकतर ज्यों का त्यों रहे। सन् १९२९ के पूर्व संघ सरकार के ऊपर कोई ऐसी आपत्ति न थी क्योंकि यह उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर रहता था। परन्तु जब सन् १९३३ में आर्थिक दशा शोचनीय हो गयी तब राष्ट्र प्रशासक रूजवेल्ट ने उसे सँभालने के लिये एक नया कदम उठाया। बेकारी की समस्या को हल करने के लिये जनता के बहुत से कार्य अपने हाथ में ले लिये और एक एक विषय पर ५-५ लाख डालर व्यय किये। कांग्रेस ने कृषि समायोजना विधि पारित किया, जिसमें राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया कि वह कृषि की कमी को पूरा करने के लिये कुछ व्यवसायों पर नये कर लगा सकता है। द्वितीय महायुद्ध में राष्ट्र को धन की अत्यावश्यकता पड़ी। संघीय कर संख्या तथा मात्रा में अधिक बढ़ा दिये गये। इन करों से जो आय होती थी वह न केवल युद्ध

पर ही व्यय की जाती थी किन्तु अन्य मदों पर भी खर्च होती थी जिसके कारण राष्ट्रीय ऋण पर बहुत सा व्याज प्रति वर्ष देना पड़ता था।

सन् १८०० से संयुक्त राज्य की सरकार लगातार कर बढ़ाती ही चली आ रही है। सन् १८०० में सरकार ने प्रति व्यक्ति पर दो डालर से कुछ अधिक कर लगाया था और यही कर ६० वर्षों तक चलता रहा। सन् १८६० के पश्चात् व्यय जनसंख्या से अधिक बढ़ गया और सन् १९१४ के पूर्व तक प्रत्येक व्यक्ति ८ डालर तक कर देता रहा और यह कर द्वितीय महायुद्ध तक ८ डालर से ६० डालर हो गया। पुराने अनुभव इस बात को स्पष्ट करते हैं कि युद्ध के बाद करों में कोई कमी नहीं आयी बल्कि कर बढ़ कर दुगने तथा तिगुने अवश्य ही हो गये।[1] ट्रूमैन के शासनकाल में भी सामाजिक संरक्षण, कार्यक्रम (Social Security Programme) के कारण भी व्यय में वृद्धि हो गयी थी।

सामाजिक संरक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत राष्ट्रीय सरकार अधिकतर राज्यों को राजसहायता देती है परन्तु ऐसी दशा में राष्ट्रीय सरकार राज्य सरकारों के सम्मुख कुछ शर्तें रखती है और राज्य सरकारों को उन्हें मानना पड़ता है। परन्तु ऐसी दशा तभी उपस्थित होती है जब राज्य सरकारें संघ सरकार से आर्थिक सहायता लेती हैं लेकिन राज्य सरकारें इसके लिये बाध्य नहीं हैं कि संघ सरकार से राज्य सहायता लें ही। ३० जून सन् १९४० के वर्ष के अन्त में संघ सरकार ने राज्य सरकारों को राज्यों की कृषिक उन्नति, जंगल, स्कूल आदि की उन्नति के लिये ६५० लाख डालर राज सहायता के रूप में दिया था।

स्विटज़रलैण्ड की राजस्व प्रणाली

स्विट्जरलैण्ड में न ही अधिक धनवान परिवार निवास करते है और न ही अधिक निर्धन। वहाँ के निवासी सदैव प्रसन्न चित्त रहते हैं। उपरोक्त बातों का प्रभाव संघ सरकार की वित्त प्रणाली पर भी पड़ा है। संविधान, प्रसंधि को दस्तावेज़ पर टिकट कर, विनमय पत्र पर कर तथा बीमा शुल्क नामक विषयों पर कर लगाने का अधिकार देता है। इसके अतिरिक्त प्रसंधि को संविधान द्वारा व्यापार तथा परिवहन पर भी कर लगाने का अधिकार प्राप्त है पर प्रसंधान को पृथ्वी-सम्पत्ति तथा बन्धन (Mortage) पर कर लगाने का अधिकार नहीं प्राप्त है। टिकट कर का १।५ भाग कैन्टनों

---

1. Godshall, W. L., **Principles and Functions of Government in the United States,** p. 537.

को दिया जाता है। प्रसंधान को तम्बाकू के कच्चे तथा पक्के माल पर कर लगाने का भी अधिकार दिया गया है।

प्रसंधान का व्यय संघीय सम्पत्ति, संघीय सीमाकर, डाक तथा तार, बन्दूक, मसाले कैन्टनों द्वारा संघीय विधान मण्डलों की देन द्वारा चलता है।

स्विट्जरलैण्ड चूँकि एक प्राकृतिक देश है अतः दूसरे संघीय देशों की अपेक्षा इसे अपनी रक्षा के लिए बहुत ही कम धन की आवश्यकता पड़ती है। जैसा कि दूसरे देश अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण अपनी आय का सबसे अधिक व्यय अपनी रक्षा पर करते हैं वैसा यहाँ नहीं है। यही कारण है कि स्विट्जरलैण्ड को यह सुअवसर प्राप्त है कि वह अपना धन एवं शक्ति दूसरे कार्यों में लगा सकता है। अभी हाल में ही प्रसंधि सरकार ने कैन्टनों की आवश्यकता के लिये खाद्य सामग्री संग्रहालय करने का उत्तरदायित्व ले लिया है। इससे संघ सरकार का व्यय अधिक बढ़ गया है। द्वितीय महायुद्ध के अन्तर्गत ३० अप्रैल सन् १९४० को संघीय परिषद् (Federal Council) की आज्ञप्ति की असाधारण शक्ति को ग्रहण किया गया था। बाद को २१ दिसम्बर १९४५ को एक आपत्तिकालीन संघीय आज्ञप्ति ग्रहण की गयी थी, तत्पश्चात् ४ वर्ष के लिए विशेष वित्तीय व्यवस्था की गयी थी। उसके पश्चात् आपत्तिव्यवस्था जो जनसंख्या द्वारा ३ दिसम्बर सन् १९५० को 'रेफरेन्डम' द्वारा मानी गयी भविष्य के लिये पारित की गयी थी।

संघों की आधुनिक प्रवृतियों द्वारा केन्द्रीय सरकार की प्रशासकीय तथा वित्तीय शक्तियाँ बढ़ती जा रही हैं जिसके परिणामस्वरूप राज्यों की शक्तियाँ कम होती जा रही हैं। यह आधुनिक प्रवृतियाँ राजनीति के दो विशेष विशेषताओं का परिणाम है। सर्वप्रथम राज्यों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार ही राज्यों की राजनीति का एक आवश्यक अंग बन गया है। अतः इसका प्रभाव राज्यों के कार्यों पर पड़ता है जिसके परिणाम यह हुए हैं कि सभी राज्यों को विश्व के साथ मित्रता, शान्ति तथा मनुष्यों के अधिकारों की ओर ध्यान रखना पड़ता है। द्वितीय प्रत्येक राज्य का यह कर्त्तव्य हो गया है कि वह अपने राज्य को एक कल्याणकारी राज्य बनावे। परन्तु यह उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार ने ले लिया है क्योंकि इकाई राज्यों के पास कल्याणकारी राज्य बनाने के लिए यथाशक्ति साधन नहीं है जिसके परिणामस्वरूप संघ की कर लगाने की शक्ति बढ़ती जा रही है। यद्यपि सन् १८७४ के संविधान में संघ सरकार की कर प्रणाली पर प्रतिबन्ध लगे हुए थे। मौलिक संविधान में कहा गया था कि यदि कैन्टनों के बजट में कमी पड़ जाय तो कैन्टन केन्द्र सरकार से निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा के लिए केन्द्र से

आर्थिक सहायता ले सकते हैं।[1] और यह भी कहा गया था कि यदि केन्द्र सरकार को यह ज्ञात हो कि उसके बजट में कमी है तो वह कैन्टनों से आर्थिक सहायता ले सकती है।[2] परन्तु पिछले ८५ वर्ष में केन्द्र सरकार की वित्तीय, प्रशासकीय और यहाँ तक कि विधायिनी शक्तियाँ जिसमें श्रमिकों का बीमा, चिकित्सालय की सुविधा तथा अच्छे घरों की समस्याएँ भी सम्मिलित है, की सीमाओं में पूर्ण परिवर्तन होते जा रहे हैं।

भारतवर्ष में संघीय वित्त-पद्धति

प्रत्येक सरकार को अपनी कार्यप्रणाली को कार्यान्वित करने के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है। इकाई राज्यों में धन वसूल करने के साधनों की खोज, करों की स्थापना, करों के वसूल करने के तरीके तथा करों को किस प्रकार से प्रयोग किया जा रहा है तथा उस पर नियंत्रण आदि समस्याओं को अनुसंधानिक करने का ही केवल प्रश्न रहता है जब कि संघ राज्यों में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के मध्य वित्त का विभा-जन ही सब से प्रमुख प्रश्न रहता है। प्रत्येक संघ अपनी कठिनाइयों को दृष्टिकोण में रखते हुए इन समस्याओं का निवारण करता है।

सन् १९५० के भारत संघ के संविधान का सर्वप्रथम ढाँचा तैयार किया गया था। तत्पश्चात् उसे कार्यरूप में लाया गया था। अत: सामान्य वित्तीय ढाँचा जो स्वतंत्रता के पूर्व प्रचलित था पूर्ण रूप से गायब न हो सका अत: संविधान की वित्तीय व्यवस्था समझने के लिए हमें पहले वित्तीय प्रणाली को समझना पड़ेगा।

सन् १९४९ के पूर्व की वित्तीय प्रणाली

स्वतंत्रता के पूर्व जो वित्तीय प्रणाली प्रचलित थी वह ९० वर्षों के क्रमिक विकास का ही फल था। सन् १८५८ में जब अंग्रेज़ों ने राजा के रूप में शासन करना प्रारम्भ किया था उस समय प्रशासन में अत्यधिक केन्द्रीयकरण था जिसके अन्तर्गत गवर्नर जनरल प्रान्तीय आय तथा व्यय पर पूर्ण नियंत्रण रखता था। प्रान्तीय सरकारें अत्य-धिक कर लगाने के अतिरिक्त पृथ्वी पर भी कर लगा सकती थीं और शेष करों को लगाने के शक्ति केन्द्रीय सरकार में विद्यमान थी। मिस्टर जेम्स विल्सन जो कि अपने समय का माना हुआ अर्थशास्त्री था और 'दि इकोनामिस्ट' नामक समाचार पत्र का संस्थापक था, भारत का प्रथम वित्तमंत्री नियुक्त किया गया। उस समय भारत तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी से युद्ध चल रहा था अत: भारत पर बहुत सा कर्ज हो गया था।

---

१. अनु० २७, १८७४ का संविधान।
२. अनु० ४२, (९), **Ibid.**

अत: विल्सन के सम्मुख यह आर्थिक समस्या खड़ी हो गयी, क्योंकि आय का ५० प्रतिशत भाग केवल सेना पर खर्च किया जा रहा था। यद्यपि विल्सन दस ही महीने तक कार्य किया, परन्तु इस थोड़े काल में ही उसने सेना तथा प्रशासन के अन्य विभागों का खर्च बहुत कम कर दिया और भारत में पहली बार आयकर लगाया गया। इसने नोट भी जारी किये और लेखा संपरीक्षा में नये सिद्धान्त लागू किये।[1] परन्तु वित्तीय कठिनाई के कारण वह प्रान्तीय आय पर केन्द्रीय नियंत्रण को कम न कर सका।

सन् १८७० में लार्ड मेवो (Lord Mayo) की सरकार ने केन्द्र के कुछ विभागों का शासन प्रान्तीय सरकारों को दे दिया। दिए हुए विभागों के प्रशासन को चलाने के लिए प्रान्तीय सरकारों को एक निश्चित धन दिया गया। इन विभागों में शिक्षा, पुलिस तथा चिकित्सा ऐसे विभाग थे जिनसे कोई आय नहीं होती थी बल्कि व्यय ही होते थे। सन् १८७७ में पुन: विकेन्द्रीयकरण की ओर कदम उठाये गये। टिकट कर, नशीली वस्तुओं पर कर तथा आयकर जो प्रान्तों द्वारा वसूल किये जाते थे वह उन्हीं प्रान्तों को वापस कर दिये गए। तत्पश्चात् १८८२ में कहा गया कि जो विभाग जिस सरकार के पास हैं उनका व्यय वह स्वयं चलावें। इस प्रकार प्रान्तीय सरकारों का उत्तरदायित्व धीरे-धीरे बढ़ने लगा और सन् १९१२ में एक संकल्प पारित किया गया।

उसी काल में लेखकों ने एक योजना का सुझाव दिया था जिसके अनुसार सीमा-शुल्क, मद्यसाररहित कर जिसमें नमक भी सम्मिलित था, सामान्य स्टाम्प कर, रेलवे कर, डाक तथा तार घर नामक कर केन्द्रीय सरकार द्वारा लागू करना चाहिए था, जब कि पृथ्वी कर, सिंचाई कर, मद्यसार कर, जंगल कर, न्यायालय शुल्क स्टैम्प कर, निबन्ध शुल्क तथा अन्य छोटे-छोटे आय के साधन प्रान्तीय सरकारों के पास रहना चाहिए था। इससे यह सिद्ध होता है कि संघ के पास आय के साधन कम थे और राज्य सरकारें अपने बढ़े हुए धन से केन्द्र सरकार को वार्षिक देन के रूप में धन देती थीं; जैसा कि मेस्टन परिशोधन (Meston Settlement) के अनुसार निश्चित हुआ था जिसका परिणाम यह हुआ था कि प्रान्तीय सरकारों की कठिनाई धीरे धीरे बढ़ने लगी थी और १९१९ के बाद तो प्रान्तीय सरकारों की आर्थिक दशा तो और भी शोचनीय हो गयी थी।

सन् १९३५ के सुधार के अनुसार आय के साधन संघ तथा राज्य सरकारों के मध्य में विभाजित कर दिये गए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत की संविधायक सभा

---

1. **Report of the Indian Statuary Commission**, Vol. I, para. 388.

ने वित्त के विषय में एक विशेषज्ञ समिति की नियुक्ति की। इस समिति की संस्तुतियाँ (Recommendations) सन् १९३५ के भारतीय ऐक्ट के अनुसार ही निर्धारित की गयी थीं। अतः केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के मध्य कर सम्बन्धी बटवारा १९३५ के आधार पर ही किया गया। संविधान की ७ वीं अनुसूची में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के आय के साधन उल्लिखित कर दिये गए। सूची १ में संघ सरकार तथा सूची २ में राज्य सरकारों के अधिकारों का वर्णन किया गया है।

सूची १ में केन्द्र सरकार के आय के साधन निम्नलिखित हैं :—

(८२) कृषि आय को छोड़ कर अन्य आय पर कर।

(८३) सीमा-शुल्क जिसके अन्तर्गत निर्यात-शुल्क भी है।

(८४) भारत में निर्मित या उत्पादित तमाकू तथा—

(क) मानव उपभोग के मद्यसारिक पानों;

(ख) अफीम, भाँग और अन्य पिनक लाने वाली औषधियों तथा स्वापकों, को छोड़कर, किन्तु ऐसी औषधियों और प्रसाधनीय सामग्री को अन्तर्गत करके, जिनमें कि मद्यसार अथवा उक्त प्रविष्टि की उपकंडिका (ख) में का कोई पदार्थ अन्तर्विष्ट हो, अन्य सब वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क।

(८५) निगम-कर ।

(८६) व्यक्तियों या समवायों की आस्ति में से कृषि-भूमि को छोड़कर उसके मूलधन-मूल्य पर कर, समवायों के मूलधन पर कर।

(८७) कृषि भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पत्ति के बारे में सम्पत्ति-शुल्क।

(८८) कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार के बारे में शुल्क।

(८९) रेल, समुद्र या वायु से ले जाये जानेवाला वस्तुओं या यात्रियों पर सीमाकर, रेल के जनभाड़े और वस्तुभाड़े पर कर।

(९०) मुद्रांक-शुल्क को छोड़कर श्रेष्ठि-चत्वर और वादा बाजार के सौदों पर कर।

(९१) विनिमय-पत्रों, चेकों, वचन-पत्रों, वहन-पत्रों, प्रत्यय-पत्रों, बीमा पत्रों, अंशों के हस्तान्तरण, ऋण पत्रों, प्रति-पत्रियों और प्राप्तियों के सम्बन्ध में लगनेवाले मुद्रांक शुल्क की दर।

(९२) समाचार पत्रों के क्रय या विक्रय पर तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।

९२ (क) समाचार पत्रों से भिन्न वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर उस सूरत में कर जिसमें कि ऐसा क्रय या विक्रय अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य की चर्या में हो।

(९५) उच्चतम न्यायालय को छोड़कर अन्य न्यायालयों के इस सूची में के विषयों में से किसी के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ, नावाधिकरण-क्षेत्राधिकार।

(९६) किसी न्यायालय में लिए जानेवाली फीसों को छोड़कर इस सूची में के विषयों में से किसी के वारे में फीस ।

(९७) सूची (२) या (३) में से किसी में अवर्णित किसी कर के सहित उन सूचियों में अप्रगणित कोई अन्य विषय ।

प्रान्तीय सरकारों के आय के साधनों की वर्णन सूची (२) में निम्न प्रकार किया गया है ।

(४५) भूराजस्व जिसके अन्तर्गत राजस्व का निर्धारण और संग्रहण, भू-अभिलेखों को बनाये रखना, राजस्व प्रयोजनों के लिए और स्वत्व-अभिलेखों के लिए परिमाप और राजस्व का अन्य-संक्रामण भी है ।

(४६) कृषि-आय पर कर ।

(४७) कृषि-भूमि के उत्तराधिकार के विषय में शुल्क ।

(४८) कृषि-भूमि के विषय में सम्पत्ति-शुल्क ।

(४९) भूमि और भवनों पर कर ।

(५०) संसद से, विधि द्वारा, खनिज विकास के सम्बन्ध में लगायी गई परिसीमाओं के अधीन रहते हुए खनिज अधिकार पर कर ।

(५१) राज्य में निर्मित या उत्पादित निम्नलिखित वस्तुओं पर उत्पादन-शुल्क तथा भारत में अन्यत्र निर्मित या उत्पादित तत्सम वस्तुओं पर उसी या कम दर से प्रति शुल्क—

(क) मानव उपभोग के लिए मद्यसारिक पान;

(ख) अफीम, भाँग और अन्य पिनक लाने वाली औषधियाँ और स्वापक किन्तु ऐसी औषधीय और प्रसाधनीय सामग्रियों को छोड़कर जिनमें मद्यसार अथवा इस प्रविष्टि की उपकंडिका (ख) में का कोई पदार्थ अन्तर्विष्ट हो ।

(५२) किसी स्थानीय क्षेत्र में उपभोग, प्रयोग या विक्रय के लिए वस्तुओं के प्रवेश पर कर ।

(५३) विद्युत के उपभोग या विक्रय पर कर ।

(५४) सूची १ की प्रविष्टि ९२ क के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, समाचार पत्रों से भिन्न वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर ।[1]

---

१. संविधान (षष्ट संशोधन) १९५६, धारा २ द्वारा मूल प्रविष्टि ५४ के स्थान पर रखी गयी ।

(५५) समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर।

(५६) सड़कों या अन्तर्देशीय जलपथों पर ले जाये जाने वाले वस्तुओं और यात्रियों पर कर।

(५७) सड़कों पर उपयोग के योग्य यानों पर, चाहे वे यंत्रचालित हों या न हों तथा जिनके सूची ३ के प्रविष्टि ३५ के उपबन्धों के अधीन ट्राम-गाड़ियाँ भी अन्तर्गत है, कर।

(५८) पशुओं और नौकाओं पर कर।

(५९) पथ-कर।

(६०) वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर कर।[1]

(६१) प्रतिव्यक्ति-कर।

(६२) विलास वस्तुओं पर कर, जिनके अन्तर्गत आमोद, विनोद, पण लगाने और जुआ खेलने पर भी कर हैं।

(६३) मुद्रांक-शुल्क की दरों के सम्बन्ध में सूची (१) के उपबन्धों में उल्लिखित दस्तावेज़ों को छोड़कर अन्य दस्तावेज़ों के बारे में मुद्रांक-शुल्क की दर।

(६६) किसी न्यायालय में ली जाने वाली फीसों को छोड़कर इस सूची में के विषयों में से किसी के बारे में फीस।

संविधान के भाग १२ अध्याय १ के अनुच्छेद २६५-२९१ वित्त के बारे में बताते हैं। अनुच्छेद २६५ के अनुसार विधि के प्राधिकार के सिवाय कोई कर न तो आरोपित, न संगृहीत किया जायगा। अनुच्छेद २६६ कहता है "इस अध्याय के उपबन्धों के अधीन रहते हुए भारत सरकार द्वारा प्राप्त सब राजस्व, राजहुंडियों को निकाल कर, उधार द्वारा और अर्थोपाय पेशगियों द्वारा लिये गये सब उधार, तथा उधारों के प्रतिदिन में उस सरकार को प्राप्त सब धनों की एक संचित निधि बनेगी जो 'भारत की संचित निधि' के नाम से ज्ञात होगी तथा राज्य की सरकार द्वारा प्राप्त सब राजस्व, राजहुंडियों को निकाल कर, उधार द्वारा और अर्थोपाय पेशगियों द्वारा लिये गए सब उधार, तथा उधारों के प्रतिदिन में उस सरकार को प्राप्त सब धनों की एक संचित निधि बनेगी जो 'राज्य की संचित निधि' के नाम से ज्ञात होगी।"

अन्य सब सार्वजनिक धन जो भारत की सरकार या राज्य की सरकार द्वारा या अन्य की ओर से प्राप्त होंगे वे यथास्थिति भारत के या राज्य के लोक-लेखे (Public

१. जम्मू और काश्मीर के लिए नहीं है।

Account) में जमा किये जावेंगे। अनुच्छेद २६७ संसद, अथवा राज्य के विधान-मण्डल को आकस्मिकतानिधि की स्थापना करने की शक्ति देता है जिसमें विधि द्वारा निर्धारित राशियाँ समय समय पर डाली जायेंगी तथा राज्य के विधानमण्डल द्वारा, विधि द्वारा प्राधिकृत होना लम्बित रहने तक ऐसी निधि में से ऐसे व्यय की पूर्ति के लिये अग्रिम धन देने के लिए उसको योग्य बनाने के हेतु ऐसी निधि राज्य के राज्यपाल के हाँथ में रखी जावेगी ।

ऐसे मुद्रांक शुल्क तथा औषधीय और प्रसाधनीय सामग्री पर उत्पादन शुल्क, जो संघ सूची में वर्णित है, भारत सरकार द्वारा आरोपित किए जावेंगे, परन्तु राज्यों द्वारा वसूल किये जावेंगे।[1] निम्नलिखित शुल्क और कर भारत सरकार द्वारा आरोपित और संगृहीत किये जायेंगे, किन्तु राज्यों को खण्ड (२) में उपबन्धित रीति से सौंप दिये जायेंगे :—

(क) कृषि-भूमि से अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार विषयक शुल्क;

(ख) कृषि-भूमि से अन्य सम्पत्ति-विषयक शुल्क;

(ग) रेल, समुद्र या वायु से वाहित वस्तुओं या यात्रियों पर सीमाकर;

(घ) रेलभाड़ों और वस्तु भाड़ों पर कर;

(ङ) श्रेष्ठि-चत्वरों और वायदा बाजारों के सौदों पर मुद्रांक-शुल्क से अन्य कर।

(च) समाचार पत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर ;

(छ) [2]समाचार पत्रों से भिन्न वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर उस दशा में कर जिसमें कि ऐसा क्रय या विक्रय अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य की चर्या में हो ।

कृषि-आय के अतिरिक्त आय पर करों को भारत सरकार द्वारा उद्गृहीत और संगृहीत किया जायेगा तथा समय समय पर निर्धारित रीति के अनुसार संघ और राज्यों के बीच वितरित किया जायगा।[3] लेकिन संसद दोनों अनुच्छेदों में निर्दिष्ट शुल्कों या करों में से किसी को भी किसी समय संघ के प्रयोजनों के लिए अधिभार द्वारा वृद्धि कर सकती है।[4]

संसद, औषधीय तथा प्रसाधन-सामग्री पर उत्पादन शुल्क के अतिरिक्त शुल्क

---

१. अनु० २६८।

२. संविधान (षष्ठ संशोधन) अधिनियम, १९५६, धारा ३ द्वारा अन्तःस्थापित।

३. अनु० द २७०।

४. अनु० द २७१।

राज्य सरकार को दे सकती है[1] जब कि पटसन या पटसन से बनी हुई वस्तुओं पर भारत सरकार कर निर्धारित करती है, परन्तु संसद आगम के किसी भाग को आसाम, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और बिहार राज्यों को सौंपने के स्थान में उन राज्यों के राजस्व में सहायक अनुदान के रूप में प्रत्येक वर्ष में भारत की संचित निधि पर ऐसी राशियाँ भारित की जायेंगी जैसे कि विहित की जावें ।[2]

अनुच्छेद २७४ (१) कहता है "कोई विधेयक या संशोधन, जिस कर या शुल्क में राज्यों का हित सम्बद्ध है, उसको आरोपित या अपरिवर्तित करता है, अथवा, जो भारत आयकर से सम्बन्ध अधिनिमितियों के प्रयोजनों के लिए परिभाषित 'कृषि-आय' पदावलि के अर्थ को परिवर्तित करता है, अथवा जो उन सिद्धान्तों को प्रभावित करता है जिनसे कि इस अध्याय के पूर्ववर्ती उपबन्धों में से किसी के अधीन राज्यों को धन वितरणीय हैं या हो सकेंगे, अथवा जो संघ के प्रयोजन के लिए ऐसा कोई अधिभार आरोपित करता है जैसा कि इस अध्याय के पूर्ववर्ती उपबन्धों में वर्णित है, राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना संसद के किसी सदन में न तो पुनः स्थापित और न प्रस्तावित किया जायेगा ।"

अनुच्छेद २७५ कतिपय राज्यों को संघ के अनुदान के बारे में कहता है :—

"(१) ऐसी राशियाँ, जो संसद विधि द्वारा उपबन्धित करे, उन राज्यों के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में प्रति वर्ष भारत की संचित निधि पर भारित होंगी जिन राज्यों के विषय में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है तथा भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न राशियाँ नियत की जा सकेंगी :—

परन्तु किसी राज्य के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में भारत की संचित निधि में से वैसी मूल तथा आवर्तक राशियाँ दी जायेंगी जैसी कि उस राज्य को उन विकास योजनाओं के खर्चों के उठाने में समर्थ बनने के लिए आवश्यक हों, जो उस राज्य के अन्तर्गत अनुसूचित आदिम जातियों के कल्याण की उन्नति करने के प्रयोजन के लिए अथवा उस राज्य के अन्तर्गत अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन-स्तर को उस राज्य के शेष क्षेत्रों के प्रशासन-स्तर तक उन्नत करने के प्रयोजन के लिए उस राज्य ने भारत सरकार के अनुमोदन से हाथ में ली हो ।

परन्तु यह और भी कि आसाम राज्य के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में भारत की संचित निधि में से वैसी मूल तथा आवर्तक राशियाँ दी जायेंगी—

---

१. अनु० २७२ ।

२. अनु० २७३ ।

(क) जो षष्ठ अनुसूची की कंडिका २० से संलग्न सारणी के भाग (क) में उल्लिखित आदिम जाति-क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले दो वर्ष में राजस्वों के औसतन अधिक व्यय के बराबर हों; तथा

(ख) जो उक्त क्षेत्रों के प्रशासन-स्तर को उस राज्य के शेष क्षेत्रों के प्रशासन-स्तर तक उन्नत करने के प्रयोजन के लिए उस राज्य द्वारा भारत सरकार के अनुमोदन से हाथ में ली गयी योजनाओं के खर्चों के बराबर हों।

(२) जब तक खण्ड (१) के अधीन संसद द्वारा उपबन्ध नहीं किया जाता तब तक उस खण्ड के अधीन संसद की प्रदत्त शक्तियाँ राष्ट्रपति के आदेश द्वारा प्रयोक्तव्य होंगी तथा इस खण्ड के अधीन राष्ट्रपति द्वारा दिया गया कोई संदेश अथवा आदेश संसद द्वारा इस प्रकार निर्मित किसी उपबन्ध के अधीन रह कर ही प्रभावी होगा।

परन्तु वित्त आयोग गठित हो जाने के पश्चात् वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार किये बिना इस खण्ड के अधीन कोई आदेश राष्ट्रपति द्वारा नहीं दिया जायेगा।"

अनुच्छेद २७६ राज्य-विधानमण्डल को राज्य या किसी नगरपालिका, जिला मण्डली, स्थानीय मंडली अथवा उसमें अन्य स्थानीय प्राधिकारी के हित साधन के लिए वृत्तियों, व्यापारों आजीविकाओं या नौकरियों के बारे में कर लागू करने का अधिकार देता है परन्तु एक राज्य के विधानमण्डल की शक्ति का अर्थ न किया जायगा कि वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों से प्रोद्भूत या उत्पन्न आय पर करों के विषय में विधियाँ बनाने की राष्ट्रपति की शक्ति किसी प्रकार सीमित की गयी है।[1]

अनुच्छेद २७७, जो कर, शुल्क उपकर या फीस, इस संविधान से ठीक पहले किसी राज्य की सरकार द्वारा अथवा किसी नगरपालिका या अन्य स्थानीय प्राधिकारी या निकाय द्वारा उस राज्य, नगर, जिला अथवा अन्य स्थानीय क्षेत्र के प्रयोजनों के लिए विधिवत् उद्गृहीत किये जा रहे थे, वे कर, शुल्क, उपकर या फीस संघ-सूची में वर्णित होने पर भी उद्गृहीत किये जाते रहेंगे।

१९५० के संविधान को अनुच्छेद २७८ जो १९५६ के सप्तम संशोधन द्वारा भारतीय सरकार तथा पूर्व भारतीय राज्यों का सम्बन्ध वर्णन किया गया है जो प्रथम सूची के 'ख' में दिये हुए थे। परन्तु सन् १९५६ के सातवें संशोधन ने उसका खण्डन कर दिया, क्योंकि जब राज्यों की स्वतन्त्रता की मान्यता समाप्त कर दी गयी उस समय से आपस का अन्तर भी समाप्त हो गया।

---

१. अनु० २७६।

अनुच्छेद २८० कहता है "(१) इस संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष के भीतर और तत्पश्चात् प्रत्येक पंचम वर्ष की समाप्ति पर, अथवा उसके पहले ऐसे समय पर, जिसे राष्ट्रपति आवश्यक समझे, राष्ट्रपति आदेश द्वारा एक वित्त-आयोग गठित करेगा जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एक सभापति और चार अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा।

(२) संसद विधि द्वारा उन अर्हताओं का, जो आयोग के सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए आपेक्षित होंगी, और उस रीति का, जिसके अनुसार उनका संवरण किया जावेगा, निर्धारण कर सकेंगी।

(३) आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह :—

(क) संघ तथा राज्यों के बीच में करों के शुद्ध आगम को, जो इस अध्याय के अधीन उनमें विभाजित होता है या होवे, वितरण के बारे में, तथा राज्यों के बीच ऐसे आगम के तत्सम्बन्धी अंशों के बँटवारे के बारे में,

(ख) भारत की संचित निधि में से राज्यों के राजस्वों के सहायक अनुदान देने में पालनीय सिद्धान्तों के बारे में,

([1]) × × × × × × × ×

(ग) [2] सुस्थित वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे हुए किसी अन्य विषय के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश करे।"

राष्ट्रपति इस संविधान के उपबन्धों के अधीन वित्त आयोग द्वारा की गयी प्रत्येक सिफारिश को, उस पर की गयी कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखायेगा।[3]

अनुच्छेद २८२ के अनुसार संघ या राज्य किसी सार्वजनिक प्रयोजन के हेतु कोई भी अनुदान दे सकते हैं।

भारत की निधि की अभिरक्षा जिसमें धन का डालना तथा उनसे धन का निकालना भी शामिल है संसद अथवा राज्य द्वारा निर्मित विधि से होगा।[4] संघ की सम्पत्ति राज्य के करों द्वारा छूटी रहेगी।[5] कोई भी राज्य राज्य के बाहर

---

१. उपखण्ड (ग) संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम, १९५६, धारा २९ और अनुसूची द्वारा लुप्त कर दिया गया है।

२. उपखण्ड (घ) उपरोक्त के ही द्वारा (ग) के रूप में पुनः अंकित किया गया।

३. अनु० २८१।

४. अनु० २८३।

५. अनु० २८५।

क्रय और विक्रय होने वाली वस्तुओं पर कर नहीं लगायेगा या भारत राज्य क्षेत्र में वस्तुओं के आयात अथवा उसके बाहर निर्यात के दौरान में होता है वहाँ कोई करारोपण न करेगी और न करना प्राधिकृत करेगी।[1] कोई भी राज्य विद्युत पर कर नहीं लगा सकती जो भारत सरकार द्वारा उपमुक्त है अथवा भारत सरकार उपभोग किये जाने के लिए उस सरकार को बेची गयी है अथवा "किसी रेलवे के निर्माण, बनाये रखने या चलाने में भारत सरकार या रेलवे समवाय द्वारा, जो उस रेलवे को चलाती है उपभुक्त है, अथवा किसी रेलवे के निर्माण, बनाये रखने या चलाने में उपभोग के लिए उस सरकार अथवा किसी ऐसे रेलवे समवाय को बेची गयी है; राज्य की कोई विधि कर नहीं आरोपित करेगी और न कर आरोपित करना प्राधिकृत करेगी तथा विद्युत के क्रय पर करारोपण करने, या करारोपित करना प्राधिकृत करनेवाली कोई ऐसी विधि यह सुनिश्चित करेगी कि भारत सरकार को उस सरकार द्वारा उपभोग किए जाने के लिए, अथवा किसी ऐसे रेलवे समवाय को, जैसा कि उपर्युक्त है, किसी रेलवे के निर्माण, बनाये रखने या चलाने में उपभोग के लिए, बेची गयी विद्युत का मूल्य उस मूल्य से, जो कि विद्युत की प्रचुर-मात्रा के अन्य उपभोक्ताओं से लिया जाता है, इतना कम होगा, जितनी कि कर की राशि है।"[2]

जहाँ तक कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा अन्यथा उपबन्ध करे उसको छोड़कर किसी राज्य में की कोई प्रवृत्त विधि किसी पानी या विद्युत के बारे में, जो अन्तर्राज्यिक नदियों या नदी दूनों के विनियमन या विकास के लिए किसी वर्तमान विधि से, अथवा संसद द्वारा बनाई गयी किसी विधि से, स्थापित किसी प्राधिकारी द्वारा जमा की गयी, पैदा की गयी, उपभुक्त, वितरित या बेची गयी है, कोई कर नहीं आरोपित करेगी और न कर आरोपित करना प्राधिकृत करेगी।[3]

राज्य की सम्पत्ति और आय संघ के कराधान से विमुक्त रहेगी परन्तु संसद राज्य सरकार के द्वारा किये जाने वाले किसी प्रकार के व्यापार या कारोबार के बारे में कर लगा सकती है।[4]

छियालिस लाख पचास हजार रुपये की राशि केरल राज्य की संचित निधि पर प्रत्येक वर्ष भारित होगी और उस निधि में से तिरुवांकुर देवस्वम् निधि को दी जावेगी और १३ लाख ५० हजार रुपये की राशि मद्रास राज्य की संचित निधि

---

१. अनु० २८६।
२. अनु० २८७।
३. अनु० २८८।
४. अनु० २८९।

पर प्रत्येक वर्ष भारित होगी और उस निधि से तिरुवांकुर कोचीन राज्य से १९५६ के नवम्बर के प्रथम दिन उस राज्य को संक्रांत राज्य क्षेत्रों में के हिन्दू मंदिरों और पवित्र स्थानों के पोषण के लिये उस राज्य में स्थापित देवस्वम् निधि को दी जायेगी।[1]

केन्द्र तथा राज्यों का सम्बन्ध

संघ शासन प्रणाली में केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्ध में सदा से ही एक समस्या रही है, क्योंकि बहुत सी ऐसी समस्यायें दोनों के सम्मुख रही हैं जिनके कारण वे एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखते रहे हैं। परन्तु संविधान की वास्तविक कार्यप्रणाली द्वारा दोनों सरकारों का उत्तरदायित्व क्रमशः बढ़ता जा रहा है। यह बात थामस जेफरसन के विचार से प्रमाणित होती है। वह कहता है कि "कानून तथा संस्थायें मानवीय मस्तिष्क की उन्नति के साथ साथ एक हाँथ से दूसरे हाँथ में जाना चाहिये और इस प्रकार से जैसे-जैसे उन्नति होगी, नवीन अन्वेषण होंगे, नवीन सत्य निकलेंगे, विचार बदलेंगे वैसे वैसे संस्थायें भी प्रगति करेंगी और समय के साथ शान्ति भी बढ़ेगी।" अतः नवीन विचारधारा के अनुसार राज्यों का कर्तव्य होगा कि "राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक कार्य साधन रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।"[2]

प्रारम्भिक काल में संघवाद एक राजनैतिक आवाज थी जिसमें दोनों बराबरी से नागरिकों के ऊपर शासन करती थी और दोनों सरकारों की सीमित शक्तियाँ थीं और एक दूसरे को उनके काम में कोई बाधा नहीं डालती थी। यद्यपि उन दोनों में प्रतियोगिता का भय अवश्य रहता था। परन्तु ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता गया त्यों-त्यों उसी प्रतियोगिता ने सरकारों के मध्य में सहयोग की भावना का जन्म दिया। १८वीं शताब्दी के अन्त तक राज्योंने राष्ट्रीय सरकारकी भावना को समाप्त न कर सके। और यही कारण था कि २०वीं शताब्दी में इसके परिणाम अच्छे ही हुए। १८वीं शताब्दी के अन्त तक की एक ही सरकार की भावना २०वीं शताब्दी में आकर पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गई। नागरिकों ने अपनी सरकार से अपने दैनिक जीवन के कल्याण की माँग की। ऐसी दशा में कोई भी सरकार अपनी सीमित शक्तियों के कारण अपने को न्यायिक न बना सकी। अतः अनिवार्य रूप से संघों की आधुनिक प्रवृत्तियाँ केन्द्र तथा राज्य सरकोरों के सहयोग को बढ़ाती जा

---

१. अनु० २९० (क)
२. अनु० ३२, भारतीय संविधान।

रही हैं। अब संघों की दोनों सरकारें नागरिक के नैतिक तथा सामाजिक जीवन की उन्नति पर ध्यान दे रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप केन्द्र तथा इकाई राज्यों में राष्ट्रीयता तथा अतर्राष्ट्रीयता की भावना बढ़ती जा रही है।

सैद्धान्तिक रूप से कहा जा सकता है कि संघवाद में दोनों सरकारों के अधिकार क्षेत्र बँटे हुए होते हैं और स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करते हैं परन्तु वास्तविक कार्यप्रणाली में अनुभव किया गया है कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के बिना सहयोग के कार्य-चलाना कठिन हो जाता है। अतः शासन प्रणाली को ठीक ढंग से चलाने के लिये आवश्यक हो जाता है कि संघ सरकार तथा राज्य सरकारें आपस में मिलकर कार्य करें तभी सुचारुरूप से कार्य चल सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीयता के नवीन सिद्धान्त के अनुसार संसार एक कुटुम्ब के समान हो गया है जिसमें राष्ट्रीय सरकार का उत्तरदायित्व बढ़ता जा रहा है। संयुक्त राज्य अमरीका ने दोबार पृथक्करण की नीति को अपनाने का प्रयत्न किया, परन्तु विश्व की परिस्थितियों के फलस्वरूप वह ऐसा न कर सका जिसके परिणामस्वरूप अब वह विश्व के पिछड़े हुए क्षेत्रों की उन्नति के लिये अत्यधिक उत्तरदायित्व लेता जा रहा है। यह भावना चाहे साम्यवाद के प्रभाव से बचने के लिये हो अथवा मनुष्यों की उन्नति के लिये। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय सरकार की शक्तियाँ बढ़ती जा रही हैं।

संघीय अथवा अर्धसंघीय संविधानों की कार्यप्रणाली में यद्यपि जैसे संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा स्विट्जरलैण्ड में केन्द्रीय सरकार को सीमित शक्तियाँ प्राप्त हैं परन्तु धीरे-धीरे राष्ट्रीय सरकार की शक्तियाँ बढ़ती जा रही है। दूसरी ओर जहाँ पर इकाइयों को निर्दिष्ट शक्तियाँ प्राप्त हैं वहाँ पर अवशेष शक्तियाँ केन्द्र के पास रह जाती हैं, जैसा कि कनाडा में है। ऐसी दशा में प्रान्तों के पास अधिक शक्तियाँ रहती हैं इस प्रकार का शान्तिपूर्ण परिवर्तन राष्ट्रीयता के संघीय विचारों के ऊपर प्रभाव डाल रहा है।

संयुक्त राज्य अमरीका में केन्द्र तथा राज्यों में सम्बन्ध

सन् १७७६ के प्रसंधान से १७८९ के संघ तक राज्यों एवं कांग्रेस के संवैधानिक सम्बन्ध में बहुत से परिवर्तन हो चुके हैं। १७८७ के संविधान में राष्ट्रीय सरकार को बहुत ही कम शक्तियाँ प्राप्त थीं। राज्यों को ही सभी शक्तियाँ प्राप्त थीं। केन्द्र की शक्तियाँ उल्लिखित न थीं। परन्तु अब जो उस समय राज्य सरकारें केन्द्र के ऊपर नियंत्रण रखती थीं और राष्ट्रपति तथा कांग्रेस अमरीकन निवासियों पर नियं-

त्रण रखते थे, वह अब बदल गया है। अतः इस प्रकार केन्द्र शक्तियों में जो परिवर्तन आया है उसका प्रभाव कई विशेष घटनाओं पर पड़ा है। निहित शक्तियों के सिद्धान्त अतिरिक्त भी जैसे १८६०–६४ का गृहयुद्ध, १९वीं शताब्दी के अर्धपूर्व का उद्योग आंदोलन, प्रथम तथा द्वितीय विश्व महायुद्ध की घटनाओं पर उपरोक्त बातों का ही प्रभाव था, इन्हीं घटनाओं के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार अमरीकन निवासियों के सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन पर नियंत्रण रखती हैं और राज्य सरकारें संघीय अनुदान द्वारा संघ सरकार से नियंत्रित रहती हैं।

राज्य की सीमायें बढ़ने के साथ-साथ संघ की सीमा भी बढ़ती जा रही है। नवीन वैज्ञानिक खोजों ने खनिज आवागमन, भार तथा वाहन एवं कृषि में हजारों वर्षों के प्राचीन तरीकों में परिवर्तन कर दिये। इन परिवर्तनों का सबसे अधिक प्रभाव कृषि पर पड़ा है और पैदावार कई गुना बढ़ गयी है। प्राकृत स्रोतों के अन्वेषण से यहाँ की जनसंख्या बढ़ती जा रही है। कांग्रेस ने विधियों द्वारा जनसंख्या के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में विघ्न डालने लगी है। रेलवे लाइन के चलने से, तार के विषय प्रवेश से और निर्वासन के निर्माण से अमरीका की आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में परिवर्तन आता जा रहा है। जहाँ पर औद्योगिक उन्नति होती जा रही थी वहीं पर श्रमिकों ने निर्धनता को लेकर एक विधि पारित करने की माँग की। उद्योग की उन्नति के साथ साथ अमरीका निवासियों ने समाज और सरकार, उद्योग तथा कृषि, स्त्री तथा पुरुषों के अधिकारों की ओर ध्यान दिया और उनमें सुधार किये और अनेक सुधारों की ओर सरकार का ध्यान दिलाया और अन्त में वे लोग राजनैतिक दलों को अवगत कराने के लिए विवश हो गये।[1] स्थानीय विचारों ने भी राष्ट्रीय कानूनों, आचार, विचार तथा सामाजिक समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया। उपरोक्त बातों ने संघ को दृढ़ बनाने के लिये विवश किया और प्रजातन्त्र की भावना को बढ़ाने के लिये अग्रसर किया। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता के बढ़ाने के साथ-साथ राष्ट्रीय सरकार के उत्तरदायित्व भी बढ़ते गये। ऐसे समय में राज्य सरकारें चुप रहीं क्योंकि देश की समस्यायें स्वयं राष्ट्रीय सरकार सुलझा रही थी। इसी समय में राष्ट्रपति का चुनाव एक प्रमुख प्रश्न हो गया, जिसके परिणामस्वरूप प्रादेशीय राजनैतिक दल राष्ट्रीय राजनैतिक दल में परिवर्तत हो गये।

१९वीं शताब्दी के मध्य में अमरीका के दक्षिण के राज्यों ने कांग्रेस के कुछ कानूनों का अपमान किया, परन्तु बाद को समझौता के रूप में उन राज्यों ने उन्हें पुनःस्वीकार

1. **Basic History of the United States,** p. 204.

किया। धीरे-धीरे जब से राष्ट्रीय सरकार ने देश का निर्माण कार्य अपने हाथों में ले लिया तभी से उसकी शक्तियाँ धीरे-धीरे बढ़ती गयीं। बाद की इन शक्तियों की पुष्टी संघीय न्यायालय ने की। देश की सामाजिक, आर्थिक कानून तथा नवीन करों ने १९वीं शताब्दी के अन्त तक केन्द्रीयकरण का रूप धारण कर लिया।

जब संयुक्त राज्य अमरीका ने प्रथम विश्व महायुद्ध में भाग लिया और १६ अप्रैल सन् १९१७ को राष्ट्रपति विल्सन ने कांग्रेस से युद्ध संकल्प पारित करने के लिये कहा। उसी समय से राष्ट्रपति का श्रम, उद्योग, खाद्यपदार्थ के वितरण आदि पर पूर्ण नियंत्रण ज्ञात होता है। उसी समय से सरकार ने एक नियम के अनुसार भाषण एवं प्रेस की स्वतन्त्रता को केन्द्र सरकार ने अपने पास रख लिया। जब से अमरीका में कार्य फैक्टरियों द्वारा होने लगा तभी से अमरीका स्मृद्धिशाली बनने लगा और युद्ध के समाप्त होते-होते अमरीका एक धनवान देशों में गिना जाने लगा। परन्तु युद्ध के समाप्त होते ही उसे सामाजिक तथा आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। राष्ट्रपति होवर (Hoover) जो १९२९ से १९३३ तक राष्ट्रपति रहा, बेकारी की समस्या को सर्वप्रथम लिया, क्योंकि उस समय उसकी दशा अति ही दयनीय थी। इस समस्या का प्रभाव ५ लाख व्यक्तियों के ऊपर पड़ा। उसने शैशव श्रम को समाप्त कर दिया तथा श्रमिकों के सुन्दर घरों, संघों, जनस्वास्थ्य तथा नागरिकों के खुशहाल जीवन की ओर ध्यान दिया। उपरोक्त सुधारों द्वारा निश्चित रूप से राष्ट्रीय शक्तियों में वृद्धि हुई। राष्ट्रपति होवर के बाद राष्ट्रपति रूजवेल्ट राष्ट्रपति बने। रूजवेल्ट ने अपनी नीति द्वारा आर्थिक कठिनाइयों का सामना किया। उसने राष्ट्रीय सरकार की शक्तियों में भी वृद्धि की। यही कारण था कि आर्थिक कठिनाइयों को सुलझाने के लिये उसने बहुत सी शक्तियों को अपने हाथों में ले लिया इन शक्तियों द्वारा रूजवेल्ट ने प्रत्यक्ष रूप से उस समय की बेकारी, परेशानी तथा निर्धनता की ओर विशेष ध्यान दिया और तत्कालीन भूखपीड़ा तथा असहाय लोगों की सहायता के लिये लाखों डौलर व्यय किया। स्थानीय तथा राज्यों की सहायता से संघीय सरकार ने लाखों बेकार लोगों को नौकरियाँ दिलवायी और बहुत सी प्रयोजनायें भी चलायीं।

सन् १९३५ में सामाजिक संरक्षण ऐक्ट (Social Security Act of 1935) के अनुसार बहुत से सामाजिक सुधार किये गये जिसमें कुछ श्रेणी के श्रमिकों के लिये बीमा तथा वृद्ध लोगों का बीमा, निर्धनता, अध्ययन तथा दूसरी कठिनाइयों के लिये अनुदान आदि भी सम्मिलित थे। संघ के अन्तर्गत राज्यों को संघ ने कर्मचारियों की वृद्धावस्था के लिये पेन्शन देने के लिये संघीय निधि का प्रबन्ध किया।

८ दिसम्बर सन् १९४१ को जब जापानियों ने पर्ल हारबर (Pearl Harbour)

पर चढ़ाई की तब अमरीका ने द्वितीय विश्व महायुद्ध में कदम रखा। अमरीका ने ऐसे समय में युद्ध को समाप्त करने के लिये आय के सभी साधनों को लगा दिया। युद्ध का प्रभाव यों तो देश की सभी वस्तुओं के ऊपर पड़ा, परन्तु विशेष कर आर्थिक शाखा जिसमें कृषि, उद्योग, श्रम भी सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त युद्ध का प्रभाव स्त्री, पुरुष तथा बच्चों के सम्बन्ध, शिक्षा, आवागमन के साधन तथा सैनिकों पर भी पड़ा। यह सब कैसे हुआ ? अमरीका का राष्ट्रपति कार्यकारिणी का प्रमुख होने के साथ-साथ सेनाध्यक्ष भी होता है। युद्धकालीन समय में कांग्रेस साम्यवाद के प्रचार के भय से राष्ट्रपति को इस बात का पूर्ण अधिकार दे दिया कि देश की रक्षा के लिये राष्ट्र की जितनी भी सामाजिक तथा आर्थिक शक्ति हो उसे पूर्णरुपेण लगा दे। इस विचार को पहले ही फिलाडेफिया सम्मेलन ने संविधान निर्माण करते हुए सोचा था और यह बात आज भी पायी जाती है और सभी राज्य सरकारें संघ से मिलकर कार्य करती हैं। प्रो० ब्रोगन (Brogan) ने ठीक ही कहा है कि "अमरीकन संवैधानिक इतिहास में बहुत दिनों से ही सरकार के आवश्यक कर्तव्य राज्य संघ को देते चले आ रहे हैं और यह दशा अब भी चली आ रही है।"

दूसरे संघों की भाँति संयुक्त राज्य अमरीका में भी सामान्य प्रवृत्तियों के कारण केन्द्रीयकरण की भावना की जागृत हुई और राष्ट्रीय सरकार ने राज्य सरकारों के ऊपर अपना प्रभुत्व धीरे-धीरे स्थापित कर लिया। यद्यपि जिन शक्तियों पर केन्द्र ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया है वह राज्य सरकारों के पास ही थीं। सामाजिक एवं राजनैतिक दशाओं के परिवर्तन के साथ-साथ प्रशासकीय उत्तरदायित्व में भी परिवर्तन हुए और वह एक नये परिणाम पर पहुँचे। बहुत-सी बातों में संघीय सरकार ने अपनी शक्तियाँ बढ़ा लीं। संघीय अनुदान द्वारा भी राज्य सरकारों पर केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण बढ़ गया। यह संघीय अनुदान वह अनुदान है जो संघ सरकार स्थानीय सरकारों तथा राज्य सरकारों को सुचारु रूप से शासन-प्रणाली चलाने के लिये अनुदान अथवा सहायता के रूप में देती है। जब संघ सरकार स्थानीय अथवा राज्य सरकारों को अनुदान देती है तो उसके साथ-साथ कुछ प्रतिबन्ध भी लगाती है जो स्थानीय सरकार अथवा राज्य सरकारों को मानना पड़ता है।

प्रो० फरगुसन (Fergusan) तथा प्रो० मेकहेनरी (Mc Henry) ने संघीय अनुदान को इसलिये ठीक बताया है क्योंकि संघीय अनुदान द्वारा: (१) विभिन्न प्रकार की सरकारें एक निश्चत कार्य के लिये मिलकर कार्य करती हैं; (२) जो कार्य स्थानीय एवं राज्य सरकारों द्वारा धन की कमी के कारण नहीं हो पाता है वह कार्य इस अनुदान द्वारा हो जाता है; (३) यह आय के पुन: वितरण में सहायता देता है और

करों में वृद्धि करता है; (४) यह राज्य सरकारों तथा संघ सरकार को उन्नतिशील बनाता है; (५) यह राज्य सरकारों तथा स्थानीय सरकारों को बहुत से ऐसे कार्यों से अवगत कराता है जिनके बारे में वे बिलकुल नहीं जानते हैं; (६) यह दोनों सरकारों के अत्यधिक व्यय पर नियंत्रण रखता है; (७) यह राष्ट्र के बहुत-सी थोड़ी सेवाओं को निश्चित करता है।

संघीय सरकार न केवल राज्य सरकार पर ही नियंत्रण रखती है किन्तु स्थानीय सरकारों पर भी नियंत्रण रखती है। सन् १७८७ के संविधान के अनुसार स्थानीय सरकारों के ऊपर नियंत्रण रखना राज्यों की अवशिष्ट शक्तियों में निहित था। अतः स्थानीय सरकारें प्रत्यक्ष रूप से राज्य सरकारों के प्रति उत्तरदायित्व रहती थीं और उन्हें संघ सरकार से कोई सम्बन्ध न रहता था। परन्तु यह केवल सैद्धान्तिक रूप से था क्योंकि व्यावहारिक रूप में सरकार का मुख्य ध्येय ही यह है कि वह देश के निवासियों को सुखमय जीवन प्रदान करे। देश के सभी नागरिक राज्योंकी ही क्षत्र-छाया में रहते हैं और प्रत्यक्षरूप से अपने कुछ कर संघ सरकार को देते हैं उसके एवज में वह संघ सरकार से कुछ न कुछ सहायता के रूप में चाहते हैं। अतः स्थानीय सरकारों के कार्य अधिकतर विशेषतयः शिक्षा तथा स्वास्थ्य संघ सरकार से प्रभावित रहते हैं।

दूसरे अन्य संघों में केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्ध

जैसा कि संयुक्त राज्य अमरीका में संघ तथा राज्यों का सम्बन्ध क्रमशः स्थापित हुआ है उसी प्रकार अन्य संघों में राज्यों तथा संघ के सम्बन्ध धीरे-धीरे ही बढ़े। देश के सभी संघों में मोटे तौर पर केन्द्र तथा राज्यों की शक्तियों का विभाजन कर दिया जाता है। व्यवहार में सभ्यता तथा परिणाम के बढ़ने के साथ-साथ देश के नागरिकों की माँग भी बढ़ जाती है। इन्हीं माँगों के परिणामस्वरूप केन्द्र या राष्ट्रीय सरकार तथा राज्य या प्रान्तीय सरकार या कैन्टन की सरकारें आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा स्विटजरलैण्ड में एक-दूसरे से अत्यधिक निकट आती जा रही हैं। आर्थिक-नीति के परिवर्तन के साथ आस्ट्रेलिया के राज्यों तथा स्विटजरलैण्ड के कैन्टनों की प्रभु-सत्ता का विचार भी बदल गया।

सन् १८६७ के कानाडा के संविधान में निर्दिष्ट शक्तियाँ प्रान्तों को दी गयी हैं और अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र को दी गयी हैं। कनाडा के प्रान्तीय विधान मण्डलों को गवर्नरजनरल समाप्त कर सकता है। जिस समय कानाडा के प्रान्तों ने मिलकर एक संघ शासन की स्थापना की थी उस समय प्रान्तों को उनकी आर्थिक उन्नति के लिये केन्द्र द्वारा अनुदान का प्रयोजन किया था। केन्द्रीय सरकार के कार्यों द्वारा मैराटायम के प्रान्तों ने बहुत लाभ उठाया। केन्द्रीय सरकार ने ट्रांसकनाडियन रेलवे

(Trans-Canadian Railway) का निर्माण किया जिसके फलस्वरूप जो भाग बिना किसी प्रयोग के पड़े हुए थे उनसे प्रचुर मात्रा में आर्थिक उन्नति हुई। केन्द्रीय सरकार की सहायता से अल्वर्ट के तेल सम्बन्धी क्षेत्रों, गेहूँ के क्षेत्रों तथा खनिज पदार्थ के क्षेत्रों की उन्नति हो सकी थी लेकिन जब केन्द्रीय सरकार ने आर्थिक क्षेत्रों में उन्नति करना प्रारंभ किया उस समय से केन्द्रीय सरकार को फ्रांसीसी कनाडा निवासी की भाषा, संस्कृति तथा धर्म की कठिनाइयों को सुलझाने के लिये विवश होना पड़ा। यह सत्य है कि कनाडियन राष्ट्रीयता ने कनाडा में अपना एक विशेष प्रभाव स्थापित कर रखा है और उसी के फलस्वरूप कनाडा अन्तर्राष्ट्रीय मामले में, विशेषतया द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् भी अपना प्रभुत्व जमा रखा है। यद्यपि क्यूबा के नागरिक अब भी अपने को फ्रेंच कनाडयिन कहने में गौरव का अनुभव करते हैं। प्रान्तों की दशा जैसे पहले संविधान द्वारा मिली हुई थी उससे अब अच्छी है। कनाडा के अन्तर्राष्ट्रीय कमेटियाँ भी केन्द्रीय नियंत्रण के लिये विशेषतया प्रान्तों के अधिकार जो संविधान द्वारा रक्षित हैं, उत्तरदायी हैं।

कामनवेल्थ आस्ट्रेलिया का संविधान केन्द्रीय सरकार के संगठन, शक्तियों तथा कर्तव्यों को ही केवल उल्लिखित करता है। आस्ट्रेलिया के प्रत्येक प्रान्त का अलग संविधान है और उसे अपने संविधान को संशोधित करने का भी अधिकार है। राज्यों के कानून केन्द्रीय सरकार के कानूनों से कोई सम्बन्ध नहीं रखते हैं। राज्यों के अध्यक्ष गवर्नर कहलाते हैं. जो राज्यों के विधानमण्डलों की सिफारिश पर राजा द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नियुक्त किये जाते हैं। राज्यों के न्यायालय भी स्वतन्त्र हैं और उन पर केन्द्र सरकार का कोई भी नियंत्रण नहीं रहता है। उपरोक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि कनाडा के प्रान्त आस्ट्रेलिया के इकाई राज्यों से कहीं भी अधिक अच्छी है, परन्तु आस्ट्रेलिया में लेबर दल के उत्थान के साथ-साथ संवैधानिक प्रणाली में भी परिवर्तन आते गये। यद्यपि यह दल राज्यों तक ही सीमित था परन्तु उस दल के झगड़ों को निपटाने के लिये केन्द्र को राज्यों की राजनीति में प्रवेश ही करना पड़ा। लेबर दल ने देश की आर्थिक नीति तथा छोटे छोटे उद्योगों का राष्ट्रीकरण कर दिया, परन्तु स्वतन्त्र व्यापार बनाम रक्षण के प्रश्न को लेकर विभिन्न राज्यों ने मिलकर इस राजनीतिक प्रश्न को सुलझाने का प्रयत्न किया। क्वीन्सलैण्ड तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया ने अपनी अलग आर्थिक नीत को स्थापित करने का प्रयत्न किया। केन्द्रीय सरकार विदेशी व्यापार तथा अन्तर्राज्यीय व्यापार पर नियंत्रण रखती है। इस अधिकार को कार्यान्वित करने में केन्द्रीय सरकार अप्रत्यक्ष रूप से राज्यों की आर्थिक नीति पर अपना प्रभाव रखती है। यद्यपि सन् १९०० ई० में लेबर दल ने संविधान का संशो-

घन ब्रिटेन या न्यूजीलैण्ड के संविधान के आधार पर करना चाहा था । परन्तु उसका प्रभाव अधिक न पड़ पाया था। सन् १९४० से अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों की वृद्धि तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया में साम्यवाद के प्रभाव के बढ़ने से आस्ट्रेलिया के निवासियों में परिवर्तन आने लगे थे । तभी से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिये एक संगठित सरकार की स्थापना पर ध्यान दिया । यदि पिछले २० वर्षों के जापान की बढ़ती हुई शक्ति से आस्ट्रेलिया संघ बनाने का उत्तरदायित्व रखता है तो साम्यवाद की बढ़ती हुई शक्ति भी इस बात की प्रतीक है कि आस्ट्रेलिया ने एक संघ राज्य को सुसंगठित करने के लिये विवश होना पड़ा । इस प्रकार धीरे-धीरे केन्द्र सरकार राज्य सरकारों के ऊपर अपना नियंत्रण बढ़ाती जा रही है।

१८७४ के पूर्व स्विट्जरलैण्ड की राजनीति बहुत ही दयनीय दशा में थी। स्विटज़रलैण्ड के २२ कैन्टनों में तीन जातियाँ निवास करती हैं । इन तीनों जातियों की अलग-अलग भाषा है। और अलग-अलग धर्म है । इन विभिन्नताओं ने ही स्विटजर लैण्ड को एक संगठन का जन्म दिया। परन्तु स्विटजरलैण्ड की भौगोलिक स्थिति तथा निवासियों की इच्छा ने एक संघ राज्य की स्थापना के लिये बाध्य किया। सन् १८७४ के संविधान ने कैन्टनों को अवशिष्ट शक्तियाँ दे रखी हैं केन्द्र सरकार को केवल संविधान की निर्दिष्ट शक्तियाँ प्राप्त है। स्विट्जरलैण्ड के पड़ोसी राज्य इटली, जर्मनी तथा फ्रांस की निष्पक्षता के अतिरिक्त दोनों विश्वमहायुद्धों ने स्विटजर लैण्ड को कैन्टनों की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये केन्द्रीय सरकार को सुसंगठित करने की चेतावनी दी। इसके अतिरिक्त संविवान में कहा गया है कि केन्द्र अनिवार्य शिक्षा के लिये कैन्टनों को इस बात के लिये विवश कर सकती है कि वह शिक्षा को सुचार रूप से चलावे । इस प्रकार केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों की नीतियों पर नियंत्रण रखती हैं। स्विटजरलैण्ड के निवासी सामाजिक कल्याण के लिये राज्यों से माँग कर सकते हैं, अतः ऐसी माँगों से केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों पर आवश्यक रूप से नियंत्रण रखती है। उद्योग तथा वैज्ञानिक उन्नति के द्वारा भी कैन्टनों पर वैधानिक तथा प्रशासकीय नियंत्रण रखने लगी हैं। यदि यह कहा जाय कि पिछले ५० वर्षों में स्विटज़रलैण्ड के केन्द्रीयकरण ने स्विटजरलैण्ड में बहुत से परिवर्तन किये तो गलत न होगा ।

भारती में संघ तथा राज्यों का सम्बन्ध

भारत में केन्द्र तथा राज्यों का सम्बन्ध विधायिनी तथा प्रशासकीय नामक दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। संविधान के ७वीं अनुसूची की ३ सचियों में विभाजित किया गया है जो केन्द्र, राज्य तथा निर्दिष्ट शक्तियों का वर्णन करती

२०

है। जब किसी देश में दो सरकारें मिलकर कार्य करती हैं तो नागरिकों के सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में उन्नति के लिये उन्हें मिलकर ही कार्य करना पड़ता है। संविधान के २५६वें अनुच्छेद में कहा गया है "प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार होगा कि जिससे संसद द्वारा निर्मित विधियों का तथा किन्हीं वर्तमान विधियों का, जो उस राज्य में लागू हैं, पालन सुनिश्चित रहे तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निदेश देने तक विस्तृत होगा जो कि भारत सरकार को उस प्रयोजन के लिये आवश्यक दिखाई दे।" अनुच्छेद २५७ राज्य सरकारों को ऐसा कार्य करने को मना करता है जिसमें केन्द्र सरकार को कार्य करने में रुकावट पड़ती है। यह दोनों अनुच्छेद प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से राज्यों की कार्यकारिणी शक्ति पर नियंत्रण लगाते हैं और संघ सरकार को अपने कार्य करने में पूर्ण स्वतन्त्रता देते हैं। निःसंदेह यह एक ऐसी रुकावट है जो दूसरे संत्र शासनों में नहीं पायी जाती है।

प्रशासकीय विचार के अनुसार विधायिनी समवर्ती सूची के विषयों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वह विषय जो सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण से सम्बन्धित होते हैं। द्वितीय वह विषय जो शान्ति, सुव्यवस्था तथा व्यक्ति के अधिकारों से सम्बन्धित रहते हैं। तृतीय विषय जनता के जीवन से अत्यधिक सम्बन्धित रहते हैं और उनका अधिकार क्षेत्र का उपभोग या तो न्यायालय द्वारा होता है या राज्यों द्वारा। परन्तु ऐसे मामलों में केन्द्रीय सरकार प्रशासन सम्बन्धी विचारों के लिये किसी प्रकार की आज्ञा नहीं दे सकती। दूसरे प्रकार के विषयों में खनिज पदार्थ, फैक्टरियाँ, श्रमिक वर्ग, श्रमिकों के उद्योग संघ, श्रमिकों का कल्याण, छुआछूत की बीमारी, बिजली तथा चलचित्र सम्मिलित हैं। इन विषयों पर बिना किसी रोकटोक के संघीय सरकार संघीय कानूनों को लागू करने के लिये आज्ञायें दे सकती है।

प्रशासनीय क्षेत्र में संविधान का अनुच्छेद २६० कहता है "भारत सरकार किसी ऐसे राज्य क्षेत्र की सरकार से, जो भारत राज्य क्षेत्र का भाग नहीं है, करार करके ऐसे राज्यक्षेत्र की सरकार में निहित किसी कार्यपालक, विधायी या न्यायिक कृत्यों को ग्रहण कर सकेगी, किन्तु प्रत्येक ऐसा करार विदेशी क्षेत्राधिकार के प्रयोग से सम्बन्ध किसी तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन रहेगा और उससे शासित होगा।" राज्य-सरकार के परामर्श से राष्ट्रपति सरकारी कर्मचारियों के ऊपर नियंत्रण रख सकता है। संविधान में पुनः कहा गया है कि भारत सरकार राज्य सरकार की सहमत से कोई भी कार्यकारिणी, विधायिनी या न्यायिक शक्तियाँ जो राज्याधीन हैं ले सकती है। इस

प्रकार केन्द्र सरकार की शक्तियाँ बहुत ही विस्तृत हैं।

संविधान संघ तथा राज्यों की विधायिनी शक्तियों का उल्लेख करता है। इसके अतिरिक्त समवर्ती शक्तियों का भी वर्णन करता है। समवर्ती शक्तियों में कई प्रकार की शक्तियों का वर्णन मिलता है। इसमें कोई शक नहीं है कि जितनी शक्तियाँ भारतीय संघ में संघ सरकार को प्राप्त हैं उतनी कनाडा की केन्द्रीय सरकार के पास नहीं है। संविधान के अनुच्छेद २४८ में कहा गया है कि अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र के पास रहेंगी जब कि राज्यों के पास राज्य सूची है। अनुच्छेद २४९ (१) कहता है कि "इस अध्याय के पूर्वगामी उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी यदि राज्य-सभा ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों को दो तिहायी से अन्यून संख्या द्वारा समर्पित संकल्प द्वारा घोषित किया है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक तथा इष्टकर है कि संसद राज्य सूची में प्रगणित और उस संकल्प में उल्लिखित किसी विषय के बारे में विधि बनाये तो जब तक वह संकल्प प्रवृत्त है संसद के लिये उस विषय के बारे में भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिये विधि बनाना विधिसंगत होगा।"

कानूनों की व्याख्या तथा कानूनों की मान्यता चाहे वह राज्य-सरकार के हों अथवा केन्द्र सरकार के, उच्चतम न्यायालय ही करता है और उसका निर्णय अन्तिम माना जाता है लेकिन संविधान के अनुच्छेद १२३ में कहा गया है कि आपत्तिकालीन समय में राष्ट्रपति राज्य के लिये किसी भी कानून को बना सकता है ऐसी दशा में राज्यपाल भी राष्ट्रपति द्वारा नियंत्रित होता है। आपत्तिकालीन समय में राज्य के सभी मामले केन्द्र द्वारा नियंत्रित होते हैं।

इस प्रकार आपत्तिकालीन समय में केन्द्र सरकार राज्य सरकारों के ऊपर पूर्णरूपेण नियंत्रण रखती है यह नियम संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान के अनुच्छेद १ के खण्ड १८ के उपखण्ड ८ के आधार पर बनाया गया है। अमरीका में अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों को दी गयी हैं और केन्द्र के पास केवल लिखित शक्तियाँ हैं। इन्हीं अधिकारों के आधार पर निहित शक्तियों का सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers) का उदय हुआ है। किन्तु भारत में ऐसे किसी भी सिद्धान्त की आवश्यकता न थी क्योंकि संविधान के अनुच्छेद २४९ में कहा गया है कि यदि किसी विषय पर राष्ट्रीय सरकार कोई नियम बनाने में इच्छुक है चाहे वह विषय राज्य सरकार का ही क्यों न हों, बना सकती है। इसके अतिरिक्त यदि किसी विषय पर संघ तथा राज्य सरकार में मतभेद उत्पन्न हो जाय तो संघ की बात को मान्यता दी जावेगी। अनुच्छेद २५२ (१) कहता है कि "यदि किन्हीं दो अथवा

अधिक राज्यों के विधान मण्डलों को यह वांछनीय प्रतीत हो कि उनके विषयों में से, जिनके बारे में संसद को अनुच्छेद २४९ और २५० में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त उन राज्यों के लिये विधि बनाने की शक्ति नहीं है, किसी विषय का विनियमन ऐसे राज्यों में संसद विधि द्वारा करे तथा यदि उन राज्यों के विधान मण्डलों के सब सदनों ने उस लिये संकल्पों का पारण किया है तो उस विषय का तद्नुकूल विनियमन करने के लिये किसी अधिनियम का पारण करना संसद के लिये विधिसंगत होगा, तथा इस प्रकार पारित कोई अधिनियम ऐसे राज्यों को लागू होगा तथा किसी अन्य राज्य को, जो तत्पश्चात् अपने विधान मण्डल के सदन अथवा जहाँ दो सदन हों, वहाँ दोनों सदनों में से प्रत्येक से उस लिये पारित संकल्प द्वारा उसको अंगीकार करे, लागू होगा।"

अनुभव इस बात से अवगत कराते हैं कि प्रत्येक संघ में केन्द्र तथा राज्यों के सम्बद्ध जीवन की कठिन समस्याओं के उद्गम रहे हैं। अमरीका में उपरोक्त बातों के आधार पर केन्द्र की शक्तियों में वृद्धि हुई और ऐसा ही कामनवेल्थ आस्ट्रेलिया में भी हुआ था। कनाडा में अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र सरकार को दी गयी हैं और प्रान्तों के विशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त हैं। यह शक्तियाँ कार्यकारिणी तथा विधायिनी दोनों क्षेत्रों में प्रयोग की जाती है। उदाहरणार्थ प्रान्तों के गवर्नरों की नियुक्तियाँ गवर्नर जनरल करता है। परन्तु वास्तविक रूप में जीवन की कठिन परिस्थितियों के द्वारा प्रान्तों की शक्तियाँ बढ़ती जा रही हैं।

उपरोक्त विचारों के आधारों पर भारत में संघ तथा राज्यों का सम्बन्ध विभिन्न परिस्थितियों, राष्ट्रीय आवश्यकताओं, अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों, देश की सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति तथा सार्वजनिक शक्तियों के आधारों पर आधारित है। राज्यों की सीमाओं को निर्धारित करने की माँग, भाषा एवं संस्कृति के आधार पर नये राज्यों की स्थापना और पड़ोसी राज्यों के व्यवहार ने संविधान को नयी परिस्थितियों द्वारा सुलझाने को विवश कर दिया है।

अध्याय ११

संघवाद तथा अल्पसंख्यकों के हित

विश्व के कुछ ऐसे भाग हैं, जहाँ पर राजनीतिज्ञों के सामने अल्पमत की बहुत बड़ी समस्या है। यह अल्पमत धार्मिक, जातीय, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक कई प्रकार के हैं। आजकल विश्व में कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ कि एक ही जाति के लोग निवास करते हों क्योंकि हजारों वर्षों की विजयों के कारण लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर गये और बस गये। यदि प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य के अधिकारों की इज्जत करता और 'रहो और रहने दो' नामक सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य को चाहता तो केन्द्रीय तथा दक्षिण-पूर्वी यूरोप के राज्य पिछली कुछ शताब्दियों में शान्तिपूर्वक न रह पाते और दक्षिण अफ्रीका तथा भारतवर्ष लड़ाई, झगड़ों तथा युद्ध का अखाड़ा न होता तथा लोगों में राजनीतिक एवं दर्शनशास्त्री भी पड़ोसी राज्यों में अपनी विचारधारा को भर सकते। परन्तु इसी विभिन्नता के कारण वे इस कार्य में सफलता न प्राप्त कर सके जब कि आधुनिक विश्व में एक भी राज्य तथा जाति अथवा राष्ट्रीय-भावना सम्मत नहीं हैं, अस्तु बहुत से उपाय युद्ध तथा अल्प-मत की रक्षा के लिये विचार किये गये हैं। संघवाद के ऐतिहासिक अध्ययन से ज्ञात होता है कि संघीय शासन प्रणाली के अन्तर्गत किस प्रकार से अल्पमत वालों के जीवन-शान्ति तथा रक्षा को किस प्रकार से ध्यान में रखा गया है। यद्यपि उस समय और आज भी राजनैतिक जीवन में उतार-चढ़ाव तथा युद्ध आदि हुये, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि संघीय-शासन प्रणाली में अल्पमत लोगों की पूर्ण रूप से रक्षा की गयी। किसी भी मनुष्य ने जातीय एवं धार्मिक बातों को लेकर किसी भी एक सरकार में अल्पमत वालों की रक्षा का प्रयत्न नहीं किया। यह केवल संघीय प्रणाली में ही हो सका है।

अल्पसंख्यकों की परिभाषा एवं विभाजन

किसी भी राज्य में लोगों का वह समुदाय जो सामाजिक जीवन में अपना एक स्थान रखता है और राष्ट्रीय स्तर पर, उनकी एक विचारधारा होती है, वे अन्य समुदायों के सम्मुख अपना विशेष स्थान रखते हैं और उनकी किसी भी माँगों पर

विचार किया जाता है। परन्तु यही दल यदि आधी जनसंख्या से कम होता है और सामाजिक जीवन में अधिक कम प्रभाव नहीं रखता है तो उसे अल्पमत की संज्ञा दी जाती है। इस परिभाषा से यह निश्चित हो जाता है कि एक ही राजनैतिक, सामाजिक संगठन के अन्तर्गत एक से अधिक अल्पमत वाले हो सकते हैं जैसे कि प्रथम विश्व महा-युद्ध के पूर्व यूरोप के बहुत से राज्यों में था।

यह व्यक्तिगत अल्पमत वालों की साधारण ग्रंथि या तो धार्मिक जैसे चीन तथा भारत या बाल्कन राज्यों के कुछ भाग में मुस्लिम या राष्ट्रीय जैसे स्विट्जरलैंड में फ्रेंच तथा इटालियन या कनाडा में फ्रेंच या जातीय और रूस में टर्क या गार्गियन (Georgians) या सांस्कृतिक जैसे दक्षिण-अफ्रीका संघ में ऐशियन ही हैं। अल्पमत वालों के प्राकृतिक अधिकार होते हैं और अपने विचारों के अनुसार उनके रहन सहन, आचार-विचार होते हैं और वह किसी दूसरे विचारवालों में कोई बाधायें नहीं डालते हैं। परन्तु यह सब होते हुये भी अल्पमत वालों के कुछ कर्तव्य भी होते हैं जैसे मताधिक्य के प्रशासन के प्रति उनकी सद्भावना रहनी चाहिए और अपने को कभी भी उनके बराबर नहीं गिनना चाहिये। मताधिक्य से कठोरता का बरताव नहीं करना चाहिये। प्रजातन्त्र शासन में मताधिक्य का मौलिक सिद्धान्त ही उसका हृदय होता है। और अल्पमत वालों का कर्तव्य है कि किसी भी कार्य के लिये मताधिक्य के प्रति सद्भावना रखें और राज्य के निवासियों के जीवन का ध्यान सदैव अपने सम्मुख रखना चाहिये। यह केवल संघात्मक शासन प्रणाली में ही सम्भव हो सकता है।

स्विट्जरलैण्ड

स्विटजरलैण्ड में २२ कैन्टनों के अन्तर्गत जर्मन, फ्रेंच तथा इटालियन तीन राष्ट्रीय जातियाँ निवास करती हैं। इसमें कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि इन तीन जातियों के मेल से ही यह देश अपनी उन्नति के शिखर पर है और इससे राजनैतिक जीवन में भी पर्याप्त उन्नति हुई है। आज के विश्व में जहाँ पर बड़ी बड़ी शक्तियाँ निवास करती हैं ऐसी दशा में ऐसे एक छोटे से देश के लिये दीर्घ समय तक अपनी स्वतन्त्रता बचाये रखना सरल कार्य नहीं है।

स्विस संघीय प्रणाली में तीनों जातियों की भाषायें राष्ट्रीय भाषायें मानी गयी हैं। अभी हाल ही में रोमाँस भाषा जो केवल एक कैन्टन में बोली जाती है राष्ट्रीय भाषा माना ली गयी। इस प्रकार स्विटजरलैण्ड में ४ राष्ट्रीय भाषाओं में संघ का कार्य संचालन होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि संघीय प्रणाली में प्रत्येक अल्पमत वालों का स्थान रखा गया है और उन्हें अपने बच्चों को मातृभाषा पढ़ाने का

पूर्ण अधिकार प्राप्त है उनका अपना साहित्य तथा संस्कृति भी अलग-अलग है। संघ ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया है। यही नहीं, संघीय सरकार के लिये यह अनिवार्य कर दिया गया है कि शिक्षा की उन्नति के लिये वह राज्य सरकारों को संघीय अनुदान दे। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह अल्प-मत का हो अथवा मताधिक्य का उसे शिक्षा प्राप्त प्राप्त करने का पूरा पूरा अधिकार प्राप्त है। यही कारण है कि सभी कैन्टनों ने संघ सरकार के अन्तर्गत रहना पसंद किया है। राज्यों का अपना कोई विशेष धर्म नहीं है। यद्यपि कुछ ऐसे कैन्टन हैं जहाँ पर कैथोलिक अधिक है और कहीं कहीं पर प्रोटेस्टैन्ट। परन्तु उन सबके के साथ समान व्यवहार किया जाता है।

यद्यपि धार्मिक विभिन्नताओं को लेकर सुन्डरबंड (Sounderbound) का युद्ध प्रारम्भ हुआ था, परन्तु अन्त में कैथोलिक कैन्टनों को युद्ध का अपगमन करना पड़ा था। इस युद्ध के समाप्त होने पर कैथोलिक धर्म के माननेवालों की माँग पर विचार किया गया; जिसका परिणाम यह हुआ कि १८४८ के संविधान में संशोधन किया गया। तब से धार्मिक विषय को लेकर कोई युद्ध प्रारम्भ न हुआ और देश की शांति में कोई बाधा न पड़ी। सन् १८७४ के संशोधनों से प्रत्येक जाति के व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा की गयी जिसका परिणाम यह हुआ कि सभी जातियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन व्यतीत कर रही हैं। संविधान के अनुच्छेद २ में कहा गया कि "प्रसंघान के निवासियों की स्वतंत्रता तथा अधिकारों की रक्षा की जावेगी और सार्वजनिक उन्नति की ओर ध्यान दिया जावेगा। कैन्टन प्रभुसत्तायुक्त हैं और जो अधिकार संघ को नहीं दिये गये हैं उनका कैन्टन उपभोग करते हैं।"[1] इसी प्रकार कानून के सम्मुख सभी नागरिक बराबर हैं।[2] अनुच्छेद ५ द्वारा कैन्टनों की प्रादेशिक एकता, उनकी प्रभुसत्ता, नागरिकों के अधिकारों की रक्षा तथा मान्यता की गयी है। संविधान की उपरोक्त मान्यताओं द्वारा पिछले ८५ वर्षों में स्विटजर-लैण्ड की संघ सरकार ने इस बात को साबित कर दिया है कि किस प्रकार से संघ सरकार के अन्तर्गत अल्पमत वालों की रक्षा होती है जबकि योरुपीय राजनीतिक जीवन में बहुत-सी कठिनाइयाँ आयीं। दोनों विश्व महायुद्धों में जर्मन कैन्टनों को जर्मनी तथा फ्रेंच कैन्टनों को फ्रांस विरक्त न कर सका। अतः यह एक सबसे बड़ा प्रमाण है कि स्विट्जरलैण्ड में अल्पमत वालों की समस्या को किस प्रकार सुल-झाया गया है।

---

1. **Article 3 of the Constitution of 1874.**
2. **Article 4**, Ibid.

कनाडा

१९वीं शताब्दी में जब तक क्यूबेक के फ्रेंच तथा आनटैरियों (Ontario) के ब्रिटिशों में जातीय, धार्मिक तथा भाषा सम्बन्धी समस्याओं के साथ समानता का व्यवहार नहीं किया गया तब तक उनकी समस्या का समाधान न हो सका। फ्रेंच लोग अपने देश से जो राजनैतिक भावनाएँ लाये थे, तथा लगभग एक शताब्दी तक ब्रिटिश और फ्रांस में जो शत्रुता चलती रही थी, परन्तु इतना होते हुए भी यह एक आश्चर्यजनक बात थी कि क्यूबेक में फ्रेंच लोगों ने ब्रिटिश राज्य को मान लिया परन्तु ऐसा होने पर वे राष्ट्रीय भावना को छोड़ने के लिए तैयार न थे और अपने को ऐन्गलीफिकेशन (Anglification) में सम्मिलित करने को तैयार हो गये।

१८८७ के ऐक्ट द्वारा संघीय प्रणाली को जन्म दिया गया जिसने फ्रेंच की आशाओं को फलने-फूलने का समय दिया क्योंकि ऐक्ट में कहा गया था कि फ्रेंच-ब्रिटिशों बिना किसी बाधाओं के अपने को शासित कर सकते हैं। फ्रेंच लोगों की भाषा, साहित्य, शिक्षा, स्कूलों तथा चर्चों पर संघ सरकार ने हजारों रुपया खर्च किया और उनकी रक्षा की। इस प्रकार फ्रांसीसियों ने संघीय नागरिकता द्वारा तथा इंग्लैंड के भय से समुचित लाभ उठाया । १७८३ की पैरिस संधि के पश्चात् जो कनाडा के राजनैतिक जीवन में कठिनाइयाँ आ गयीं थी उन्हें संघीय प्रणाली ने समाप्त कर दिया। फ्रांस तथा ब्रिटिश के पड़ोसी सम्बन्धों तथा एक ही उपनिवेश में निवास करने के कारण कनाडा की राष्ट्रीयता को उन्नति की ओर अग्रसर किया। यद्यपि कनाडा की राष्ट्रीयता अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के मध्य की विभिन्नताओं को समाप्त न कर सकी, परन्तु संघ प्रणाली ने सभी नागरिकों को कानून के सम्मुख समान मान कर तथा उन्हें अपनी उन्नति की पूर्ण स्वतन्त्रता देकर दोनों की मर्मभेदी विभिन्नताओं को अवश्य ही समाप्त कर दिया। अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों ने, विशेषतया द्वितीय विश्व महायुद्ध के बाद दो राष्ट्रीयताओं को जन्म दिया जो देश की उन्नति तथा स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये मिलकर कार्य करती है।

दक्षिण अफ्रीका

जातीय प्रश्न को लेकर अफ्रीका में अनेक प्रश्न खड़े हो गये थे। परन्तु १९०९ में संघ की स्थापना के बाद भाषा एवं संस्कृति सम्बन्धी मतभेद की बहुत सी समस्यायें सुलझ गयीं १९०९ के संविधान में संघ को वृहद शक्तियाँ दी गयीं थीं और ऐसा मालूम होता था कि संघ एक इकाई राज्य है। । इसमें कोई आश्चर्य

की बात न थी, क्योंकि चारों प्रान्तों के प्रत्येक प्रान्त में ८० प्रतिशत एशियन तथा अफ्रीकन रहते थे जिन्हें योरुपीय निवासियों के सम्मुख कोई भी राजनैतिक अधिकार प्राप्त न थे क्योंकि योरुपीय निवासी ही वास्तविक नागरिक माने जाते थे। परन्तु संविधान के ८५ अनुच्छेद के अनुसार अत्यधिक शक्तियाँ प्राप्त थीं। दो प्रान्तों में जहाँ पर गोरे लोगों की संख्या अधिक थी वहाँ पर डच लोग स्वयं शासन करते थे । यह सब होते हुए भी यह याद रखना चाहिये कि डच तथा ब्रिटिश अपनी अपनी इच्छाओं को भूले न थे। यद्यपि डच लोगों को शासन का कार्य करने की शक्ति देकर आपस में युद्ध करने की सम्भावना अधिकतर समाप्त हो गयी थी। संघ के राजनैतिक दल इंग्लैण्ड के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के प्रश्न को लेकर दो दलों में विभाजित हो गये थे। डच कामनवेल्थ से अलग होकर संघ को एक गणतन्त्र राज्य घोषित करना चाहते थे परन्तु अंग्रेज इसका विरोध कर रहे थे। दक्षिण अफ्रीका के प्रान्तों को कनाडा के प्रान्तों के सम्मुख बहुत कम शक्तियाँ प्राप्त थीं। परन्तु इतना होते हुए भी यहाँ के प्रान्तों के निवासियों को स्वतन्त्र रहने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था।

सोवियत संघ

विश्व में रूस के अतिरिक्त कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ पर इतनी अधिक जातियाँ, धर्म तथा राष्ट्रीयतायें हों जो एक सरकार द्वारा शासित होते हों। प्रथम विश्व महायुद्ध में जातीय प्रश्न को लेकर लोगों में आपसी भेदभाव खड़ा हो गया था। सन् १९३६ के पूर्व तक संविधान में नागरिकों के अधिकार, जातियों के अधिकार, कर्तव्य तथा स्वतन्त्रता का वर्णन स्पष्ट रूप से नहीं किया गया था। केवल १९३६ में ही अधिकारों, कर्तव्यों का वर्णन किया गया था। संविधान में अधिकारों की घोषणा के अतिरिक्त सोवियट संघ की स्थापना के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार जीवन बिताने का भी अधिकार दिया गया था। यू० एस० एस० आर० एक ऐसा संघ है जहाँ प्रत्येक अल्पमत वाले लोगों को स्वतन्त्रतापूर्वक रहने तथा उन्नति करने का अधिकार है। प्रत्येक संघ-राज्य की अपनी भाषा है। सोवियट संघ ने लगभग २० भाषाओं को संघ की भाषा मानां है। प्रत्येक राजनैतिक क्षेत्र को उसकी स्वराजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। संविधान प्रत्येक संघराज्य को अपगमन करने तथा बाइलो-रसिया (Bylo-Russia) और उकराइन (Ukraine) को रक्षा तथा विदेशी सम्बन्ध रखने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। यहाँ तक कि यह बात मानना कि संयुक्त राष्ट्रसंघ में यू० एस० एस० आर० अपना अधिक मत रखता है तो यह यह भी साबित करता है कि सभी प्रकार की जातीय राष्ट्रीय अल्पमत एक ही संघ सरकार में सम्मिलित किये जा सकते हैं।

भारत अर्द्धमहाद्वीप

भारतवर्ष पर उत्तरी-पूर्वी तथा उत्तरी-पश्चिमी मार्गों से अनेकों आक्रमण लगातार होते रहे जिसके कारण बहुत सी जातियाँ यहाँ आयीं और बस गयीं। यही कारण है कि यहाँ पर अनेकों जातियाँ तथा अनेकों धर्म पाये जाते हैं और उनका अपना अलग रहन-सहन तथा रीति-रिवाज हैं। जब मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण किया और अपना शासन स्थापित किया तो उन्होंने हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। यद्यपि मुसलमान हमलावरों की संख्या हजारों से अधिक न थी परन्तु जब उन्होंने हिन्दुओं को मुसलमान बनाना प्रारम्भ किया तो उनकी संख्या लाखों तथा करोड़ों में हो गयी। यही कारण है कि आज भी कश्मीर, पंजाब, सिन्ध तथा पूर्वी बंगाल में मुसलमान अधिक संख्या में पाये जाते हैं क्योंकि मुसलमान आक्रमणकारियों का प्रभाव इन स्थानों पर अधिक पड़ा।

अंग्रेजों ने भी ६ हजार मील की दूरी पर रह कर 'भेद करके राज-शासन करो' नामक नीति से भारत पर शासन किया। उन्होंने भी अल्पमत वाले लोगों की विशेषतया मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध भड़काया और सिक्खों तथा परिगणित जातियों को भी उकसाया। उन्होंने सिद्धान्त रूप में लगभग ५०० भारतीय राज्यों को जिनमें कुछ छोटे थे और कुछ बड़े, अधिकारों की मान्यता दी, जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत टुकड़े-टुकड़े में बँटने लगा और यहाँ के निवासियों की भाषाएँ, रहन-सहन और रीति-रिवाज भी अलग हो गये। इसका यह प्रभाव पड़ा कि राजनैतिक प्रश्नों पर जनता में मतभेद खड़ा होने लगा।

भारत सरकार ने १९३५ के एक्ट द्वारा एक सम्पूर्ण भारत संघ की स्थापना की जिसमें भारतीय राजाओं के राजनैतिक तथा धार्मिक अल्पमत अपनाये गये, परन्तु ऐक्ट लागू होने के पूर्व द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध के समाप्त होते ही जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम आंदोलन चल गया और अंग्रेजों के सुझाव से मुसलमानों ने धर्म के नाम पर देश के विभाजन की माँग की। अन्त में माउन्टबेटन योजना के अनुसार भारत के दो भाग भारत तथा पाकिस्तान का विभाजन मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस ने मान लिया।

भारत ने अपना संविधान सन् १९४९ में पारित किया जिसमें भारत को एक धर्मनिरपेक्ष की संज्ञा दी गयी। अल्प लोगों की समस्या को संविधान में मौलिक अधिकारों तथा नागरिकता की घोषणा करके समाप्त कर दिया।

संघ प्रणाली ने भाषावार प्रान्तों के संगठन का सुझाव रखा। सन् १९२८ में दल सम्मेलन में सभी सम्पूर्ण राजनैतिक दलों ने नेहरू रिपोर्ट की सिफारिशों को मान लिया

था कि भाषा के आधार पर प्रान्तों का संगठन होगा। आंध्र एक अलग प्रदेश बन गया है जिसमें मद्रास के तेलगू भाषा बोलनेवाले भाग सम्मिलित हो गये हैं। पंजाबी बोलने वाले पंजाबी प्रदेश तथा मराठी बोलने वाले मराठी प्रदेश तथा हैदराबाद के दो भाग किये जायँ की माँग की गयी। इसके अतिरिक्त यह भी माँग की गयी कि समान भाषा बोलने वाले प्रान्त अन्य भाषा बोलने वाले प्रान्तों से अलग होकर अपना एक प्रान्त बना ले आदि। यदि समान भाषा बोलने वाले नागरिक भाषा के आधार पर प्रान्तों का संगठन करें तो भारत के अल्पमत वालों की समस्या भी सुलझ जावेगी क्योंकि समान भाषा बोलनेवाले लोग केन्द्रीय सरकार की क्षत्रछाया में रहकर अपना कार्य सुचारु रूप से कर सकेंगे।

पाकिस्तान यद्यपि भारत से अलग हो गया है और यदि यह कहा जाय कि भारत की अल्पमत की समस्या सुलझ गयी है तो संदेह है क्योंकि पाकिस्तान भारत का एक अलग देश नहीं मालूम पड़ता है। क्योंकि आज भी पठान, पूर्वी पंजाब के पंजाबी, सिंध के सिंधी और पूर्वी पाकिस्तान के मुसलमान बंगाली अपने को एक दूसरे से अलग समझते हैं। पाकिस्तान की मुख्य भाषा उर्दू को अब भी पूर्वी पाकिस्तान के बंगाली अपनी मातृ भाषा के सामने उर्दू को अपनाने के लिए तैयार नहीं है। मुसलमान राष्ट्रों की भाँति पाकिस्तान अब भी इस्लामिक संविधान का निर्माण नहीं कर पाया है, न ही प्रान्तों की जातीय तथा भाषीय सम्बन्धी विभिन्नताओं को समाप्त कर पाया है। पूर्वी बंगाल अब भी लीग का नेतृत्व मानने के लिए तैयार नहीं है और वह अब भी पाकिस्तान के विधान मण्डल तथा मन्त्रिपरिषद् में ५० प्रतिशत प्रतिनिधि भेजने की आग्रह करता है और केन्द्र के साथ विदेशी मामले, यातायात तथा रक्षा सम्बन्धी मामले में सीधे सम्बन्ध रखना चाहता है।

अध्याय १२

समस्यायें, विचारधारायें और रूप

विभिन्न देशों और राज्यों की भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों में इतनी विभिन्नताएँ और अन्तर हैं कि उन्होंने संघवाद के सिद्धान्तों के अपनाने पर भी उनकी शासन-प्रणालियों में विभिन्नता आ गई है। इस विभिन्नता के पीछे उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की असमानता का विशेष प्रभाव पड़ा है। किसी भी देश ने यदि संघवाद को अपनाया है तो उसने किन कारणों से ऐसा किया है? ऐसी कौन शक्तियाँ और हेतु हैं जिन्होंने संघ-निर्माण को प्रभावित कर संघ को विशेष रूप दिया है? किन-किन प्रकारों से विभिन्न संघ-राज्यों की स्थापना हुई है और संघ में सम्मिलित होने वाली राजनीतिक इकाइयों को किन बातों ने अधिक प्रेरित किया है? इन संघों के कितने रूप हुए हैं? क्या संघवाद के सिद्धान्तों के अपनाने पर इन संघीय राज्यों में सबलता बढ़ी है अथवा वे कमज़ोरी के शिकार बन गये हैं? संघ-राज्य में संप्रभुता कहाँ पर स्थित हैं, केन्द्र में अथवा (उपराज्यों) इकाइयों में? विश्व शांति की स्थापना के लिए संघवाद के सिद्धान्तों का अवलम्बन कर विश्व-संघ (World Federation) अथवा विश्व-सरकार (World Government) का निर्माण कहाँ तक सम्भव है? ये प्रश्न ऐसे हैं जिन पर विचार करना आधुनिक संसार में बहुत आवश्यक है, क्योंकि अग्रगण्य राजनीतिज्ञों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् राजनीतिक प्रश्नों को, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर, सुलझाने के लिए संघवाद के सिद्धान्तों को उपयोगी ही नहीं वरन् अत्यन्त आवश्यक बताया है।

१—संघवाद को अपनाने का कारण

व्यक्तियों की भाँति व्यक्ति-समूहों तथा राज्यों की अपनी अपनी विभिन्न परिस्थितियाँ एवं समस्याएँ और आवश्यकताएँ होती हैं जिनको सुलझाने के लिए प्रत्येक राज्य को कोई शासन प्रणाली अपनानी पड़ती है। उदाहरणार्थ, आस्ट्रेलिया के ६ उपनिवेशों में सन् १९०० में जब संघ की स्थापना के लिए ठोस कदम उठाया गया था, जातीय तथा भाषा-सम्बन्धी एकरूपता थी जिसके कारण उस महाद्वीप में एक ही भावुकता और विचारधारा का प्रादुर्भाव हो गया था। परन्तु उस समय विभिन्न

उपनिवेशों में आर्थिक भेदभाव थे। पश्चिमी आस्ट्रेलिया तो आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ था अतः वह अपनी औद्योगिक उन्नति के लिए संरक्षणवाद (Protectionism) की नीति अपना रहा था। इसके विपरीत कुछ अन्य समृद्धिशाली उपनिवेश निःशुल्क व्यापार (Free Trade) की नीति को अधिक उपयोगी समझते थे। इस प्रकार आपसी आर्थिक होड़ से उनमें कुछ विरोध खड़ा हो गया था। संघवाद के पक्षपातियों ने इस समस्या से उत्पन्न कठिनाइयों का सामना किया और आस्ट्रेलिया की सुरक्षा तथा सभी उपनिवेशियों के भावी हितों की गरिमा पर ज़ोर देकर पश्चिमी आस्ट्रेलिया के राजनीतिज्ञों को संघ में शामिल होने के लिए राज़ी कर लिया। यद्यपि सन् १९३४ तक पश्चिमी आस्ट्रेलिया ने कई बार संघ से पृथक् होने का प्रश्न उठाया और वहाँ की आर्थिक समस्या को महत्व दिया, किन्तु द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् संघीय सरकार ने पश्चिमी आस्ट्रेलिया की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए जो कदम उठाये हैं, उनके फलस्वरूप यह आर्थिक समस्या हल हो गई है और आस्ट्रेलिया का संघ एक सबल संगठित राज्य बन गया है।

स्विट्ज़रलैण्ड में जातीय तथा धार्मिक भेदभावों से उत्पन्न परिस्थिति में संघवाद की स्थापना में बहुत कठिनाइयाँ हुई थीं; किन्तु वहाँ आर्थिक समस्यों सभी कैन्टनों एक-सी होने के कारण स्विस राजनीतिज्ञों ने संघ की स्थापना कर ली। इसी प्रकार कनाडा में फ्रांसीसियों और अंग्रेज़ों के आपसी द्वेष-भाव इतने बढ़ गये थे कि राजनीतिक वातावरण अत्यन्त दूषित हो गया था। कनाडा की सुरक्षा तथा भावी आर्थिक समृद्धि के प्रश्न ने जातीय और धार्मिक विभिन्नता पर विजय पाई। क्यूबेक तथा आँटेरियो के अतिरिक्त उत्तरी, उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों तथा न्यूब्रसविक और न्यूफाउन्डलैण्ड ने अपनी समृद्धि के हेतु कनाडा के संघ में शामिल होना हितकर समझा।

सन् १९१७ में रूस के ज़ार (Czar) के शासन का जब अन्त हो गया तो उसके विशाल साम्राज्य के विभिन्न भागों में स्थानीय स्वतन्त्रता की भावना बढ़ गई। प्रत्येक जातीय तथा धार्मिक प्रदेश वा उपप्रदेश ने अपनी अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। इंगलैण्ड और अमरीका के नेतृत्व वाले मित्र राज्य भी इस प्रदेशीय आंदोलन का स्वागत कर छिपी सहायता देकर रूस के साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर बाल्शेविक आंदोलन का अन्त करने के लिए पूरी-पूरी कोशिश की। किन्तु रूस के क्रांतिकारी नेताओं ने जन-शासन की स्थापना के लिए जातीय, भाषाभाषीय और धार्मिक भेदों पर आधारित विभिन्न दूरस्थ प्रदेशों को स्थानीय स्वतन्त्रता देते हुए, समस्त राज्य को संघ बनाकर सशक्त रखा। साम्यवादी विचारधारा, भौगोलिक परिस्थिति तथा सुरक्षा के प्रश्नों ने साम्राज्यवादियों की छिपी हुई कूटनीति पर विजय पायी और

उस विशाल देश के विभिन्न भागों को स्थानीय, सांस्कृतिक, भाषा सम्बन्धी स्वतन्त्रता देते हुए एक ऐसे संघ की स्थापना की जो अपने ढंग का एक अनुपम संघ है।

सन् १९१९ में जब भारत में राजनैतिक सुधारों की योजना लागू की गई थी तब सभी का यह विचार था कि आगे चलकर अखिल भारतीय संघ की स्थापना ही देश का राजनीतिक ध्येय होगा, यों तो अशोक तथा औरंगजेब ने भारत में एक साम्राज्य की स्थापना कर देश के सभी भागों को सम्बद्ध कर दिया था। परन्तु जब १७५७ में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना का श्रीगणेश हो गया तो सौ वर्ष के भीतर लगभग सारे देश के शासन की बागडोर ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों में आ गई। सन् १८६१ से ही शासन में केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीकरण दोनों ही सिद्धान्त अपनाये गये। फलत: १९१९ से १९३७ तक इस देश के शासन में जो परिवर्तन हुए वे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अनुसार ही थे। जब १५ अगस्त १९४७ को भारत का विभाजन हुआ और पाकिस्तान एक पृथक् डुमीनियन (Dominion) बन गया तो भारत की संविधान सभा (Constituant Assembly) के कार्य में जो पहले रुकावटें खड़ी हो गई थीं, वे दूर हो गईं और भारत का गणराज्य एक संघ बन गया जिसके संविधान में संघवाद के सिद्धान्त आवश्यक हेर-फेर के साथ अपना लिये गए।

संघवाद के सिद्धान्त विभिन्न राज्यों ने अपनी विशेष परिस्थितियों और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और समस्याओं के कारण कुछ हेर-फेर के साथ अपनाये हैं। इसी कारण हम यहाँ विभिन्न संघवादों का वर्गीकरण कर उनके विशेष लक्षणों का वर्णन करते हैं। सब से अधिक प्राचीन संघ आधुनिक काल में संयुक्त राज्य अमरीका का है जिससे प्रेरणा लेकर ही स्विट्ज़रलैण्ड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, रूस और भारत के संघात्मक संविधानों का निर्माण हुआ था।

२—अमरीकी संघवाद

आधुनिक संघों में संयुक्त अमरीका सबसे अधिक पुराना संघ है। वास्तव में अमरीकी संविधान-निर्माताओं ने संघवाद के प्रमुख सिद्धान्त संसार के सामने रखे। इस संविधान का रूप, विकास और प्रयोगात्मक शैली निराली होने से हम अमरीकी संघवाद का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस संविधान के निम्न विशेष लक्षण हैं।

(१) **संविधान सर्वोच्च अधिनियम है :**—इस संविधान का सबसे महत्वपूर्ण भाग इसकी प्रस्तावना है। इस प्रस्तावना में कहा गया है कि सब राज्यों के जन (People) संयुक्त राज्य अमरीका के लिए यह संविधान स्थापित करते हैं। पूर्ववर्ती संघ के संविधान की अपेक्षा नये संविधान में यह एक महत्वपूर्ण सुधार था, क्योंकि

पुराने विधान में लोकमत को कोई स्थान न दिया गया था। दूसरी महत्वपूर्ण बात छठे अनुच्छेद की धारा २ में दी हुई है, जिसमें कहा गया है कि यह संविधान और इसके अन्तर्गत बनाये हुए निर्बन्ध व वे सब संधियाँ संयुक्त-राष्ट्र अमरीका की सत्ता के अन्तर्गत की जावेंगी, राष्ट्र का सर्वोच्च अविनियम (Supreme law of the land) समझी जायेंगी। प्रत्येक उपराष्ट्र में न्यायाधीश उनके प्रावधानों के अनुसार निर्णय किया करेंगे चाहे उपराज्य का प्रविधान या कोई निर्बन्ध उनके विरुद्ध ही क्यों न हो। इस धारा से संविधान बहुत ही सुरक्षित और संघ का शासन बहुत ही दृढ़ हो गया है, क्योंकि जब कभी संघ सरकार के या किसी उपराज्य के कानून का संविधान से विरोध खड़ा हो जाता है तो संविधान की विजय होती है क्योंकि ऐसे विरोध में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अन्तिम और सर्वमान्य होता है। इस प्रकार के आये हुए विरोधों को तय करने में सर्वोच्च न्यायालय संविधान को ही मान्य कसौटी समझकर उसके विपरीत किसी भी अन्य विधि, कृत्य व आदेश को अवैध निश्चित कर रद्द कर देता है। संविधान की रक्षा करना सर्वोच्च न्यायालय का विशिष्ट वर्णित कार्य तो नहीं है किन्तु उपरोक्त वर्णित धारा की विवेचना और व्याख्या करते हुए, न्यायालय ने कई बार स्पष्ट कर दिया गया है कि संविधान द्वारा स्थापित और शक्ति प्राप्त संस्थाएँ उसके प्राविधानों के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकती और इस बात का निर्णय करना कि कौन विधि व कृत्य संविधान के प्रतिकूल है, सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार है, इस निर्णय कार्य में न्यायालय संविधान की धाराओं से बाध्य है और वह किसी अन्य धारा व अधिनियम से स्वतन्त्र है।

(२) **अत्यन्त प्राचीन लिखित संविधान** :—आधुनिक संविधानों में संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान सबसे प्राचीन लिखित संविधान है। सन् १७८६ में १३ स्वतन्त्र संयुक्त राज्यों के प्रतिनिधियों ने पहले पहल यह निश्चय किया कि वे अपने सामान्य हित (General Welfare) साधन के निमित्त और अपनी रक्षा के लिए अपने ऊपर एक संघीय सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार की स्थापना करेंगे। अतएव उन्होंने कई राज्यों तथा प्रतिनिधियों द्वारा उपस्थित किये मसविदों और संवैधानिक प्रारूपों पर गम्भीर विचार कर संविधान बनाया जिसे लिखित रूप दिया गया ताकि केन्द्रीय सरकार का रूप, उसकी शक्तियाँ तथा उसके अंगों का स्पष्टीकरण हो जावे और उसके अनुसार शासन चले। आधुनिक विश्व का यह सब से प्राचीन संविधान है, और इस दृष्टि से फिलाडेलफिया में एकत्रित हुए १३ उपराज्यों के प्रतिनिधियों की यह एक बहुत बहुमूल्य देन राजनीति क्षेत्र में है। सन् १७८७ से अब तक जितने संविधान संसार में बने उन सबने लिखित रूप धारण किया है।

(३) **अत्यन्त कठिन अपरिवर्तनीय संविधान** :—संसार के सभी लिखित संविधान क्लिष्ट ही हैं, अर्थात् उनमें संशोधन तो आवश्यकतानुकूल किया जा सकता है। किन्तु लिखित संविधानों में संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान सबसे अधिक क्लिष्ट है क्योंकि इसमें संशोधन करने की प्रक्रिया बहुत कठिन है। इस संशोधन प्रणाली के दो भाग हैं, प्रथम तो संशोधन का प्रस्ताव, दूसरा संशोधन की अन्तिम स्वीकृति अर्थात् कम से कम तीन चौथाई उपराज्यों द्वारा उसका निश्चित काल के भीतर ही अनुसमर्थन (Ratification)। यही कारण है कि पिछले लगभग पौने दो सौ वर्षों में यद्यपि सैकड़ों बार संविधान में संशोधन करने की चेष्टा की गयी किन्तु अभी तक केवल २२ ही संशोधन हो सके हैं। इन २२ संशोधनों में पहले दस संशोधन सन् १७९१ में हुए, जो नागरिकों के मूल अधिकारों का स्पष्टीकरण करते हैं। सन् १८०४ से १८६५ तक कोई संशोधन नहीं हुआ, १८७० और १९१३ के बीच और १९२१-१९३२ के बीच भी कोई संशोधन नहीं हुआ।

(४) **लिखित होते हुए भी विकसित संविधान** :—यद्यपि अमरीका का संविधान लिखित है, फिर भी प्रायोगिक दृष्टि से यह बहुत कुछ विकसित भी है। सन् १७८७ की परिस्थिति में लिखित संविधान निःसंदेह संकीर्ण था। पिछले १७५ वर्षों में विश्व की परिस्थिति बहुत वदल गयी है। वैज्ञानिक प्रगति और अनुसंधानों का मानव के जीवन पर सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में बहुत प्रभाव पड़ा है। व्यक्ति और राज्य के पारस्परिक सम्बन्ध पहले की अपेक्षा बहुत बदल गये हैं, जिसके फलस्वरूप राज्य के कार्यक्षेत्र में बहुत परिवर्तन हो गया है और इसी कारण राज्य का उत्तरदायित्व अव इतना बढ़ गया है कि शासन का रूप ही अब कुछ और है। राज्य अब केवल सुरक्षा और शांति का ही कार्य नहीं करता, वरन् नागरिक के कल्याण की ओर अधिक ध्यान देता है। विशेषतया संयुक्त राज्य अमरीका जो आज विश्व का अत्यन्त शक्तिशाली, समृद्ध और धनवान देश है, इस उन्नति को नहीं कर सकता था यदि उसकी शासन प्रणाली १७८७ के लिखित संविधान के ही अनुरूप होती। आज विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जो परिवर्तन हुए हैं, उनके फलस्वरूप अमरीका के केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ बहुत बढ़ गयी हैं। इस संवैधानिक विकास के मूल स्रोत हैं (१) उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये वे फैसलें जिनसे केन्द्रीय सरकार की शक्तियों में बहुत वृद्धि हो गयी हैं, (२) अमरीका का घरेलू युद्ध, १८६१-१८६५, जिसके कारण व्यक्ति और राज्य, तथा केन्द्र एवं उपराज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में परिवर्तन और संघ सरकार की जिम्मेदारियों में वृद्धि हो गयी है। (३) आन्तरिक यातायात के साधनों में वृद्धि और देश की आर्थिक उन्नति के कारण अमरीकी नागरिकों के केन्द्रीय सरकार के प्रति

दृष्टिकोण में वहुत अन्तर हो गया है, (४)केन्द्रीय सरकार के प्रति उपराज्यों की सरकारों का रुख बदल गया है। केन्द्रीय सरकार के साधन इतने अधिक हैं कि वह उपराज्यों की सरकारों की अनेक प्रकार से आर्थिक सहायता करती है, जैसे प्रारम्भिक शिक्षा, नागरिकों के स्वास्थ्य के लिए स्थानीय स्वशासनों के लिए अनुदान आदि देकर तथा आन्तरिक क्षेत्र में विभिन्न उपराज्यों की समृद्धि के लिए नयी नयी योजनाएँ जारी करती हैं। फलतः उपराज्यों की सरकारें केन्द्रीय सरकार को अपना हितैषी ही समझती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि लिखित संविधान की संकीर्णता जो क्लिष्टता व संशोधन प्रक्रिया से थी वह अन्य प्रकारों से घट ही नहीं गयी बल्कि वह संविधान राज्य प्रगतिशीलता में कोई अड़चन नहीं डालता। ऐसे अभिसमयों से जिनके द्वारा शासन का कार्य सुचारु रूप से चलता है, संविधान में विकास हो रहा है।

(५) **संघीय संविधान** :—संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान निर्माताओं की, राजनीति क्षेत्र में एक वड़ी महत्वपूर्ण देन है, वहाँ संघीय शासन प्रणाली है। आधुनिक विश्व में अमरीका का संविधान सब से प्राचीन संघीय संविधान है। इसके द्वारा केन्द्रीय सरकार की स्थापना हुई। जिसको केवल परिमित और स्पष्ट वर्णित शक्तियाँ दी गयीं और शेष शक्तियाँ उपराज्यों को। अमरीकी संविधान इस प्रकार संघवाद के सिद्धान्तों के अनुसार निर्मित हुआ, फलतः अमरीका में दुमुखी नागरिकता है, प्रत्येक नागरिक उस उपराज्य का नागरिक है जहाँ वह स्थायी नागरिक निवास करता है, और अमरीकी संघ का भी नागरिक है। सन् १७८७ से अब तक जितने संघात्मक संविधान बने हैं उनको अमरीकी संविधान से बहुत कुछ प्रेरणा और पथ प्रदर्शन प्राप्त हुए हैं किसी भी व्यक्ति को दो सरकारों के प्रति निष्ठा रखना आधुनिक संसार में अमरीकी संघीय संविधान ने ही सिखाया है, और जो दोनों के प्रदत्त अधिकारों का उपभोग करता है।

(६) **शक्ति का पृथक्करण** (Separation of Powers) :—आधुनिक संसार में फ्रांसीसी दार्शनिक मान्टेस्क्यू ने सब से पहले इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि किसी भी राज्य में नागरिक के हितों की रक्षा और शासन के सर्वप्रिय होने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि शासन शक्ति का पृथक्करण किया जाय। अर्थात् विधि का निर्माण एक विधान मण्डल करे, विधि को कार्यान्वित और ही व्यक्ति व मण्डल करे, और न्याय कार्य तीसरा व्यक्ति व मण्डल करे और यह तीनों अंग एक दूसरे से स्वतन्त्र रहें, इन्हीं तीनों अंगों को पृथक् पृथक् विधायिनी शक्ति, कार्यपालन शक्ति और न्यायकारी शक्तियाँ दी जावें। अमरीकी संविधान के निर्माताओं ने ही सबसे पहले इस सिद्धान्त के अनुकूल अमरीका का संघीय संविधान तैयार किया गया। फलतः

अमरीका की संघीय सरकार में विधानमण्डल, कार्यपालिका और न्यायपालिका पृथक्-पृथक् हैं और एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं। परन्तु यदि इस शक्ति पृथक्करण को अधिक सीमा तक ले जाया जाता तो शासन के विभिन्न तीनों अंगों में इतना विरोध हो जाने की संभावना थी कि शासन शांतिपूर्वक न चल सकता था। अतएव जहाँ संविधान ने कांग्रेस को विधायिनी शक्ति, राष्ट्रपति को कार्यपालिका शक्ति और सर्वोच्च न्यायालय को न्यायपालिका शक्ति दी है, वहाँ तीनों अंगों में उचित संतुलन और अवरोध का भी तरीका रख दिया है। यदि कांग्रेस विधि बनाती है तो राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि उचित समझे तो वह अपने अवरोध अथवा प्रतिषेधात्मक अधिकार का उपयोग कर कानून पर हस्ताक्षर न करे ऐसी दशा में कांग्रेस या प्रत्येक सदन उस कानून को फिर से दो-तिहायी बहुमत से स्वीकार कर राष्ट्रपति के अवरोध अधिकार को निष्फल कर सकता है। राष्ट्रपति कांग्रेस का तीसरा सदन नहीं, किन्तु अपने संदेशों द्वारा वह कांग्रेस से प्रार्थना कर सकता है कि शासन नीति के लिये अमुक कानून बनावे अथवा उसे उचित अधिकार दे। न्यायपालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति, सीनेट की अनुमति से करता है और इस प्रकार राष्ट्रपति और सीनेट न्यायपालिका पर प्रभावित होते हैं। किन्तु सर्वोच्च न्यायालय कांग्रेस द्वारा निर्मित विधि को अथवा राष्ट्रपति द्वारा दिये गये किसी आदेश को संविधान के प्रतिकूल समझने पर अवैध कर सकता है जिससे वह विधि अथवा आदेश निष्फल हो जाता है। कांग्रेस को यह अधिकार है कि यदि राष्ट्रपति अथवा सर्वोच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश अवैध कार्य व देशद्रोह करे तो प्रतिनिधि सदन के प्रस्ताव करने पर आरोपों को सुने और ऐसी परिस्थिति में न्यायपालिका के अनुरूप वह उस व्यक्ति को, यदि दोषी समझे तो, पदच्युत कर दे। इस प्रकार अमरीकी संविधान ने जहाँ शक्तियों का पृथक्करण कर शासन के तीनों अंगों को सौंप दिया है, वहाँ उन अंगों में उचित सहयोग अथवा संतुलन और अवरोध का भी प्रबन्ध किया है।

(७) **अध्यक्षात्मक कार्यपालिका** (Presidential Executive) :—१७८७ से पहले जनतन्त्र शासन की प्रणाली संसदीय थी और इसका उद्‌गम इंगलैण्ड से हुआ था। इस संसदीय प्रणाली के अनुसार कार्यपालिका विधानमण्डल का भाग होती है और उसी के प्रति उत्तरदायी है। परन्तु अमरीकी संविधान इस प्रणाली का अनुसरण न कर अध्याक्षात्मक कार्यपालिका स्थापित की जो राजनीति क्षेत्र में पहला प्रयोग था। अमरीका का अध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति, संविधान की धारा २ (अ) के अनुसार कार्यपालिका की शक्ति धारण करता है, वह न तो कांग्रेस का सदस्य है और न उसको उत्तरदायी है। वह चार वर्ष के लिये निर्वाचित होता है, और सारी शासन संचालन शक्ति का

अधिकारी है। इस प्रकार की कार्यपालिका अमरीकी संविधान की विशेषता है।

(८) **संघ न्यायपालिका की विशेष शक्ति** :—अमरीकी संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, उसकी न्यायपालिका की शक्तियाँ और स्थान। संविधान की धारा ३ (अ) के अनुसार संयुक्त राज्य की न्यायशक्ति एक सर्वोच्च न्यायालय और समय समय पर कांग्रेस द्वारा स्थापित न्यायालयों को सौंप दी गयी है। सर्वोच्च न्यायालय संविधान की रक्षा करता है और उसका स्पष्टीकरण करता है। संविधान के प्रतिकूल समझने पर वह किसी भी विधि अथवा कार्य व आदेश को अवैध ठहरा सकती है।

(९) **मूल अधिकारों का समावेश** :—अमरीका ने जब इंगलैण्ड के आधिपत्य का विरोध कर अपनी स्वतन्त्रता घोषित की तो उस समय स्वतन्त्रता-घोषणापत्र में इंगलैण्ड के राजा पद पर यह दोषारोपण किया गया था कि उसने नागरिकों के हितों की रक्षा नहीं की और ऐसे विभिन्न कृत्य किये जिनसे स्वतन्त्र जीवन असम्भव हो गया। घोषणा के आरम्भ में ही यह कहा गया था कि यह स्वतः स्पष्ट सत्य है कि सभी मनुष्य सामान्य उत्पन्न हुए हैं, उनके कुछ अविच्छेद्य (Inalienable) अधिकार हैं जिनमें "जीवन, स्वतन्त्रता और सुख की खोज" विशेष है और "इन्हीं अधिकारों की रक्षा करने के लिये मनुष्यों के बीच सरकारों की स्थापना होती है जिनकी शक्ति शासितों की अनुमति से प्राप्त होती है जब कोई शासन पद्धति इन अधिकारों का हरण करती है तो जन का यह कर्तव्य हो जाता है कि ऐसे शासन का अन्त कर उसके स्थान पर नया शासन स्थापित करें जो इन तान्विक सिद्धान्तों पर आधारित है।" यह बड़े आश्चर्य की वात थी कि यद्यपि जेफर्सन ने, जिसने स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र तैयार किया था, इस बात पर जोर दिया गया था कि नवीन संविधान में नागरिकों के मूल अधिकार अवश्य वर्णित कर दिये जायँ, फिर भी १७८७ में जो संविधान बनाया गया था उसमें मूल अधिकारों की चर्चा नहीं थी। जैफर्सन ने इस बात पर खेद भी प्रकट किया और आशा की कि संविधान की यह न्यूनता शीघ्र दूर की जावे। और हुआ भी ऐसा ही, क्योंकि संविधान के लागू होने के बाद ही अर्थात् १८६५ और सन् १८७० तथा १९२० के संशोधन के अनुच्छेद जोड़ दिये गये जिसमें नागरिकों के मूल अधिकार इस प्रकार स्पष्ट कर दिये गये कि:—

(क) कांग्रेस कोई ऐसी विधि नहीं बनावेगी जो किसी धर्म विशेष की स्थापना करे, अथवा धार्मिक स्वतन्त्रता में बाधक हो, अथवा विचार प्रकट करने की, मुद्रणालय की, अथवा लोगों के शान्तिपूर्वक एकत्रित करने की, और अपने

कष्टों के निवारण के निमित सरकार के प्रार्थना की स्वतन्त्रता को कम करें;

(ख) लोगों को शस्त्र रखने और प्रयोग करने के अधिकार का उल्लंघन नहीं होगा।

(ग) किसी भी मकान में उसके स्वामी के आज्ञा के बिना, शान्तिकाल में कोई सैनिक नहीं रखे जावेंगे।

(घ) लोगों के शरीर, मकानों, कागजातों और सम्पत्तियों की रक्षा, अकारण तलाशी और जब्ती न करने से की जावेगी, और बिना वारंट के जो किसी शपथ पर आधारित हो, किसी की तलाशी नहीं ली जावेगी।

(ङ) बिना जूरी (Jury) की सहायता के किसी भी व्यक्ति को घृणित व अन्य जुर्म के लिये बन्दी न किया जावेगा, और किसी को एक ही दोष के लिये दो बार दंडित न किया जावेगा;

(च) किसी भी फौजदारी के अभियोगों में दोषी को शीघ्रातिशीघ्र और सार्वजनिक फैसला कराने का अधिकार होगा;

(छ) असैनिक अथवा व्यावहारिक (Civil) मामलों में बीस डालर से अधिक के झगड़ों में जूरी द्वारा निर्णय कराया जायगा;

(ज) न तो अत्यधिक जमानत माँगी जावेगी, और न अधिक जुर्माना किया जायगा और न असाधारण अथवा क्रूर दंड ही दिया जावेगा;

(झ) इस संविधान में वर्णित अधिकारों का यह आशय नहीं कि लोगों को अन्य अधिकार प्राप्त नहीं है अथवा उनमें कोई कमी है;

(ञ) संविधान द्वारा केन्द्रीय सरकार को न दी गयी शक्तियाँ उपराज्यों अथवा लोगों को सुरक्षित है,

(ट) गुलामी व अनेच्छा सेवा जो किसी दंड के रूप में न हो संयुक्त राज्य में न रहेगी;

(ठ) मताधिकार जनता को बिना जाति, वर्ण व पूर्व स्थिति के भेदभाव के सभी को प्राप्त होगा;

(ड) संयुक्त राज्य में नागरिकों के अधिकार स्त्री-पुरुष सभी के लिये बिना भेदभाव प्राप्त रहेंगे।

इस प्रकार अमरीका के संविधान में जनता के अधिकारों का समावेश १२ अनुच्छेदों द्वारा किया गया है जिससे नागरिकों की स्वतन्त्रता विभिन्न प्रकार से सुरक्षित है। इन अधिकारों की रक्षा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा होने का भी प्रबन्ध है।

(१०) **संविधान जनतन्त्रवाद का प्रज्ज्वलंत उदाहरण:**—अमरीका संसार का

प्रसिद्ध जनतन्त्र राज्य है। संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट है कि "हम संयुक्त राज्य अमरीका के लोग संघ की एकता अधिक सुनिश्चित करने, न्याय व्याख्या कायम करने के लिये, घरेलू शान्ति की रक्षा करने के निमित्त, सामान्य सुरक्षा हेतु, सामान्य हित साधन तथा अपने एवं भावी पीढ़ियों को स्वतन्त्रता के आशीर्वाद का रक्षण करने के लिये, इस संविधान को निर्दिष्ट तथा स्थापित करते हैं।" इन शब्दों से सिद्ध होता है कि अमरीका के संविधान का आधार लोगों की अनुमति है। वहाँ के विधान मण्डल के दोनों सदनों के सदस्य एक नियत समय के लिये जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं, वहाँ की कार्यपालिका अर्थात् राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष जनतंत्रीय प्रक्रिया से होता है, और वहाँ का सर्वोच्च न्यायालय लोगों के अधिकारों की रक्षा करता है। बिना जनतन्त्रीय निश्चित विधि के संविधान में कोई संशोधन नहीं होता है। किसी भी सार्वजनिक पद पर कोई भी योग्य नागरिक बिना किसी प्रकार के कानूनी भेद-भाव के आरूढ़ होने का अधिकारी है। वहाँ मताधिकार सभी को प्राप्त है। किसी भी उपराज्य के नागरिक संयुक्त राज्य के नागरिक है।

इसमें संदेह नहीं कि १८८७ का निर्मित संविधान अपनी विशेषता रखता है। आधुनिक संविधानों से तुलना करने पर यह स्पष्ट है कि यह संविधान अत्यन्त संक्षिप्त है। इसका कलेवर बहुत ही सूक्ष्म है। इसके कई कारण हैं। पहले तो यह संविधान ऐसी परिस्थिति में बनाया गया था कि संविधान निर्माताओं ने छोटे और बड़े उप-राज्यों के आपसी विरोध न बढ़ने देने की इच्छा से ऐसी समस्याओं को सामने आने ही नहीं दिया जिनसे संविधान बनने के कार्य में अधिक समय लगे। दूसरे, संविधान में केवल केन्द्रीय संघ सरकार की शक्तियों और रचना का वर्णन है, उपराज्यों के अपने निजी और पृथक संविधान हैं। तीसरे, अन्य संविधान की अपेक्षा अमरीकी संविधान में केवल तात्विक सिद्धान्त ही वर्णित है और सविस्तार व्याख्या और प्रक्रियाओं को कांग्रेस द्वारा बनाये अधिनियमों पर छोड़ दिया गया है। चौथे उस शताब्दी में राज्यों के कृत्य और शक्तियाँ सीमित थीं। अतएव विस्तृत व्याख्याओं और भावी आवश्यकताओं को समयानुकूल निश्चित होने के लिये देना स्वाभाविक ही था।

संविधान के कुछ संविधानों की कड़ी आलोचना की जाती है, जैसे सीनेट की सन्धि व पदाधिकारियों की नियुक्तियों का अधिकार प्रदान करना उचित नहीं समझा जाता। किन्तु यह ध्यान में रखने की बात है कि सन् १७८७ के विधान निर्माता उस समय की परिस्थितियों का सामाना कर रहे थे, इसलिये "कल की सरकार को माप-डंड से मापना अनुचित है।" यद्यपि संविधान के संचालन में अनेक कठिनाइयाँ हुईं फिर भी वह असंतोषजनक सिद्ध नहीं हुआ है। पिछले १७५ वर्षों में भयंकर विवाद

और संकट खड़े हुए, और एक बार तो सन् १८६१ में गृहयुद्ध के समय संघ की एकता को भारी क्षति पहुँचने की आशंका भी हुई, किन्तु फिर भी महत्वपूर्ण संशोधनों द्वारा संघ सुदृढ़ हो गया और अमरीका अत्यन्त धनवान और शक्तिशाली राज्य बन गया, यही संविधान के दृढ़ होने का प्रमाण है। इसके विपरीत फ्रांस में इसी काल में अनेकों संवैधानिक प्रयोग हुए और वहाँ का जनतन्त्र अब तक अनिश्चित रूप धारण किये हुए है.।

३—स्विस संघवाद

स्विट्ज़रलैण्ड के निवासियों को सन् १८४८ के गहयुद्ध का कटु अनुभव हो चुका था इसलिये इस नये संविधान में पृथकीकरण सम्भावना को दूर रखने का प्रयत्न किया गया है। इसके लिये यह निश्चित प्रावधान कर दिया गया है कि कैन्टनों में आपस में राजनैतिक संधियाँ नहीं हो सकतीं। संयुक्त राज्य अमरीका के शासन विधान में कहा गया है कि संघ-सरकार के अधिनियम को संघ सरकार के अफसर कार्यान्वित करेंगे और उपराज्यों के अधिनियम को उपराज्यों के अफसर। किन्तु स्विट्ज़रलैण्ड में इस प्रकार का विभाजन नहीं किया गया है, इस संविधान में स्विस नागरिकता की विधिपूर्वक परिभाषा नहीं की गयी है, किन्तु केवल यही कह दिया गया है कि कैन्टन का प्रत्येक नागरिक स्विस नागरिक है। संविधान में मूल अधिकारों का वर्णन नहीं मिलता, किन्तु वैयक्तिक अधिकारों का वर्णन विस्तृत पाया जाता है। निर्बन्ध न्याय में विधि के समक्ष सब व्यक्तियों की समानता, आत्म-स्वातंत्र्य, धर्म विश्वास, आराधना सम्बन्धी स्वतन्त्रता और समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता सुरक्षित कर दी गयी है। किन्तु संविधान के ५२ वें अनुच्छेद से नए मठों या सम्प्रदायों को पुनर्जीवित करना मना है। नागरिकों का यह अधिकार भी सुरक्षित कर दिया गया है कि वे प्रार्थनापत्र दे सकते हैं और समुदाय बना सकते हैं। प्रतिबन्ध केवल इतना है कि ये समुदाय राज्य में हानिकारक या किसी अवैध उपायों को काम में नहीं ला सकते। भारतवर्ष के समान स्विट्ज़रलैण्ड के विधान-निर्माताओं के सामने भी विभिन्न भाषा, धर्म और जातियों की समस्या थी। अतएव भारतवर्ष के निवासियों को स्विटजरलैण्ड के संविधान व उसके इतिहास का अध्ययन बहुत लाभ-दायक सिद्ध हो सकता है।

यद्यपि सन् १८७४ के संविधान निर्माताओं के सामने संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान का उदाहरण और अनुभव दोनों ही उपस्थित थे, किन्तु उन्होंने इससे अधिक लाभ नहीं उठाया। इसका कारण यही था कि स्विट्ज़रलैण्ड की भौगोलिक परिस्थिति,

वहाँ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, लोगों के आचार-विचार तथा आर्थिक परिस्थिति अमरीका से भिन्न थे। यही कारण है कि यद्यपि अमरीका की भाँति स्विटज़रलैण्ड भी लोकतंत्र तथा गणतंत्रीय राज्य है और दोनों ने संघीय शासन प्रणाली अपनाई है, फिर भी दोनों के संविधान में बहुत भेद तथा अन्तर है स्विज संघवाद और अमेरिकन संघवाद में बहुत कुछ भिन्नता है। स्विस संविधान अन्य देशों के संविधान की अपेक्षा बहुत ही निराला है और उसमें कई राजनीतिक सिद्धान्त और राजनीतिक संस्थायें अनुपम हैं। स्विज संविधान की विशेषताओं का तुलनात्मक वर्णन भी राजनीतिक विद्यार्थियों और जिज्ञासुओं के लिये महत्वपूर्ण है। स्विस संविधान की निम्नलिखित विशेषतायें प्रमुख हैं:—

(१) **संविधान का कलेवर :**—अमरीकन संविधान की अपेक्षा स्विस संविधान अधिक बड़ा है, उससे ५० प्रतिशत अधिक लम्बा है। स्विस संविधान में कुछ ऐसी बातों का समावेश है जो वास्तव में विधायिनी नहीं है। परन्तु इस संविधान के बड़े होने का मुख्य कारण यह है कि उसमें कई बातों को अधिक विस्तारपूर्वक लिख दिया गया है; संघीय सरकार के अधिकारों तथा शक्तियों का सविस्तार वर्णन किया गया है और संघ तथा कैन्टनों के विधायिनी और प्रशासकीय अधिकारों पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं उनका भी विस्तृत वर्णन किया गया है। जहाँ अमरीका में निहित शक्तियों के सिद्धान्त को महत्ता दी गयी है वहाँ स्विस संविधान में स्पष्टतया वर्णित शक्ति को ही अधिक महत्व दिया गया है। सविस्तार वर्णन का एक लाभ स्विटजरलैण्ड में यह अवश्य हुआ कि वहाँ संघ और कैन्टन राज्यों में कोई विरोध नहीं होने पाया है; यह स्विस राजनीति का एक गुण माना जाता है।

(२) **संविधान का आधारभूत सिद्धान्त :**—अमरीकन संघवाद संप्रभुता पर स्थिर है और इसी कारण वहाँ के संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि "हम संयुक्त राज्य अमरीका के लोग इस संविधान को निर्दिष्ट तथा स्थापित करते हैं।" किन्तु स्विस संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि "स्विटजरलैण्ड के निम्न बाइस संप्रभुताधारी कैन्टनों के लोग . . . स्विस संघ का निर्माण करते हैं।" अर्थात् कैन्टनों की प्रभुसत्ता को महत्व दिया गया है जिसके कारण स्विस संघ की एकता उतनी पक्की नहीं जितनी अमरीकी संघ की है। स्विस संघ को उपराज्यों का संघ और अमरीकी संघ को संयुक्त राज्य के नागरिकों का संघ कहना ठीक होगा, इसलिये स्विटजरलैण्ड को प्रसंधान न कि संघ कहा गया है। संविधान के तीसरे अनुच्छेद में कहा गया है कि "कैन्टन संप्रभुताधारी है जहाँ तक उन पर संघीय संविधान ने कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया है, अतः वे उन सभी अधिकारों का उपभोग करते हैं जो

संघीय सरकार को नहीं दिये गये हैं। कैन्टनों की प्रभुसत्ता को अनुच्छेद ५ में और भी अधिक स्पष्ट कर दिया गया है जिसके द्वारा उनका क्षेत्रफल, संप्रभुता, उनके संविधानों और नागरिकों के अधिकारों तथा नागरिकों द्वारा प्रदत्त कैन्टनों की शक्तियों की सुरक्षा अथवा प्रत्याभूति संघीय सरकार का कर्तव्य है। सारांश यह है कि स्विज संविधान में कैन्टनों की प्रभुसत्ता पर अधिक बल दिया गया है, और संयुक्त राज्य में नागरिकों की प्रभुसत्ता पर। भारत के गणतंत्र में भी नागरिकों की प्रभुसत्ता मानी गयी है।

(३) **शक्ति पृथकीकरण के सिद्धान्त का अभाव** :—संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान मान्टेस्यू द्वारा प्रतिपादित शक्ति-पृथक्करण पर आधारित है और इसीलिए प्रथम तीन अनुच्छेदों में संघीय सरकार के विधानमण्डल, कार्यपालिका और न्यायपालिका की रचना, उनके अधिकारों और शक्तियों तथा पारस्परिक सम्बन्धों का विस्तार वर्णन है। किन्तु स्विस संविधान में इस संविधान को नहीं अपनाया गया, वहाँ तो सारी शक्ति के अन्तिम उपभोक्ता वहाँ के कैन्टन और नागरिक हैं। स्विस विधान मण्डल का कार्यपालिका पर पूर्ण अधिकार है, वास्तव में स्विस कार्यपालिका अनोखे ढंग की है, वह केवल विधान मण्डल के निर्णयों को लागू करती हैं, स्वयं राजनीति का निर्माण नहीं करती। स्विस न्यायपालिका को अमरीकी सुप्रीमकोर्ट की भाँति विधियों की अवैधता घोषित करने, संविधान की व्याख्या करने अथवा न्यायिक पुनर्विलोकन का कोई अधिकार नहीं है। उसके न्यायाधीशों का निर्वाचन एक निर्धारित अवधि के लिये विधान मण्डल करता है और उसके संवैधानिक झगड़ों को तय करने का कोई अधिकार नहीं। कैन्टनों के आपसी न्यायिक अथवा वैधानिक झगड़ों का निपटारा स्विस कार्यपालिका करती है और संघीय विधियों को रद्द करने का अधिकार कैन्टनों के बहुमत तथा नागरिकों के बहुमत से होता है। क्योंकि संविधान का संशोधन प्रत्यक्ष जनतन्त्र द्वारा होता है, न्यायपालिका पर (अमरीकन सर्वोच्च न्यायलय के विपरीत) स्विस संविधान को सर्वोपरि विधि मानने को अथवा उसकी रक्षा करने का प्रतिबन्ध नहीं।

(४) **नागरिकों के मूल अधिकार** :—अमरीकी संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में नागरिकों के मूल अधिकारों का एकत्रित वर्णन है। भारतीय संविधान के तीसरे अध्याय में नागरिकों के मूल अधिकारों का स्पष्टीकरण किया गया है। किन्तु स्विस संविधान में एसे मूल अधिकारों का कोई विशेष एकत्रित घोषणा पत्र (Bill of Rights) नहीं है। हाँ प्रथम अध्याय के इतर-वितर अनुच्छेदों में नागरिकों के निम्न अधिकार वर्णित है।

(क) सारे स्विस निवासी विधि के सम्मुख समान हैं। स्विटज़रलैण्ड में कोई प्रजा नहीं अर्थात् दूसरे के अधिपत्य में नहीं और पद व जन्म के आधार पर तथा कौटुम्बिक विशेषाधिकार पर किसी व्यक्ति को कोई विशेषाधिकार नहीं है। (अनु० ४)

(ख) कैन्टन प्रारम्भिक शिक्षा का प्रवन्ध करेंगे जो पर्याप्त होगी और असैनिक शक्ति द्वारा ही प्रचारित होगी। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य और सरकारी स्कूलों में निःशुल्क है। सभी धार्मिक मतों के सदस्यों के लिये सरकारी स्कूल खुले रहेंगे, और किसी के मार्ग में धार्मिक विश्वासों के भेदभाव से कोई अड़चन न रहेगी। यदि कोई कैन्टन इन शर्तों का पालन नहीं करेंगे तो संघ सरकार उनके विरुद्ध आवश्यक पग उठावेगी। (अनु० २७)

(ग) सारे संघ के अन्तर्गत व्यापार और उद्योग की स्वतन्त्रता है। (अनु० ३१)

(घ) संघ ऐसे नियम बनाने का अधिकारी होगा जो रोग व दुर्घटना से पीड़ित का बीमा करेगा। ऐसे अविनियम सभी लोगों अथवा निर्धारित वर्गों के लिये अनिवार्य होगा। (अनु० ३४ब)

(ङ) कैन्टनों का प्रत्येक नागरिक स्विस नागरिक है। अतएव वह अपनी अर्हता साबित करने पर, अपने कैन्टन तथा संघ सम्बन्धी निर्वाचनों में मतदान का अधिकारी है। कोई भी व्यक्ति एक से अधिक कैन्टन में राजनीतिक अधिकारों का उपभोग नहीं करेगा। (अनु० ४३)

(च) किसी भी स्विस नागरिक को संघ अथवा अपने जन्म के कैन्टनों की सीमा के बाहर निर्वासित नहीं किया जायेगा। (अनु० ४४)

(छ) प्रत्येक स्विस नागरिक को, जन्म आदि के प्रमाणपत्र दिखाने पर स्विटजरलैण्ड के किसी भी भाग में निवास करने का अधिकार है। (अनु० ४५)

(ज) आत्म-स्वतन्त्रता पर आघात नहीं होगा। किसी भी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी धार्मिक सहवास का सदस्य होने के लिये बाधित नहीं किया जायेगा। कोई भी माता-पिता अपनी संतान को १६ वर्ष की आयु तक धार्मिक शिक्षा दिलाने में स्वतन्त्र हैं। किसी धर्म अथवा मत के आधार पर असैनिक और राजनीतिक अधिकारों को परिमित नहीं किया जायगा। (अनु० ४९)

(झ) सार्वजनिक आचार, शान्ति और व्यवस्था के अनुकूल धार्मिक स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति (Guarantee) की जाती है। संघ की बिना आज्ञा किसी

भी कैन्टन में विषयपद की स्थापना न होगी। (अनु० ५०)

(अ) विवाह का अधिकार संघ के संरक्षण में है।
धर्म, निर्धनता अथवा किसी भी पक्ष के आचार-विचार के कारण विवाह में बाधा नहीं होगी। किसी भी कैन्टन में अथवा विदेश में विवाह सारे संघ में मान्य होंगे। विवाह हो जाने पर पत्नी अपने पति के कम्यून की नागरिक समझी जावेगी। पति अथवा पत्नी से कोई विवाह शुल्क नहीं लिया जावेगा। (अनु० ५४)

(ट) मुद्रणालय की स्वतन्त्रता प्रत्याभूत की जाती है। किन्तु कैन्टन को अधिकार है कि आवश्यक कार्यवाही द्वारा इसका दुरुपयोग रोक दें। (अनु० ५५)

(ठ) नागरिकों को संवास (Association) बनाने की स्वतन्त्रता है परन्तु इनके उद्देश्य तथा साधन न तो गैर कानूनी हों और न राज्य के लिये खतरनाक हों। कैन्टन इसका दुरुपयोग रोकेंगे। (अनु० ५६)

(ड) प्रार्थना करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है। (अनु० ५७)

(ढ) प्रत्येक नागरिक को सामान्य न्याय मिलेगा। (अनु० ५८)

(ण) प्रत्येक कैन्टन अन्य कैन्टनों के नागरिक के साथ वही व्यवहार करेगा जो अपने नागरिकों के साथ करता है। (अनु० ५९)

(त) शारीरिक दंड नहीं दिया जायगा। राजनीतिक अपराधों के लिये प्राणदंड नहीं दिया जायेगा। (अनु० ६०)

(५) स्विटजरलैण्ड में धार्मिक भेद-भाव अधिक हैं। यद्यपि वहाँ प्रोटेस्टेंट मतावलम्वी अधिक हैं, फिर भी कैथोलिक मतावलम्बियों का बहुत प्रभाव है, अतएव वहाँ स्त्रियों को मताधिकार नहीं दिया गया है। कई बार संविधान में संशोधन प्रस्तुत हुए कि स्त्रियों को मताधिकार दिया जावे, परन्तु वे स्वीकृत नहीं हुए।

(६) संयुक्त राज्य अमरीका में संघीय विधियों को संघीय कर्मचारी लागू करते हैं, किन्तु स्विटजरलैण्ड में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं। इसका यह परिणाम है कि केन्द्र की शक्ति अधिक है और कैन्टनों के कर्मचारी केन्द्रीय विधियों को लागू करते हैं।

(७) अमरीका में धार्मिक स्वतन्त्रता सम्पूर्ण अपरिमित और स्पष्टतया लागू है। यद्यपि वहाँ भी धार्मिक भेदभावों का निर्वाचन पर काफी प्रभाव पड़ता है और अधिकतर प्रोटेस्टैंट मतावलम्बी ही राष्ट्रपति निर्वाचित हुए हैं किन्तु वहाँ किसी धर्म अथवा मत पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं। इसके विपरीत

स्विज विधान में जेसुइट (Jesuit) पर पूरा प्रतिबन्ध है। न तो उनको स्वतन्त्रता है और न वे अपने विचारों का प्रचार कर सकते हैं। न वहाँ कोई नवीन मत की स्थापना की जा सकती है और न नया विशप पद स्थापित हो सकता है। अनुच्छेद ५२ व ५१ इस प्रकार के प्रतिबन्ध लगाते हैं।

(८) स्विटजरलैण्ड की कार्यपालिका विचित्र प्रकार की है, न तो वह संसदीय है और न अध्याक्षात्मक, और न उसके सात सदस्यों को सामुहिक उत्तरदायित्व रखना पड़ता है। इस कार्लिजिएट (Collegiate) कार्यपालिका का सविस्तार वर्णन अन्यत्र किया है।

(९) स्विटजरलैण्ड ही एक ऐसा राज्य है जिसमें अभी तक प्रजातन्त्र का प्रत्यक्ष रूप बहुत कुछ जारी है। वहाँ नागरिकों और कैन्टनों को अधिकार है कि किसी भी विधि का लोक निर्णय (Referendum) करावें, अथवा अविनियम का प्रस्ताव करें अथवा (कुछ कैन्टनों में) प्रतिनिधियों अथवा न्यायाधीशों व न्याय निर्णयों को वापिस करा दें।

छः कैन्टनों में जिनकी जनसंख्या कम है। कोई प्रतिनिधि सदन नहीं, वहाँ नागरिक अपने सम्मेलन में कैन्टन की विधियाँ बनाते, आय व्यय का व्योरा तय करते और अधिकारियों का निर्वाचन करते तथा प्रशासन का निरीक्षण करते हैं। ऐसी प्रथा और किसी देश में नहीं है। ये कैन्टन हैं, ऊरी (Uri), ग्लेरस (Glarus) अपर और लोअर अंटरवाल्डन (Unterwalden), तथा आन्तरिक बहि अपेनजिल (Appenzel, Interior and Exterior)

(१०) संविधान की अपरिवर्तन शीलता :— स्विस संविधान में सामान्य विधि (Ordinary law) और संवैधानिक विधि (Constitutional law) में भेद किया गया है। सामान्य विधि का निर्माण विधान मण्डल करता है, यद्यपि लोक निर्णय द्वारा उसे नागरिक और कैन्टन रद्द कर सकते हैं। किन्तु संविधान में संशोधन करने के लिये विधान मण्डल केवल प्रस्ताव कर सकता है अन्तिम निर्णय तो अनिवार्य लोक निर्णय (Compulsory Referendom) द्वारा आधे से अधिक कैन्टनों और सारे संघ के अधिकांश नागरिकों के बहुमत से ही हो सकता है। अतएव संशोधन की यह प्रक्रिया अमरीकी संविधान संशोधन की प्रक्रिया से अधिक कठिन है।

(११) स्विस संविधान में एक संघीय प्रशासकीय न्यायाधिकरण (FederalAdministrative Tribunal) की स्थापना अनुच्छेद ११४(अ)के द्वारा की गयी है, जो २५ अक्टूबर १९१४ के लोक निर्णय में स्वीकृत हुआ था। इस ट्रिब्युनल का संघीय विधियों और संधियों के अन्तर्गत झगड़ों का निपटारा करना पड़ता है।

स्विस संविधान में एक प्रस्तावना और चार अध्याय हैं पहले अध्याय में जिसका शीर्षक है साधारण उपबन्ध '(General Provisions), ७० अनुच्छेद हैं जिनका क्रम किसी विशेष प्रकार से नहीं किया गया है, किन्तु एक ही विषय सम्बन्धी बातें विभिन्न तितर-वितर अनुच्छेदों में वर्णित हैं। प्रस्तावना में कहा गया है कि "२२ संप्रभुताभूत कैन्टनों के लोग "इसमेल (Alliances) में संगठित .... एक कान्फीडरेशन (Confederation) का निर्माण करते है।" इसमें संघ नहीं कहा गया है, अतएव प्रथम अध्याय के ७० अनुच्छेदों में जो साधारण उपबन्ध हैं उनमें कई विषयों का वर्णन है; प्रथम तो उसमें संघीय सरकार के उन अधिकारों का वर्णन है जो वह कैन्टनों की सरकारों पर रखती है, दूसरे, नागरिकों के कुछ अधिकारों का वर्णन है; तीसरे, उसमें कैन्टनों की स्वतन्त्रता और उनके अपने संविधानों पर प्रतिबन्ध लगाये गये हैं, चौथे, उसमें संघ की कुछ शक्तियाँ (जिनमें आर्थिक शक्तियाँ भी हैं) वर्णन की गयी है, और कुछ स्रोतों की आय का संघ और कैन्टनों में विभाजन किया गया है; पाँचवें, धार्मिक प्रतिबन्ध भी वर्णित है। इन्हीं कारणों से यह अध्याय ही संविधान के कलेवर को बढ़ाता है।

दूसरे अध्याय में संघीय संस्थाओं और कार्याधिकारियों को वर्णित किया गया है, इसमें ७१-११७ अनुच्छेद है। संघीय विधान मण्डल की रचना, निर्वाचन, शक्तियों आदि का वर्णन अनुच्छेद ७०-८४ में किया गया है। अनुच्छेद ९५-१०५ में संघ की कार्यपालिका (Federal Council) की रचना, उसकी निर्माण शक्तियाँ, कर्तव्य तथा विधान मण्डल से सम्बन्ध स्पष्ट किये हैं। अनुच्छेद १०६-११४ में संघीय न्यायालय की रचना, शक्तियों और क्षेत्राधिकार का वर्णन है। अनुच्छेद ११४ (अ) में प्रशासकीय न्यायाधिकरण के अधिकार दिये गये हैं। तीसरे अध्याय के ११८-१२३ में संविधान के विभिन्न प्रकार (आंशिक तथा सम्पूर्ण) संशोधनों की प्रक्रिया का सविस्तार वर्णन किया गया है।

चौथे अध्याय के अनुच्छेदों में अस्थायी तथा संक्रामिक उपबन्ध वर्णित हैं। इस संविधान में कैन्टनों के संविधान का समावेश नहीं है। प्रत्येक कैन्टन का संविधान पृथक है, जो जनतंत्रीय सिद्धान्तों पर आधारित है, नागरिकों द्वारा निर्मित है और उन्हीं के द्वारा लोक निर्णय प्रणाली से संशोधित होता है उसमें कोई ऐसा प्रावधान नहीं हो सकता जो संघीय संविधान के प्रतिकूल हो।

स्विस संविधान में ४ भाषायें प्रमाणित और मान्य हैं, जर्मनी भाषा जो १९ कैन्टनों में बोली जाती है, फ्रेंच ५ कैन्टनों में, इटालियन १ में और रोमांश (Romansch) १ कैन्टन में।

४– सोवियत रूसी संघवाद

रूसी संघवाद ने मार्क्सवाद के मुख्य सिद्धान्तों को अपना आधार बनाया है, अतएव यह संघवाद अमरीकी तथा स्विस संघवादों से कई दिशाओं में भिन्न है। पूंजीवादी शासन विधान बिना कुछ कहे हुए और बातों को मान कर बनाये जाते हैं, जो यह हैं कि विभिन्न जातियों और वसूलों के अधिकार समान नहीं हो सकते, कुछ अधिकार रखने वाली जातियाँ होती हैं और दूसरी अधिकार न रखने वाली, तथा एक तीसरा वर्ग भी होता है जो और भी कम अधिकार रखने के योग्य है जैसे उपनिवेशों की जनता। इसके विपरीत सोवियत समाजवादी प्रजातन्त्र संघ (सो० स० प्र० सं०) का शासन विधान अन्तर्राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत है। इसके अन्तर्गत सभी कौमों और नसलों के अधिकार बराबर हैं; रंग, नस्ल या भाषा तथा संस्कृति अथवा राजनीतिक विकास के कारण कोई और भेद, कौमों की असमानता का अधिकार नहीं हो सकता, ऐसे कोई भी भेद विभिन्न कौमों में क्यों न हो, लेकिन समाज के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के सभी क्षेत्रों में कौमों और नस्लों को समान अधिकार मिलना चाहिये। यही इस नये शासन विधान की पहली विशेषता है।

नये शासन विधान की दूसरी विशेषता यह है कि वह पूरी तरह जनवादी (Completely Democratic) है। पूँजीवादी शासन विधान या तो नागरिकों के अधिकारों की समानता और जनवाद को ठुकराते हैं, और या वे उन सिद्धान्तों को कहने मात्र के लिये स्वीकार तो करते है परन्तु शासन का ढाँचा ऐसा रखते हैं कि जनवाद वास्तव में सीमित हो जाता है (जैसे स्त्रियों को समानता नहीं मिलती) या कुचल जाता है। परन्तु सो० स० प्र० सं० के संविधान में ऐसा कोई अपवाद नहीं। उसकी नजर में सभी नागरिक बराबर हैं। न तो सम्पति की हैसियत, न राष्ट्रीय-पैदायश, न लिंगभेद और न पद, बल्कि व्यक्ति की योग्यता और उसका परिश्रम ही उसकी स्थिति निर्धारित करती है।

इस संविधान की अन्तिम विशेषता यह है कि जो पूँजीवाद शासन-विधान नागरिकों की समानता मानते हैं, किन्तु समाज में आर्थिक तथा अन्य भेदों के कारण वहाँ मूल अधिकार सभी नागरिकों को उपलब्ध नहीं होते क्योंकि निर्धन नागरिकों को उचित साधन प्राप्त नहीं, किन्तु हमारे संविधान में नागरिकों के अधिकारों को भोगने पर खास जोर दिया जाता है। नागरिकों को शोषण-मुक्त कर दिया गया है और उनके अधिकारों की गारंटी कर दी गयी है; यही वास्तविक तथा समाजवादी जनवाद है। इसके बाद स्तालिन ने उन बातों का भी उत्तर दिया जो दूसरे देशों के लोगों

ने नये संविधान की विपरीति आलोचना करते समय कही थी। कांग्रेस ने हर्ष दिखाते हुए इस संविधान की स्वीकृति दी।

उपरोक्त में स्तालिन ने रूस के संविधान की विशेषतायें अपनी समाजवादी अथवा कम्यूनिस्ट दृष्टि से बतायी हैं। किन्तु राजनीति के विद्यार्थी और जिज्ञासु के लिये इस संविधान के अन्य वैधानिक विशेषतायें विभिन्न देशों के संविधानों से तुलना करने से मालूम होती है। सोवियत संविधान में छोटे-छोटे १३ अध्याय और १४२ अनुच्छेद हैं। प्रथम अध्याय की बारह धाराओं में कहा गया है कि सोवियत समाजवादी प्रजातन्त्र मज़दूरों और किसानों का एक समाजवादी राज्य है। इसका राजनीतिक आधार श्रमिक-जनता के प्रतिनिधियों की सोवियतें हैं। राज्य की सारी सत्ता श्रमिक जनता के हाथ में हैं, जिसका प्रतिनिधित्व उसके प्रतिनिधियों की सोवियतें करती हैं। राज्य का आर्थिक आधार है पैदावार के औजारों तथा साधनों का समाजवादी स्वामित्व। काम करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है; इसलिये जो काम नहीं करता वह खाना भी नहीं पायेगा।

अध्याय २ की सत्रह धाराओं में राज्य का ठाँचा वर्णित है। सोवियत समाजवादी प्रजातन्त्र संघ का एक संघात्मक राज्य है। जिसमें घटक राज्य १६ समाजवादी प्रजातन्त्र हैं। १४ वीं धारा में संघ का क्षेत्राधिकार निर्धारित है, अन्य मामले घटक राज्यों के हाथ में हैं। धारा १७ के अनुसार घटक राज्यों (Union Republics) को संघ से अलग हटने का अधिकार है। प्रत्येक घटक राज्य का पृथक शासन विधान है जो सो० स० प्र० सं० के संविधान के अनुकूल बनाया गया है, और संघ प्रजातंत्र की स्वीकृत बिना उसके क्षेत्र में परिवर्तन नहीं हो सकता। इन इकाई राज्यों के विदेशी राज्यों के साथ सीधे सम्बन्ध स्थापित करने और उनके साथ समझौता करने तथा राजनीतिक और राजकीय प्रतिनिधियों की अदला-बदली करने का अधिकार है; प्रत्येक प्रजातन्त्र अपनी निजी प्रजातान्त्रिक सैनिक शक्तियाँ रखता है (धारा १८ अ-ब, १८ आ) ऐसे अधिकार संघवाद के सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं और वे रूसी संघवाद को अन्य (उदाहरणार्थ अमरीकन व स्विस) संघवादों से भिन्नता देते हैं। सो० स० प्र० सं० के कानून सारे संघ में लागू होते हैं। यदि किसी इकाई राज्य का कानून संघ राज्य के कानून से टकराता है, अर्थात् उसके विपरीत होता है तो वह अमान्य हो जाता है। धारा ८१ के अनुसार सारे संघ की एक ही नागरिकता है, इकाई राज्य का प्रत्येक नागरिक सो० स० प्र० सं० का नागरिक होता है।

यद्यपि सो० स० प्र० सं० एक संघीय राज्य है किन्तु अन्य संघीय राज्यों से यह

कई प्रकार भिन्न है। इस संघ के अन्तर्गत सो० प्रजातन्त्र राज्य (घटक राज्य हैं) उनके कई स्वय उपसंघ है जैसे: (१) धारा २२ में वर्णन किया गया है कि रूसी सोवियत संघवाद समाजवादी संघ (R. S. F. S. R.) में विभिन्न ६ प्रदेश, और ये सभी प्रदेश भी छोटे-छोटे उपराज्य हैं जिनमें कई स्वायत्त क्षेत्र (Autonomons Regions) हैं जो स्वयं स्वायत्त क्षेत्रों से बन हुए उपसंघ हैं। इसी प्रकार उक्रेनियन समाजवादी प्रजातन्त्र (Ukranian Soviet Socialist Republic) भी संघों का संघ है। (धारा २३) अन्य ८ इकाई राज्य, आजरबैजान, जार्जियाई, उजबेक, ताजिक, कगाज, ब्रेलोरूसी, तुर्कमान, किरिगिज, लिथूनाई, प्रजातन्त्र घटक राज्य भी उपसंघ हैं। अतएव सो० स० प्र० सं० को संघों का संघ कहना अनुचित नहीं होगा।

अध्याय ३ की २७ धाराओं में सो० स० प्र० सं० की राज्य सत्ता की उच्च कमेटियों का वर्णन है जिनमें सर्वोच्च सोवियत (Supreme Court) विधान मण्डल है जिनकी शक्तियाँ धारा १४ में वर्णित हैं; इसके दोनों भवनों द्वारा निर्वाचित एक प्रीसीदियम है जो धारा ४९ में वर्णित शक्तियों का उपभोग करती है, और जो रूसी संविधान की एक विशेष संस्था है जिसके सदृश्य अन्य संविधानों में कोई संस्था नहीं है।

इसी प्रकार अध्याय ४ का ६ धाराओं में घटक राज्यों की सोवियतों और प्रसीदियमों का वर्णन है।

अध्याय ५ की १४ धाराओं में सो० स० प्र० सं० की वास्तविक कार्यकारिणी, मंत्रिमण्डल की रचना और शक्तियों का वर्णन किया गया है और यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि सर्वोच्च सोवियत तथा प्रीसीदियम के साथ उसके क्या सम्बन्ध हैं।

अध्याय ६, ७ तथा ८ में वे ही बातें घटक राज्यों के बारे में कहीं गई हैं जो ३, ४ व ५ में सो० स० प्र० सं० के बारे में दी गयी हैं। अध्याय ९ में सो० स० प्र० सं० के न्याय विभाग के बारे में वर्णन है। अध्याय १० में नागरिकों के मूल अधिकार तथा कर्तव्य स्पष्ट किये गये हैं। अध्याय ११ में विभिन्न संस्थाओं के चुनाव की विधि वर्णित है; अध्याय १२ में राजचिह्न व झंडा तथा राजधानी सम्बन्वी ३ धारायें हैं और अध्याय १३ की एक धारा (धारा १४६) में संविधान के संशोधन का तरीका दिया गया है जो यह है "सो० स० प्र० सं० के शासन विधान में केवल सो० स० प्र० सं० की सर्वोच्च सोवियत के फैसले से ही संशोधन हो सकता है। उसके प्रत्येक भवन के वोटों का कम से कम दो तिहायी बहुमत होने पर ही वह स्वीकृत किया जायगा।" संशोधन की प्रक्रिया से यह स्पष्ट है कि अन्य संघीय विधानों की अपेक्षा जो अनम्य

(Rigid) है, सो० स० प्र० सं० का संविधान नम्य (Flexible) है।

सारांश में हम वैधानिक दृष्टि से सो० स० प्र० सं० के संविधान में निम्न विशेषतायें देखते हैं :—

(१) सो० स० प्र० सं० का आधार साम्यवादी है जो मार्क्सवाद-लैनिनवाद के सिद्धान्तों को कार्यान्वित करता है ;

(२) इस राज्य में श्रमिक और किसान सत्ताधारी हैं, इन्हीं के द्वारा निर्वाचित संस्थायें शासन करती हैं;

(३) सो० स० प्र० सं० संघीय राज्य है परन्तु यहाँ के संघवाद और संघवादों में निम्न मुख्य भेद हैं:—

(क) रूसी संघवाद में घटक राज्य स्वयं उपसंघ हैं, जैसा और संघों में नहीं हैं;

(ख) रूसी संघवाद में घटक राज्यों को संघ से अलग होने का अधिकार प्राप्त है, परन्तु अन्य संघ अटूट हैं जहाँ घटक (Units) राज्यों को संघ से अलग होने का अधिकार नहीं;

(ग) कुछ रूसी घटक राज्यों को सेना रखने तथा विदेशों से पृथक और सीधा सम्पर्क रखने और राजदूतों को अदल-बदल करने का अधिकार है, अन्य संघों में ऐसा नहीं हो सकता ;

(घ) सो० स० प्र० सं० का शासन विधान अन्य संघीय शासनों की अपेक्षा नम्य (Felexible) है;

(ङ) सो० स० प्र० सं० में न्यायपालिका को न्यायिक पुर्नविलोकन तथा कानूनों की अवैधता घोषित करने का अधिकार नहीं, अन्य संघों की न्यायपालिकाओं को ये अधिकार प्राप्त हैं;

(च) सो० स० प्र० सं० में केन्द्र व घटक राज्यों के बीच शक्ति विभाजन उतना स्पष्ट तथा अनम्य नहीं जैसा अन्य संघों में है।

(४) सो० स० प्र० सं० में जाति, नस्ल, लिंगभेद, धर्मशिक्षा के बिना सभी नागरिकों को वयस्क मताधिकार है। प्रत्येक नागरिक का एक वोट होता है, चुनाव प्रत्यक्ष होते हैं जिसमें वोट गुप्त रूप से दिये जाते हैं।

(५) कुछ वैयक्तिक सम्पति मान ली गयी है:—सामुहिक कृषि-भूमि उनकी संस्थाओं के लिये बिना कुछ मूल्य दिये हुए दे दी गई। सामुहिक-कृषि संस्था के प्रत्येक गृहस्थ को अपने प्रयोग के लिये घर से लगी हुई जमीन का टुकड़ा और अन्य आवश्यक वस्तुयें जैसे रहने का मकान, पशु, मुर्गियाँ व अन्य खेती करने का सामान दे दिया गया। उन किसानों व कारीगरों की आय व वैय-

क्तिक संम्पत्ति उनके लिये कानून से सुरक्षित कर दी गयी जो केवल अपने परिश्रम से कमाई गयी हो और दूसरों की मेहनत से प्राप्त न की गयी हो। नागरिकों की आय, उनकी बचत, रहने का मकान व अन्य वस्तुएँ, घर की चीजें, दिन प्रतिदिन के जीवन-यापन की आवश्यक वस्तुयें आदि को अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति मानकर रखने का अधिकार भी कानून से मान्य कर दिया गया है।

(६) नागरिकों के मूल अधिकार व कर्तव्य:—नये शासन विधान की एक विशेषता यह है कि इसके १० वें अध्याय में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की घोषणा कर दी गयी। मौलिक अधिकार यें हैं :—

(क) काम पाने का अधिकार जिनका आवश्यक प्रबन्ध राष्ट्र की समाजवादी आर्थिक व्यवस्था, सोवियत समाज के बढ़ते हुए उत्पादन, आर्थिक संकटों के अभाव और बेकारी के निवारण द्वारा किया गया है; (धारा ११८)

(ख) विश्राम का अधिकार जिसके लिये अधिकतर काम करनेवालों के घंटे घटा कर सात घंटे कर दिये गये हैं। कर्मचारियों व मजदूरों को सवेतन वार्षिक छुट्टी दी जाती है, और स्वास्थ्य गृहों, विश्रामगृहों और चिकित्सालयों का प्रबन्ध है; (धारा ११९)

(ग) वृद्धावस्था, रोगावस्था या काम करने की सामर्थ्यहीनता की अवस्था में जीवन-यापन की उचित व्यवस्था। इसके लिये श्रमिकों का राज्य की ओर से बीमा की व्यवस्था है जिसका व्यय सरकार अपने ऊपर लेती है, निःशुल्क चिकित्सा की जाती हैं और उनके स्वास्थ्य सुधारने के स्थानों का प्रबन्व है; (धारा १२०)

(घ) शिक्षा का अधिकार, इसके लिये निःशुल्क सार्वजनिक प्राथमिक अनिवार्य शिक्षा, राज्य की ओर से माध्यमिक शिक्षालयों के बहुसंख्यक-विद्यार्थियों के लिये क्षात्रवृतियाँ, निःशुल्क उच्च शिक्षा, शिक्षालयों में मातृभाषा में शिक्षण, निःशुल्क व्यवसायी शिक्षा और फैक्टरियों, फार्मों, ट्रैक्टर, स्टेशन पर काम करनेवालों का, कृषि सम्बन्धी शिक्षा इन सब का प्रबन्ध किया जाता है; (धारा १२१)

(ङ) अधिकारों के उपभोग में स्त्री तथा पुरुष में भेद नहीं किया जाता है। पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी काम करने, विश्राम, शिक्षा आदि का अधिकार है। माँ व बच्चे की आवश्यक देख-भाल, गर्भावस्था में सवेतन छुट्टी, अनेक जच्चा घरों का प्रबन्ध व छोटे बालकों के लिये रहने, खेलने व पढ़ने का आयोजन ये सब होता है; (धारा १२२)

(च) जातीयता या राष्ट्रीयता के आधार पर, आर्थिक, राजकीय, सांस्कृतिक एवं

सामाजिक क्षेत्र में तथा नागरिक अधिकारों के उपभोग में अन्तर नहीं किया जाता है। इसका उल्लंघन दंडनीय है; (धारा १२३)

(छ) आत्मिक स्वतंत्रता सुरक्षित कर दी गयी है। अतएव रूस में धर्ममठ राज्य से पृथक हैं और शिक्षालय भी धममठ से पृथक हैं; (धारा १२४)।

(ज) नागरिकों को वक्तृता देने, एकत्र होने, संस्था बनाने, सड़कों पर जलूस निकालने और प्रदर्शन करने की स्वतन्त्रता दी जाती है। इसके साथ-साथ समाचार छपवाकर प्रकाशित करने की भी स्वतन्त्रता है। इन सब के लिये मजदूरों और उनकी संस्थाओं को छापने की मशीनें, कागज, मकान, सड़कें, बातचीत करने के साधन और अन्य सुविधायें उपलब्ध करायी जाती हैं; (धारा १२५)

(झ) किसी भी व्यक्ति के शरीर को व्यर्थ ही कष्ट नहीं पहुँचाया जा सकता। अभियोक्ता की आज्ञा से या किसी न्यायालय के निर्णयानुसार ही कोई भी व्यक्ति पकड़पर बन्दी बनाया जा सकता है अन्यथा नहीं। कानून से व्यक्तियों के रहने का स्थान सुरक्षित स्थान माना गया है जहाँ हर कोई बिना मकान के स्वामी की इच्छा के नहीं जा सकता। व्यक्तियों का पत्र व्यवहार भी इसी प्रकार सुरक्षित रहता है। पत्रों को खोलकर उनका भेद खोलना अवैध है; (धारायें १२७-१२८)।

(ञ) कर्तव्य—सोवियत नागरिक को (१) संविधान के अनुसार कार्य करना पड़ता है। निर्बन्धों का पालन, काम करने के सम्बन्ध में अनुशासन मानना; अपने सामाजिक कर्तव्यों को सच्चे मन से पूरा करना और समाजवादी जनसंगठन के नियमों का पालन करना ये सब नागरिक को करने पड़ते हैं। (२) उसे सार्वजनिक धन-सम्पत्ति की रक्षा समाजवादी प्रणाली का पुनीत अलंघ्य आधार मान कर और श्रमिकों के पूर्ण सांस्कृतिक जीवन का स्रोत समझकर करना पड़ता है; (धारा १३०)

(ट) सैनिक शिक्षा सबके लिये अनिवार्य है, क्योंकि देश की सुरक्षा करना प्रत्येक नागरिक का पवित्र कर्तव्य है। देश के प्रति विद्रोह, शपथ का उल्लंघन, शत्रु से जाकर मिलना, राज्य की सैन्य शक्ति को हानि पहुँचाना, विदेशी राज्य के लिये राज्य में गुप्तचर का कार्य करना, इन सब के लिये कड़े दंड का विधान है; (धारायें १३१-१३३)

(७) कार्यपालिका और विधानमण्डल के सम्बन्धों की दृष्टि से सो० स० प्र० सं० की कार्यपालिका संसदात्मक है। किन्तु यहाँ केवल एक ही राजनीतिक दल, कम्युनिस्ट पार्टी, होने के कारण, जिसका शासन पर पूर्ण अधिकार है,

यह संसदात्मक कार्यपालिका केवल नामधारी संसदात्मक है, यों तो संसदात्मक प्रणाली के लिये दो राजनैतिक दलों का होना आवश्यक है। इस प्रणाली का सिद्धांत है कि एक दल जो बहुमत में होता है मंत्रिपरिषद् बनाता है और दूसरा विरोध में रहता है जो शासन की आलोचना करता है। किन्तु ख्रुश्चेव ने कहा है कि जहाँ राज्य के उद्देश्य के सम्बन्ध में मतभेद नहीं, राज्यसत्ता सभी श्रमिकों, कृषकों के हाथ में हो, जहाँ वर्गहीन समाज हो, जहाँ सभी नागरिकों को समानाधिकार हो, वहाँ पर विभिन्न दलों का होना अनावश्यक तथा निरर्थक है। अतएव सो० स० प्र० सं० में एकदलीय शासन व्यवस्था है।

(८) संविधान में कम्युनिस्ट पार्टी को मान्यता ही नहीं दी गयी, वरन् उसको एकमात्र राजनीतिक दल समझकर अधिकार दिये गये हैं। धारा १२६ में कहा गया है कि "श्रमजीवी वर्ग और श्रमिक किसानों तथा श्रमिक बुद्धिजीवियों के वर्गों को सबसे सक्रिय राजनीति से जागरूक सोवियत संघ कम्युनिस्ट पार्टी में स्वेच्छापूर्वक संगठित होने का अधिकार है, और कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करने के लिये किये जाने वाले संघर्ष में यह दल मार्गदर्शक तथा राजकीय संस्थाओं का मूलकेन्द्र है।" इसके अतिरिक्त धारा १४१ में कम्युनिस्ट पार्टी को अधिकार दिया गया है कि वह अपनी संगठित संस्थाओं द्वारा विभिन्न निर्वाचनों के लिये लोगों को नामांकित करे। सो० स० प्र० सं० में कम्युनिस्ट पार्टी के महत्व और पद का विस्तार ऊपर की बातों से स्पष्ट हो जाता है।

(९) इस संविधान की एक अद्भुत विशेषता है उसका जनतान्त्रिक केन्द्रवाद (Democratic Centralism) जिसका सोवियत नेता बड़े गर्व से समर्थन करते हैं इस नवीन संविधान का प्रतिपादन करनेवाले कम्युनिस्ट नेता कहते हैं कि रूस में उत्पादन के सभी साधनों पर जनता का अधिकार है; सारी सम्पति के स्वामी सो० स० प्र० सं० के समस्त श्रमिक और कृषक, सामुहिक हैसियत से स्वामी हैं, यहाँ शोषक और शोषित वर्गों का नितान्त अभाव है। ऐसा आर्थिक आधार राज्य का होने के कारण सम्पत्ति और उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण हो गया है। तो यह आवश्यक है कि उसका प्रबन्ध भी नये ढंग से होना चाहिये। लैनिन ने पहले-पहल ऐसी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति के लिये आवश्यक प्रशासन तथा प्रबन्ध के तरीकों को समझाते हुए कहा कि उसमें प्रजातन्त्रीय केन्द्रवाद आवश्यक है।

इसका सूत्र यह है कि राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था की नीति का केन्द्रित्व होते हुए भी उसका संचालन स्थानीय संस्थाओं की प्रवृति तथा उनसे अपना मत व्यक्त करने की स्वतन्त्रता तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ राष्ट्र की नीति से संतुलना रहन चाहिए।

क्योंकि सारी सम्पत्ति और उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण किया गया है, इसलिये यह आवश्यक है कि उसके प्रबन्ध की नीति का भी केन्द्रीयकरण किया जावे। इसी उद्देश्य से कम्युनिस्ट पार्टी शासन की प्रक्रिया और नीति को, सदस्यों द्वारा स्वतन्त्र विचारों के प्रकट करने के पश्चात् निर्धारित करती है।

क्योंकि सारी सम्पत्ति और उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण किया गया है, इसलिये यह आवश्यक है कि उसके प्रबन्ध की नीति का भी केन्द्रीयकरण किया जावे। इसी उद्देश्य से कम्यूनिस्ट पार्टी शासन की प्रक्रिया और नीति को, सदस्यों द्वारा स्वतन्त्र विचारों को प्रकट करने के पश्चात्, निर्धारित करती है। सर्वोच्च सोवियत तथा अन्य सोवियतों के सदस्यों को उस नीति पर अपने विचार प्रगट करने की पूरी स्वतन्त्रता है, किन्तु एक बार बहुमत से नीति निर्धारित हो जाने पर सारे संघ में उसका पालन किया जाता है। फलतः वह नीति बिना किसी दलीय भेद-भाव के कार्यान्वित की जाती है, केन्द्र में, संघ के घटक राज्यों तथा उनके अन्तर्गत सभी स्तरों की सोवियतों में अर्थात् कृषि फार्मों, फैक्टरियों और सभी प्रकार के कार-खानों की सोवियतों में। क्योंकि इन सभी सोवियतों का प्रबन्ध श्रमिकों अथवा उसके निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथ में है, और क्योंकि वे लोग अपनी स्थानीय परिस्थि-तियों और आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए अपने सुपुर्द किये गये उत्पादन की वृद्धि केन्द्रीय सर्वोच्च सोवियत की निर्धारित नीति के अनुकूल अथवा उसके अन्तर्गत करते हैं, प्रजातान्त्रिक केन्द्रवाद सफलतापूर्वक चलता है।

सोवियत व्यवस्था में आर्थिक मामलों का प्रबन्ध तथा राजनीतिक शासन पारस्परिक अनुकूल से ही चलते हैं। राजनीतिक नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी के स्थानीय संगठन ही आर्थिक साधनों और प्रबन्ध के लिए उत्तरदायी हैं। यह पार्टी इस सिद्धान्त के अनुकूल काम करती है कि जो लोग आर्थिक उत्पादन में संलग्न हैं वे केवल आर्थिक प्रबन्धक ही न रहें, वरन् राजनीतिकता से ओत-प्रोत रहें और प्रबन्ध कार्य में जनवादी आग्रह तथा आत्मदर्शी भाव से काम करते हुए कुछ सक्रियता दिखावें।

अक्टूबर की क्रान्ति के फलस्वरूप सारी सम्पति पर श्रमिकों का अधिकार हो गया था। उस क्रान्ति का उद्देश्य था कि एक ऐसी आर्थिकता स्थापित हो जो केन्द्रीय

होती हुई सारे राष्ट्र की समाज के हितों के अनुकूल रहे। समाजवादी सिद्धान्तों के अनुकूल समाज स्थापित करने के लिये यह आवश्यक है कि राष्ट्र की आर्थिक एक-रूपता स्थापित हो, और यह तभी हो सकता है जब विभिन्न आर्थिक योजनाओं की पूर्ति में पूर्णतया अनुशासन रखा जावे। समाजवादी राज्य तभी स्थापित हो सकता है जब सारे राष्ट्र की एक समयोजना हो और केन्द्र से ही उसका प्रबन्ध संचालित किया जावे। लैनिन ने कहा था कि समाजवाद का अर्थ है कि केन्द्रीय आर्थिक व्यवस्था, केन्द्र द्वारा संचालित का निर्माण किया जावे। और यही तो किसी समाज-वादी राज्य का आर्थिक और संगठनीय कृत्य है। आर्थिक व्यवस्था में केन्द्रवाद का अर्थ है कि इस आर्थिक व्यवस्था का प्रबन्ध एक केन्द्रीय संस्था करे, जो सारे देश के लिये उत्पादन की संख्या अथवा राशि निश्चित करे, वितरण के, भारी निर्माणों के, आर्थिक, श्रमिक आदि मामलों पर अन्तिम निर्णय दे।

नये समाजवादी ढाँचे का आधार समाजवादी केन्द्रवाद ही है। इस केन्द्रवाद का संचालन श्रमिकों के हित के लिये जनवादी शासन है, यह केन्द्रवाद आम जनता की सक्रियता और उपक्रम को बढ़ाता है। साम्यवाद के प्रसार के लिये यह आवश्यक है कि समाजवादी प्रजातन्त्र को लगातार बढ़ाया जावे ताकि दिन प्रतिदिन अधिकतर लोग राजनीतिक और आर्थिक मामलों में भाग लें और आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में स्थानीय संस्थाओं का महत्व और कार्य निरन्तर बढ़ता रहे। लैनिन ने कहा था : "हम प्रजातन्त्रीय केन्द्रवाद के समर्थक हैं। और प्रत्येक को यह स्पष्टतया समझ लेना चाहिये कि नौकरशाही केन्द्रवाद और प्रजातांत्रिक केन्द्रवाद के बीच एक खायी है किन्तु वही खाई प्रजातान्त्रिक केन्द्रवाद को अराजकता से जुदा रखती है।"

सोवियत राज्य एक विशेष प्रकार का राज्य है, उसके केन्द्रवाद में प्रजातन्त्र भरा है; यही प्रजातन्त्रवाद सोवियत शक्ति का तत्व है—श्रमिकों और कृषिकों की राजनीतिक शक्ति है।

इस प्रजातान्त्रिक केन्द्रवाद को प्रायोगिक रूप देने के लिये देश में एक सर्वोच्च कौंसिल बनाया गया जिसे राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के संचालन का कार्य सौंपा गया (दिसम्बर, १९२७)। इसकी स्थानीय शाखायें खोली गयीं जो अपने-अपने निर्धारित क्षेत्र में आर्थिक उत्पादन आदि के लिये उत्तरदायी थीं। सोवियत राज्य को एक आर्थिक सर्वसम्पन्न इकाई बनाने के लिये देश को विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित किया गया (१९२०)। सन् १९३२ में देश के विभिन्न आर्थिक विभागों की स्थापना की गयी, जैसे लकड़ी, भारी और हल्के उद्योग, आदि। मार्च, १९४६ में इन विभागों

को मंत्रि-विभाग का पद मिला। घटक राज्यों की शक्तियाँ बढ़ाई गईं और १९५४ और १९५६ के बीच १५,००० औद्योगिक धंधे घटक राज्यों को सौंप दिये गये। फलत: उन राज्यों की सक्रियता बढ़ गई और आम जनता को प्रोत्साहन मिला।

तभी से निरन्तर, आर्थिक उत्पादन को बढ़ाने के लिये विभिन्न निम्नस्तर की सोवियतों को निश्चत तथा निर्धारित धंधे सौंप दिये गये हैं। आम श्रमिक बड़े उत्साह से भाग लेकर दिन प्रतिदिन उत्पादन-वृद्धि कर स्वयं अधिकाधिक कमाते और अधिक सुख-सामग्री पाते हैं। उनकी सक्रियता बढ़ रही है। सभी क्षेत्रों, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक में दिन प्रतिदिन आम जनता भाग लेकर केन्द्रीय नीति का पालन करती, प्रजातान्त्रिक केन्द्रवाद को प्रयोगिक रूप देती है।

अध्याय १३

भारतीय संघवाद

लगभग एक शताब्दी के कठोर संघर्ष के पश्चात् २६ जनवरी सन् १९५० को, भारत में एक संघ-राज्य की स्थापना की गयी जो विश्व के अन्य संघों से अपनी रूप-रेखा में एक विशेष महत्व रखता है। अत: यदि हम भारत-संघ की विशेषताओं का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जावेगा कि यह संसार के अन्य संघीय संविधानों से कितना भिन्न है और इसमें कौन-कौन-सी प्रमुख विशेषतायें पायी जाती हैं। संविधान के अध्ययन करने से उसमें मुख्य लक्षण निम्नलिखित पाये जाते हैं। जो इस प्रकार हैं :—

(१) **भारतीय संविधान अन्य संविधानों से अधिक विशाल एवं विस्तृत है**— भारतीय संविधान परिमाण एवं आकार में अन्य संघीय संविवानों से कहीं अधिक विशाल एवं विस्तृत है। इसमें ३९५ अनुच्छेद हैं जो २२ भागों में विभाजित हैं। इसमें ९ अनुसूचियाँ भी हैं । यह संविधान प्रारम्भ से आठ वार संशोधित किया जा चुका है। परिणामस्वरूप इसमें आठ अतिरिक्त अनुच्छेद (बिना संख्या के परिवर्तन के) जुड़ गये हैं जो कि इस प्रकार हैं—३१क, ३१ख, २५ क, २९०क, ३५०क, ३५०ख, ३७२क, और ३७८ ख । १९ अनुच्छेदों का निरसन (Repeal) भी किया जा चुका है, जैसे अनुच्छेद २३८, २४२, २४३, २५९, २७८, ३०८ तथा ३७९ से ३९१ तक । द्वितीय अनुसूची का भाग "ख" भी निरसित हो चुका है। भारी संख्या में मौलिक अनुच्छेदों में आंशिक रूप से परिवर्तन किया जा चुका है। संशोधनों के कारण अथवा अपने में निहित शक्तियों (विशेषकर अनुच्छेद २ तथा ३ के अन्तर्गत) के प्रयोग में संसद द्वारा पारित विधियों के कारण कई अनुच्छेदों में थोड़े-बहुत परिवर्तन हुए हैं ।

भारतीय संघ के संविधान की विशालता के कई कारण हैं । कनाडा तथा दक्षिण अफ्रीका संघ के संविधानों की भाँति, परन्तु, संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा स्विटज़रलैण्ड के संविधानों के विपरीत, भारत के संविधान में न केवल केन्द्रीय सरकार का विधान एवं ढाँचा, बल्कि राज्य सरकारों का विधान एवं ढाँचा विहित है। संयुक्त-

राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा स्विटजरलैण्ड में प्रत्येक राज्य अथवा कैन्टन का अपना पृथक् संविधान है । भारत में, जैसा कि कनाडा में भी है, संविधान एक विधि के रूप में, समस्त सरकारों (संघ सरकार तथा राज्य सरकारों) के विधान तथा ढाँचे का वर्णन करता है। अनिवार्यतः यह दोनों संविधान अमरीकी, आस्ट्रेलियाई अथवा स्विस संविधानों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है । लेकिन कनाडा और भारत के संविधानों में भारत अपने विस्तृत विवरण के कारण कहीं अधिक विशाल है। उदाहरणार्थ कनाडा का संविधान उपराज्य सरकारों को सौंपे हुए २९ विषयों का उल्लेख करता है जबकि भारतीय संघ की संघ सूची में ९७ विषय हैं; कनाडा में प्रान्तों के पास विधि निर्माण हेतु केवल १६ विषय हैं जबकि भारत में राज्य-सूची ६६ विषयों का उल्लेख करती है; इसके अतिरिक्त कनाडा का संविधान केवल इतना ही उल्लेख करता है कि समस्त अवशिष्ट शक्तियाँ उपराज्य सरकारों द्वारा प्रयोग में लाई जावेंगी, पर भारत संघ के संविधान में तृतीय सूची, कथित समवर्ती सूची (Concurrent List) भी है जिसमें ४७ विषय हैं और जिन पर संसद तथा राज्यों के विधान मण्डल दोनों विधि निर्माण कर सकते हैं, अन्य अवर्णित शक्तियाँ संघ के लिए रक्षित हैं। इस प्रकार का शक्ति-वितरण अनिवार्यतः भारत के संविधान के आकार में वृद्धि करता है । संयुक्त-राज्य अमरीका के संविधान में अनुच्छेद १ खण्ड ८ में कांग्रेस को सौंपी गयी और केवल १६ विषयों का उल्लेख करता है और तत्पश्चात् यह बतलाता है कि वे समस्त शक्तियाँ, जो न तो कांग्रेस को सौंपी गयी हैं और न राज्यों को उनसे वंचित किया गया है, राज्यों से सम्बन्धित हैं। ऐसे संक्षिप्त शब्दों में वर्णित उपबन्ध अमरीकी संविधान को अनिवार्य रूप से संक्षिप्त बना देता है । इसी भाँति आस्ट्रेलिया और स्विट्ज़रलैण्ड में संविधान, संघ सरकार को प्रदान की गयी सीमित शक्तियों का वर्णन करता है और समस्त अन्य शक्तियों को बिना उसका उल्लेख किये हुए, संघ की इकाइयों के लिए रक्षित कर देता है। शक्ति विभाजन के मामले में भारत संघ का संविधान साधारणतयः भारत सरकार अधिनियम १९३५ का अनुकरण करता है जैसा कि इसने अन्य मामलों में किया है। अतः यह किसी प्रकार भारत सरकार अधिनियम, १९३५ से आकार में छोटा नहीं है । अन्य विषयों में भी भारत का संविधान अन्य किसी संविधान की अपेक्षा कम विस्तृत नहीं है। राज्य की नीति के निर्देशकत्व, विस्तार में वर्णित मूल अधिकार (अन्य संविधानों में संक्षेप में वर्णित मूल अधिकार के विपरीत, उदाहरणार्थ संयुक्त-राज्य अमरीका में १७९१ के प्रथम दस संशोधन इनका वर्णन संक्षिप्त शब्दों में करते हैं, अथवा स्विट्ज़रलैण्ड में भी नागरिकों के अधिकारों का संक्षिप्त वर्णन किया

गया है)। संघ की न्यायपालिका से सम्बन्धित विस्तृत उपबन्ध, संघ एवं राज्यों के मध्य सम्बन्ध, भाग १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९ तथा २१ के उपबन्ध एवं द्वितीय अनुसूची (उच्चतम न्यायालय एवं उच्चन्यायालय के न्यायाधीशों से सम्बन्धित भाग संघ 'घ') षष्ट अनुसूची जो कि १४ पृष्ठों में है और सप्तम अनुसूची जिसमें संघ; राज्य तथा समवर्ती शक्तियों का उल्लेख करनेवाली तीन सूचियाँ हैं, सबने मिलकर संविधान के वृहत आकार में योग दिया है जो कि इसका अध्ययन करने तथा इसे समझने के लिए इच्छुक विद्यार्थी में भय उत्पन्न कर देता है, अधिकतर अन्य संविधानों में, विशेषकर संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत रूस, स्विटजरलैण्ड और फ्रांस के संविधानों में, राष्ट्रीय विधान मण्डल को विधि द्वारा बहुत से विषयों के प्रबन्ध की शक्ति प्रदान की गयी है, परन्तु भारत के संविधान में इन्हें विस्तृत उपबन्धों द्वारा सम्मिलित किया गया है। हमारा संविधान, एक उपबन्ध को व्यक्त करने के लिए आवश्यक शब्दों की अपेक्षा अधिक शब्दों के प्रयोग में बहुत उदार किन्तु अमित-व्ययी (Extravagent) भी है; जबकि अन्य संविधानों में अधिक से अधिक अनावश्यक शब्दों के त्यागने के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। अत: भारत के संविधान को, बिना उसके आकार में वृद्धि किये हुए तथा संविधान के विद्यार्थी से विना कुछ छीनें हुए विस्तृत बनाया जा सकता है। २६ नवम्बर सन् १९४९ को संविधान सभा द्वारा संविधान के अंगीकृत किये जाने के समय डा० राजेन्द्र प्रसाद संविधान-सभा के अध्यक्ष ने यह स्वीकार किया था कि "प्रशासकीय कृत्यों और अन्य कृत्यों के समस्त पक्षों से सम्बन्धित संघ एवं राज्यों के मध्य शक्ति तथा कार्य वितरण के सम्बन्ध में अधिक विस्तार में चला गया है।" सम्भव है कि प्रारूप समिति तथा संविधान सभा के सदस्यगण संघ तथा राज्य सरकारों के मध्य भविष्य में उत्पन्न होने वाले संघर्षों को दूर करने की इच्छा से प्रेरित हुए हों, परन्तु वास्तव में देश के बँटवारे द्वारा उत्पन्न अवस्था में और संविधान सभा के नेताओं की राजनैतिक जीवन से अस्थिरता दूर करने के लिए संविधान को शीघ्रातिशीघ्र रूप प्रदान करने की उत्सुकता में उन्होंने संविधान के वृहत आकार की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भारत की आर्थिक तथा सम्पत्तिक अवस्था ने भी जनसंख्या के विभिन्न तत्वों को संतोष प्रदान करने तथा शासन की शक्ति को स्थिर करने के लिए अनेकों अनुच्छेदों को शामिल करना आवश्यक बना दिया। ब्रिटिश शासन तथा भारत सरकार अधिनियम, १९३५ की छाया भारतीय गणतन्त्र के संविधान पर मँडराती हुई दिखायी पड़ती है और इसे अन्य वर्तमान राज्यों के संविधानों से अतुलनीय विशाल प्रलेख बना देती है।

(२) **प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य**—भारतीय संविधान, जैसा कि प्रस्तावना में कहा गया है, एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना करता है। जनवरी १९४७ में (अर्थात् देश के विभाजन के पूर्व) संविधान सभा द्वारा अंगीकृत सोद्देश्यात्मक प्रस्ताव ने भारत को प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य होने की घोषणा की थी, परन्तु प्रारूप-समिति ने इस बिना पर कि 'स्वतंत्र' शब्द स्पष्ट रूप से 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न' में उपलक्षित है। 'स्वतन्त्र' शब्द के स्थान पर 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न' रख दिया, जब कि जनता की जो कि संविधान की सत्ता की स्रोत है, अन्तिम प्रभुसत्ता प्रस्तावना के इन शब्दों से अधिक अच्छे ढंग से प्रकट होती है : "हम, भारत के लोग, भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य बनाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर···एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियम और आत्मार्पित करते हैं।" इन शब्दों से यह ज्ञात होता है कि संविधान के पीछे भारत की जनता का (संविधान सभा में अपने प्रतिनिधियों द्वारा) भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य बनानेवाले दृढ़ संकल्प का अनुमोदन प्राप्त है, और उन्होंने ही अपने लिए इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किया है। अत: संविधान जनता की स्वयं को एक भेंट है, और इसीलिए संविधान द्वारा स्थापित समस्त संस्थायें और उसके अन्तर्गत रचित सत्तायें अपने वैधानिक अस्तित्व और शक्ति को जन-इच्छा द्वारा ही प्राप्त करती है। भारत की संसद तथा राज्यों के विधान मण्डल नागरिकों द्वारा वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित होते हैं और विधि निर्माण के समय वह जनता के मत द्वारा सत्ता प्राप्त करते हैं। संघ सरकार तथा राज्यों की सरकारों में कार्यपालकीय सत्ता का प्रयोग क्रमश: संघीय मंत्रिपरिषद् और राज्यों के मंत्रिमंडल करते हैं जिनमें जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदाई सदस्य होते हैं, और चूँकि जनतन्त्र जनता के द्वारा निर्वाचित अथवा जनता के प्रति उत्तरदायी लोगों की तथा जनता के हित के लिए अग्रसर होने वाली सरकार है, यह तथ्य कि केन्द्र तथा राज्यों में समस्त विधायिनी और कार्यपालकीय शक्ति जनता में निहित है, वास्तव में संविधान एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना करता है।

कभी-कभी यह कहा जाता है कि भारत की राष्ट्रमण्डल की सदस्यता उसे वस्तुत: सम्पूर्ण प्रभुत्व के गुणों से विहीन कर देती है। ऐसी आलोचना राष्ट्रमण्डल जैसी संस्था के गलत मूल्यांकन एवं प्रकृति पर आधारित है। पूर्ण ऐच्छिक सदस्यता पर आधारित यह संस्था स्वतन्त्र राष्ट्रों का स्वतन्त्र समुदाय है, जिसमें प्रत्येक सदस्य, बिना किन्हीं बन्धनों, पूर्णस्वतन्त्रता के साथ अपनी इच्छा से प्रवेश कर सकता है

अथवा हट सकता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रमण्डल के प्रधानमन्त्रियों के सम्मेलन अथवा राष्ट्रमण्डल की अन्य समितियों में हुए वाद-विवाद, राष्ट्रमण्डल के सदस्यों के सामान्य हित से सम्बन्धित विषयों पर स्वतन्त्र विचारों के अभिव्यक्ति हैं, और सदस्यों पर बाध्यकारी नहीं हैं। स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त ऐसे विचारों का आदान-प्रदान बिना किसी दायित्व के एक-दूसरे के विचारों को अधिक से अधिक समझने का अवसर प्रदान करता है। और अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों की बहुत वृद्धि करता है जो कि अन्ततः अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को प्रोत्साहन देता है। यह कि इंग्लैण्ड के संप्रभु को राष्ट्रमण्डल के प्रतीक मात्र अध्यक्ष के रूप में मान्यता प्रदान करना केवल ग्रेट ब्रिटेन के राजा के प्रति प्रदर्शित विनम्रता ही है, केवल इस तथ्य की मान्यता है कि राष्ट्रमण्डल के विचार का विकास ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हुआ और जो स्वयं को बदलती हुई दशाओं के अनुकूल बनाता रहा तथा जो अब भी राष्ट्रमण्डल का निर्माण करनेवाले स्वतन्त्र राष्ट्रों के इस समुदाय को गतिमान विकास की अनुमति प्रदान करता है। प्रतीक मात्र अध्यक्षत्व की यह मान्यता भारत के गणतन्त्रीय गुण को ब्रिटिश राज्य सिंहासन के प्रभु के अधीन नहीं करती है। हमारा संविधान कहीं पर और किसी सम्बन्ध में ब्रिटिश संप्रभु का उल्लेख नहीं करता। भारत का प्रधान राष्ट्रपति है जिसका अन्तर्राष्ट्रीय स्तर ब्रिटिश संप्रभु के समान है। भारत अपनी वैदेशिक नीति स्वयं अंगीकृत करता है और राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के कारण वह राष्ट्रमण्डल के किसी भी सदस्य के साथ पंक्ति में खड़ा नहीं होता। सम्पूर्ण प्रभुत्व गणराज्य बनने के पश्चात् भारत ने स्वतन्त्रतापूर्वक राष्ट्रमण्डल की सदस्यता बनाये रखना स्वीकार किया। राष्ट्रमण्डल जो विचार में गणतंत्र संस्था है, जो स्वयं को संसार में नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के योग्य है तथा जो समस्त विषयों में सदस्य राज्यों की पूर्ण स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान करती है, की सदस्यता कुछ स्पष्ट लाभ प्रदान करती है। व्यापारिक सुविधायें एवं अन्य आर्थिक लाभ, शिक्षा सम्बन्धी और सांस्कृतिक समागम एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचारों के आदान-प्रदान करने का अवसर भारत को लाभान्वित करते हैं और उसे अधिक महत्वपूर्ण विषयों पर बिना समर्पण किये हुए अथवा वचनबद्ध हुए अपने नैतिक प्रभाव के प्रयोग करने का अवसर भी प्रदान करते हैं। जबकि राष्ट्रमण्डल के अनेकों सदस्य क्षेत्रीय सैन्य सन्धियों एवं गुटों के सदस्य हैं भारत अपनी तटस्थ नीति पर स्थिर है। पं० नेहरू ने इस पक्ष विशेष पर बल देते हुए कहा था "मुझे विश्वास है कि प्रभुत्व सम्पन्न भारतीय गणराज्य जो स्वतन्त्रतापूर्वक अन्य देशों के साथ राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित हुआ है। प्रायः पूर्व की अपेक्षा अधिक विस्तार और प्रभाव के साथ अपनी इस

नीति (तटस्थ नीति) के पालन में पूर्ण स्वतंत्र होगा।" और जब हम इस बात को स्मरण करते हैं कि वह किसी भी समय अपनी स्वतन्त्र इच्छा के अनुसार राष्ट्र-मण्डल से हट सकता है तब यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता उसकी प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य की स्थिति को हीन नहीं बनाती है तथा उसके अधिकारों में प्रभुत्व सम्पन्न राज्य होने के कारण, किसी प्रकार की कमी नहीं करती है। राष्ट्र-मण्डल की अध्यक्षता के कारण ब्रिटिश संप्रभु के भारत के गणराज्य में कोई स्थान प्रदान नहीं है। और राष्ट्रमण्डल में भी यह अध्यक्षता केवल बिना सत्ता एवं कृत्यों से सम्पन्न पद है।

(३) **संविधान लोक-कल्याण राज्य की स्थापना करता है**—भारत के संविधान का लक्ष्य लोक-कल्याण राज्य की स्थापना है। ज़बकि संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान की प्रस्तावना स्पष्ट रूप से जनता के "सामान्य कल्याण" को स्थापित संघ का उद्देश्य लक्षित करती है, 'भारतीय संविधान की प्रस्तावना' उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म-उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने को अपना लक्ष्य बनाती है। यद्यपि प्रस्तावना में "लोक कल्याण" शब्द को स्थान प्रदान नहीं है, किन्तु राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों में यह निश्चयपूर्वक कहा गया है कि "राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की संस्थाओं को अनुप्राणित करें, भरसक कार्य साधन रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।"[1] यहाँ पर "राज्य" शब्द में भारत की सरकार और संसद् एवं प्रत्येक राज्य की सरकार और विधानमण्डल और भारत के राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत अथवा भारत की सरकार के नियंत्रण के अन्तर्गत समस्त स्थानीय अन्य सत्तायें आ जाती हैं।[2] और राज्य को अपनी नीति का विशेषतया ऐसा संचालन करना है कि समस्त नर-नारियों और नागरिकों को जीविका के प्रर्याप्त साधन प्राप्त हों, भौतिक साधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बँटा हो जिससे सामूकि हित (Common Good) का सर्वोत्तम रूप से साधन हो; आर्थिक व्यवस्था धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिये अहितकारी केन्द्रण न करें, पुरुषों एवं स्त्रियों को समान कार्य के लिए समान वेतन प्राप्त हो, आर्थिक दशायें श्रमिकों के स्वास्थ्य को क्षीण न करें अथवा बालकों के सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न करें, शैशव और किशोरावस्था का शोषण से तथा-

१. अनुच्छेद, ३८।

२. अनुच्छेद ३९।

नैतिक और आर्थिक परित्याग से संरक्षण हो।[1] काम की न्याय तथा मानवोचित दशाओं तथा प्रसूति सहायता (Maternity Relief) का उपबन्ध, बालकों के लिये निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबन्ध, समाज के पिछड़े हुए तथा दुर्बल अंगों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की उन्नति, आहार पुष्टि तल (Standard of Living) और जीवन स्तर को ऊँचा करना एवं कृषि और पशुपालन का संघटन, वे विशेष उद्देश्य हैं जिनकी प्राप्ति के लिए राज्य अपनी नीति का निर्देशन करेगा।[2]

जबकि यह राज्य के कर्तव्य की सैद्धान्तिक मान्यता है, जिसका अर्थ स्वयं से लोक-कल्याण राज्य की प्राप्ति नहीं हो सकता, संविधान में इसका वर्णन अत्यन्त महत्व का है, और नागरिक गण विधान मंडलों के सामान्यनिर्वाचन के समय उम्मीदवारों से यह विश्वास प्रदान करने की माँग कर सकते हैं कि यहाँ पर वर्णित सिद्धान्त विधि निर्माण के समय सदैव उनके समक्ष लक्ष्य स्वरूप रहेंगे। स्वयं विधियाँ भी, चाहे जितनी विस्तारपूर्वक बनाई जायें, और सतर्कतापूर्ण शब्दों में वर्णित की जायें, लक्ष्य पर पहुँचने के लिए स्वप्रेरित पदार्थ अथवा वन्दूक की गोली के समान कार्य नहीं कर सकतीं। उन्हें मानव अभिकरणों द्वारा निश्चल सावधानी से नियंत्रित तथा निर्देशित यंत्र के समान होना पड़ेगा और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये राज्य ने निश्चित अवधि में पूर्ण होने वाली और सावधानी के साथ तैयार की गयी योजनाओं का आश्रय ग्रहण किया है। इन योजनाओं में दिये हुए विशेष लोक-कल्याण राज्य की स्थापना के लिये निश्चित अथवा दृढ़ कदम हैं। आदर्श की प्राप्ति के लिए सरकारी निर्देशन एवं निरीक्षण और लोक-समर्थन तथा नागरिकों में आत्म-साहाय्य (Self-help) उत्साह होना आवश्यक है। सामूहिक विकास केन्द्रों का उद्-घाटन, बहुउद्देश्यीय सरकारी समितियाँ, रोगों को दूर करने की योजनायें, संतति नियमन, अस्पतालों तथा प्रसूति-केन्द्रों की स्थापना, निःशुल्क तथा अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा का श्रेणी द्वारा आरम्भ, ऐसे साधन हैं जिनके द्वारा राज्य उस लोक-कल्याण के आदर्श को प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है जिसे भारत के संविधान ने जनता के समक्ष रखा है।

(४) **राज्य की नीति के निर्देशकत्व तथा मूलाधिकार** :—क्रमशः भाग ४ और ३ में इनका समावेश भारत के संविधान को, अन्य संविधानों से मुकाबिला करने पर अद्वितीय स्थान प्रदान करता है। बहुत समय तक भारत के नागरिकों ने विदेशी

१. अनु० ३९।

२. अनु० ४२, ४५, ४६, ४७ तथा ४८।

शासन के अन्तर्गत, जिसने कभी भी जनता के अधिकारों की ओर ध्यान नहीं दिया, यातनायें सहन की हैं; जिसके परिणामस्वरूप उस समय स्वतन्त्रता, संम्पति अधिकार अथवा कानून का समान संरक्षण उपलब्ध नहीं थे, सामाजिक विभेद बहुत दृढ़ था और समाज के कुछ अंग बिलकुल उपेक्षित थे। अब संविधान ने समस्त नागरिकों के लिए अवसर की समता, विचार तथा उभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य, सम्पत्ति की रक्षा तथा व्यवसाय, निवास, धर्म और विश्वास की स्वतन्त्रता को सुरक्षित कर दिया है। संविधान के भाग तीन में वर्णित मूलाधिकारों को न्याय योग्य बना दिया है, अर्थात् नागरिकगण न्यायालयों से उपभोग की माँग कर सकते हैं और उनके अतिक्रमण को न्यायालयों के विचार हेतु पेश कर सकते हैं, जिन्हें संविधान के अनुसार कर्तव्याधीन होने के कारण, अधिकारों को लागू करने के लिए आवश्यक आज्ञाएँ, निर्देशन तथा लेख एवं अन्य आवश्यक साधनों की व्याख्या करनी पड़ेगी। मूलाधिकारों को लागू करने का उपबन्ध संविधान की महत्वपूर्ण विशेषता है क्योंकि केवल अधिकारों का प्रतिपादन उनके उपभोग को प्रत्याभूत नहीं करता है, सरकारें अपनी शक्ति का दुरुपयोग करती ही हैं, जिससे अन्त में क्षोभ, असंतोष अथवा क्रान्तियों का भी जन्म होता है। लेकिन जब वैधानिक उपचारों और स्वतन्त्र न्यायालयों द्वारा उनके कृत्यों पर बन्धन लग जाते हैं वे अपनी उचित मर्यादित सत्ता के अन्तर्गत रहने के लिए विवश हो जाती हैं। अतः भारत के संविधान-निर्माताओं ने न केवल सावधानी और विस्तार के साथ मूलाधिकारों की विभिन्न श्रेणियों को ही स्थान प्रदान किया, बल्कि अनुच्छेद ३२ द्वारा उच्चतम न्यायालय को तथा संसद द्वारा प्रदान की गयी शक्ति से अन्य न्यायालयों को नागरिकों के अधिकारों के संरक्षण के रूप में अपने कर्तव्यों को निभानें के लिए उन अधिकारों को लागू करने के लिए उपबन्ध भी बनाये।

भाग ४ उन सिद्धान्तों को विस्तृत रूप से परिभाषित करता है जिनका अनुकरण शासन की नीति का निर्माण करने और उसे लागू करने में आवश्यक है। इस भाग में प्रतिपादित सिद्धान्त संविधान की अद्भुत विशेषता है। राज्य की नीति के निर्देशक तत्व विषय सूची तथा उद्देश्य दोनों में मूलाधिकारों से पृथक है जब कि मूलाधिकार निश्चित माँग अथवा दावे का सृजन करते हैं जिसकी अनुमति संविधान द्वारा एक नागरिक को प्रदान की गयी है, निर्देशक तत्व केवल नीति-पंक्तियों की गणना है जिनका अनुसरण राज्य की विधायिनी तथा कार्यपालकीय क्षेत्रों में करना है। मूलाधिकार न्यायालय द्वारा परिवर्तित करने के योग्य हैं, जब कि नीति निर्देशक तत्व ऐसे नहीं हैं। यदि भाग ३ में दिए हुए नागरिकों के किसी अधिकार का अतिक्रमण राज्य करें तो पीड़ित पक्ष को इसके विरुद्ध उपचार का अधिकार प्राप्त है और वह न्यायालय

द्वारा, जो कि उसे संरक्षण प्रदान करने के लिए कर्तव्याधीन है, संरक्षण प्राप्त कर सकता है। परन्तु यदि किसी विशेष निर्देशक तत्व का पालन विधायिनी अथवा कार्य-पालकीय क्षेत्र में राज्य द्वारा कड़ाई अथवा कठोरता के साथ नहीं किया जाता तो भी उसे ऐसा करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता है। निर्देशक तत्वों का महत्व इसमें भी है कि राज्य का ध्यान अपने कृत्यों तथा नीतियों को निर्देशित करने में उन पर केन्द्रित रहे। राज्य को इन तत्वों को ध्यान में रखना है और इनमें निहित अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के हेतु सब प्रकार का प्रयत्न करना है।

(५) **धर्मनिरपेक्ष राज्य :**—भारत का गणराज्य एक धर्म निरपेक्ष राज्य है जिसका अर्थ समस्त नागरिकों की धार्मिक भावनाओं के प्रति समान उदार, धार्मिक विषयों में राज्य की तटस्थता, किसी भी धर्म विशेष के साथ राज्य का आपत्तिकरण धर्म अथवा विश्वास के आधार पर अभेद है। किसी भी प्रकार इसका अर्थ सदाचार, संस्कृति अथवा माननीय भावनाओं की अवहेलना नहीं है। राज्य बिना किसी भेदभाव के समस्त संस्कृतियों के महत्व को मान्यता प्रदान करता है और नैतिकता अथवा सदाचार की उन्नति के विचार से विधियों का निर्माण करता है। स्वतन्त्रता के पूर्व भारत को धार्मिक संघर्षों के कारण महान क्षति पहुँची है। दो राज्यों में इसका विभाजन धार्मिक संघर्ष से सम्बन्धित विकराल दुर्घटना थी। स्विट्ज़रलैण्ड की भी अपनी धार्मिक समस्या है और सन् १८४७ का सुन्दरबंड (Sunderbound) का युद्ध धार्मिक विभेद की चरमसीमा अथवा पराकाष्ठा थी जिसमें ९ कैथोलिक कैन्टनों ने राज्य मण्डल के विरुद्ध विद्रोह किया था, यद्यपि देश विभाजित होने से बच गया तथापि कैथोलिकों की माँगें संविधान के संशोधन द्वारा स्वीकृत हो गयी थीं। कनाडा में भी धार्मिक मतभेद था, किन्तु प्रारम्भ से उस उपनिवेश में कुछ सीमा तक सहिष्णुता थी। भारत ऐसे देश में जहाँ विभिन्न धार्मिक विश्वासों को माननेवाले लोग देश के समस्त भागों में फैले हुए हैं, राज्य के लिए यह एक बुद्धिमानी की नीति होगी कि वह किसी धर्म विशेष को संरक्षण प्रदान करने के कार्य से दूर रहे। अतः भारतीय गणराज्य की लौकिक प्रकृति (Secular Character) राज्य की एकता को स्थिर रखने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण लक्षण हैं।

(६) **संविधान की संघीय प्रकृति :**—संविधान घोषणा करता है कि "भारत अर्थात् इण्डिया राज्यों का संघ होगा।" निःसंदेह संविधान अनिवार्यतः स्वरूप में संघीय है जिसमें विपुल मात्रा में एकात्मक प्रवृत्तियाँ स्थिर हैं जो कि सन् १९४७ के पूर्व पायी जाने वाली परिस्थितियों के कारण और उन दशाओं के कारण जिनमें संविधान का निर्माण हुआ था, आवश्यक बन गयी हैं। केवल देश की एकता को कायम रखने के

उद्देश्य से सुदृढ़ सरकार स्थापित करने के लिए, और निर्धनता तथा भुखमरी एवं असमानताओं को शीघ्रतापूर्वक दूर करने के हेतु नीतियों और योजनाओं के सरलतापूर्वक निष्पादन की व्यवस्था के लिए, और समृद्धिशाली तथा शक्तिशाली राज्य की प्राप्ति को तीव्र गति प्रदान करने के लिएसंविधान एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना करता है। देश में पायी जाने वाली आर्थिक,भाषीय और राजनैतिक दशाओं में संविधान संघीय होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता था। भारत में अंग्रेजों की सब से महत्वपूर्ण सिद्धि देश के उन विभिन्न भागों का एकीकरण थी जिन्होंने मुगल साम्राज्यों के छिन्न-भिन्न होने पर अपनी स्वतन्त्र अथवा अर्ध-स्वतन्त्र सरकारों की स्थापना की थी। किसी अन्य विचार की अपेक्षा प्रशासकीय सुविधा (Administrative Convenience) के विचारों से प्रेरित होकर अंग्रेजों ने शनैः-शनैः, किन्तु दृढ़तापूर्वक , एक ऐसी शासन-पद्धति की स्थापना की जिसने देश के विभिन्न भागों को एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के घेरे के अन्तर्गत कर दिया। लेकिन राष्ट्रवाद के उदय के साथ दो विपरीत किन्तु परस्पर विरोधी नहीं, प्रवृत्तियाँ प्रकाश में आयीं; एक ओर तो भारत के लिए स्वशासन अथवा स्वराज्य की माँग की गयी और दूसरी ओर प्रत्येक प्रान्त की जनता को अपनी विशेष आवश्यकताओं के अनुसार अपने भाग्य-निर्माण के योग्य बनाने के लिए प्रथम व्यावहारिक पग के रूप में प्रान्तीय स्वराज्य पर बल दिया गया। सन् १८३३ से १९०६ तक मान्य केन्द्रीयकरण की नीति को बदलना पड़ा तथा १९०९ के मिन्टोमार्ले सुधार विकेन्द्रीयकरण के विचार पर आधारित थे। अतः भारत सरकार अधिनियम १९३५ में संघीय योजना निहित थी, जिसने यद्यपि संघीय भाग को व्यवहारिक रूप प्रदान नहीं किया जा सका। केवल संघ के विचार को ही व्यवहार में अनुसरण के योग्य बना दिया। सन् १९२८ में नेहरू समिति ने भारत के संघीय संविधान का सुझाव रखा था; इसके सामने भारत सरकार अधिनियम १९१९ का था जिसकी प्रस्तावना में कहा गया था : "और इसलिए भारत के प्रान्तों में स्वशासित संस्थाओं के शनैः-शनैः विकास के साथ-साथ यह उचित होगा कि उन प्रान्तों को प्रान्तीय विषयों में भारत की सरकार से अधिक मात्रा में स्वतन्त्र रखा जाये, जो कि उस (भारत सरकार) के उत्तरदायित्वों के पूर्ण करने के अनुरूप है", आदि-आदि। सन् १९३० की सायमन कमीशन रिपोर्ट के सुझावों का आधार भी संघ सिद्धान्त था। १९३० की शरद ऋतु में होने वाले गोलमेज सम्मेलन ने भी देशी रियासतों को सम्मिलित करते हुए अखण्ड भारत संघ पर स्वीकृति प्रदान की थी। अतः १९३५ के भारत सरकार अधिनियम में निहित संघ का आधार ब्रिटिश भारत के नेताओं, देशी रियासतों के शासकों और ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकृत संघीय विचारधारा द्वारा भली-भाँति

तैयार किया जा चुका था, यह सहमति संघ के अविरल सिद्धान्त (Compact theory Federation) का आधार बनी।

भारत सरकार अधिनियम, १९३५ ने एक ऐसी संघीय-व्यवस्था का विचार प्रस्तुत किया जिसमें कुछ प्रतिकूल लक्षण भी थे। इसकी प्रथम विषमता इकाइयों की असमान स्थिति थी। संघ में शामिल होने वाली देशी रियासतों की अपेक्षा ब्रिटिश प्रान्तों पर केन्द्र का अधिक नियंत्रण रखा गया था। प्रान्तों में संसदीय व्यवस्था को प्रचलित रखा गया था जब कि देशीय रियासतें, देशी राजाओं, जिन्हें अपनी सरकार पर पर्याप्त रूप से व्यक्तिगत सत्ता के प्रयोग की अनुमति प्राप्त थी, के अधीन रखे गये थे। इसके अन्तर्गत सामान्य संघीय नागरिकता नहीं थी। संघीय विधानमण्डल के दोनों सदनों के निर्वाचन के विषय में इकाइयों के लिए समान पद्धति नहीं थी। प्रो० कीथ (Prof. Keith) इस संघीय योजना को ऐसी योजना कहते थे जो कि "संघ को अद्वितीय विशेषता प्रदान करती है और कुछ प्रतिकूल लक्षणों को जन्म देती है।" प्रो० ली स्मिथ का विचार था "कि भारतीय संघीय पद्धति एक अनजानी पद्धति होगी।"

सन् १९३५ से १९४७ तक की घटनाओं ने भारत के सम्पूर्ण राजनैतिक खीमों में बदल गयीं। भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, १९४७ के पारित होने से कुछ ऐसे तत्व जिसने १९३५ के अधिनियम की संघीय योजना को विषमता प्रदान की थी, समाप्त हो गये और संघीय संविधान के सृजन-हेतु संविधान सभा का आधार तैयार कर लिया गया था। यद्यपि संघीय संविधान शास्त्रीय संघवाद (Classical Federation) से कुछ बातों में पृथक् होते हुए भी निःसंदेह संघीय है जिसमें सन्तुलन केन्द्र की ओर झुका हुआ है। जिसे वृहत् शक्तियाँ प्राप्त हैं। संविधान को असंघीय (Unfederal) अथवा अर्ध-संघीय (Quasi Federal) बतलाना अनुचित है। यह निश्चित रूप से संघीय है क्योंकि यह संघवाद के मुख्य लक्षणों को संतुष्ट करता है। सर्वप्रथम, एक संघीय विधान को लिखित और अपरिवर्तनशील (Rigid) होना चाहिए। भारतीय संघ का संविधान लिखित है और उसे अनुच्छेद ३६८ में दी हुई प्रक्रिया के अनुसार संशोधित किया जा सकता है। चूँकि यह प्रक्रिया भारतीय संसद द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली साधारण विधि निर्माण प्रक्रिया (अनुच्छेद १९६ से २१२) से भिन्न है, संविधान ने स्पष्ट रूप से साधारण विधि और सांविधानिक विधि (Constitutional law) में अन्तर स्थापित किया है। यथार्थ में कुछ अन्य संघों के संविधान भारतीय संविधान की अपेक्षा अधिक अपरिवर्तनशील है, लेकिन चूँकि अपरिवर्तनशीलता एक अपेक्षाकृत शब्द है और संघीय संविधान का पद प्राप्त करने के लिए अपरिवर्तनशीलता की कोई विशेष सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती, यह काफी

है कि सांविधानिक विधि, जो संविधान संशोधन करती है, को पारित करनेवाली प्रक्रिया साधारण विधि निर्माण प्रक्रिया (Ordinary law making process) की अपेक्षा अधिक कठिन है।•इस दृष्टिकोण से भारत का संविधान निःसंदेह संघीय संविधानों की श्रेणी में आ जाता है। द्वितीय संघ में शासन सत्ता दो सरकारों के मध्य विभाजित हो जाती है जो एक साथ ही प्रत्यक्ष रूप से नागरिकों पर अपनी सत्ता का प्रयोग करती है जैसा कि फ्रीमैन करता है : "संघ सरकार के निर्माण के लिए दो बातें आवश्यक हैं। एक ओर संघ का प्रत्येक सदस्य उन विषयों में जिनका सम्बन्ध केवल सदस्य से ही है पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो दूसरी ओर, समस्त लोग उन विषयों में जिनका सम्बन्ध सामुहिक रूप से सदस्यों की सम्पूर्ण संस्था से है एक समान सत्ता के आधीन हो।"[1] भारत का संविधान इस शर्त की पूर्ति करता है कि यह प्रत्येक सरकार, संघ सरकार और राज्य सरकार की शक्तियों का वर्णन करता है और इस प्रकार दो सरकारें, जिनकी अपनी विधायिनी, कार्यपालकीय और न्यायिक सत्ता है, के अस्तित्व को मान्यता प्रदान करता है। ब्राइस भी संघीय राज्यों की परिभाषा इस प्रकार देता है :—"वे राज्य जिनमें केन्द्रीय सरकार अंगभूत समुदायों के नागरिकों पर प्रत्यक्ष शक्ति का प्रयोग करती है।"[2] भारतीय संघ में एकहरी नागरिकता है दोहरी नहीं, अर्थात् भारत का नागरिक संघ सरकार के प्रति भक्ति प्रदर्शित करता है लेकिन वह समान रूप से उस राज्य की सत्ता के अधीन है जिसमें वह निवास करता है। पुनः ब्राइस के अनुसार संघ राज्य में एक नागरिक "विधियों की दो श्रेणियों के पदाधिकारियों, राज्य तथा राष्ट्र की आज्ञा मानता है और उसकी काउन्टी या नगर द्वारा निर्धारित स्थानीय करों के अतिरिक्त वहदो प्रकार से कर अदा करता है।"[3] उपरोक्त दृष्टिकोण से विचार करते हुए भारत का संविधान संघीय है। यद्यपि यहाँ केवल संघ की नागरिकता है और राज्य की पृथक् नागरिकता नहीं है (जो कि सन् १९४७ के पूर्व स्वतन्त्र इकाई के न होने के कारण है, देशी शासकों के अधीन देशी राज्यों की प्रजा भी भारत की सरकार के जिसे ही केवल विदेश भ्रमण के लिए परि-पत्र प्रदान करने का अधिकार था, अधीन थी), भारतीय संघ का प्रत्येक नागरिक दो प्रकार की विधियों का पालन करता है, एक तो वे जो कि संघ की संसद द्वारा निर्मित हैं और दूसरे वे जो उस राज्य के विधान मण्डल द्वारा बनाये गये हैं जिसमें वह निवास करता है; वह (नागरिक) दो प्रकार के कर अदा करता है, एक वे जो संघ सरकार

---

१. हिस्ट्री ऑफ फेडरेल गवर्नमेन्ट, भाग १, पृ० २-३।
२. कान्स्टिटयूशन्स, पृ० २७।
३. वही, पृष्ठ २८८।

द्वारा लगाये जाते हैं, जैसे आयकर और केन्द्रीय उत्पादन कर और दूसरे जो राज्य सरकार द्वारा लगाये जाते हैं, जैसे बिक्री कर, न्यायशुल्क, बिजली कर, भोग सम्बन्धी वस्तुओं पर कर,आदि-आदि, प्रत्येक नागरिक दो प्रकार के पदाधिकारियों की आज्ञा का पालन करता है, संघ सरकार और राज्य सरकार के पदाधिकारियों की। दोनों सरकारें साथ-साथ अपने अस्तित्व को कायम रखती हैं और कोई भी किसी की सत्ता में हस्तक्षेप नहीं कर सकती तथा दोनों अपनी सत्ता एक ही संविधान से प्राप्त करती है।

तृतीय, संघीय संविधान के अन्तर्गत संघीय न्यायपालिका का एक विशिष्ट स्थान रहता है। यह संविधान का निर्वचन करती है और सभी मुकदमों में निहित विधि की वैधानिकता की जाँच करती है। भारत का उच्चतम न्यायालय अमरीकी उच्चतम न्यायालय की भाँति, संविधान में विशिष्ट पद धारण करता है। भारत का उच्चतम न्यायालय : (क) भारत सरकार तथा एक या अधिक राज्यों के बीच के, अथवा (ख) एक ओर भारत सरकार और कोई राज्य या राज्यों तथा दूसरी ओर एक या अधिक राज्यों के बीच के किसी विवाद में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है यदि उसमें किसी कानून की वैधकता का प्रश्न हो।[1] अपने कर्तव्यों और कृत्यों की पूर्ति में भारत का उच्चतम न्यायालय संविधान को ही उच्च मानता है, यद्यपि संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान के विपरीत भारतीय संविधान उच्चतम न्यायालय की उच्चता का उल्लेख नहीं करता। संक्षेप में, भारत का उच्चतम न्यायालय संविधान के विशेष-कर मूलाधिकारों का रक्षण करता है। यह उच्चतम न्यायालय न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग करता है और कानूनों की वैधता की जाँच करता है तथा संघ सरकार और राज्य सरकारों के मध्य या राज्य सरकारों के बीच के संविधानिक विवादों पर निर्णय देता है। यह भी भारत के संविधान के संघीय लक्षण को प्रमाणित करता है।

कभी-कभी आलोचकों द्वारा यह भी कहा जाता है कि संविधान विशेषतया एका-त्मक है अथवा अर्ध-संघात्मक है। यह उन पृथक्करणों, अपसरणों का अतिशयोक्तिपूर्ण विचार है जो भारत का संविधान संघवाद के कठोर स्वरूप से करता है। भारत का संविधान अवश्य ही अपनी वृहत शक्तियों से ओत-प्रोत संघ सरकार की स्थापना करता है; और समवर्ती शक्तियों के प्रयोग में संघर्ष उत्पन्न होने पर केन्द्रीय सरकार की इच्छा, राज्य सरकार की इच्छा पर विजय प्राप्त करेगी। "संघीय संसद को ऐसे किसी

१. अनु० १३१।

भी विषय के बारे में जो 'समवर्ती' सूची अथवा राज्य सूची में प्रगणित नहीं है, विधि बनाने की अनन्य शक्ति है। और संसद की इस अवशिष्ट शक्ति के अन्तर्गत ऐसे कर आरोपित करने का अधिकार आ जाता है जो उन सूचियों में से किसी में भी वर्णित नहीं हैं।"[1] यदि राज्य सभा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की दो-तिहाई से अन्यून संख्या द्वारा संकल्प पारित कर संसद को अधिकृत करती है तो संसद किसी भी विषय पर जो राज्य सूची में वर्णित नहीं है, इस आधार पर विधि बना सकती है कि "यह राष्ट्र-हित में आवश्यक तथा इष्टकर है; ऐसी विधि १ वर्ष से अनधिक (Not exceeding one year) ऐसी कालावधि के लिए प्रवृत्त रहेगी जैसा कि उसमें उल्लिखित हो, और राज्य-सभा द्वारा पारित उसी प्रकार के संकल्प के प्रवृत्त रहने की कालावधि के आगे, किन्तु छ: मास से अधिक नहीं, उस संकल्प के प्रवृत्त रहने की कालावधि की समाप्ति के पश्चात् प्रवृत्त रह सकता है। संसद को भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिए राज्य सूची में प्रगणित विषयों में से किसी के बारे में विधि बनाने की शक्ति है जब कि संविधान के अनुच्छेद ३५२ के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा आपात् की उद्घोषणा की गयी है।"[2] संसद दो या दो से अधिक राज्यों के लिए किसी ऐसे विषय पर जिसके बारे में संसद को आपात्काल के अतिरिक्त विधि बनाने की शक्ति नहीं है, विधि बना सकती है। यदि उन राज्यों के विधान मण्डलों के समस्त सदनों द्वारा इस संबंध में संकल्प पारित हो जाते हैं, परन्तु ऐसी विधियाँ उन राज्यों में ही लागू होंगी जिन्होंने संकल्प पारित किए हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि ऐसी विधियाँ उन राज्यों में लागू होंगी जो संसद द्वारा निर्मित होने के पश्चात् इस प्रकार की विधि को अंगीकार करते हैं।[3] यह विधियाँ केवल संसद द्वारा ही संशोधित या निरसित की जा सकती हैं। नि:संदेह यह उपबन्ध संसद के विधि निर्माण के क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर देता है। किन्तु यह उपबन्ध केवल संसद को ही अधिक शक्तिशाली बनाता है और संविधान को जिससे संघ सरकार तथा राज्य सरकारों को विधायिनी, कार्यपालकीय, न्यायिक और वित्तीय शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, अनिवार्यत: संघीय लक्षण का अपहरण नहीं करता है।

दूसरी आलोचना यह की जाती है कि संविधान के अन्तर्गत समस्त इकाई राज्यों को समान स्तर पर नहीं माना गया है। इसमें अधिक सत्यता है।' संविधान में मूल रूप से इकाई राज्यों का वर्गीकरण तीन श्रेणियों 'क', 'ख' और 'ग' राज्यों में किया

१. अनुच्छेद २४८।

२. अनुच्छेद २५०।

३. अनु० २५२।

गया था जिनकी कार्यपालिका, विधायिनी तथा न्यायपालिका शक्तियाँ भिन्न हैं। जब कि 'क' भाग के राज्यों को परस्पर समान स्तर और अधिक शक्तियाँ प्राप्त थीं और प्रथम अनुसूची के भाग 'ख' और 'ग' के राज्यों को कम शक्तियाँ प्राप्त थीं तथा उन पर अपेक्षाकृत केन्द्र का नियंत्रण भी था। परन्तु १९५६ में संविधान के सप्तम संशोधन के पारित हो जाने पर यह अन्तर समाप्त हो गया है। राज्यों का पुनर्संगठन किया गया है और समान स्तर वाले तथा विधायिनी, कार्यपालकीय, न्यायिक और वित्तीय क्षेत्रों, समान शक्ति का उपभोग करने वाले भाग 'क' के राज्यों का, जम्मू तथा काश्मीर के अतिरिक्त जिसका विशिष्ट स्थान है, निर्माण करने के हेतु भाग 'ख' तथा भाग 'ग' के राज्यों को अपेक्षाकृत बड़ी इकाइयों में मिला दिया गया। दूसरे संघों में जो अधिक सीमा तक संघवाद के सिद्धान्तों का पालन करते हैं, संघीय विधान मण्डल के ऊपरी सदन में समान प्रतिनिधित्व प्रदान कर समस्त इकाइयों की समानता को और अधिक मान्यता दी जाती है। इस संबंध में भारत का संविधान संघीय सिद्धान्त से अलग हट जाता है। जब कि संघ-संसद का निचला सदन, कथित लोकसभा का निर्माण, अन्य संघों में निचले सदनों की भाँति जनसंख्या के आधार पर किया जाता है, राज्य-सभा में विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व जैसा कि चतुर्थ अनुसूची में उल्लिखित है, असमान है; यह संघवाद के कठोर सिद्धान्त से गम्भीर अलगाव है, परन्तु यह अन्तर अधिकतर ब्रिटिश प्रान्तों और देशी राज्यों के निर्माण तथा स्तर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण है। भारत सरकार अधिनियम, १९३५ के संघीय भाग में इकाइयों के संघ के ऊपरी सदन के प्रतिनिधित्व में इसी प्रकार का अलगाव था। भारतीय संघ के संविधान निर्माताओं ने, राज्य-सभा में बड़े राज्यों को अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान कर उन्हीं सिद्धान्तों का अनुकरण किया है।

इसके अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और स्विट्ज़रलैण्ड के विपरीत, किन्तु कनाडा की भाँति भारत संघ के इकाई राज्य अपने संविधान, जिसका ढाँचा संघ के संविधान में सम्मिलित है, को संशोधित करने की शक्ति नहीं रखते। यह उपबन्ध भारत के राज्यों की स्थिति को संयुक्त राज्य अमरीका और आस्ट्रेलिया के राष्ट्रमण्डल के राज्यों, और स्विट्ज़रलैण्ड कैन्टनों की अपेक्षा बहुत निम्न स्तर पर ले आता है। अमरीका, आस्ट्रेलिया और स्विट्ज़रलैण्ड में संघ निर्माण के पूर्व अपने सम्बन्धित संविधानों और शासन की शक्तियों से भरपूर स्वतन्त्र इकाइयों का अस्तित्व था। जब संघों का निर्माण हुआ, संघ में सम्मिलित होने वाले इकाई राज्यों ने अपने ऊपर एक नई केन्द्रीय अथवा संघीय सरकार का सृजन किया और इस नवनिर्मित सरकार को निर्दिष्ट शक्तियाँ (Specified Powers) प्रदान कीं। उनकी स्थिति में

संघ का निर्माण केन्द्राविमुख शक्तियों, जो कि उन देशों के प्रबल लक्षण थे, के मध्य निर्मित केन्द्रीय शक्तियों का परिणाम था। दूसरी ओर, भारत में केन्द्राविमुख शक्तियाँ पहले से ही प्रबल थीं, और केन्द्राविमुख शक्तियों जैसे भाषावाद, प्रान्तीयतावाद और साम्प्रदायवाद ने शासन शक्ति के विकेन्द्रीयकरण की आवश्यकता पर बल दिया। जहाँ तक ब्रिटिश भारत का सम्बन्ध था, भारत की पूर्व विद्यमान केन्द्रीय सरकार समस्त शक्तियों का उपभोग करती थी और वह देशी रियासतों पर भी पर्याप्त नियंत्रण का प्रयोग करती थी। भारतीय गणराज्य में इन देशी रियासतों के मिल जाने से संघ के इकाई राज्यों के निर्माण की मुख्य समस्या उठ खड़ी हुई। अतः संविधान सभा ने स्वभाविक रूप से विकेन्द्रितशक्ति की आवश्यकता को मान्यता प्रदान करते हुए भी देश को शक्तिहीन करने के लिए कोई भी पग नहीं उठाया। उस समय सब से अधिक आवश्यक समस्या थी राष्ट्र की एकता को बनाये रखना और खण्डन करनेवाली प्रवृत्तियों को हतोत्साहित करना। अतएव संविधान संशोधन करने की शक्ति संसद को प्रदान करता है। भाषावाद और प्रान्तीयवाद, जो स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपरान्त भारतीय राजनीति में विपदाजनक बन गये थे और जिसके कारण राज्यों को पुनः संगठित किया गया, को नियंत्रण में रखा गया है, क्योंकि संसद ही संविधान को संशोधित करेगी ऐसा संविधान में कहा गया है। केवल संसद ही अनुच्छेद ३ के अन्तर्गत नये राज्यों का निर्माण कर सकती है, किसी राज्य का क्षेत्र घटा या बढ़ा सकती है और किसी राज्य की सीमाओं या नाम में परिवर्तन कर सकती है। यह सब संघ के खण्डन की सम्भावना का अन्त कर देता है और राष्ट्र की एकता को सुरक्षित रखता है।

संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलियाई राष्ट्रमण्डल और स्विट्ज़रलैण्ड जैसे संघों में दोहरी न्यायिक-पद्धति, संघीय न्यायपालिका और राज्य अथवा कैन्टन की न्यायपालिका है। भारत में, इन संघों के विपरीत सम्पूर्ण देश के लिए इकहरी नागरिकता है। यद्यपि संविधान संघ की न्यायपालिका (अनुच्छेद १२४-१४७) और राज्यों के उच्च न्यायालयों (अनुच्छेद २१४-२३१) का उल्लेख करता है, भारत का उच्चतम न्यायालय संघ के लिए अपील सम्बन्धी सर्वोच्च न्यायालय होने के कारण समस्त प्रकार के मुकदमों; अपराधिक, व्यवहार सम्बन्धित और सांविधानिक, में अपील का सर्वोच्च न्यायालय है। उच्चतम न्यायालय ने संघ के लिए अपील सम्बन्धी एवं उन सब शक्तियों को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किया है जो कि ब्रिटिश प्रिवी कौंसिल द्वारा भारतीय उच्च न्यायालयों पर प्रयोग की जाती थीं।

भारतीय संघवाद की प्रकृति को आँकने में उन विभिन्न तत्वों को मस्तिष्क में रखना आवश्यक है जो कि विभिन्न देशों के संघ में संयुक्त करनेवाली प्रवृत्तियों को

प्रभावित करते हैं। संघीय व्यवस्था को अपनाने के लिए सब से अधिक प्रेरक प्रवृत्ति हर युग में देश की सुरक्षा रही है। भारत में इस तत्व ने एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना का मार्ग प्रदर्शन किया है जैसा कि केन्द्र आपत्काल में राज्यों के प्रशासन को अपने हाथ में लेकर राष्ट्रीय आपात के समय राष्ट्रहित की रक्षा कर सकता है।

वे विभिन्न प्रवृत्तियाँ और तत्व, जिन्होंने राजनैतिक संघों के निर्माण में भाग लिया है, बहुअंगीय रहे हैं, और उनमें से कुछ ने दूसरे पृथक् करने वाली प्रवृत्तियों का सृजन किया है। प्रत्येक प्रवृत्ति और तत्व हर दूसरे पर परिस्थितियों के अनुसार प्रत्याघात करता है। संयुक्त राज्य अमरीका में सन् १८८७ में केन्द्राभिमुख प्रवृत्तियों का बोलबाला था। बाद को उत्तर और दक्षिण के मध्य आर्थिक भेदों द्वारा विशेषकर दासत्व सम्बन्धी प्रश्न पारित राज्य संप्रभुता के आंदोलन ने केन्द्रविमुख शक्तियों को प्रेरणा प्रदान की जिसका परिणाम गृह-युद्ध के रूप में आया। गृह-युद्ध के पश्चात् केन्द्रीय शासन की शक्तियों में संविधान के संशोधनों द्वारा तथा सामान्य रूप से शासकीय कृत्यों के प्रति अमरीकी नागरिकों के भावों में परिवर्तन द्वारा वृद्धि हुई।

संयुक्त राज्य अमरीका के विपरीत कनाडा और स्विट्ज़रलैण्ड में जातीय, भाषीय, और धार्मिक अनेकताएँ थीं। सन् १८४७ में सन्डरबन्ड के युद्ध ने स्विट्ज़रलैण्ड के राजनैतिक ढाँचे को विचलित कर दिया था। लेकिन स्विज़ लोगों की चतुराई, उनकी देशभक्ति की चेतना तथा स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम ने राष्ट्रमण्डल को टुकड़े-टुकड़े होने से बचा लिया। कनाडा में ब्रिटिश नार्थ अमरीका, १८६७ में क्यूबेक प्रान्त के फ्रांसीसी निवासियों की भावनाओं को संतोष प्रदान करने की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए एक संघीय सरकार की स्थापना की जो कि पृथक करनेवाली समस्त प्रवृत्तियों का प्रतिकार करने में पर्याप्त रूप से शक्तिशाली है।

भारत में विदेशी शासन दो प्रमुख धार्मिक सम्प्रदायों, हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य अन्तर की ऊँची दीवार खड़े करने में सफल हुआ। अंग्रेजों ने पृथक साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व, स्थानों का रक्षण आदि विभिन्न प्रकार की संस्थाओं को चालू किया जिन्होंने पृथक करने वाली प्रवृत्तियों को आवश्यकता से अधिक महत्व प्रदान किया। कैबिनेट मिशन की १९४६ की योजना ने एक शक्तिहीन केन्द्र का सुझाव प्रस्तुत किया। अगस्त १९४७ में भारत के विभाजन के साथ ही साम्प्रदायिक शक्ति की तीव्रता में कमी आ गयी; यहाँ तक कि देशी रियासतों के शासकों ने भी २६ नवम्बर, १९४९ के संविधान द्वारा स्थापित भारतीय संघ में अपनी रियासतों को मिलाना स्वीकार किया। भारतीय संघ का संविधान अन्य संविधानों की भाँति परिस्थितियों की उपज है और संघवाद के कठोर सिद्धान्त से दूर हटना इसे विश्व के संघीय संविधानों में अद्वि-

तीय लक्षण प्रदान करता है। अतः भारतीय संघवाद किसी अन्य संघवाद से उन शक्तियों के कारण, जिन्होंने इसे जीवन प्रदान किया है। संघ की स्थापना के पूर्व की दशाओं और द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् संसार की अवस्था के कारण भिन्न है।

(७) **संसदात्मक शासन प्रणाली** :—संयुक्त राज्य अमरीका की अध्यक्षात्मक कार्यपालिका और स्विस राज्यमण्डल की मण्डलात्मक कार्यपालिका से भिन्न, किन्तु कनाडा और आस्ट्रेलियाई राष्ट्रमण्डल के सदृश भारतीय संघ के संविधान ने कार्यपालिका के संसदात्मक स्वरूप को अपनाया है। ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट १८६७ के पारित होने के पूर्व, जिसने संघीय ढाँचे के साथ कनाडा के अधिराज्य की स्थापना की, यह साधारण विचार किया जाता था कि संघीय सरकार के लिए कार्यपालिका का अध्यक्षात्मक स्वरूप होना आवश्यक है। कनाडा के संविधान ने प्रथम बार संघवाद और संसद्वाद को मिश्रित किया। बाद को सन् १९०० में आस्ट्रेलिया राष्ट्रमण्डल ने इसका अनुसरण किया। ब्रिटिश शासन में राष्ट्रवाद के उदय होने से ही भारत संसदात्मक पद्धति के प्रतिनिधि उत्तरदायी सरकार के आवश्यक उपसिद्धान्त के रूप में परिचित हो गया था। भारत सरकार अधिनियम १९१९ ने प्रथम बार प्रान्तीय प्रशासन के हस्तान्तरित भाग में अर्ध संसदात्मक कार्यपालिका का प्रारम्भ किया। भारत सरकार अधिनियम १९३५, भी संसदात्मक स्वरूप पर आधारित था। अतः यह स्वभाविक था कि भारत के संविधान के निर्मातागण संसदात्मक पद्धति अपनायें। यद्यपि भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से होता है और संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति की भाँति उसमें विस्तृत शक्तियाँ निहित हैं। वह ब्रिटिश सम्राट के समान सांविधानिक अध्यक्ष है। व्यवहार में राष्ट्रपति की समस्त शक्तियाँ मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार प्रयोग में लायी जाती है। संघ सरकार की कार्यपालकीय सत्ता के प्रयोग में ब्रिटिश संविधान की रूढ़ियों का अनुकरण किया जाता है। संसद के उद्घाटन पर राष्ट्रपति द्वारा दिये गये भाषण को मंत्रिपरिषद् द्वारा तैयार किया जाता है जो कि मंत्रिपरिषद् की नीति की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। यद्यपि राष्ट्रपति ब्रिटिश सम्राट की भाँति "मेरी सरकार" का प्रयोग करता है। अपनी आपातकालीन शक्तियों के प्रयोग में भी राष्ट्रपति अपनी मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य करता है। मंत्रिपरिषद् का निर्माण इंगलैण्ड की मंत्रिपरिषद् के ढंग पर होता है। भारत के प्रधान मंत्री को वही स्थान प्राप्त होता है जो कि उसके ब्रिटिश प्रतिमूर्ति को ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् में प्राप्त होता है। भारत की मंत्रिपरिषद् संघीय संसद के प्रति उसी भाँति उत्तरदायी है जिस भाँति ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् संसद के प्रति उत्तरदायी रहती है। भारत के राज्यों में कार्यपालकीय शक्ति यद्यपि राज्यों के राज्यपालों

में निहित कर दी गयी है जो कि राष्ट्रपति द्वारा मुख्य मंत्री के परामर्श द्वारा नियुक्त किये जाते हैं वास्तविक रूप में राष्ट्रपति संघीय मंत्रिपरिषद् के परामर्श से ही नियुक्त करता है।

केन्द्र में मंत्रिपरिषद् और राज्यों में मंत्रिमण्डल भी जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी रहती है और ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् के सिद्धान्तों के अनुसार ही कार्य करती है। संघ की संसद और राज्यों के विधानमण्डल में संसदात्मक प्रणाली प्रचलित है। इस प्रकार भारतीय संविधान ब्रिटिश संविधान की संसदात्मक पद्धति का अनुकरण करता है।

(८) **संशोधन का अद्‌भुत ढंग** :—भारतीय संविधान को संशोधित करने का ढंग अन्य संघों के प्रचलित ढंगों से अनोखा है। जब कि यह संविधान अन्य संघीय संविधानों के समान लिखित है तथा अपरिवर्तनशीलता एवं परिवर्तनशीलता का सुन्दर मिश्रण है। साधारणतय: संघीय संविधान अपरिवर्तनशील होते हैं और यही अपरिवर्तनशीलता ही उनकी विशेषता होती है। भारत के संविधान की अपरिवर्तनशीलता एक ऐसी सादी बण्डी की भाँति नहीं है जो बढ़ते हुए शरीर पर धारण करने से पीठ पर खुल जावे यदि सामने के बटन लगाये जायँ। संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान तभी संशोधित हो सकता है जब कि कांग्रेस के दोनों सदन संशोधन का प्रस्ताव रखें और वह दो-तिहाई मताधिक्य से पारित हो, अथवा विभिन्न उपराज्यों के दो-तिहाई उपराज्यों के विधानमण्डलों की प्रार्थना पर कांग्रेस एक सभा बुलावे, तब संशोधन के लिए यह आवश्यक है कि तीन-चौथाई उपराज्यों के विधानमण्डलों द्वारा पारित हो जाय तभी संविधान में संशोधन हो सकता है। स्विट्ज़रलैण्ड में प्रत्येक संशोधन चाहे वह जनता अथवा कैन्टनों के उपक्रम द्वारा प्रस्तावित हुआ हो या राष्ट्रीय विधानमण्डल द्वारा प्रस्तावित हुआ हो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह कैन्टनों की बहुमत जनता तथा समस्त कैन्टनों में मत प्रदान करनेवाले मतदाताओं के बहुमत द्वारा स्वीकृत होना चाहिए। आस्ट्रेलिया में संशोधन संसद के भंग होने से सम्बन्धित है तथा इसके लिए बहुमत राज्यों में बहुमत का समर्थन प्राप्त होना आवश्यक है। उपरोक्त ढंग संविधानों को बहुत अधिक अपरिवर्तनशीलता प्रदान करते हैं।

भारत का संविधान, कनाडा के संविधान की भाँति अपेक्षाकृत कठोर है। अनुच्छेद ३६८ के अनुसार "संविधान के संशोधन का सूत्रपात उस प्रयोजन के लिए विधेयक को संसद के किसी सदन के पुर:स्थापित करके ही किया जा सकेगा तथा जब प्रत्येक सदन द्वारा उस सदन की समस्त सदस्य संख्या के बहुमत से तथा उस सदन के उपस्थित और मतदान करनेवाले सदस्यों के दो तिहाई से अन्यून बहुमत से वह विधेयक पारित

हो जाता है तब वह राष्ट्रपति के समक्ष उसकी अनुमति के लिए रखा जायेगा तथा विधेयक को ऐसी अनुमति दी जाने के पश्चात् विधेयक के निबन्धनों के अनुसार संविधान संशोधित हो जायेगा। परन्तु यदि ऐसा कोई संशोधन (क) अनुच्छेद ५४, अनुच्छेद ५५, अनुच्छेद ७३, अनुच्छेद १६२, या अनुच्छेद २४१ में अथवा (ख) भाग ५ के अध्याय ४, भाग ६ के अध्याय ५ या भाग ११ के अध्याय १ में, अथवा (ग) सातवीं अनुसूची की सूचियों में से किसी में, अथवा (घ) संसद् में राज्यों के प्रतिनिधित्व में अथवा (ङ) इस अनुच्छेद के उपबन्धों में कोई परिवर्तन करना चाहता है तो ऐसे उपबन्ध करनेवाले विधेयक को राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिए उपस्थित किये जाने के पहले उस संशोधन के लिए राज्यों में से कम से कम आधों के विधानमण्डलों से पारित संकल्पों द्वारा अनुसमर्थन भी अपेक्षित होगा।" यह भी कि कोई "संशोधन जम्मू और कश्मीर राज्य के सम्बन्ध में तब तक प्रभावी न होगा जब तक कि वह अनुच्छेद ३७० की धारा (१) के अधीन राष्ट्रपति के आदेश द्वारा लागू न किया जाये।" इससे यह स्पष्ट है कि (१) संविधान साधारण विधि निर्माण और सांविधानिक संशोधनों की प्रक्रियाओं में स्पष्ट भेद स्थापित करता है; (२) संसद प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा, यदि इस बहुमत का अर्थ प्रत्येक सदन में उपस्थित और मत प्रदान करनेवालों के दो-तिहाई बहुमत से कम न हो, संविधान को संशोधित करने के लिए विधेयक पारित कर सकती है जो कि राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो जाने पर प्रभावी संशोधन बन जाता है; (३) ऊपर निर्दिष्ट संविधान के कुछ अनुच्छेदों के संशोधन की माँग करनेवाले विधेयकों के सम्बन्ध में कम से कम आधे राज्य अपने विधानमण्डलों के द्वारा प्रस्तावित संशोधन का, इसके पूर्व कि वह राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिए प्रस्तुत किया जाये, अनुसमर्थन करें; (४) जम्मू और कश्मीर राज्य के सम्बन्ध में कोई संशोधन तभी प्रभावी होगा जब कि राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए आदेश प्रसारित करेगा।

अत: यह ढंग कुछ विषयों में अपरिवर्तनशील है और कुछ अन्य विषयों में परिवर्तनशील है, यह अन्य किसी संघ में अनुकरण किये जाने वाले ढंग से भिन्न है और यह एक असाधारण ढंग है जिसे भारत की विशेष परिस्थितियों में अपनाया गया है।

संक्षेप में भारत संघ के संविधान के यह प्रमुख लक्षण हैं: (१) भारतीय संविधान एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है जिसमें जनता संप्रभु है; (२) इसे एक संघीय राज्य व्यवस्था की जिसमें केन्द्रीय और राज्यों की सरकारों को निर्दिष्ट शक्तियों के अतिरिक्त अवर्णित शक्तियों को केन्द्र के लिए रक्षित करते हुए अनुवर्ती शक्तियों का व्यापक क्षेत्र प्राप्त है; (३) शासन के संसदात्मक स्वरूप को निखारता

है; (४) लोक कल्याण राज्य की स्थापना करता है; और (५) ऐसे तत्वों का प्रस्थापना करता है जिनको अपनी नीति में राज्य द्वारा पालन करना आवश्यक है और जो नागरिकों के मूलाधिकारों का वर्णन करता है; (६) अपने संशोधन का ऐसा ढंग विनिर्दिष्ट करता है जो विना अधिक कठिन हुए अपरिवर्तनशील और विना अधिक सरल हुए परिवर्तनशील है। इसने फ्रांसीसी संविधान से स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धान्तों को, संयुक्त राज्य अमरीका से संघवाद और राज्य के अध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति को और इंगलैण्ड से संसदात्मक लोकतन्त्र को ग्रहण किया है। जनता की जो इसकी सत्ता के अन्तिम स्रोत है विशेष आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए ही इसका नियोजन हुआ है।

अध्याय १४

भारतीय संघवाद में नागरिकता तथा मूलाधिकार

"हम सब राज्य के सैनिक हैं। हम सब समाज के वेतनभोगी हैं; यदि हम सब इसका परित्याग करते हैं तो हम पलायनवादी बन जाते हैं।" —वाल्टेयर

"संसार में तीन प्रकार के लोग होते हैं; इच्छुक, विरोधी एवं अनिच्छुक। प्रथम प्रकार के लोग हर कार्य में सफलता प्राप्त करते हैं, द्वितीय प्रकार के हर कार्य का विरोध करते हैं, और तृतीय प्रकार के प्रत्येक कार्य में असफल रहते हैं।"

—इलेक्टिव मैग्ज़ीन

"संसार में ऐसी कोई बुराई नहीं जिसका हम सामना न कर सकें अथवा जिससे हम भाग न सकें, पर इससे कर्तव्य-चेतना की उपेक्षा होगी।"—डैनियल वेब्स्टर

"सब मनुष्यों को विधाता ने अविच्छेद्य अधिकारों से सजाया है। जीवन, स्वतंत्रता तथा सुख की खोज ऐसे ही अधिकार हैं।" —जेफरसन

नागरिकता

प्रत्येक आधुनिक राज्य में भिन्न-भिन्न स्तर वाले विभिन्न प्रकार के लोग निवास करते हैं। इनमें वृहत् भाग प्राकृतिक रूप से राज्य में जन्में लोगों का होता है।(दक्षिण अफ्रीका के अतिरिक्त) जो कि उसके नागरिक होते हैं, कुछ थोड़े से विदेशी होते हैं जो कि उस राज्य में व्यापार और वाणिज्य के हेतु आते हैं, और अपने राज्य के प्रति भक्ति प्रदर्शित करते हुए भी उन्हें उस राज्य में, जहाँ वे अस्थायी रूप से निवास कर रहे हैं, नागरिक अधिकार प्राप्त होते हैं, और कुछ अस्थायी भ्रमण-कर्त्ता अथवा यात्री या विदेशी राज्यों के अभिकर्त्ता होते हैं। केवल प्रथम प्रकार के लोग ही राज्य के नागरिक होते हैं, जो राज्य द्वारा प्रदान किये गय नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों का उपभोग करते हैं और बदले में राज्य के प्रति भक्ति एवं निष्ठा प्रदर्शित करते हैं, जो उन पर जवाबी कर्तव्य भी निर्धारित करता है। नागरिकों की इस स्थिति से अटल रूप से गुँथे हुए और नागरिकता का निर्माण करनेवाले अधिकारों तथा कर्तव्यों का बोध होता है। प्रत्येक राज्य अपने ढंग से अपने संविधान

अथवा इस उद्देश्य के हेतु निर्मित कानून द्वारा यह निश्चित करता है कि उसके नागरिक कौन हैं या होंगे। साधारणतया प्राकृतिक रूप से जन्मे राज्य के समस्त निवासी (अधिकतर राज्यों में अस्थायी निवासियों के बच्चों के अतिरिक्त) उसके नागरिक समझे जाते हैं।

स्वतन्त्रता के पूर्व भारत में ब्रिटिश नागरिकता ही थी और सब भारतीय ब्रिटिश सम्राट के प्रति भक्ति प्रदर्शित करनेवाली ब्रिटिश प्रजा समझे जाते थे। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, १९४७ के पारित होने तथा भारतीय अधिराज्य की स्थापना होने के पश्चात् भारत की संविधान सभा ने अपने सोद्देश्यात्मक प्रस्ताव में भारत को प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य बनाने की घोषणा की थी। अतः गणराज्य की स्थापना होने से भारतीयों की ब्रिटिश नागरिकता का अन्त हो गया। अब भारतीय गणराज्य की नागरिकता को पारिभाषित करना संविधान सभा का कर्तव्य था। इस समस्या का हल ढूंढ़ने के हेतु संविधान सभा को भिन्न-भिन्न तत्वों का ध्यान रखना आवश्यक था। भारत को संघीय संविधान अंगीकृत करना था, विभाजन ने नई कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दी थीं क्योंकि इसने जनता को भारत अथवा पाकिस्तान के पक्ष में इच्छा प्रकट करने की छूट दी थी और वास्तव में पर्याप्त संख्या में लोग एक ओर से दूसरी ओर गये। तब भारत से पाकिस्तान को तथा विलोमतः इस प्रकार के भावी प्रव्रजन के विशेष संदर्भ में किसे भारत का नागरिक समझा जा सकता था तथा बाद में पैदा होने वाले लोगों तथा देशीयकरण की प्रार्थना करनेवालों की नागरिकता को निर्धारित करने के लिए किस सिद्धान्त को अपनाना आवश्यक था।

अन्य राज्यों में नागरिकता के सिद्धान्त :—अन्य राज्यों में नागरिकता को निर्धारित करने का कोई विशेष सामान्य सिद्धान्त नहीं है। विस्तृत रूप से इस सम्बन्ध में दो सिद्धान्तों का पालन होता है : जन्म-सिद्धान्त (Jus Soli) तथा रक्त-सिद्धांत (Jus sanguinis)। जन्म सिद्धान्त के अनुसार नागरिकता का निर्धारण जन्मभूमि द्वारा होता है, जब कि रक्त-सिद्धान्त के अनुसार बच्चे की नागरिकता माता-पिता की राष्ट्रीयता द्वारा निर्धारित की जाती है। प्रयोग में इन सिद्धान्तों के कारण संघर्ष पैदा हो जाता है। उदाहरण के लिए इटली रक्त-सिद्धान्त का पालन करता है और इंगलैण्ड जन्म सिद्धान्त का। अतः इंगलैण्ड में इटालियन माता-पिता से उत्पन्न हुए बच्चे अंग्रेज़ी पद्धति के अनुसार अंग्रेज होंगे, परन्तु इटली में मान्य रक्त सिद्धान्त के अनुसार वे इटालियन होंगे। लेकिन एक बच्चा माता-पिता द्वारा उचित रूप से घोषित इच्छानुसार अथवा स्वयं वयस्क आयु प्राप्त करने पर केवल एक नागरिकता को चुन सकता है। कुछ राज्यों में दोनों सिद्धान्तों का पालन होता है। उदाहरणार्थ

संयुक्त राज्य अमरीका से बाहर किसी भी स्थान पर अमरीकी नागरिकों से उत्पन्न लोग अमरीकी नागरिकता के अधिकारी होंगे, और अमरीका में विदेशी माता-पिताओं से उत्पन्न लोग भी अमरीकी नागरिकता के अधिकारी होंगे। अधिकतर राज्य केवल एक सिद्धान्त का ही प्रयोग नहीं करते। संविधान-सभा में नागरिकता के इस सामान्य नियम को निश्चित करने का अधिकार संसद को सौंप दिया।[1]

संघ में नागरिकता

कुछ संघ राज्यों जैसे संयुक्त राज्य अमरीका, स्विट्ज़रलैण्ड और आस्ट्रेलिया, में दोहरी नागरिकता है, संघ की नागरिकता तथा राज्य या कैन्टन की नागरिकता। यह दोहरी नागरिकता जो कि अधिकतर संघवाद का एक महत्वपूर्ण लक्षण समझी जाती है, इन संघों के संघ निर्माण के ढंग का स्वाभाविक परिणाम ही है। संयुक्त राज्य अमरीका में स्वातन्त्र्य घोषणा के ठीक पूर्व प्रत्येक राज्य संप्रभु था, उसका अपना संविधान तथा नागरिकता सम्बन्धी कानून था; संघीय नागरिकता का उदय उस समय हुआ जब कि अनुच्छेद १ खण्ड ८ (४) ने देशीयकरण के लिए सामान्य नियम की स्थापना की शक्ति कांग्रेस को प्रदान की, और अनुच्छेद ४, खण्ड २ (१) ने यह घोषित किया कि "प्रत्येक राज्य के नागरिक विभिन्न राज्यों में नागरिकों के विशेषाधिकार तथा परमाधिकार पाने के अधिकारी होंगे।" राज्य की नागरिकता ने तथा राज्यों के अधिकारों के समर्थकों द्वारा किये गये राज्य की संप्रभुता के दावे ने गृह-युद्ध का मार्ग प्रशस्त किया जिसके बाद तेरहवें संशोधन (१८६५) ने संयुक्त राज्य अमरीका में दासता का उन्मूलन कर दिया, और चौदहवें संशोधन (१८६८) के खण्ड १ ने स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया कि "संयुक्त राज्य में उत्पन्न अथवा देशीयकृत तथा उसके अधिकार क्षेत्र के अधीन समस्त लोग संयुक्त राज्य तथा उस राज्य के जहाँ वे निवास करते हैं, नागरिक हैं। कोई भी राज्य ऐसा कानून न बनायेगा, न लागू करेगा जो संयुक्त राज्य अमरीका के नागरिकों के विशेषाधिकारों एवं परमाधिकारों को कम कर दें...।" स्विट्ज़रलैण्ड में भी प्रत्येक कैन्टन, जिसे संविधान के अनुसार प्रभुत्व सम्पन्न घोषित किया जाता है, अपनी नागरिकता की स्थापना करता है। संविधान का अनुच्छेद ४३ घोषित करता है कि "कैन्टन का प्रत्येक नागरिक स्विज़ नागरिक है।" यह इस बात पर बल देता है कि एक नागरिक अपने राजनैतिक अधिकारों का प्रयोग केवल एक ही कैन्टन में कर सकता है, तथा "कैन्टन सम्बन्धी और सामुदायिक विषयों में एक स्विज़ नागरिक निर्वाचक के अधिकारों

---

१. अनु० ६।

की प्राप्ति तीन मास की अवधि तक निवास के उपरांत कर सकता है।"

आस्ट्रेलियाई राष्ट्रमण्डल में प्रत्येक राज्य का अपना संविधान है और इस सीमा तक वह प्रभुत्व सम्पन्न हैं जहाँ तक उसने राष्ट्रमण्डल को सत्ता नहीं दी है। राष्ट्रमण्डल की संसद को देशीयकरण तथा विदेशियों से सम्बन्वित कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया है (अनुच्छेद ५१XIX)। अनुच्छेद ११७ इस निर्देश द्वारा राज्यों की शक्ति को सीमाबद्ध करता है : "किसी राज्य में निवास करनेवाली, सम्राज्ञी की एक प्रजा किसी अन्य राज्य में किसी प्रकार की अयोग्यता अथवा विभेद का विषय नहीं बनेगी, जो कि उस पर उस समय समान रूप से लागू न होगा यदि वह ऐसे अन्य राज्य में निवास करनेवाली सम्राज्ञी की प्रजा नहीं है।" यहाँ पर समस्त व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए "सम्राज्ञी की प्रजा" का अर्थ राष्ट्रमण्डल का नागरिक है।

भारतीय गणराज्य में नागरिकता की प्रकृति

भारत संघ का संविधान 'दोहरी नागरिकता' की व्यवस्था नहीं करता है जो कि अधिकतर संघों की विशेषता है और जिसे संघवाद का लक्षण स्वीकार किया जा चुका है। यहाँ केवल एक ही नागरिकता है, भारत की नागरिकता, संघ के पृथक् राज्यों की पृथक् नागरिकता नहीं है। सम्पूर्ण देश में संविधान का संघीय स्वरूप होने पर भी संघ की अभिन्न तथा एकल नागरिकता को ही उपबन्धित तथा स्वीकृत किया गया है, क्योंकि स्वतन्त्रतापूर्वक किन्हीं भी प्रान्तों अथवा देशी रियासतों की, कभी भी अपनी नागरिकता या पृथक् संविधान और अर्ध स्वतन्त्र स्थिति अथवा अर्ध-प्रभुत्व सम्पन्न अस्तित्व नहीं था। संघ का संविधान ही केवल एक ऐसा लेखबद्ध कानून है जिससे संघ के विभिन्न राज्य अस्तित्व तथा शक्तियाँ प्राप्त करते हैं। यह अभिन्न नागरिकता राष्ट्र के स्थायित्व को और अधिक दृढ़ बनाती है तथा उन विस्फोटक प्रवृत्तियों को रोकती है जो कभी संयुक्त राज्य अमरीका के लिए (गृहयुद्ध की समाप्ति तक) तथा स्विट्ज़रलैण्ड के लिए सन्डरबन्ड (Sonderbound) के युद्ध तक राजनैतिक रोग थी। भारतीय गणराज्य में एकल नागरिकता तथा राष्ट्रीयता संघ का महत्वपूर्ण लक्षण है।

भारतीय संविधान के निर्माताओं के समक्ष भारत की नागरिकता को परिभाषित करने का कार्य एक अर्थ में बड़ा जटिल कार्य था।

अनुच्छेद ५, ६, ७ और ८ यह निश्चित करते हैं कि किन्हें भारत का नागरिक समझा जावेगा। अनुच्छेद ५ के अनुसार इस संविधान के प्रारम्भ पर प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत राज्य क्षेत्र में अधिवास था, भारत का नागरिक स्वीकार किया गया। यदि (क) वह भारत राज्य क्षेत्र में जन्मा था, अथवा (ख) उसके माता-पित में

से कोई भारत राज्य क्षेत्र में जन्मा था, अथवा (ग) वह ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले कम से कम ५ वर्ष तक भारत राज्य क्षेत्र में सामान्यतया निवासी रहा था।

ऐसे लोगों को जिन्हें संविधान के प्रारम्भ पर नागरिकता प्रदान की गयी, की इस परिभाषा के अतिरिक्त नागरिकता के अधिकार संविधान के प्रारम्भ होने के बाद उन लोगों को भी दिये गये जो पाकिस्तान से भारत को प्रव्रजन कर आये हैं भारत का नागरिक समझा जावेगा यदि :—

(क) वह अथवा उसके जनकों में से कोई भारत शासन अधिनियम १९३५ में पारिभाषित भारत में जन्मा था, तथा

(ख) जब कि वह व्यक्ति ऐसा है जो सन् १९४८ की जुलाई के उन्नीसवें दिन से पूर्व प्रव्रजन कर आया है तब यदि वह अपने प्रव्रजन की तारीख से भारत का निवासी रहा है।

(२) (जब कि वह व्यक्ति ऐसा है जो सन् १९४८ की जुलाई के १९वें दिन अथवा उसके पश्चात् प्रव्रजन कर आया है तब यदि वह अपने प्रव्रजन कर आया है) तब इस प्रयोजन के लिए दिये गये उसके आवेदनपत्र निर्दिष्ट अधिकारी के सामने उसे भारत का नागरिक पंजीबद्ध कर लिया गया है। परन्तु ऐसा पंजीयन उस समय न किया जायगा जब कि आवेदनपत्र की तारीख से ठीक पहले कम से कम ६ महीने ऐसे व्यक्ति ने भारत में निवास किया हो।

संविधान के अनुच्छेद ६ के यह उपबन्ध व्यवहारिक रूप से समस्त विस्थापित लोगों को, जो १९४८ की १९ वीं जुलाई तक भारत को प्रव्रजन कर आये हैं, नागरिक स्वीकार किया जाता है, लेकिन उसके बाद प्रव्रजन करनेवालों को तभी नागरिक स्वीकार किया जाता है, जब कि उन्हें भारत के नागरिक के रूप में पंजीबद्ध कर लिया गया है। संविधान का अनुच्छेद ७ उन लोगों को नागरिकता के अधिकार देने से इन्कार करता है जो सन् १९४७ की प्रथम मार्च के उपरान्त पाकिस्तान को प्रव्रजन कर गये थे, परन्तु यह उन लोगों को छूट दे देता है जो भारत में स्थायी निवास करने के हेतु अनुज्ञा के अधीन भारत लौट आये हैं। अतः यह छूट उन लोगों के लिए है जो उपद्रवों अथवा दंगों के युग में पाकिस्तान में स्थायी रूप से निवास करने की इच्छा से उस देश को प्रव्रजन कर गये थे।

संविधान भारत से बाहर अथवा समुद्र पार देशों में निवास करनेवाले उन भारतीयों को भी नागरिकता के अधिकार प्रदान करता है जो स्वयं अथवा जिसके जनकों में से कोई अथवा महाजनकों (Grand parents) में से कोई भारत शासन अधिनियम १९३५ में पारिभाषित भारत में जन्मा था, तथा जिसने भारत से रहते हुए

भी उन देशों में भारत के राजनयिक (Deplomatic) या वाणिज्य (Consular) प्रतिनिधियों द्वारा अपने को भारत का नागरिक पंजीबद्ध कराके नागरिकता प्राप्त कर लेता है। (अनुच्छेद ८)

परन्तु उपकथित किसी श्रेणी से सम्बन्धित भारत का कोई भी नागरिक अपनी स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता की प्राप्ति द्वारा अपनी भारतीय नागरिकता खो देता है। (अनुच्छेद ९)

संविधान का अनुच्छेद ११ संसद को "नागरिकता के अर्जन और समाप्ति के तथा नागरिकता से सम्बद्ध अन्य विषयों के बारे में उपबन्ध बनाने" की शक्ति प्रदान करता है। इस अनुच्छेद द्वारा निहित अपने इस अधिकार के प्रयोग में संसद ने नागरिकता के अर्जन तथा समाप्ति का उपबन्ध करने के हेतु नागरिकता अधिनियम १९५५ (अधिनियम संख्या ५५, ३० दिसम्बर, १९५५) अधिनियमित किया।

इस अधिनियम द्वारा भावी नागरिकता, उसके अर्जन तथा उसकी समाप्ति का उपबन्ध किया गया है। अधिनियम की धारा ३ यह कहती है कि २६ जनवरी १९५० को अथवा उसके बाद भारत में जन्मा प्रत्येक व्यक्ति भारत का जन्मजात नागरिक होगा। लेकिन यहाँ जन्मा कोई ऐसा व्यक्ति भारत का नागरिक न होगा। यदि (१) उसका पिता नालिश तथा विधि प्रक्रिया से उन्मुक्त है। जिस प्रकार भारत के राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत प्रभुत्व सम्पन्न शक्ति के राजदूत अथवा प्रतिनिधि को उन्मुक्ति प्रदान की जाती है या (२) उसका पिता एक विदेशी शत्रु है और एक ऐसे स्थान पर उसका जन्म हुआ है जो उस समय शत्रु के कब्जे में था। इसके अतिरिक्त धारा ४ के अनुसार २६ जनवरी सन् १९५० को अथवा उसके बाद भारत के बाहर जन्मा वह व्यक्ति जन्मकुल से भारत का नागरिक होगा यदि उसके जन्म के समय उसका पिता भारत का नागरिक है और उस घटना के १ वर्ष के अन्दर अथवा इस अधिनियम के लागू होने पर अथवा कथित समय १ वर्ष की समाप्ति के बाद केन्द्रीय सरकार की अनुमति से उसका जन्म एक भारतीय दूतावास के कार्यालय में पंजीबद्ध करा लिया गया है अथवा उसके जन्म के समय उसका पिता भारत सरकार की सेवा में है।

यह अधिनियम इस उद्देश्य से नियत 'पदाधिकारी' को यह भी अधिकार प्रदान करता है कि वह एक ऐसे व्यक्ति को भारत का नागरिक पंजीबद्ध करे यदि वह व्यक्ति निम्नलिखित श्रेणियों में से किसी में आ जाता है।

(क) भारत में सामान्यतः निवास करनेवाले भारतीय उद्भव के लोग जिन्ह अपने को नागरिक के रूप में पंजीबद्ध करने के हेतु प्रार्थनापत्र भेजने

के ठीक पूर्व ६ माह भारत में निवास किया हो :

(ख) अविभाजित भारत से बाहर किसी देश या स्थान में सामान्यतया निवास करनेवाले भारतीय उद्भव के लोग ;

(ग) स्त्रियाँ जिन्होंने भारतीय नागरिकों से विवाह कर लिया है;

(घ) उन लोगों के नाबालिग बच्चे जो भारत के नागरिक हैं; तथा

(ङ) पारस्परिकता के आधार पर पूर्ण आयु तथा सामर्थ्य के लोग जो एक ऐसे देश के नागरिक हैं जिसे राष्ट्रमण्डल की सदस्यता प्राप्त है।

अन्तिम श्रेणी विशेष रूप से इसलिये रखी गयी थी क्योंकि 'ब्रिटिश राष्ट्रीयता अधिनियम, १९४९ ने राष्ट्रमण्डल (Common Wealth) के सदस्य देशों के समस्त नागरिकों तक ब्रिटिश नागरिकता का विस्तार किया था और भारत के नागरिक, यद्यपि भारत ने गणराज्य बनना स्वीकार किया था, ब्रिटिश नागरिकता प्राप्त करने के अधिकारी हो गये थे। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात है कि भारत ने राष्ट्रमण्डल के सदस्य राज्यों के नागरिकों को यह सुविधा पारस्परिकता के आधार पर प्रदान की है। अतः दक्षिण अफ्रीका संघ, जिससे भारत के राजनयिक-सम्बन्धी भी नहीं हैं और जिसने-संघ के समस्त काले लोगों को नागरिकता के अधिकारों से वंचित कर रखा है, के नागरिक इस धारा के अन्तर्गत भारत की नागरिकता के लिये प्रार्थना नहीं कर सकते हैं। उस व्यक्ति को जिसे नागरिकता अधिनियम की धारा ५ (२) तथा धारा ६ (२) के अन्तर्गत भारत का नागरिक बनने का हेतु देशीयकरण का प्रमाणपत्र प्रदान किया गया है, नागरिकता के अधिकारों की प्राप्ति के पूर्व इन शब्दों में राजनिष्ठा की शपथ लेना पड़ती है : "मैं अमुक. . . , सत्य निष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ (या शपथ लेता हूँ) कि मैं विधानानुकूल प्रस्थापित भारतीय संविधान के प्रति सत्य विश्वास तथा निष्ठा रखूँगा, और मैं भारत के नागरिक की हैसियत से वफ़ादारी के साथ भारत के कानूनों एवं कर्तव्यों का पालन करूँगा।"

नागरिकता अधिनियम की धारा ६ (१) के अन्तर्गत राष्ट्रमण्डलीय देशों में से किसी का नागरिक न होने पर लेकिन भारत का नागरिक बनने के हेतु देशीयकरण की प्रार्थना करने पर एक व्यक्ति को देशीयकरण का प्रमाणपत्र प्रदान किये जाने के पूर्व निम्नलिखित शर्तों की पूर्ति करना अनिवार्य है :—

(क) कि वह एक ऐसे देश का नागरिक नहीं है जो भारत के नागरिकों को देशीयकरण द्वारा अपना नागरिक बनने की अनुमति नहीं देता;

(ख) कि उसने विधियों के अनुसार अपने मूल देश की नागरिकता को त्याग दिया है और इस त्याग की सूचना भारतीय केन्द्रीय सरकार को दे दी है;

(ग) कि उसने देशीयकरण के लिये प्रार्थनापत्र देने की तारीख के ठीक पूर्व

कम से कम १२ महीने भारत में निवास किया है, अथवा वह भारत में किसी सरकार की सेवा में रहा हो, अथवा आंशिक रूप से एक या दूसरे में लेकिन लगातार, वह इस प्रकार रहा है;

(घ) कि इन बारह महीनों के पूर्व ७ वर्ष के मध्य में ४ वर्ष के लिये उसने भारत में निवास किया है, अथवा वह भारत में किसी सरकार की सेवा में रहा है, अथवा आंशिक रूप से एक दूसरे में रहा है;

(ङ) कि वह अच्छे आचरण का है,

(च) कि वह भारत के संविधान की अष्टम अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं में से किसी एक का समुचित ज्ञान रखता है।

(छ) कि उसका देशीयकरण हो जाने पर वह भारत में निवास करने के लिये इच्छुक है, या भारत में किसी सरकार के अन्तर्गत अथवा किसी ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के अन्तर्गत, जिसका भारत सदस्य है या भारत में प्रस्थापित किसी सोसाइटी या संस्था या समवाय के अन्तर्गत सेवा में प्रवेश करने या लगे रहने का इच्छुक है।

भारत की नागरिकता का निरूपण

भारत की नागरिकता की प्राप्ति इस प्रकार जन्मकुल अथवा निवास अथवा देशीयकरण पर निर्भर है। अतः यह जनक सम्बन्धी अथवा जन्म सम्बन्धी या निवास सम्बन्धी किसी सिद्धान्त विशेष का पालन नहीं करती। नागरिकता अधिनियम नागरिकता की प्राप्ति के लिए एक विस्तृत क्षेत्र प्रस्तुत करता है।

भारत की मूल नागरिकता अर्थात् संविधान के प्रारम्भ होने से जैसा कि संविधान के अनुच्छेद ५ में कहा गया है, में नागरिकता के निर्धारण के हेतु, जन्म, जनक और निवास (Birth, parentage and residence) तीनों सिद्धान्तों को शामिल किया गया है और किसी एक या अधिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत आने पर एक व्यक्ति संविधान के आरम्भ से भारत का नागरिक समझा जाता है। संविधान का अनुच्छेद ६ उन लोगों को अधिकारयुक्त करने के लिए शामिल किया गया है जो कि विभाजन के बाद भारत को प्रव्रजन करने पर विवश हो गये थे। इसके कारण उच्च न्यायालयों के समक्ष पर्याप्त संख्या में मुकदमे पेश हुए जिनसे पीड़ित पक्षों ने अपने नागरिकता के अधिकारों के हेतु याचना की थी।

अनुच्छेद ८ भारत से बाहर निवास करनेवाले कुछ पारिभाषित श्रेणी के लोग भारत में जन्मे जनक अथवा माता-पिता का पुत्र होने पर जिसे सम्बन्धित भारतीय दूतावास के कार्यालय में पंजीबद्ध होना आवश्यक है, को भारत के नागरिक के रूप

में अधिकारयुक्त करने के लिए शामिल किया गया था। अनुच्छेद ११ ने संसद को नागरिकता की प्राप्ति और समाप्ति के सम्बन्ध में नियम निर्धारित करने की शक्ति प्रदान की है। और संसद ने आवश्यक उपबन्धों के निर्माण के हेतु नागरिकता अधिनियम, १९५५ अधिनियमित किया। अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को विदेशी मूल के व्यक्तियों के देशीयकरण के सम्बन्ध में नियम निर्धारित करने की शक्ति प्राप्त है। लेकिन ऐसा कोई नियम, यदि वह संविधान के विरुद्ध है, वैध नहीं है।

नागरिकता का अन्त

नागरिकता अधिनियम, १९५५ किसी व्यक्ति की नागरिकता की समाप्ति के लिए निम्नलिखित शर्तें निर्धारित करता है।

(१) पूर्ण आयु और सामर्थ्य का एक भारत का नागरिक जो किसी दूसरे देश का नागरिक अथवा राष्ट्रीय है, नियत ढंग के अनुसार अपनी भारत की नागरिकता त्यागने की घोषणा कर सकता है, और जब एक पुरुष अपनी नागरिकता का त्याग इस प्रकार करता है तो उस व्यक्ति का प्रत्येक नाबालिग़ बच्चा भारत का नागरिक नहीं रहता। दूसरे यह कि भारत का कोई नागरिक जो इच्छानुसार दूसरे देश की नागरिकता प्राप्त कर लेता है, इस प्रकार की विदेशी नागरिकता की प्राप्ति पर भारत का नागरिक नहीं रहता। केन्द्रीय सरकार उस व्यक्ति को जिसने देशीयकरण द्वारा भारत की नागरिकता प्राप्त की है, नागरिकता से वंचित कर सकता है यदि (क) देशीयकरण का पंजीयन अथवा प्रमाणपत्र, छल-झूठे प्रतिनिधित्व द्वारा अथवा भौतिक तथ्यों को छिपाकर प्राप्त किया है या (ख) उसने अपने कृत्य अथवा भाषण द्वारा स्वयं को संविधान के प्रति द्रोही अथवा निष्ठाहीन तथा उदासीन प्रकट किया है या (ग) युद्धकाल में उसने शत्रु से व्यापार अथवा पत्र व्यवहार किया है अथवा किसी ऐसे व्यापार या व्यवसाय में लगा हुआ है अथवा उससे सम्बन्धित रहा है जिसके बारे में वह यह जानता था कि उससे शत्रुओं को सहायता मिल रही है या (घ) पंजीयन अथवा देशीयकरण के ५ वर्ष के अन्दर उसे किसी देश में कम से कम दो वर्ष की अवधि के लिए कारावास का दंड प्रदान किया गया है; (ङ) भारत से बाहर एक देश की किसी शिक्षा संस्था का विद्यार्थी बने बगैर या भारत सरकार अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जिसका भारत सदस्य है, की सेवा में न होते हुए भी वह लगातार सात वर्ष तक सामान्यतया भारत के बाहर रहा है। लेकिन केन्द्रीय सरकार उसे नागरिकता से वंचित करने की अपनी यह शक्ति प्रयोग न करेगी जब तक उसे यह संतोष नहीं हो जाता कि उसकी नागरिकता का जारी रहना जनहित के लिए अहितकारी है, तथा जब तक उसे कारण बतलाये हुए जिसके आधार पर उसे नागरिकता से वंचित किये जाने का प्रस्ताव रखा

गया है, लिखित रूप में नोटिस नहीं दी जाती और वह अपने इस मामले की जाँच इसी उद्देश्य के हेतु नियुक्त समिति द्वारा करायेगा। अन्तिम आज्ञा प्रदान करने में सामान्यतया समिति की रिपोर्ट द्वारा केन्द्रीय सरकार का मार्ग प्रदर्शन होगा।

यह उपबन्ध भारत के बाहर निवास करनेवाले तथा भारत की नागरिकता जारी रखने के इच्छुक भारतीयों के नागरिकता के अधिकारों की पर्याप्त रूप से रक्षा करते हैं। यह छली अथवा कपटी व्यक्तियों या शत्रु को सहायता देने वाले लोगों से रक्षा का भी उपबन्ध करते हैं।

नागरिकता अधिनियम एक राष्ट्रमण्डलीय देश के नागरिकों को भारत की नागरिकता का पारस्परिक अधिकार प्रदान करता है; यह जाति या रंग के आधार पर कोई विभेद नहीं करता बशर्ते कि राष्ट्रमण्डलीय देश भारत के राष्ट्रीयों को वहाँ की नागरिकता प्राप्त करने के हेतु समान अधिकार प्रदान करें।

कोई भी व्यक्ति जिसे संविधान के प्रारम्भ से जैसा कि अनुच्छेद ५ द्वारा निर्धारित किया गया है, भारत का नागरिक स्वीकार किया जा चुका है, भारत का नागरिक नहीं समझा जायेगा यदि वह ऐच्छिक रूप से वाह्य देश की नागरिकता ग्रहण कर लेता है।

मूल अधिकार

जनतन्त्र तथा नागरिकों के दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण भाग वह है जिसका सम्बन्ध संविधान के तृतीय भाग में दिये हुए मूल अधिकारों से है। संविधान में इसे शामिल करने की आवश्यकता तथा इसके सत्य महत्व को जानने के लिए हमें मूल अधिकारों के इतिहास की खोज करनी चाहिए; किस प्रकार प्रजा के अधिकारों के विचार का उदय हुआ, वह अवस्था जिससे यह गुजरा है, अधिकार सम्बन्धी महान् दार्शनिकों के विचार, स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध प्रतिक्रिया तथा किस प्रकार अधिकारों को प्राकृतिक रूप से मौलिक रूप में परिवर्तित किया गया, आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिन पर यहाँ हम संक्षेप में विचार करते हैं।

राजाओं के दैवी अधिकार और उसकी प्रतिक्रिया

इतिहास के आधुनिक युग से प्रारम्भ करने पर ही यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल अधिकार जैसा कि हम अब उन्हें समझते हैं, उन राजनैतिक क्रान्तियों की उपज है जो सत्रहवीं, अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में इंगलैण्ड, फ्रांस तथा संयुक्त राज्य अमरीका में घटित हुई थीं। सामंतवाद के पतन पर योरुप में राष्ट्रराज्यों के उदय होने से राष्ट्रीय राजाओं ने अपने शासन की स्थापना की और व्यवहारिक रूप से

समस्त प्रशासकीय पद्धति पर पूर्ण नियन्त्रण का प्रयोग करते हुए अपने प्रजाजनों पर शासन तथा राज्य करना आरम्भ किया और उन्होंने अपने स्वेच्छाचारी कृत्यों के विरुद्ध प्रजाजनों के आवाज उठाने अथवा विरोध करने के अधिकार को मान्यता प्रदान नहीं की। इस प्रकार इंगलैण्ड के जेम्स प्रथम ने प्रजाजनों पर शासन करने के हेतु राजाओं के दैवी अधिकार सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसने तथा इंगलैण्ड के अन्य स्टुअर्ट राजाओं ने प्रजाजनों द्वारा शासकों के स्वेच्छाचारी कृत्यों का विरोध करने की समस्त चेष्टाओं का प्रतिरोध किया। जनता ने सिर झुकाकर यह सब स्वीकार नहीं किया। वह लगातार विरोध करते रहे। दो चिरपरिचित लेखों—पेटीशन ऑफ राइट्स १६२८ जिसके उल्लंघन ने गृहयुद्ध को जन्म दिया तथा बिल ऑफ राइट्स १६८९ जिसने इंगलैण्ड से जेम्स द्वितीय के भाग जाने के रूप में १६८८ की स्वर्ण क्रान्ति (Glorious Revolution) का अनुकरण किया—द्वारा ब्रिटिश जनता इस सिद्धान्त को मान्यता प्रदान करने में सफल हुई कि जनता में संप्रभु के विरुद्ध अधिकार प्राप्त हैं।

राजाओं का अनुग्रह प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित होकर कुछ दार्शनिकों ने शासक द्वारा प्रबल शासन के सिद्धान्त का समर्थन करना शुरू किया। इस प्रकार प्रसिद्ध इटालियन विचारक निकोले मैकियावेली ने अपने ग्रंथ 'दि प्रिंस' (The Prince) में शक्तिशाली एवं दृढ़ शासक सम्बन्धी विचारों को चित्रित किया। राजतन्त्र के अस्तित्व के हेतु अथवा आशय समस्त मूल मानवीय अधिकारों का दमन ही था। उसके अनुसार शासक का सम्बन्ध केवल राज्य की सुरक्षा से है जिसे अपनी राजनैतिक शक्ति में वृद्धि करने का परामर्श दिया गया है। उसने महसूस किया कि राज्य की एकता केवल दृढ़ निरंकुशतावाद द्वारा ही की जा सकती है जो शासक को अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने तथा लोकप्रिय क्रान्ति को रोकने में मदद देती है। उसकी पुस्तक सोलहवीं शताब्दी राजतांत्रिक निरंकुशवाद की नीति ग्रंथ बन गई। सत्रहवीं शताब्दी में एक अंग्रेजी दार्शनिक टामस हाब्स अपनी प्रसिद्ध पुस्तक लेवियाथन जिसमें वह विस्तारपूर्वक संप्रभु के अधिकारों तथा प्रजा की स्वतन्त्रता पर विचार करता है, में शासक एक व्यक्ति अथवा कई व्यक्तियों के समूह, के निरंकुश अधिकार सिद्धान्त का शास्त्रीय ढंग से समर्थन किया है। राजाओं के दैवी अधिकार सिद्धान्त को न्यायोचित ठहराने के प्रयास के बिना भी उसने लेवियाथन (Leviathan) के नागरिक तथा वैधानिक अधिकारों को जो संप्रभुता में अन्तर्निहित हैं, की रक्षा में तीक्ष्ण बुद्धि का प्रदर्शन किया है। हाब्स के अनुसार मनुष्य मूल रूप से प्राकृतिक अवस्था में निवास करता था जिसे मानव जीवन निर्धन, घृणित, पशुवत, एकाकी और अल्प था तथा शक्तिशाली

लोग कमज़ोर लोगों को सताते रहते थे। इस अवस्था से बचने के लिए और स्वरक्षा के उद्देश्य से मनुष्यों ने परस्पर एक-दूसरे से, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति ने प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से यह कहते हुए संविदा अथवा समझौता किया "मैं अमुक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों की सभा को अधिकार युक्त करता हूँ और अपने ऊपर शासन करने का अधिकार उसे सौंपता हूँ बशर्ते कि तुम भी अपने अधिकार उसे सौंप दो और उसके कार्य को समान रूप से इस सीमा तक अधिकार मुक्त करो कि वह उनकी शान्ति और सामान्य रक्षा के लिए जिस प्रकार उचित समझे शक्ति और साधनों का प्रयोग कर सके, और जो व्यक्ति इस कार्य को पूरा करता है उसे संप्रभु कहते हैं और उसे संप्रभुता प्राप्त होती है और उसके समीप प्रत्येक व्यक्ति प्रजा है।"[1] अतः हाब्स प्राकृतिक अवस्था में निवास करने वाले मनुष्यों के मध्य हुए संविदा से यह निष्कर्ष निकालता है कि स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने संप्रभु का सृजन किया जिससे प्रजाजनों पर असीमित शक्ति प्रदान की गयी। "संप्रभु प्रजा के साथ जो भी व्यवहार करता है उसे किसी भी तर्क के आधार पर अन्याय अथवा अपकार नहीं कहा जा सकता क्योंकि संप्रभु जो करता है उसका प्रवर्तक प्रत्येक प्रजा होती है, उसने किसी वस्तु पर अधिकार की कामना नहीं की, इसके विपरीत वह स्वयं ईश्वर की प्रजा है और इसलिए वह प्रकृति के विधानों का पालन करने के लिए बाध्य है।"[2] परस्पर संविदा करने वाले व्यक्तियों ने केवल एक अधिकार अपने पास रखा और वह जीवन का अधिकार अर्थात् स्वरक्षा का अधिकार है। जैसा कि हाब्स कहता है उसका संप्रभु केवल ईश्वर के प्रति उत्तर-दायी है, और उस संविदा, जो उसे प्रजाजनों पर समस्त शक्ति प्रदान करता है, में एक पक्ष न होने पर भी वह जो कुछ करता है उसका विरोध प्रजा नहीं कर सकती, प्रजागण केवल एक अधिकार अर्थात् जीवन की रक्षा का अधिकार अपने पास रखते हैं। इन विचारों ने राजाओं के दैवी अधिकार सिद्धान्त का ही समर्थन किया जिसने सोलहवीं शताब्दी तथा सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में योरुपीय राजतन्त्रों के प्रजाजनों पर निकृष्ट अत्याचारी शासन का रूप प्रदान किया था। जनता ने सामान्य विधि और न्यायालय के संरक्षण, धर्म, विचार तथा निर्णय की स्वतन्त्रता से वंचित कर दिया गया था। राजा स्वयं अकेले ही विधि अधिनियम करते थे और उन्हें लागू करने के लिए अपने साधन अपनाते थे। यहाँ तक कि उन्हें लागू करने के लिए विशेष प्रक्रिया वाले विशेष न्यायालयों की स्थापना की गयी थी। राजा की इच्छा ही विधि थी जिसने

1. Leviathan, Ed, Waller, p. 86.
2. Leviathan, p. 119.

लोगों को स्पष्टतया यह महसूस करा दिया कि 'एक राजा का होना अति ही आवश्यक है जो न्यायाधीशों की स्थापित स्थिति को स्वभाविक रूप से दावा कर सकता था।'

उस युग में ईश्वर के विधान द्वारा स्थापित अधिकार जिसका ज्ञान केवल राजा को ही था, के अतिरिक्त अन्य कोई मानवीय अधिकार नहीं था। इस प्रकार उस समय यह विश्वास किया जाता था कि मनुष्य के अधिकार दैवी विधान पर आधारित हैं और राजा यह विश्वास करते थे कि वे शासन करने की अपनी सत्ता प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर से ग्रहण करते हैं। इंगलैण्ड के सम्राट चार्ल्स द्वितीय ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भाषण करते हुए इस प्रकार दैवी अधिकार की व्याख्या की थी : "हम अब भी यह विश्वास करेंगे और दृढ़तापूर्वक स्वीकार करेंगे कि राजा अपनी उपाधि जनता से नहीं बल्कि ईश्वर से ग्रहण करते हैं, वे केवल ईश्वर के प्रति उत्तरदायी हैं, प्रजाजनों को यह अधिकार नहीं है कि वह सर्जन करे या दोष लगावे बल्कि उनका कार्य संप्रभु का आदर करना तथा आज्ञा पालन करना है जो उत्तराधिकार के मूल वंशानुगत अधिकार अस्तित्व में आता है जिसे धर्म,कानून दोष या अपराध, हरण, परिवर्तित या कम नहीं कर सकते।"[१]

जनतन्त्र के विकास के कारण आधुनिक युग में इस निरर्थक सिद्धान्त, दैवी अधिकार सिद्धान्त, को अब समर्थन प्राप्त नहीं है। लेकिन इससे एक लाभ अवश्य हुआ अर्थात् इसने प्राकृतिक विधि और प्राकृतिक अधिकार को सुनिश्चित एवं दृढ़ बना दिया। इसने 'सर्वोच्च सत्ता की पवित्रता एवं प्रतिष्ठा को मनुष्य के मस्तिष्क में एक विश्वास के रूप में—एक ऐसा विचार जिसे जनतन्त्र का आशीर्वाद प्राप्त है—परिणत करने में सहायता दी।"[२]

प्राकृतिक विधि पर आधारित प्राकृतिक अधिकारों का विचार समाज में विशेष अधिकार युक्त तथा अधिकारों से वंचित लोगों के मध्य संघर्ष का परिणाम था। इसने इस विचार का समर्थन किया कि मनुष्य होने के नाते समस्त लोगों को कुछ अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त हैं जो उन्हें प्रकृति ने दिये हैं और जिन अधिकारों को समाज में अन्य लोग न तो तर्क द्वारा खण्डन कर सकते हैं और न निरादर ही कर सकते हैं। इस प्रकार यह विचार आधुनिक व्यक्तिवाद का ही एक अंग है। जैसा कि प्रो० मैक्सी का कथन है : "जब कि यह स्वीकार कर लिया गया कि अति प्राचीन असामाजिक अवस्था में मनुष्य स्वतन्त्र पैदा हुए थे, तब सहज अनुमान के रूप में यह विचार अनुसरण करता

1. Figgs, J. M., **Divine Rights of Kings,** p. 66.
2. Maxey, Lehesterle, **Political Philosophies**, p. 184.

हुआ प्रतीत होता है कि वे संसार में कुछ प्राकृतिक अधिकारों के साथ अवतीर्ण हुए। उन्होंने जीवन धारण किया था और इसलिए उन्हें जीवित रहने का अधिकार था, बिना किसी अवरोध जन्मे थे और इसलिए उन्हें स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त था, वे नग्न और घर-बार में जन्मे थे और इस कारण वे प्रकृति से ही समान थे, वे कुछ प्रवृत्तियों और आवश्यकताओं सहित जन्मे थे और इसलिए उन स्वाभाविक इच्छाओं के संतोष के लिए उन्हें सुख की खोज का अधिकार प्राप्त था.....।"[1]

अंग्रेजी दार्शनिक जॉनलाक और फ्रांसीसी विचारक जे० जे० रूसो (J. J. Rousseau) ने प्राकृतिक अधिकारों तथा प्राकृतिक विधि के इस सिद्धान्त का बहुत विस्तार किया। जॉनलाक ने अपने ग्रंथ "टू ट्रीटीइजेज़ आन गवर्नमेण्ट (Two Treaties on Government) में प्राकृतिक अवस्थाओं में मनुष्य के निवास करने के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए यह विचार रखा कि उस संविदा में जिसमें उन्होंने भाग लिया था, संप्रभु को उतना ही सीमाबद्ध किया जितना प्रजा को। वह कहता है : "क्योंकि अपने जीवन की सत्ता न रखने वाला मनुष्य संविदा द्वारा अथवा अपनी सहमति द्वारा स्वयं को किसी का दास नहीं बना सकता और न स्वयं को दूसरे की पूर्ण स्वेच्छाचारी शक्ति के अधीन कर सकता है जो दूसरा अपनी इच्छानुसार उसके प्राण ले ले। कोई व्यक्ति जितनी शक्ति वह स्वयं रखता है उससे अधिक शक्ति वह दूसरे को नहीं दे सकता और वह जो स्वयं अपने प्राण नहीं ले सकता उसके ऊपर शक्ति प्रदान नहीं कर सकता।"[2] आगे जॉनलाक इस प्रकार अपने दृष्टिकोण की व्याख्या करता है : "पूर्ण स्वतन्त्रता की उपाधि सहित जन्म लेने तथा संसार में दूसरे मनुष्य अथवा अनेकों मनुष्यों के साथ समान रूप से प्राकृतिक विधि के समस्त अधिकारों तथा परमाधिकारों का अनियन्त्रित रूप से उपभोग करने के कारण मनुष्य न केवल दूसरों के आघात और आक्रमण के विरुद्ध अपने जीवन, स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति की रक्षा कर सकता है, बल्कि दूसरों में इस विधि का उल्लंघन पाने पर वह न्याय विचार कर सकता है और ऐसा दंड प्रदान कर सकता है जो उसके विचार में अपराध के अनुकूल है, यहाँ तक कि उन अपराधों में मृत्यु दंड भी दे सकता है जहाँ उसके विचार में अपराध की नीचता यह माँग करती है।" अत: उसका यह मत था कि अपने सुखभोग के लिए मनुष्य को प्राकृतिक विधि पर आधारित जीवन, स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति का अविच्छेद्य अधिकार के विरुद्ध भी अधिकार प्राप्त है जो जनता के प्राकृतिक अधिकार तथा स्वतन्त्रता की रक्षा करने में असमर्थ है। इस प्रकार उसने सीमित राजतन्त्र के सिद्धान्त का प्रति-

1. Maxey, Lehester le—**Political Philosophies,** pp. 206-207.
2. **Second Treaties on Government,** Chap. XII, para 87.

पादन किया और उन लोगों के विचारों का समर्थन किया जिन्होंने इंगलैण्ड में स्वर्ण क्रान्ति को सफल बनाया था। जॉनलाक के अनुसार वैयक्तिक सम्पत्ति के अन्तर्गत उसका जीवन , स्वतन्त्रता और धन-सम्पत्ति आते हैं और शासन का कार्य अथवा लक्ष्य इस सम्पत्ति की रक्षा करता है न कि स्वेच्छाचारी रूप से इसका खण्डन करना। उसने लोकप्रिय संप्रभुता की नींव डाली और इस विचार का समर्थन किया कि प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा करना और अपक्षपात पूर्ण रूप से प्राकृतिक विधि को लागू करना राज्य का लक्ष्य होना चाहिए।

लगभग इसी युग में फ्रांस में प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त का समानान्तर विकास हुआ। प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक रूसो ने अपने ग्रंथ 'सोशल कान्ट्रैक्ट' (Social Contract) और 'डिस्कोर्स आन दि ओरिजिन ऑफ इनइक्वैलिटी' (Discource on the Origin of Inequality) प्रकाशित किए जिनमें उसने मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त का पक्ष लिया। हाब्स और लॉक की भाँति रूसो भी सामाजिक संविदा में विश्वास करता था जो मूलत: प्राकृतिक अवस्था में निवास करने वाले लोगों के मध्य हुआ ताकि वे उस अवस्था की दशाओं को लक्ष्य होने से बचा सकें। वह लिखता है : "मनुष्य स्वतन्त्र जन्मा है पर वह हर स्थान पर जंजीरों से बँधा हुआ है। हम स्वतन्त्रता के एच्छिक हस्तांतरण की माँग नहीं कर सकते . . .। स्वतन्त्रता का त्यागना मनुष्यत्व का त्यागना है, मानवता के अधिकार और उसके कर्तव्यों का समर्पण करना है। ऐसा त्याग मनुष्य की प्रकृति के विरुद्ध है।" और "प्रत्येक व्यक्ति अपना व्यक्तित्व और समस्त सामान्य शक्ति को सामान्य इच्छा", जो उसके विचार में एकमात्र संप्रभु है के उच्च निर्देश के अधीन कर देता है।" उसके अनुसार मानव जाति का अधिकतम सुख स्वतन्त्रता और समानता में है। स्वतन्त्रता इसलिए क्योंकि हर विशेष प्रकार की अधीनता का अर्थ है राज्य के शरीर से उतनी शक्ति का कम हो जाना और समानता इसलिए क्योंकि बिना उसके स्वतन्त्रता जीवित नहीं रह सकती और जनता शासन के कृत्यों पर निगाह रखने की चेतावनी देता है ताकि वह जनता के अधिकार का अपहरण न कर सके।

फ्रांसीसी क्रांति युग में जब फ्रांस के लिए एक संविधान तैयार किया गया था वह मनुष्य के अधिकारों की लकायत की घोषणा पर आधारित था, जिसने घोषित किया था कि समस्त मनुष्यों को समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए क्योंकि वे समान पैदा हुए हैं। एक और फ्रांसीसी विचारक वाल्टेयर ने स्वेच्छाचारी शक्तियों के विरुद्ध व्यक्तियों के प्राकृतिक अधिकारों का समर्थन किया। अठारहवीं शताब्दी में इतने गहन रूप से फ्रांसीसी विचारकों को प्रभावित किया। विल-द्यूराँ को कहना पड़ा : "इटली में

पुनर्जागरण (राजनैतिक तथा सामाजिक) हुआ और जर्मनी में धार्मिक सुधार हुआ, लेकिन फ्रांस में वाल्टेयर का जन्म हुआ, वह अपने देश में पुनर्जागरण और धार्मिक सुधार, दोनों एवं अर्ध-क्रान्ति के पक्ष में था।"[१] वाल्टेयर ने अपनी विशेष प्रेरणा इंगलैण्ड की १६८८ की क्रांति से प्राप्त की। उसके विचारानुसार जिसने अंग्रेजी जनता के लिए प्राकृतिक अधिकारों की स्वतन्त्रता की स्थापना की। वह लिखता है: "जो लोग यह कहते हैं कि सब लोग समान हैं वे सबसे अधिक सत्य बोलते हैं यदि उनका यह आशय है कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने, अपनी सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त करने तथा कानून का संरक्षण प्राप्त करने में समस्त मनुष्यों को समान अधिकार है; लेकिन संसार में समानता सब से अधिक प्राकृतिक और काल्पनिक वस्तु है; जब यह अधिकारों तक सीमित रहती है यह प्राकृतिक है और जब यह सम्पत्ति और शक्ति को समान स्तर पर लाने का प्रयत्न करती है यह अप्राकृतिक है . . .। सब नागरिक समान रूप से शक्तिशाली नहीं हो सकते; लेकिन वे समान रूप से स्वतन्त्र हो सकते हैं; इसे ही अंग्रेजों ने प्राप्त किया है।"[२] वह बिल ऑफ राट्इस का उल्लेख करता है जो कि अंग्रेजी जनता की स्वतन्त्रता के मूलाधार का निर्माण करती है। उसने फ्रांस के गणतन्त्रीय संविधान की क्योंकि वह संविधान व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा सम्पत्ति के सम्बन्ध में मनुष्य की प्राकृतिक समानता पर आधारित था।

अंग्रेजी विचारक एडमण्ड बर्क ने फ्रांसीसी क्रान्ति की प्राकृतिक अधिकारों की घोषणा की भर्त्सना की, जिसमें उसका विचार था, "तुच्छ और मलिन कागज के तख्ते थे।" बर्क प्राकृतिक अधिकारों के विपरीत कानून के द्वारा स्वीकृत नागरिक अधिकारों के पक्ष में था। उसकी पुस्तक 'रेफ्लेक्शन्स ऑफ फ्रेंच' रेवल्यूशन में (Reflection on French Revolution) फ्रांसीसियों द्वारा राजतन्त्र के विनाश की निन्दा है। बर्क प्राकृतिक अधिकारों के विपरीत कानून के द्वारा स्वीकृत नागरिक अधिकारों के पक्ष में था परन्तु उसके विपक्ष में अठारहवीं शताब्दी में टामस पेन एक फ्रांसीसी जो संयुक्त राज्य अमरीका को प्रव्रजन कर गया था, पृथ्वी के दूसरे ओर प्राकृतिक अधिकारों का सबसे महान रक्षक था। लॉक और रूसो दोनों की तर्क-शृंखला का निकट से अनुकरण करते हुए भी उसके सिद्धान्त ने अमरीकी जनता को ब्रिटेन के विरुद्ध संघर्ष में गहन रूप से प्रभावित किया था। बर्क की रेफलेक्शन्स ऑफ फ्रेंच रेवल्यूशन के प्रत्युत्तर में टामस पेन ने १७९१ में अपनी 'राइट्स आफ मैन' (Rights of Man)

1. **The Story of Political Philosophy**, p. 153.
2. **Ibid**, p. 106.

प्रकाशित की जिसमें क्रूरता के विरुद्ध जनता के अधिकार का समर्थन करते हुए कहता है "सृष्टि का हर इतिहास और हर परम्परागत वर्णन, चाहे वह शिक्षित अथवा अशिक्षित संसार का हो, उनके विचार और विश्वास में एकमत हैं, मनुष्य एक इकाई के रूप में जिसका अर्थ है कि सब मनुष्यों की स्थिति एक समान है, और तदनुसार सब मनुष्य समान अधिकारों सहित उसी प्रकार समान पैदा हुए हैं जिस प्रकार सृष्टि द्वारा जाति के बजाय संतान को जीवित रखा गया है।"[१] उसके अनुसार प्रकृति के अधिकार हैं "जो अस्तित्व के अधिकार में मनुष्य से सम्बन्धित है। बौद्धिक अधिकार अथवा मानसिक अधिकार और अपने आनन्द तथा सुख के लिए व्यक्तिगत रूप से कार्य करने के समस्त अधिकार इसी प्रकार के हैं जो कि दूसरों के प्राकृतिक अधिकारों के लिए हानिकारक नहीं है।"[२] वह नागरिक अधिकारों और प्राकृतिक अधिकारों में भेद स्थापित करता है। प्रथम प्रकार के अधिकार वह अधिकार हैं जो कि समाज का सदस्य होने के नाते मनुष्यों से सम्बन्धित हैं जब कि दूसरे प्रकार के अधिकार "अविच्छेद्य और उत्तराधिकार के योग्य हैं और इनका अवरोध करना अथवा उनके उत्तराधिकार को समाप्त कर देना किसी भी पीढ़ी की बात नहीं है।"[३]

टामस पेन ने वीरता के साथ ब्रिटिश संसद के क्रूर कार्यों का विरोध किया जिसमें अमरीकी उपनिवेश के निवासियों के प्राकृतिक अधिकारों का क्रूर दमन भी शामिल था। तत्कालीन अमरीकी पीढ़ी की भावनाओं को व्यक्त करते हुए उसने ब्रिटिश संसद को चेतावनी दी थी: "मैं चाहता हूँ उसके अतिरिक्त तुम्हें कोई कानून न बनाना होगा।[४]" कामनसेन्स नामक अध्याय में वह लिखता है: "सृष्टि की व्यवस्था में मानव जाति के मूलतः समान होने के कारण समानता का विनाश केवल कुछ पश्चाद्वर्ती परिस्थितियों द्वारा ही हो सकता है; और बिना निर्दयता एवं लोभ के ऐसे कर्कश बुरे लगने वाले शब्दों का सहारा लिए हुए पर्याप्त मात्रा में धनी और निर्धन के भेद का कारण बतलाया जा सकता है।"[५] उसके लिए स्वतन्त्रता का अर्थ कार्य-स्वतन्त्रता है जो दूसरों की समान स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं करती। अमरीकी उपनिवेशों की जनता के स्वातन्त्र्य अधिकार का समर्थन करते हुए तथा यह कहते हुए उसने उनकी

---

1. Fast, Howarad,—**The Selected Works of Join Paine and Citizen Paine**, p. 120.
2. Ibid, p. 121.
3. Ibid, p. 165.
4. Ibid, p. 26.
5. Ibid, p. 11.

भावनाओं को उभाड़ा कि "यही ऐसे युग होते हैं जो मनुष्य की आत्मा की परख करते हैं...। नरक की भाँति अत्याचार को सरलतापूर्वक जीता नहीं जाता ...। यह अचरज की बात होगी यदि 'स्वतन्त्रता' जैसी दिव्य वस्तु को उच्च सम्मान न प्रदान किया जावे। अपनी सेना की सहायता से ब्रिटेन ने अपने क्रूर शासन को दृढ़ करने के लिए घोषणा की है कि उसे न केवल कर लगाने का ही अधिकार प्राप्त है, बल्कि किन्हीं भी मामलात में हमें बाँधने का अधिकार प्राप्त है और यदि इस ढंग से बाँधना दासता नहीं है तब इस पृथ्वी पर दासता ऐसी कोई वस्तु नहीं है।"[1] उसका विश्वास था कि गणतन्त्रीय संविधान मनुष्य के लिए सब से अधिक उपयुक्त है क्योंकि उसमें शासन व्यक्तिगत और सामाजिक हित की पूर्ति के हेतु एक राष्ट्रीय समुदाय के रूप में कार्य करता है।

मूलतः सामाजिक संविदा सिद्धान्त से जन्म प्राप्त कर और निरंकुश स्वेच्छाचारी राजतन्त्र के विरुद्ध खड़े होकर प्राकृतिक अधिकारों का विचार दार्शनिक विचारधारा का एक ऐसा विस्तृत क्षेत्र बन गया कि संविधान निर्माताओं के द्वारा इसे ग्रहण किया गया जिन्होंने प्राकृतिक अधिकारों को एक देश के संविधान में शामिल किया ताकि राज्य की एकता को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें प्रभावशाली रूप से लागू किया जा सके। संविधान में इस प्रकार के अधिकारों के शामिल होने से प्राकृतिक अधिकार मूल अधिकारों में परिवर्तित हो गये। लेकिन व्यवहारिक राजनीति के क्षेत्र में मूल अधिकारों का यह उदय हाल की उत्पत्ति है। उन्हें अमरीकी स्वातन्त्र्य घोषणा में शामिल किया गया था। वे अब जनतन्त्र की आधारशिला और व्यक्ति जो केवल इनके उपभोग द्वारा, राज्य की समृद्धि और स्वतन्त्रता को योग प्रदान कर सकता है, की स्वतन्त्रता के मुख्य आधार हैं। यह अधिकार बहुधा समष्टिवादी अथवा सत्तात्मक राज्य के विचार अथवा किसी ऐसे राज्य से सम्बन्धित विचार के संघर्ष में आते हैं जो स्वतन्त्र रूप से व्यक्त जनता की इच्छा का बिना आदर किये अपने अर्थ सम्बन्धी सिद्धान्तों और प्रशासन के ढंग को लागू करना मुख्यतः अपना लक्ष्य समझता है।

प्रो० लास्की का विचार है कि "अधिकार सामाजिक जीवन की वह दशाएँ हैं जिनके बिना मान्यता के कोई भी मनुष्य स्व (Self) की खोज नहीं कर सकता।"[2] स्वर्गीय श्री वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री ने मूल अधिकारों की परिभाषा इस प्रकार की थी "समाज के कानून द्वारा स्वीकृत तथा नागरिक के सर्वोच्च नैतिक सुख में सहायक

---

1. Ibid, p. 11.

2. **A Grammer of Politics, Ed.** 1948., p. 91.

व्यवस्था, नियम अथवा आचरण।"[1] चूँकि मूल अधिकारों से जनता के भिन्न-भिन्न सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक एवं राजनैतिक हितों का बोध होता है राज्य के शासन विधान सम्बन्धी कानून में उनका संहिताकरण उन्हें जनतन्त्रीय राज्य की शोभा और आभूषण बना देता है। यहाँ तक कि अन्तर्राष्ट्रीय समाज भी प्राकृतिक मानवीय अधिकारों का मूल्यवान अध्याय तैयार किया है जिसको स्वीकार करना समस्त सभ्य राज्यों के लिए आवश्यक है।

भारत में मूल अधिकार

मूल अधिकारों के विचार की उपरोक्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में तथा फ्रांस एवं संयुक्त राज्य अमरीका के संविधानों में शामिल हो जाने के कारण यह स्वाभाविक हो जाता है कि भारतीय गणराज्य के संविधान में मूल अधिकारों के संहिताकरण और उनके शामिल करने को क्यों अधिक महत्व दिया गया। फ्रांस ने मूल अधिकारों के लिए संघर्ष किया था क्योंकि उसकी जनता अपने स्वेच्छाचारी शासकों के शासन के अधीन बुरी तरह से पिसी जा रही थी। अमरीकी उपनिवेशों ने इंगलैण्ड के ऐसे औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत रहना असहनीय समझा जो उपनिवेशों के निवासियों का अपने ढंग से अपना जीवन व्यतीत करने का अधिकार स्वीकार करने के लिए तत्पर न था। यह ठीक है कि अंग्रेजी जनता के अधिकारों का कोई एक लेख्य नहीं है, लेकिन यह अंग्रेजी संविधान की अलिखित प्रकृति के कारण ही है। इंगलैण्ड में विधिवत शासन का प्रचलन है लेकिन इसे प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों ने अपने स्वेच्छाचारी शासकों के विरुद्ध स्वतन्त्रता का युद्ध जारी रखा था और वर्तमान स्थिति यह है कि अंग्रेजी जनता प्रत्येक उस अधिकार का उपभोग करती है जिसका उपभोग लिखित संविधान और उल्लिखित अधिकारों के अनुसार अमरीकी जनता करती है, और उससे अधिक ही क्योंकि वहाँ उन अधिकारों की कोई सीमा नहीं है जिनका उपभोग एक औसत अंग्रेज करता है। विशेष कर शताब्दियों के विदेशी शासन के क्लेशों के कारण, जिसने भारतीयों को भाषण, लेख, तथा संगठन के स्वतन्त्रता सम्बन्धी आवश्यक अधिकार भी प्रदान करने से इन्कार कर दिया था, भारत ने इन अधिकारों को संविधान में समावेश करना अधिक उचित समझा और जैसे ही स्वतन्त्रता ने विदेशी शासन को समाप्त किया यह उचित था कि निम्न से निम्नकोटि का नागरिक भी यह जान जाये कि देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता द्वारा उसे किस प्रकार लाभ पहुँचा है।

भारतीय संविधान के तृतीय भाग में अनुच्छेद १३-३४ तक मूल अधिकारों से

1. **Kamla Lectures** (Calcutta University), p. 15.

आच्छादित है। विस्तृत रूप से देखने पर वे नकारात्मक और एकात्मक दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार के नकारात्मक हैं जो विधान मण्डल तथा कार्यपालिका की शक्तियों पर बन्धन निर्धारित करते हैं जब कि दूसरे प्रकार के सकारात्मक है और वे उन अधिकारों का सविस्तार वर्णन करते हैं जिनका उपभोग भारतीय नागरिक संविधान में उपवन्धित प्रत्याभूति के अन्तर्गत करता है। दूसरे यह कि ये अधिकार न्यायग्योग्य हैं अर्थात् उन्हें न्यायालय द्वारा लागू किया जा सकता है और प्रत्येक नागरिक इस प्रार्थना सहित समर्थ न्यायालय के समक्ष जा सकता है कि एक विशेष अधिकार जो उसके विचारानुसार उसे प्रदान नहीं किया जा रहा है, न्यायालय की उचित आज्ञा द्वारा उसे प्रदान किया जावे। अधिकारों को लागू करने योग्य बनाने का यह उपबन्ध, जो इस प्रकार न्याय योग्य बन जाता है, मूल अधिकारों का सब से अधिक महत्वपूर्ण अंग है।

साधारणतया सरकारों अथवा शासनों में अपनी शक्तियों के दुरुपयोग को नहीं रोक सकता वह ऐसा स्वतन्त्र जीवन भी व्यतीत नहीं कर सकता, जो लोकतन्त्रीय राजनैतिक व्यवस्था में, उसे (जीवन) व्यतीत करने के हेतु प्राप्त होना चाहिए। राजतन्त्रीय पद्धति में न केवल स्वेच्छाचारिता का आसानी से पता लग जाता है बल्कि उसे जनता के समक्ष उसके (जनता के) समर्थन द्वारा संशोधन के लिए लाया जा सकता है। दूसरी ओर, जनतन्त्र में विधानमण्डल अथवा कार्यपालिका द्वारा शक्ति का दुरुपयोग काफी समय तक अज्ञात रहता है क्योंकि बड़ी कठिनाई से किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा जनित अथवा उत्पन्न कहा जा सकता है। विधानमण्डल, सामाजिक हित अथवा लोक व्यवस्था की आड़ में, व्यक्ति की स्वतन्त्रता का दमन करनेवाले कानूनों के अधिनियम को न्यायोचित ठहरा सकते हैं, जिन्हें मिटाने के लिए नागरिकों को दूसरे सामान्य निर्वाचन तक परीक्षा करनी पड़ती है और विधानमण्डल में अधीन बहुमत द्वारा समर्थित कार्यपालिका व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को बुरी तरह पैरों से रौंद सकती है। जनतन्त्रों के कार्य-व्यापार का यही अनुभव रहा है, भले ही यह कथन अजीब अथवा स्वतः विरोधी प्रतीत होता हो। भारत में, शान्ति तथा सुरक्षा कायम रखने की युक्ति के अन्तर्गत कार्यपालिका ने विस्तृत शक्तियाँ प्राप्त कर ली हैं; पुलिस की ज्यादतियों को कार्यपालिका द्वारा या तो अस्वीकृत किया जाता है या एक या दूसरे कारण द्वारा उनको उचित ठहराया जाता है। अक्सर सी० आई० डी० की गुप्त कार्यवाहियों के प्रति राजनैतिक दलों के नेताओं, जिन्होंने शान्तिकाल में भी सी० आई० डी० के जासूसी कृत्यों द्वारा परेशान होकर शिकायतें की हैं, ने रोष प्रकट किया है। मूल अधिकारों की रक्षा के हेतु न्यायिक प्रत्याभूत वे उपबन्ध पर जोर

देते हुए श्री के० एम० मुन्शी ने संविधान में यह कहा था : "हम जनतन्त्र की स्थापना के इच्छुक हैं, और सदन ने बार-बार इसका समर्थन किया है, और जनतन्त्र का सार यह है, कि एक ओर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और दूसरी ओर सामाजिक नियन्त्रण के मध्य संतुलन की स्थापना हो। हमें यह न भूलना चाहिए कि विधानमण्डल में बहुमत सामाजिक नियन्त्रण की स्थापना करने और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए बहुत उत्सुक रहता है।"[1] और कानूनी न्यायालय का सहारा लेना अर्थात् विधानमण्डल अथवा कार्यपालिका द्वारा उल्लंघन होने की दशा में न्यायपालिका को व्यक्ति की स्वतन्त्रता को लागू करने की शक्ति देना, संविधान में उपबन्धित उपाय था।

भारत के संविधान में सात श्रेणियों के अन्तर्गत मूल अधिकारों का वर्णन किया गया है : (१) समता का अधिकार (Rights to Equality), अनुच्छेद १४-१८ (२) स्वातन्त्र्य अधिकार (Right to Freedom), अनुच्छेद १९-२२ (३) शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right Against Exploitation), अनुच्छेद २३-२४, (४) धर्म स्वातन्त्र्य का अधिकार (Right to Freedm of Religion), अनुच्छेद २५-२८; (५) संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (Cultural and Educational Rights) अनुच्छेद २९-३०, (६) सम्पत्ति का अधिकार (Right to Property), अनुच्छेद ३१-३१ ख, (७) सांवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies) अनुच्छेद ३२।

संविधान के इस भाग द्वारा मान्य इन अधिकारों के उपभोग को सुरक्षित रखने के लिए अनुच्छेद १३ घोषित करता है कि इस संविधान के लागू होने से ठीक पहले भारत राज्य क्षेत्र में लागू समस्त विधियाँ इस मात्रा तक शून्य होंगी जिस तक वे इन मान्य अधिकारों से असंगत हैं। यह राज्य को कोई ऐसी विधि भी अधिनियमित करने से रोकता है तो पूर्णरूपेण अथवा जिसका कोई भाग इन अधिकारों से असंगत है। इन अधिकारों से असंगत न कोई अध्यादेश, आदेश, उपविधि नियम, विनिमय, अधिसूचना, रूढ़ि अथवा प्रथा लागू की जा सकती है। अनुच्छेद १३ इस प्रकार नकारात्मक अधिकार प्रदान करता है जिसके द्वारा वे विधियाँ जो संविधान में निहित मूल अधिकारों के उपभोग में बाधक हैं अथवा उनसे असंगत हैं प्रभावहीन हो जावेंगी। अत: न्यायालयों को न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति प्रदान की गयी है और वास्तव में उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय ने क्रमशः १३९ तथा २३६ अनुच्छेदों

---

1. K. M. Munshi, **His Art and Work,** Vol. II, p. 247.

द्वारा उनमें निहित कुछ लेखों को जारी करने की सत्ता के प्रयोग में जो राज्य की स्वेच्छाचारी शक्तियों के विरुद्ध अथवा किसी अन्य सत्ता के विरुद्ध जो अपने कृत्य निर्णय, आदेश अथवा विधि द्वारा नागरिकों के अधिकारों का खण्डन करता है, न्यायिक उपचार है। नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की है। अनुच्छेद ३३ इस भाग द्वारा मान्य अधिकारों को सशस्त्र बलों पर प्रयोग करने में संसद को इन्हें परिमित करने की शक्ति देता है। और अनुच्छेद ३४ उस युग में जब कि देश के किसी भाग में सेनाविधि लागू है, किये गये कार्य से होने वाली क्षति से रक्षा करने के लिए विधि अधिनियमित करने की शक्ति संसद को प्रदान करता है।

(१) समता अधिकार (Right to Equality)

सबसे अधिक प्रिय और सर्वसम्मति द्वारा स्वीकृत मनुष्य के जन्म से उसकी समता का प्राकृतिक अधिकार बहुत से राज्यों में उस समय तक लागू नहीं था जब तक कि वे मानने के लिए विवश नहीं किये गये। भारत के संविधान में अनुच्छेद १४ तथा १५ नकारात्मक रूप में अर्थात् राज्य द्वारा विभिन्न नागरिकों के मध्य भेद स्थापित करने पर रोक लगाते हुए सब व्यक्तियों के समता-अधिकार को उस भाँति मान्यता प्रदान करते हैं। अनुच्छेद १४ भारत राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जावेगा।

अनुच्छेद १५ (१) राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिग, जन्मस्थान, अथवा इनमें से किसी के आधार पर विभेद नहीं करेगा।

(२) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई नागरिक :—

(क) दूकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश के, अथवा

(ख) पूर्ण या आंशिक रूप से राज्यनिधि से पोषित अथवा साधारण जनता के उपभोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघरों, सड़कों तथा सार्वजनिक समागम-स्थानों के उपयोग के बारे में किसी भी निर्योग्यता दायित्व निर्बन्धन अथवा शर्त के अधीन न होगी।

(३) इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबन्ध बनाने में बाधा न होगी।

(४) इस अनुच्छेद की या अनु० २९ के खण्ड (२) की किसी बात से राज्य को सामाजिक और शिक्षात्मक दृष्टिकोण से पिछड़े हुए किन्हीं नागरिक वर्गों की उन्नति

के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिए कोई विशेष उपबन्ध करने में कोई बाधा न होगी।

उपरोक्त दोनों अनुच्छेद बिना धर्म, मूलवंश, लिंग, जाति अथवा जन्मस्थान के विभेद के विधि के समान संरक्षण अथवा जनोपयोगी स्थानों के कुछ अधिकारों के उपभोग से सम्बन्धित नागरिकों के समता-अधिकार को मान्यता प्रदान करते हैं। सन् १९४९ तक प्रचलित विभेदों, जो मानव चेतन के लिए अत्यधिक कष्टदायक थे, के उन्मूलन के हेतु यह आवश्यक समझा गया था। लेकिन अनुच्छेद १५ खण्ड (१) तथा (२) राज्य को बालकों अथवा स्त्रियों के मध्य परस्पर कोई विभेद न होगा। राज्य विधि से सहायता प्राप्त करनेवाली कोई जनसंख्या, धर्म, जाति, मूलवंश अथवा लिंग के आधार पर विभिन्न नागरिकों के मध्य कोई विभेद नहीं कर सकती है। यह अनुच्छेद सब लोगों को विधि के समान, संरक्षण के समान प्रत्याभूति करते हैं। विधि के समक्ष यह समता इंगलैण्ड में विधिवत शासन (Rule of law) में निहित है, जिसके अनुसार सब लोग समान विधि, अर्थात् विधि की दृष्टि में समान व्यवहार के प्रति उत्तरदायी हैं। भारत का संविधान, इन दोनों अनुच्छेदों से, वर्तमान संसार के कुछ उन्नतिशील देशों के संविधानों की अपेक्षा एक कदम और आगे बढ़ जाता है जहाँ तक यह पुरुषों और स्त्रियों के मध्य समता को मान्यता प्रदान करता है। कुछ देशों में स्त्रियों को मतदाता बनने की अनुमति नहीं है, क्योंकि उनका मुख्य कार्य घर की देखभाल करना ही समझा जाता है, स्विटज़रलैण्ड और आयरलैण्ड दो ऐसे ही उदाहरण हैं। संयुक्त राज्य अमरीका ने जो कुछ भी कठिन संघर्ष के बाद प्राप्त किया है, भारत ने गणराज्य के प्रारम्भ से ही उसकी अनुमति प्रदान की है, जैसे मूलवंश अथवा जन्मस्थान के आधार पर विभेद का अन्त।

संविधान के प्रथम संशोधन द्वारा शामिल अनुच्छेद १५ का प्रकरण (४) निःसंदेह एक प्रकार का विभेद है और एकता की सच्ची आत्मा के विरुद्ध है क्योंकि यह एक राज्य को सामाजिक तथा शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए वर्गों के सदस्यों अथवा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के उत्थान के हेतु विरोध उपबन्ध बनाने का अधिकार देता है; यह प्रकरण अनुच्छेद के प्रथम दो प्रकरणों की सामान्य आत्मा का अपवाद है। लेकिन चूँकि संविधान का ध्येय सच्चे जनतन्त्र की स्थापना है जिससे जनता स्व-उन्नति के हेतु पूर्ण स्वतंत्रता का उपभोग करेगी; यह उन्नतिशील वर्गों और जातियों के हित में भी है कि जनता को, जिसने पीढ़ी दर पीढ़ी विदेशी शासन के अन्तर्गत सामाजिक दोषों और विभेदों को जो सामाजिक और शिक्षात्मक उन्नति के न्यूनतम स्तर को प्राप्त करने के मार्ग में बाधक थे, के कारण क्षति उठायी थी, एक

निश्चित स्तर पर लाया जाये। उनका पिछड़ा रहना भारत के राज्य पर बहुत बड़ा भार होगा और उन्हें संविधान का उतना सच्चा तथा उत्साही समर्थक न बनायेगा जितना गणराज्य की एकता और उसे शक्तिशाली बनाये रखने के लिए आवश्यक है। अतः इस आधार पर विशेष उपबन्ध जो अन्ततः अनावश्यक हो जायेंगे, न्यायोचित हैं। वस्तुतः एक सुखी और समृद्धिशाली जनतन्त्र वही है जिसमें विभिन्न वर्गों और आदिम जातियों के मध्य अत्यधिक असमानता नहीं होती और केवल व्यक्तिगत लाभों में ऐसी असमानताएँ होती हैं जो मस्तिष्क और शरीर के प्राकृतिक गुणों के प्रतिफल हैं। भारत का लक्ष्य एक ईश्वरीय समाज की रचना है जिसमें सामाजिक विषमताओं अथवा राज्य की उदासीनता के परिणामस्वरूप उत्पन्न असहनीय असमानताओं का अस्तित्व नहीं है। इन्हें दूर करना आवश्यक है और चूँकि यह एक संक्रामक रोग है। इसके लिए विशेष उपचार और इस उद्देश्य के लिए अनुच्छेद १५ खण्ड (४) का आश्रय ग्रहण किया जा सकता है।

कार्य-समता का अर्थ किसी भी दशा में समस्त नागरिकों द्वारा समान प्राप्ति नहीं है। इसका अर्थ केवल यही है कि उन्हें समान अवसर उपलब्ध है और किसी वर्ग विशेष, या जाति, या मूलवंश या लिंग के साथ विशेष पक्षपात अथवा उसके विरुद्ध विभेद नहीं है। सरकारी नौकरी प्राप्त करने के सम्बन्ध में ऐसी समानता का होना जनतन्त्र के लिए अनिवार्य दशा है और संविधान के अनुच्छेद १६ द्वारा इसका उपबन्ध किया गया है जो यह प्रतिपादित करता है :—

अनुच्छेद १६—(१) राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सब नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी;

(२) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग उद्भव, जन्मस्थान, निवास अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक के लिए किसी नौकरी या पद के विषय में अपात्रता (Ineligibility) होगी और न विभेद किया जावेगा।

अनुच्छेद १६ के यह दोनों खण्ड केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार के अधीन किसी पद पर नियुक्ति अथवा नौकरी के सम्बन्ध में सब नागरिकों की समता की प्रत्याभूति करते हैं। भारत में किसी सरकार के अधीन बिना किसी पक्षपात अथवा विभेद के स्त्री तथा पुरुष दोनों प्रकार के नागरिकों को बिना धर्म या जाति, या मूलवंश या उद्भव, या जन्मस्थान की अपेक्षा के समान रूप से नौकरी प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है। लेकिन खण्ड ३ संसद को एक राज्य अथवा स्थानीय अधिकारी के अधीन किसी श्रेणी अथवा किन्हीं श्रेणियों के पद की नौकरी के लिए निवास योग्यता निर्धारित करने के हेतु कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, एक राज्य

सरकार के अधीन लोक-पद (Public Office) के भर्ती के सम्बन्ध में यह निर्धारित किया जा सकता है कि उम्मीदवार उस राज्य के क्षेत्र में जन्मे अथवा निवास करनेवाले नागरिक ही हों। खण्ड ४ राज्य को नागरिकों के पिछड़े वर्गों के सदस्यों के लिए नियुक्तियों अथवा पदों के रक्षण के सम्बन्ध में विशेष उपबन्ध बनाने की अनुमति देता है। यदि राज्य की राय है कि लोक सेवाओं में एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व पर्याप्त रूप में नहीं हो पाया है। यह उपबन्ध यद्यपि समता-सिद्धान्तों के ठीक-ठीक अनुकूल नहीं है, उन्हीं आधारों पर और सीमित युग के लिए उचित है जिस प्रकार अनुच्छेद १५ में दिए हुए विशेष उपबन्ध। लेकिन ऐसे रक्षण उन आधारों पर चाहे न्यायोचित ही क्यों न हों ये जैसा कि अनुभव बतलाता है, भर्ती के स्तर और इस तरह लोक सेवाओं में प्रशासन के स्तर को अवनति की ओर अग्रसर करते हैं। व्यवहार में प्रत्येक लोक सेवा आयोग (Public Service Commission) राज्य अथवा संघ, लोक पदाधिकारियों की नियुक्ति में अनुसूचित जातियों आदि को प्रतियोगिता परीक्षा में प्रदर्शित की जाने वाली आयुसीमा और योग्यतामान के सम्बन्ध में छूट देता है। यद्यपि इन छूटों का अर्थ विशेष रूप से पिछड़ी हुई जातियों को लोक-सेवाओं में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के योग्य बनाना है, यह बच्चे को चम्मच से दूध पिलाने के समान है जो कि स्वतन्त्र उपयोगिता और लोकपद पर सब से अधिक योग्य व्यक्तियों की भर्ती के विरुद्ध है। लम्बी अवधि में ऐसी छूटें अथवा कम से कम दिनों तक उनका लागू रहना इन जातियों को योग्यता प्राप्त करने के सम्बन्ध में दूसरों का मुकाबिला करने अथवा अपने पैरों पर खड़े होने के लिए उत्साहहीन बना देती हैं। एक बार वैधानिक मान्यता प्राप्त हो जाने पर छूटों का हटाना बड़ा कठिन है भले ही उनकी आवश्यकता न रह गयी हो, वे एक प्राप्त अधिकार को जन्म देते हैं, जिसे उसकी प्रकृति के कारण नष्ट अथवा समाप्त करना कठिन है। देश में पायी जाने वाली विशेष परिस्थितियों में तथा शताब्दियों के इतिहास वाले जात-पाँत पर आधारित समाज में, जिसमें वर्ण व्यवस्था भ्रष्ट होकर जाति व्यवस्था में बदल गयी हो और जिसके फलस्वरूप समस्त हिन्दू समाज प्रायः युद्धरत समूहों में विभाजित होकर टुकड़े-टुकड़े हो गया हो, इन दोषों जो तथाकथित नीच जातियों पर उच्च जातियों के आधिपत्य के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आये, का उन्मूलन अथवा विनाश न केवल देशभक्ति ही है वरन् राज्य तथा नागरिकों का भी यह नैतिक कर्तव्य है।

अनुच्छेद १७ के अनुसार "अस्पृश्यता" (Untouchability) का किसी भी रूप में अन्त कर दिया गया है। अर्थात् राज्य इसे स्वीकार नहीं करता और इसके द्वारा अपनी उपजी अथवा उत्पन्न किसी निर्योग्यता को लागू करना "विधि के अनुसार

दण्डनीय अपराध" घोषित किया गया है। विशेषकर हिन्दू समाज में यह दोष इतना अधिक भयंकर बन गया था कि इसने बहुत काफी संख्या में लोगों को क्षुद्र जीव का पद प्रदान कर उन्हें बहिष्कृत कर दिया। देश पर इस दोष के भयंकर प्रभावों से परिचित राजा राममोहन राय तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती जसे समाज सुधारकों ने इसके विरुद्ध संघर्ष किया। लेकिन पुरानी आदतें और पक्षपातपूर्ण विचार अन्त तक झलकते रहते हैं। चाहे जितना इनको उन लोगों का अन्याय समझा जाय जो ऐसा दूषित कार्य करते हैं, उनके लिए भी इन्हें त्यागना कठिन होता है। अस्पृश्यों के सब से अधिक शुभ-चिन्तक गांधी जी इन्हें हरिजन कहते थे और अपने उदाहरण द्वारा यह प्रमाणित करने के लिए उनके साथ रहते थे कि यह तथाकथित अस्पृश्य लोग समान व्यवहार पाने के उसी प्रकार अधिकारी हैं जिस प्रकार उच्च जाति के लोग। उनका दृढ़ विश्वास था कि यदि यह व्यवस्था चलती रही तो देश और भी अधिक शक्तिहीन हो जावेगा तथा उन्होंने मृत्यु पर्यन्त उपवास रखा जब तक सामान्य हिन्दू समाज से अस्पृश्य अलग करने का 'रामज़ै मैक्डानल्ड एवार्ड (Ramsay Macdonald Award) संशोधित नहीं किया गया। अतः अनुच्छेद १७ सब व्यक्तियों को राज्य द्वारा मान्य समता, निःसन्देह सामाजिक समता का पोषक है। यद्यपि केवल वैधानिक उन्मूलन स्वयं अस्पृश्यता जैसे दोष का अन्त नहीं कर सकता है, यह निःसंदेह लोगों की दृष्टि में पीड़ितों के सामाजिक स्तर को ऊँचा उठा देता है और उन लोगों से अपील करने में समाज सुधारकों को बल प्रदान करता है जो इस दोष को समाप्त करने में विश्वास रखते हैं।

अनुच्छेद १८ विद्या अथवा सेना सम्बन्धी उपाधियों के अतिरिक्त अन्य सब उपाधियों को समाप्त करता है। भारत का कोई नागरिक विदेशी राज्य द्वारा प्रदान की गयी उपाधि स्वीकार नहीं कर सकता, और न भारत में राज्य के अधीन सेवारत विदेशी लोग विदेशी राज्य से कोई उपाधि ग्रहण कर सकते हैं, और न राज्य के अधीन लाभ का पद या विश्वास पद पर आसीन कोई व्यक्ति राष्ट्रपति की सम्मति के बिना विदेशी राज्य से कोई भेंट या उपलब्धि स्वीकार कर सकता है। समता की स्थापना का प्रयास करते हुए ये निबन्धन नागरिकों को अपने व्यक्तिगत आचरण में अथवा अन्य प्रकार से गणराज्य के प्रति वफादार बनाने के लिए चौकसी रखता है।

भारत सरकार ने भारतरत्न से लेकर पद्मश्री तक पदवियों की विभिन्न श्रेणियों को स्थापित किया है जिन्हें राष्ट्रपति ऐसे लोगों को प्रदान करता है जो देश की अतुलनीय सेवा करते हैं अथवा किसी क्षेत्र में उच्च स्तर की निपुणता प्राप्त करते हैं। इन पदवियों का वितरण चाहे जितना अधिक अनुच्छेद की आत्मा से वैधानिक रूप से

मुक्त रखा जाय, ये सम्भवतः कुछ दिनों बाद सहाययुक्त व्यक्तियों के वर्ग का निर्माण करते हैं, और एक सच्चे ईश्वरीय समाज के निर्माण के हेतु इनका अवश्य ही उन्मूलन होना चाहिए ।

(२) स्वतन्त्रता अधिकार (Right to Freedom)

द्वितीय, लेकिन नागरिकों के समस्त मूल अधिकारों में सब से अधिक महत्वपूर्ण, स्वातन्त्र्य अधिकार है । संविधान का अनुच्छेद १९ नागरिकों को :

(क) वाक्-स्वातन्त्रय (Freedom of Speach) और अभिव्यक्ति स्वातन्त्रय (Freedom of Expression) का,

(ख) शान्तिपूर्वक निरायुध सम्मेलन करने का;

(ग) संस्था या संघ बनाने का;

(घ) भारत राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का;

(ङ) भारत राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का

(च) सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का; तथा

(छ) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारावार करने का अधिकार प्रदान करता है ।

स्वतन्त्रता की यह सात श्रेणियाँ नागरिक के व्यक्तिगत विकास तथा सुखी जीवन के लिए आवश्यक हैं और उनके बिना राज्य के लिए, जिसके प्रति वह निष्ठा रखता है, उसमें उत्साह की अनुमति नहीं हो सकती । व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का महान् पोषक 'मिल' (Mill) व्यक्ति को जहाँ तक उसके 'स्व' (Self) का सम्बन्ध है, यह समस्त स्वतन्त्रता प्रदान करते हुए, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास अथवा वृत्ति (Profession) की स्वतन्त्रता में इस सीमा तक निर्बन्धों के अधीन कर देता है जहाँ तक लोकहित अथवा अन्य लोगों की समान स्वतन्त्रता का सम्बन्ध है । विचार करने पर यह स्पष्ट हो जावेगा कि बिना समुचित नियंत्रण के स्वतन्त्रता भ्रष्ट होकर सनद तथा स्वेच्छाचारिता का रूप धारण कर लेती है जो अन्त में समाज को शक्ति-हीन और खण्ड-खण्ड कर देती है । जैसा कि कैनिंग (Canning) का विचार है : "केवल वही स्वतन्त्रता प्राप्त करने योग्य है जो जनता की शक्ति, बुद्धि तथा सद्गुण में वृद्धि करती है ।... प्रगति, बुद्धि एवं शक्ति का विकास ही स्वतन्त्रता का लक्ष्य और प्रसाद है, और इसके बिना एक जनता नाम के लिए जनता हो सकती है, लेकिन स्वतन्त्रता के सार और आत्मा का उसमें अभाव होगा ।" ऐसी स्वतन्त्रता एक नागरिक-समाज प्राप्त होती है जिसके सदस्य एक दूसरे की समान स्वतन्त्रता का आदर करते

हैं और समाज की विधियों का पालन करते हैं चाहें विधियाँ सरकार द्वारा बनाई गयी हों अथवा राज्य के नियमों के रूप में—नैतिक विधियाँ—स्वीकृत हों। अतः स्वतन्त्रता की उचित सीमा के उल्लंघन का कोई प्रयास विधियों द्वारा रोका जाता है। अतः अनुच्छेद १९ खण्ड (१) द्वारा प्रदान की गयी सातों स्वतन्त्रता उचित निर्बन्धनों के अधीन हैं जो किसी वर्तमान विधि अथवा भविष्य में राज्य द्वारा निर्मित होने वाली विधियों द्वारा "राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों, सार्वजनिक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में या न्यायालय अवमान (Contempt of Court), मानहानि या अपराध उद्दीपन के सम्बन्ध में," जहाँ तक अनुच्छेद १९ (१) (ख) के उपखण्ड (क) का सम्बन्ध है, "सार्वजनिक व्यवस्था", जहाँ तक अनुच्छेद १९ (१) (ख) का सम्बन्ध है, "सार्वजनिक व्यवस्था और सदाचार", जहाँ तक अनुच्छेद १९ (१) (ग) का सम्बन्ध है, "सामान्य जनता तथा अनुसूचित आदिम जातियों के हितों की रक्षा के हेतु", लागू किये जाते हैं।

उपखण्ड ६ के अन्तर्गत अधिकार का उपभोग करने के सम्बन्ध में कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने के लिए राज्य आवश्यक प्रावधिक योग्यताएँ निर्धारित कर सकता है। राज्य भी पूर्ण या आंशिक रूप में स्वयं अथवा अपने निज़ी या नियंत्रित निगम द्वारा व्यापार या कारबार कर सकता है।

अनुच्छेद २० राज्य की स्वेच्छाचारिता से व्यक्ति की रक्षा यह निर्धारित करते हुए करता है कि (१) कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए सिद्ध दोष नहीं ठहराया जावेगा जब कि अपराधारोपित क्रिया करने के समय वह एक अपराधी नहीं है और न उसे अपराध के लिए उपबन्धित दंड से अधिक दंड प्रदान किया जावेगा; (२) कोई भी व्यक्ति एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक सिद्ध दोष नहीं ठहराया जावेगा, (३) कोई अभियुक्त स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य न किया जायेगा, अर्थात् अपनी स्वतन्त्र इच्छा के अतरिक्त अपना अपराध स्वीकार करने के लिये उसे क्लेश अथवा शक्ति के अधीन न किया जावेगा।

अनुच्छेद २१ व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा करता है जो अपने प्राण अथवा दैहिक स्वतन्त्रता से "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर" अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

यह इस बात को निश्चित करता है कि यदि कभी किसी व्यक्ति, नागरिक अथवा विदेशी को उसके जीवन अथवा दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित किया जाता है तो राज्य की ओर से किसी प्रकार की स्वेच्छाचारिता नहीं होगी। उस पर उसी प्रक्रिया के अनुसार मुकदमा चलाया जायेगा जो उस उद्देश्य के लिए निर्मित विधि द्वारा निर्धारित

की गयी है। जब कि यह विधिवत शासन (Rule of Law), जिस प्रकार यह इंगलैंड में लागू है, जो लागू रहने के लिए निश्चित कर देता है, यह संयुक्त राज्य अमरीका में प्रचलित व्यवहार से भिन्न है जहाँ कि एक अभियुक्त पर "विधि की उचित प्रक्रिया" के अनुसार मुकदमा चलाया जाता है, और इस प्रकार न्यायालय को यह छूट प्रदान की जाती है कि वह यह पता लगाये कि अभियुक्त को पकड़ने और उस पर मुक-दमा चलाने में विधि का उचित ढंग से पालन किया गया है। संविधान सभा के एक भाग ने 'उचित प्रक्रिया' वाक्य खण्ड को शामिल करने के हेतु कठिन संघर्ष किया था, लेकिन अन्त में "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" के पक्ष में इसे अस्वीकृत कर दिया गया। यह इसलिए किया गया था क्योंकि अमरीकी सुप्रीमकोर्ट के न्यायाधीश फ्रैंक-फर्टर (Justice Frankfurter) ने प्रारूप समिति (Drafting Committee) के सांविधानिक परामर्शदाता सर बी० एन० राव (Sir B. N. Rav), को यह परामर्श दिया था कि "उचित प्रक्रिया" वाक्य खण्ड ने अमरीका में जनतन्त्र के विकास में बाधाएँ उपस्थित की थीं, और इसलिए भारत में इसे न अपनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त देश के कुछ भागों विशेषकर तेलंगाना में हुई अवैधानिक कार्यवाहियों ने विधि और व्यवस्था को बनाये रखने के सम्बन्ध में भारत सरकार के लिए गम्भीर समस्याएँ पैदा कर दी थीं। 'उचित प्रक्रिया' के विरुद्ध चाहे जो कुछ भी कहा जाये, इस पर कोई शास्त्रार्थ नहीं किया जा सकता कि विधानमण्डल अभियुक्त के मुकदमे के लिए 'प्रक्रिया' निर्धारित करने के हेतु ऐसी विधि बना सकता है जो वस्तुतः व्यक्ति की वैध कार्यवाहियों का भी उल्लंघन करती हो। कई बार उच्च न्यायालयों ने व्यक्तियों को बन्दी बनाने से सम्बन्धित सरकारी आदेशों को रद्द कर दिया क्योंकि बन्दी बनाने की प्रक्रिया अथवा सिद्ध दोष और प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों में परस्पर संघर्ष पैदा हो गया था ।

अनुच्छेद २२ यह निर्धारित करते हुए व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने का और आगे लक्ष्य करता है :—

अनुच्छेद २२–(१) "कोई व्यक्ति, जो बन्दी बनाया गया है, ऐसे बन्दीकरण के कारणों से यथाशक्ति शीघ्र अवगत कराये गए हुए बिना हवालात में निरुद्ध नहीं किया जायेगा और न अपनी रुचि के विधि व्यवसायी से परामर्श करने तथा प्रतिरक्षा करने के अधिकार से वंचित रखा जायेगा ।"

जहाँ तक इस उपबन्ध का सम्बन्ध है यह उत्तम है लेकिन अनुच्छेद २२ का खण्ड (२) बन्दी बनाये गए व्यक्ति के निरोध की २४ घंटे के लिए अनुमति प्रदान करता है, और इसके बाद यदि दंडाधिकारी के प्राधिकार से उसे और आगे की अवधि के लिए

निरुद्ध किया जा सकता है। पुलिस द्वारा हिरासत में लाये हुए व्यक्तियों को निरुद्ध रखने तथा उन्हें यातनाएँ प्रदान करने का पुराना रवैया यद्यपि पर्याप्त रूप से सुधारा गया है, फिर भी यह व्यक्ति की दैहिक स्वतन्त्रता में बाधक है। और अनुच्छेद २२ खण्ड (३) उस व्यक्ति को, जो शत्रु अन्यदेशीय है अथवा जो निवारक निरोध करने वाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध किया गया है, अनुच्छेद २२ खण्ड (१) तथा (२) में दिये गये अधिकारों से वंचित रखता है। वर्तमान निवारक निरोध अधिनियम सरकार को तीन महीने के लिए किसी व्यक्ति को बिना मुकदमे के निरुद्ध रखने और ऐसे व्यक्ति को बिना मुकदमें के निरुद्ध रखने और (ऐसे व्यक्तियों से जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रह चुके हैं अथवा है बनी हुई) मंत्रणा मण्डली के प्रतिवेदन पर अधिक अवधि के लिए (अधिनियम से उपबन्धित अधिकतम कालावधि तक) निरुद्ध रखने का अधिकार प्रदान करता है।

निवारक निरोध अधिनियम के अधीन अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से वंचित किये जाने वाले व्यक्तियों के अगणित मुकदमें अस्तित्व में आ चुके हैं और कुछ मुकदमे[1] १८ उच्च न्यायालयों ने इस प्रकार से निरुद्ध व्यक्तियों के निरोध अथवा सिद्ध दोष को रद्द कर दिया है। अधिनियम ने कार्यपालिका को ऐसे व्यक्तियों को बिना उचित मुकदमे के कम से कम तीन माह तक निरुद्ध रखने की विस्तृत और लगभग अनिर्बन्धित शक्तियों से सुसज्जित किया है जिन्हें वह किसी एक या दूसरे कारण से अवांछनीय समझती है। निरोध शक्ति का उच्छृंखल प्रयोग सीमाओं को लाँघ चुका है। इसने विश्वविद्यालय अथवा कालेज के विद्यार्थियों को अपने विश्वविद्यालय के प्राधिकारियों के कुछ कृत्यों के विरुद्ध आंदोलन करने अथवा अपनी वैध शिकायतों को दूर करने के हेतु आन्दोलन करने के लिए निरुद्ध किया है। इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश की सरकार, जिसने निरुद्ध व्यक्तियों द्वारा शान्तिपूर्ण आचरण का विश्वास दिलाये जाने पर भी, नवयुवकों को तुच्छ कारणों के आधार पर स्वतन्त्रता से वंचित कर दिया, सब से अधिक पातकी (Sinner) रही है। इन आपात शक्तियों का दुरुपयोग निःसन्देह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का निषेध है और जनतन्त्र के सिद्धान्तों अथवा स्वतन्त्रता के नैतिक नियमों के भी विरुद्ध है। और जब यह स्मरण किया जाता है कि अनुच्छेद २२ खण्ड (७) संसद को ऐसी परिस्थितियाँ निर्धारित करने योग्य बनाने के हेतु विधि अधिनियमित करने की शक्ति प्रदान करता है जिसके आधीन

1. **Gopaln** vs **State of Madras,** (1950) S. C. J., 174 Kamia, J.
Ram Sing vs **State of Delhi** (1957) S. C. J., 374 Sastri, J.
State of Bombay vs **Atma Ram** (1957) S. C. J. 200, Sastri, J.

तीन महीने से अधिक कालावधि के लिए निरोध किया जा सके, तब अनुच्छेद २२ खण्ड (१) के अन्तर्गत संविधान जो भी संरक्षण दायें हाथ से प्रदान करता है वह उसे बायें हाथ से वापस ले लेता है। अतः आपात्काल को छोड़कर साधारण युग में सर्वाधिक अक्षय विधि (Indefensible Law) के अधीन प्रदान की गयी ऐसी निरोध शक्तियों के प्रयोग के हेतु कार्यपालिका की सत्ता न्यायोचित नहीं ठहरायी जा सकती।

(३) शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation)

कुछ सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में निर्धनता और असहायता ने स्त्रियों और बच्चों पर जीवन की दशायें जबरदस्ती लाद दीं और इन बच्चों के जनकों ने कष्टदायक निर्धनता से विवश होकर, अपने बच्चों को धनिकों, पूँजीपतियों अथवा जमीदारों द्वारा शोषित होने की अनुमति दे दी। अनुच्छेद २३ और २४ में संविधान ने मानव जीवन से बेगार तथा उचित श्रम दिये बिना शारीरिक श्रम के उपभोग पर रोक लगाकर इस प्रकार के शोषण का अन्त करता है, और इसका कोई भी उल्लंघन विधि के अनुसार दण्डनीय अपराध है। फिर यह राज्य को सार्वजनिक प्रयोजन के लिए बिना विभेद के अनिवार्य श्रम लागू करने की शक्ति देता है। "चौदह वर्ष से कम आयु वाले किसी बालक को किसी कारखाने अथवा खान में नौकर न रक्खा जायगा।" नैतिकता, बालक के हित और सामाजिक सुरक्षा के आधार पर यह आवश्यक अधिकार है। इसका उल्लंघन मनुष्य की भली-चेतना के प्रति विद्रोह है और यह अनैतिकता की वृद्धि करता है। सौभाग्यवश हमने कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए कदम उठाया है और इसलिए असहायों तथा निर्धनों के शोषण को रोकना राज्य का कर्तव्य है।

(४) धर्म-स्वातन्त्र्य का अधिकार (Right to Freedom of Religion)

हमारे गणराज्य की भाँति एक बहु धार्मिक राज्य में यह उचित ही है कि प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक असहिष्णुता के विरुद्ध सुरक्षित रखा जाये। हमारा राज्य धर्मनिरपेक्ष राज्य है जिसमें किसी विशेष धार्मिक विश्वास के प्रति पक्षपात प्रदर्शित नहीं किया जाता और न किसी धार्मिक आचरण पर रोक लगायी जाती है यदि वह नैतिकता अथवा लोक-मर्यादा से संघर्ष में नहीं आता। भूतकाल में धार्मिक झगड़े और दंगे काफी मात्रा में हुए थे। अतः यह आवश्यक था कि सम्प्रदायों के लोगों को अपने धर्मपालन की स्वतन्त्रता प्रदान की जाये। अनुच्छेद २५ उन चारों अनुच्छेदों में, जिन्हें संविधान धार्मिक स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति के लिए शामिल करता है, सब से अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह कहता है :—

अनुच्छेद २५ (१) सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के दूसरे उपबन्धों के अधीन रहते हुए, सब व्यक्तियों की अन्तःकरण की स्वतन्त्रता का तथा धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान अधिकार होगा।

(२) इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा राज्य के लिए किसी ऐसी विधि के बनाने में रुकावट न डालेगी जो—

(क) धार्मिक आचरण से सम्बन्ध किसी आर्थिक वित्तीय, राजनैतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की लौकिक क्रियाओं का विनयमन अथवा निर्बन्धन करती हो;

(ख) सामाजिक कल्याण और सुधार उपबन्धित करती हो, अथवा हिन्दुओं की सार्वजनिक प्रकार की धर्म-संस्थाओं, हिन्दुओं के सब वर्गों और विभागों के लिए खोलती हो।

अनुच्छेद में प्रयुक्त हिन्दू शब्द सिख, जैन अथवा बौद्ध धर्म के माननेवाले लोगों को शामिल करता है। और कृपाण धारण करना तथा लेकर चलना सिक्ख धर्म मानने का अंग समझा गया है।

अनुच्छेद २६ प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अथवा उसके किसी विभाग को सामाजिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के आधीन रहते हुए धार्मिक और पूर्त-प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का, अपने सधर्म सम्वन्धी विषयों का अपने ढंग से प्रबन्ध करने का, चल और अचल सम्पत्ति के अर्जन और स्वामित्व का और उसका विधि के अनुसार प्रशासन करने का अधिकार प्रदान करता है। यह सब किसी भी सम्प्रदाय के लोगों के लिए धर्मस्व को अथवा अपने धर्म के मानने और प्रचार करने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कदम उठाने को जारी रखने में सुरक्षित रखता है। कोई भी व्यक्ति ऐसे करों को दिए जाने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा जिनका आगम (Proceeds) किसी धर्म विशेष के लिए प्रयोग किया गया हो। (अनुच्छेद २७) राज्य-निधि से पूर्ण रूप से पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जावेगी। (अनुच्छेद २८) में उपबन्ध समस्त धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति व्यवहार-समता को सुरक्षित रखते हैं, राज्य के निरपेक्ष अथवा लौकिक रूप को निश्चित करते हैं तथा धार्मिक-स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति करते हैं।

(५) संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धित अधिकार (Cultural & Educational Right)

भारत जैसे बहु-संस्कृति वाले राज्य में समस्त सांस्कृतिक समूहों अथवा विभिन्न विभागों के लोगों को अपनी संस्कृति की रक्षा करने तथा अपने बच्चों की शिक्षा के

लिए उपबन्ध बनाने, जिस प्रकार वे उचित समझते हैं, के हेतु स्वतन्त्रता निश्चित करना आवश्यक है। अनुच्छेद २९ सब लोगों, विशेषकर अल्पसंख्यकों को अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति को बनाये रखने के अधिकार संरक्षित करता है। राज्य-निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में नागरिकों को प्रवेश से "केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी के आधार पर वंचित न रखा जायेगा।" धर्म या भाषा के आधार पर अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी संस्थाएँ स्थापित करने और उनको बनाये रखने का अधिकार प्राप्त है, और राज्य इनमें से किसी को सहायता देने में विभेद नहीं करता है।

(६) सम्पत्ति का अधिकार (Right to Property)

व्यक्ति द्वारा सम्पत्ति का अधिकार, उसकी प्राप्ति, सुरक्षा तथा उसका विक्रय एक प्रिय अधिकार रहा है जिसे मानव जाति का इतिहास प्रदर्शित करता है। संविधान का अनुच्छेद ३१ कहता है कि "कोई व्यक्ति विधि के प्राधिकार के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।" राज्य विधि के अनुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति को सार्वजनिक प्रयोजन के लिए ऐसे कानून के अनुसार अर्जित करने अथवा अविग्रहीत करने की शक्ति रखता है जो या तो प्रतिकर की राशि को नियत करता है या उन सिद्धान्तों को निर्धारित करता है जिसके आधार पर प्रतिकर निश्चित किया जाता है। प्रत्येक न्यायालय ऐसी प्रत्येक विधि को मानने के लिए बाध्य है। संविधान के अस्तित्व में आने के शीघ्र बाद ही कई राज्य विधान मण्डलों ने ज़मींदारी पद्धति के उन्मूलन के लिए विधियाँ पारित की तथा इन विधियों को अवैध करार देने के हेतु उच्चतम न्यायालय के समक्ष मुकदमे पेश गये, क्योंकि इनका अर्थ व्यक्तियों को अनुच्छेद ३१ खण्ड (१) के अधीन मान्य अधिकार के विरुद्ध उनकी सम्पत्ति से वंचित करने से था। भारत की सरकार ज़मींदारी पद्धति को समाप्त करने पर तुली हुई थी और इसने संविधान के प्रथम संशोधन को आगे बढ़ाया जिसने सम्पत्ति के अर्जन के लिए राज्य विधान मण्डलों की उपर्लिखित शक्ति को प्रतिस्थापित किया (प्रथम संशोधन, १९५१)। यह उपबन्ध करते हुए संविधान में एक नया अनुच्छेद ३१ (क) जोड़ दिया गया कि किसी सम्पदा के अर्जन के लिए राज्य द्वारा निर्मित कोई विधि इस कारण शून्य न समझी जायेगी कि "वह अनुच्छेद १४, अनुच्छेद १९ अथवा अनुच्छेद ३१ द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी से असंगत है या उसको छीनती हैं या न्यून करती है।" और एक अन्य नये अनुच्छेद ३१ (ख) ने इसके अतिरिक्त (नयी जोड़ी गयी नवम् अनुसूची में उल्लिखित बीस विधियों को भले ही उन विधियों में संविधान के अन्य अनुच्छेदों के विरुद्ध विषय

हों, वैध कर दिया। निःसन्देह जागीरदारी, जमींदारी और अन्य भूमि सम्बन्धी सम्पत्ति, जिसके उन्मूलन पर विचार किया गया था, का उन्मूलन करना एक क्रान्तिकारी कदम था। पं० नेहरू ने खुलेआम घोषणा की थी कि उनकी सरकार किसी भी न्यायालय के ऐसे निर्णयों द्वारा बाध्य होने की परवाह न करेगी जिन्होंने जमींदारी पद्धति के उन्मूलन के हेतु अधिनियमित राजविधियों को अवैध कर दिया और न्यायालयों को ऐसी विधि को अवैध करने की शक्ति से वंचित करने के हेतु संविधान में आवश्यक संशोधन करेगी। अतः सन् १९५१ का प्रथम संशोधन पारित किया गया।

समाजवादी राज्य की स्थापना के लिए दृढ़ निश्चित प्रधान मंत्री नेहरू ने संविधान के प्रारम्भ से ही अत्यधिक व्यक्तिगत सम्पत्ति के संचय को समाप्त करने के हेतु संविधान में आवश्यक उपबन्धों को शामिल करने का प्रयास किया था, और संविधान के मूल-उपबन्ध में न्यायालयों के निर्धारण के लिए यह निकास छोड़ दिया था कि उपबन्धित प्रतिकर उचित है अथवा नहीं और उन विधियों को शून्य घोषित करने का अधिकार भी दिया था जो न्यायालय के विचार में उचित प्रतिकर का उपबन्ध नहीं करते। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए सम्पत्ति के अर्जन अथवा जमींदारी उन्मूलन के हेतु राज्य द्वारा उठाई गई विधि को शून्य करने की शक्ति से न्यायालयों को वंचित करनेवाला प्रथम संशोधन पारित किया गया था। एक नयी अनुसूची नवम् भी जोड़ी गयी थी जिसमें जमींदारी के उन्मूलन के लिए विभिन्न राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित १३ विधायिनी प्रस्ताव थे; चतुर्थ संशोधन ने इस सूची में अन्य ७ विधियाँ और जोड़ दीं। इन संशोधनों का प्रभाव ऐसी विधि को पश्चाद्दर्शीय रूप में वैध मानना था, इस प्रकार इसने कुछ न्यायिक निर्णयों को प्रभावहीन बना दिया।

(७) सांविधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies)

संविधान के अनुच्छेद ३२ में समाविष्ट यह अधिकार सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है जिसे पूर्णरूपेण उसी प्रकार रखा जाता है—

अनु० ३२ (क) इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये उच्चतम न्यायालय को समुचित कार्यवाहियों द्वारा प्रचालित करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।

(२) इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिये उच्चतम न्यायालय को ऐसे निदेश या आदेश या लेख, जिनके अन्तर्गत बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख भी हैं, जो भी समुचित हों निकालने की शक्ति होगी।

(३) उच्चतम न्यायालय को खण्ड (१) और (२) द्वारा दी गयी शक्तियों पर बिना प्रतिकूल प्रभाव डाले, संसद विधि द्वारा किसी दूसरे न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के भीतर उच्चतम न्यायालय द्वारा खण्ड (२) के अधीन प्रयोग की जाने वाली सब अथवा किन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने की शक्ति दे सकेगी।

(४) इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबन्धित अवस्था को छोड़कर इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार निलम्बित न किया जायेगा।

यह अनुच्छेद नागरिकों के लिये निर्धारित अधिकारों के प्रवर्तन की प्रत्याभूति करता है। इन अधिकारों का औचित्य कार्यपालिका के नागरिकों के प्रति व्यवहार करने में सब प्रकार की स्वेच्छाचारिता से वंचित कर देता है और कार्यपालिका के किसी कार्य, जिससे मूल अधिकारों का अतिक्रमण हो सकता है, अथवा विधान मण्डल की कोई विधि, जो इन अधिकारों में से किसी का अतिक्रमण कर सकती है, वे विरुद्ध नागरिकों को न्यायिक संरक्षण प्रदान करता है। इस अनुच्छेद के अधीन न केवल उच्चतम न्यायालय को वरन् संविधान के २२६ के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों को भी नागरिक के अधिकारों की रक्षा के लिये, यदि वह न्यायालय के पास अनुरोध पत्र लेकर आता है, लेख या आदेश निकालने की शक्ति दी गयी है।

यह केवल अनुच्छेद ३५९ के अन्तर्गत राष्ट्रपति की आपात की घोषणा के सम्बन्ध में ही सत्य है कि इन अधिकारों को निलम्बित किया जा सकता है और वह भी केवल उस समय तक के लिये जब तक उद्घोषणा प्रभावशाली हो। हमारी न्यायिक पद्धति ब्रिटिश न्यायिक पद्धति पर आधारित है जिसे सर्वप्रथम बंगाल, बम्बई तथा मद्रास की तीन प्रेसीडेंसियों जिनके उच्च न्यायालयों को उपरोक्त अनुच्छेद में उल्लिखित लेख जारी करने की शक्ति दी गयी थी, चालू किया गया था। लेकिन अब संविधान ने उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों तथा ऐसे न्यायालयों को जिन्हें संसदीय विधि द्वारा शक्ति प्रदान की गयी हो, को यह शक्ति दी है।

इन सब लेखों में बन्दी प्रत्यक्षीकरण (इंग्लैण्ड में मूलरूप से हैबियस कार्पस एक्ट १६१९, पर आधारित) व्यक्ति की दैहिक स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। बन्दी प्रत्यक्षीकरण (सशरीर उपस्थित करना) लेख की प्रार्थना या निरुद्ध अथवा गिरफ्तार व्यक्ति द्वारा स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की जा सकती है। जबकि एक न्यायालय ने निरुद्ध व्यक्ति को अधिकृत अधिकारी को सम्बोधित करते हुए लेख जारी कर दिया है तब निश्चित तिथि को निरुद्ध व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना उस अधिकारी को आवश्यक है। यदि प्रार्थी ने

अपने विचार के समर्थन में अवसर प्रदान करने के उपरान्त न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि उसे विधिपूर्वक निरुद्ध किया गया है तो उसे जेल वापस भेज दिया जाता है। लेकिन यदि न्यायालय निरोध के कारण या ढंग को विधि के विरुद्ध पाता है तो शीघ्र ही उसकी मुक्ति अथवा रिहायी का आदेश देता है। कार्यपालिका की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध यह अधिकार सबसे अधिक मूल्यवान रहा है। व्यक्ति, जिसके नाम लेख जारी किया गया है, द्वारा न्यायालय के लेख का किसी प्रकार का निरादर न्यायालय का अपमान समझा जाता है और उसे उचित दंड दिया जाता है।

परमादेश लेख (Writ of Mandamus) उपचार सम्बन्धी प्रकृति का लेख है। इसका उपयोग सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये होता है ताकि उस पक्ष को, जिसको यह जारी किया गया है, इसमें निर्धारित कर्तव्य की पूर्ति के लिये विवश किया जा सके। विशिष्ट मुक्ति अधिनियम का खण्ड ४५ ऐसे आदेश जारी करने का उपबन्ध पहले से ही कर रखा है। अनुच्छेद ३२ इस अधिकार की अतिरिक्त प्रत्याभूति है।

प्रतिषेध का अर्थ है कि अपेक्षाकृत उच्च न्यायालय द्वारा निम्न न्यायालय को यह आदेश दिया जाना कि उनके समक्ष विचाराधीन मुकदमों पर वह आगे विचार न करे और तब जारी किया जाता है जब कि निम्न न्यायालय अधिकार क्षेत्र को चुनौती देते हुए समुचित हलफनामे के साथ प्रार्थनापत्र दाखिल किया जाता है।

उत्प्रेषणलेख (Writ of Certiorari) इंग्लैण्ड में अपेक्षाकृत एक उच्चन्यायालय द्वारा इसलिये जारी किया जाता था कि निम्न न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किसी मुकदमे से सम्बन्धित अभिलेख अपेक्षाकृत उच्च न्यायालय के पास भेज दिया जाये। भारत में न केवल एक निम्न न्यायालय को वरन् न्यायिक अथवा अर्ध-न्यायिक शक्ति का प्रयोग करनेवाली समस्त निम्न संस्थाओं को यह जारी किया जा सकता है।

अधिकार-पृच्छालेख (Writ of Qus warrants) उस व्यक्ति के विरुद्ध जारी किया जाता है जिस पर अवैधानिक रूप से पद प्राप्त करनेवाले के पक्ष में न्यायालय ऐसा लेख जारी करने के हेतु उस व्यक्ति को, जिस पर अवैधानिक रूप से पद प्राप्त करने का आरोप लगाया गया है, अस्थायी रूप से वंचित करने तथा उस हैसियत से काम करने पर रोक लगाने के लिये, जब तक कि न्यायालय उसे न सुन ले और पद पर कब्जा करने की वैधानिकता अथवा अवैधानिकता पर अन्तिम निर्णय न दे दे, निषेधादेश की अनुमति दे सकता है।

मूल-अधिकारों के अतिक्रमण के विरुद्ध संरक्षण प्राप्त करने के लिये संविधान में उपबन्धित यह समस्त उपचार नागरिक के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रत्याभूति है कि अपने अधिकारों को परिवर्तित कराने के लिये उसके पास न्यायिक उपचार है। अतः अनुच्छेद ३२ में उल्लिखित सांविधानिक उपचारों का अधिकार घर-घर अथवा प्रत्येक व्यक्ति तक उस सच्ची स्वतन्त्रता को ले जाता है जो स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने वालों की, जिन्होंने लगभग एक शताब्दी तक विदेशी शासन का विरोध किया और अन्त में देश के लिये राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की, आशा थी। मूल-अधिकारों के उपभोग में ही भारत के संविधान की सच्ची लोकतान्त्रिक आत्मा और प्रस्तावना में विहित अभिलाषाओं का औचित्य निहित है।

अध्याय १५

संघीय संविधानों की संशोधन विधियाँ

अमरीकी संविधान

संघीय संविधानों की एक विशेषता उनकी अपरिवर्तनशीलता है। इसका अर्थ यह नहीं कि संघीय संविधान पूर्णतः अपरिनर्तनशील है। पर आवश्यकता पड़ने पर उनमें समयानुसार तथा परिस्थितिनुकूल परिवर्तन किया जा सकता है। प्रत्येक संविधान में परिवर्तन करने की पृथक् पृथक् प्रणाली अपनाई गई है।

विश्व के समस्त संघीय संविधानों में संयुक्त राज्य अमरीका का विधान सबसे अधिक अपरिवर्तनशील है। इस संविधान में इकाई राज्यों (उपराज्य) को अधिक महत्व दिया गया है, क्योंकि संघीय सरकार की स्थापना इकाई राज्यों (उप राज्यों) के पारस्परिक अनुबन्ध से हुई है और इकाई राज्यों ने स्पष्ट रूप से वर्णित शक्तियाँ ही संघीय सरकार को दी हैं। संविधान निर्माता इस बात को समझते थे कि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर और अनुभव के कारण परिवर्तन करना अनिवार्य भी हो सकता है। अतः उन्होंने संविधान के परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया निश्चित की जो केवल उसी दशा में पूरी हो सकती है जब संविधान में संशोधन करने की आवश्यकत देश के इकाई राज्यों और कांग्रेस के भारी बहुमत को स्वीकार हो। इस प्रणाली में कांग्रेस तथा इकाई राज्यों, दोनों को ही संशोधन प्रस्तुत करने तथा अन्त में इकाई राज्यों की विशेष बहुमत सम्मति से अनुसमर्थन (Raticfiation) होने का ढंग रखा गया है। अमरीकी संविधान में साधारण विधि (Ordinary Law) और संवैधानिक विधि (Constitutional Law) में बड़ा अन्तर रखा गया है जो किसी ऐकिक संविधान में साधारणतया नहीं होता, और इंगलैण्ड में तो कोई ऐसा भेद नहीं है।

अमरीकी सविधान में संशोधन (Amendment) करने की प्रक्रिया संविधान में पाँचवें अनुच्छेद में इस प्रकार वर्णित है:—"कांग्रेस, जब कभी उसके दोनों सदन आवश्यक समझेंगे, इस संविधान के संशोधन का प्रस्ताव रखेगी अथवा, विभिन्न उपराज्यों के दो तिहाई उपराज्यों के विधान मंडलों की प्रार्थना पर संशोधन प्रस्तुत

करने के लिए एक सभा (Convention) बुलावेगी। ये संशोधन, कैसे भी प्रस्तुत हुए हों, तभी सर्वप्रकार मान्य और वैध होंगे जब उनका अनुसमर्थन तीन चौथाई उपराज्यों के विधान मंडलों अथवा तीन चौथाई उपराज्यों में (इसी उद्देश्य से बुलाए गए) सभा सम्मेलनों (Conventions) द्वारा हो जावेगा। यह बात कांग्रेस निश्चित करेगी कि किस प्रकार (विधान-मंडलों अथवा सभाओं द्वारा) अनुसमर्थन हो : परन्तु सन् १८०८ के पूर्व किया हुआ कोई भी संशोधन, प्रथम अनुच्छेद के खण्ड ९ के पहले और चौथे उपखण्ड में परिवर्तन न करेगा, और न किसी भी उपराज्य को, उसकी सहमति के बिना, सीनेट में समान मताधिकार से वंचित किया जावेगा।"

इस से स्पष्ट होता है कि संविधान के संशोधन की प्रक्रिया में दो अवस्थाऐं हैं, एक तो संशोधन में प्रस्ताव प्रस्तुत करना और दूसरी उस प्रस्ताव का अनुसमर्थन (Ratification)। पाँचवें अनुच्छेद के अनुसार संशोधन निम्नलिखित दो प्रकारों में से किसी भी प्रकार से किया जा सकता है:—

(१) कांग्रेस स्वयं ही शासन-विधान में संशोधन का प्रस्ताव कर सकती है। यदि दोनों सदनों में पृथक दो तिहाई बहुमत उसकी आवश्यकता को स्वीकार करता हो।

(२) दो तिहाई उपराज्यों के विधान-मंडल कांग्रेस से संशोधन की प्रार्थना कर सकते हैं। ऐसा किया जाने पर कांग्रेस को इन संशोधनों का प्रस्ताव करने के लिए एक सम्मेलन बुलाना पड़ता है।

दोनों अवस्थाओं में संशोधन तभी वैध और लागू समझा जाता है जब या तो तीन चौथाई उपराज्यों की विधान-मंडलों द्वारा वह अनुसमर्थित अथवा स्वीकृत हो जाता है या तीन चौथाई संस्था के उपराज्यों में इस कार्य के लिये बुलाए हुए सम्मेलनों में वह स्वीकार हो जाता है।

संशोधन प्रणाली से यह स्पष्ट है कि संघ-सरकार और उपराज्य दोनों ही का संविधान संशोधन में हाथ रहता है। यह संशोधन रीति सहज-साध्य नहीं है। अतः सन् १७८९ व १९५१ के बीच यद्यपि १९०० से अधिक संशोधन प्रस्ताव रखे गए पर उनमें केवल २२ संशोधन ही स्वीकृत हुए हैं शेष निरर्थक होने से रद्द कर दिए गए। इन २२ संशोधनों को तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं। पहली श्रेणी में नागरिकों के अधिकार-सम्बन्धी संशोधन है (मूल संविधान में यह अधिकार न रखे गए थे)। यह सन् १७९१ में किए गए प्रथम १० संशोधन हैं और १७९८ व १९०४ में किए गए ११वें व १२वें संशोधन हैं। दूसरी श्रेणी में १३वाँ (१८६५)

और १५वाँ (१८७०) जिससे सब उपराज्यों में समान अधिकार दिए गए। इसके द्वारा गृह-युद्ध (Civil War) के वैधानिक परिणामों को लिखित रूप दिया गया। तीसरी श्रेणी में बचे हुए ६ संशोधन हैं जिनमें से सन् १९१३ का संशोधन कांग्रेस को प्रत्यक्ष कर लगाने व वसूल करने की शक्ति देता है, सन् १९१३ के दूसरे संशोधन के अनुसार सीनेटरों का निर्वाचन प्रत्यक्ष लोकमत से होने लगा। सन् १९१९ के संशोधन से मद्य बनाना, बेचना व संयुक्त राज्य की सीमा के भीतर बाहर से मद्य मँगाने का निषेध किया गया, सन् १९२९ के संशोधन से स्त्रियों को मताधिकार दिया गया, सन् १९३३ के संशोधन से १९१९ के मद्य निषेध करनेवाले संशोधनों को समाप्त कर दिया और उस साल के दूसरे संशोधन से प्रेसीडेंट व प्रतिनिधियों की अवधि समाप्ति के दिनांक निश्चित कर दिए गए। सन् १९५१ के संशोधन के अनुसार कोई व्यक्ति अब दो बार से अधिक राज्य का राष्ट्रपति नहीं हो सकता।

संयुक्त-राज्य के शासन-विधान में संशोधन करने की प्रणाली ऐसी है कि एक व्यक्ति भी कार्यान्वित होने में रुकावट डाल सकता है। उदाहरण के लिए यदि सीनेट के १०० सदस्यों में से ८५ उपस्थित हों जिनमें से ५६ संशोधन के पक्ष में मत दें और २९ उसके विरुद्ध मत प्रकट करें तब वह संशोधन सीनेट में दो तिहाई संख्या पक्ष में न होने से स्वीकार नहीं समझा जा सकता चाहे प्रतिनिधि सदन में दो तिहाई मत प्राप्त हो चुका हो क्योंकि ८५ सीनेटरों में से कम से कम ५७ समर्थक दो तिहाई संख्या होंगे।

आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया के संविधान के संशोधन की रीति अमरीकन प्रणाली से मिलती जुलती है और कनाडा की रीति से भिन्न है। कनाडा के संविधान में संशोधन ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ही कर सकती है, परन्तु आस्ट्रेलिया का शासन विधान अधिक लोकतन्त्रात्मक है, उसका संशोधन आगे दी हुई दो रीतियों में से किसी एक के अनुसार हो सकता है।

(१) प्रस्तावित संशोधन पहले दोनों सदनों में अधिक बहुमत से स्वीकृत होना चाहिए। उसके दो मास बाद, लेकिन छः मास से पूर्व यह संशोधन प्रत्येक उपराज्य के उन निर्वाचकों के सम्मुख रखा जाना चाहिए जो प्रतिनिधि सदन के सदस्यों को चुनते हैं।

(२) यदि प्रस्तावित संशोधन एक सदन में अधिक बहुमत से स्वीकृत हो जाय पर दूसरा सदन स्वीकृति न दे, या रद्द कर दे या ऐसे परिवर्तन करके स्वीकृति

दे जो पहले सदन को मान्य न हों और यदि तीन मास व्यतीत होने पर पहला सदन उस प्रस्तावित संशोधन को फिर अधिक बहुमत से स्वीकृत कर दे (उसी सत्र में या अगले सत्र में) और यदि दूसरा सदन पूर्व सदन की अनुमति के अनुसार उसे स्वीकृति न देने पर दृढ़ रहे, तो गवर्नर जनरल पूर्व सदन से अन्तिम बार प्रस्तावित संशोधन को बिना उन परिवर्तनों के या उन परिवर्तनों के साथ जो बाद में दोनों सदनों ने स्वीकार कर लिए हों, उपराज्यों के निर्वाचकों के सम्मुख रख सकता है जो प्रतिनिधि सदन के सदस्यों के चुनाव में भाग ले सकते हैं।

संशोधन का प्रस्ताव निर्वाचकों के सम्मुख रखे जाने पर यदि बहुसंख्यक उपराज्यों के बहुसंख्यक मतदाता और सारे आस्ट्रेलिया संघ के मतदाताओं की अधिक संख्या उस संशोधन को स्वीकार कर ले तो वह प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है। इसके पश्चात् यह स्वीकृत प्रस्ताव सम्राट की ओर से सम्मति देने के लिए गवर्नर जनरल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। यह सम्मति अब व्यवहार में रोकी नहीं जा सकती।

संविधान-संशोधन के सम्बन्ध में पार्लियामेन्ट पर प्रतिबन्ध—पार्लियामेन्ट विधान संशोधन : १. संविधान की धारा १२९ के द्वारा किसी भी केन्द्रीय सदन में किसी उपराज्य के अनुपाती प्रतिनिधित्व को या प्रतिनिधि-सदन में उसके प्रतिनिधियों की कम से कम संख्या को घटा नहीं सकती। न किसी उपराज्य की सीमा, न संविधान के वे प्रविधान जिनसे उपराज्य का पद स्थिर हुआ हो, बदले जा सकते हैं, जब तक उस उपराज्य में मतदाताओं के बहुसंख्यकों ने इसे स्वीकार न कर लिया हो।

स्विट्ज़रलैण्ड

स्विटज़रलैण्ड के संविधान में दो प्रकार से संशोधन हो सकता है :—(१) सम्पूर्ण संविधान का या (२) उसके किसी भाग का। ऐसा आयोजन स्वयं शासन विधान में कर दिया गया है। संविधान में संशोधन किसी समय भी हो सकता है। फेडरल एसेम्बली का कोई सदन जब संविधान को पूरी तरह से संशोधन करने का प्रस्ताव पास कर दे और उस प्रस्ताव को दूसरा सदन स्वीकार न करे तो संशोधन का यह प्रश्न प्रजा के निर्णय के लिए रखा जाता है। ऐसे लोकनिर्णय के लिए उस प्रस्ताव को भी प्रस्तुत किया जाता है जो पूरे शासन विधान के संशोधन के लिए ५०,००० मतधारकों द्वारा भेजा गया हो। दोनों अवस्थाओं में यदि मत देनेवालों की अधिक संख्या संशोधन के लिए मत देती है तो दोनों कौंसिलों के लिए नया निर्वाचन किया जाता है और नया सदन संशोधन कार्य को अपने हाथ में लेते हैं।

आंशिक संशोधन—आंशिक संशोधन दो प्रकार से हो सकता है (१) जब ५०,००० मतधारक आंशिक संशोधन का प्रस्ताव, केवल इच्छा प्रकट करके या संशोधन का पूरा मसविदा तैयार करके उपस्थित करें। इस संशोधन की माँग को जब फेडरल असेम्बली सामान्य ढंग से स्वीकार कर लेती है तो फेडरल कौंसिल उस संशोधन का मसविदा तैयार करना आरम्भ कर देती है। यदि फेडरल असेम्बली इस माँग को अस्वीकार कर देती है तो संशोधन हो या न हो, यह प्रश्न लोकनिर्णय के लिए रखा जाता है। यदि ५०,००० मतधारक संशोधन का पूरा मसविदा प्रस्तुत करते हैं, उस दशा में असेम्बली अपना मसविदा भी प्रस्तुत कर सकती है और दोनों मसविदे लोकनिर्णय के लिए रखे जाते हैं। (२) असेम्बली के एक या दोनों सदन संघ-विधेयकों के ढंग पर विधान के संशोधन का प्रस्ताव कर सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि विधान मंडल और जनता दोनों संशोधन का प्रस्ताव रख सकते हैं।

विधान संशोधन के लिए लोक निर्णय अनिवार्य—उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं में संशोधन लोक-निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जाता है। बहुसंख्यक कैंटनों में बहुमत से संशोधन स्वीकार हो जाता है तो यह पास समझा जाता है। बहुसंख्यक कैंटनों की गिननी करने में पूरे कैंटन का एक मत और आधे कैंटन का आधा मत गिना जाता है। पास होने के लिए सब कैंटनों में मतदाताओं की अधिक संख्या उसके पक्ष में होनी चाहिए, अथवा यों कहा जा सकता है कि संशोधन कम से कम ११½ कैंटनों की जनता के बहुमत से भी स्वीकृत होना चाहिए। अब तक १०५ के लगभग संशोधन लोकनिर्णय के लिए प्रस्तुत किए गए जिनमें से ४५ को छोड़ कर सभी स्वीकृत हो गए। इनमें से लगभग १५ का प्रस्ताव जनता द्वारा (उपक्रम) प्रस्तुत किया गया था। एक संशोधन का प्रस्ताव ११७,४९४ मतों से किया गया था। यह संशोधन प्रस्ताव जुआघरों (Gambling Houses) के सम्बन्ध में था और इसका पूरा मसविदा (Complete Draft) तैयार करके मतदाताओं की ओर से संघ कौंसिल (Federal Council) को भेजा गया था। संघ असेम्बली (Federal Assembly) ने अपना निजी वैकल्पिक मसविदा तैयार किया। दोनों मसविदे जनमत के लिए रखे गए। इन जनमत का निम्न प्रकार विरोध अथवा समर्थन हुआ और दोनों हो अस्वीकृत हुए :—

	मतदाताओं की संख्या		कैंटनों की संख्या	
	पक्ष में	विरोध में	विरोध में	पक्ष में
उपक्रम किया हुआ मसविदा	२६९,७४०	२३१,९९६	१३½	८½
असेम्बली का मसविदा	१०७,२३०	३४४,९१४	½	२१½

एक संशोधन इस अभिप्राय से रखा गया कि स्विस निर्वाचनों में स्त्रियों को मताधिकार दिया जावे, किन्तु यह भारी मत से अस्वीकृत हुआ। यद्यपि स्विटजरलैण्ड आधुनिक संसार का सबसे अधिक जनतंत्रीय राज्य है किन्तु वहाँ राजनीतिक निर्वाचनों में स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त नहीं है।

भारतीय संविधान

भारतीय संविधान की संशोधन विधि अन्य संघीयों देशों के संविधानों की संशोधन विधि से भिन्न है। इसका मूल कारण देश की परिस्थितियाँ हैं।

संविधान के भाग २० अनुच्छेद ३६८ में संविधान की संशोधन प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार है :

"इस संविधान के संशोधन का सूत्रपात उस प्रयोजन के लिए उस विधेयक को संसद के किसी सदन में पुनः स्थापित कर के ही किया जा सकेगा तथा जब प्रत्येक सदन द्वारा उस सदन की समस्त सदस्य संख्या के बहुमत से वह विधेयक पारित हो जाता है तब वह राष्ट्रपति के समक्ष उसकी अनुमति के लिए रखा जायेगा तथा विधेयक को ऐसी अनुमति दी जाने के पश्चात् विधेयक के निबन्धनों के अनुसार संविधान संशोधन हो जायेगा :—

परन्तु यदि ऐसा कोई संशोधन—

(क) अनुच्छेद ५४, अनुच्छेद ५५, अनुच्छेद ७३, अनुच्छेद १६२ या अनुच्छेद २४१ में, अथवा

(ख) भाग ५ के अध्याय ४, भाग ६ के अध्याय ५ या भाग ११ के अध्याय १ में, अथवा

(ग) सातवीं अनुसूची की सूचियों में से किसी में, अथवा

(घ) संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व में, अथवा

(ङ) इस अनुच्छेद के उपबन्धों में,

कोई परिवर्तन करना चाहता है तो ऐसे उपबन्ध करनेवाले विधेयक को राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिए उपस्थित किए जाने के पहिले उस संशोधन के लिए राज्यों में से कम से कम आधों के विधान-मंडलों का उस प्रयोजन के लिए उन विधान-मंडलों से पारित संकल्पों द्वारा अनुसमर्थन भी अपेक्षित होगा।"

इस प्रकार संविधान ने अनुच्छेद को तीन श्रेणियों में विभाजित कर दिया है और उनके संशोधन की तीन विभिन्न प्रक्रिया हैं, अर्थात्

(१) जिनका संशोधन संसद साधारण बहुमत से कर सकती है;

(२) जिनका संशोधन संसद सदनों के समस्त सदस्य-संख्या के बहुमत से तथा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई अन्यून बहुमत से; तथा

(३) वह अनुच्छेद जिनके संशोधन के लिए राज्यों में से कम से कम आधे विधान-मंडलों का अनुसमर्थन अपेक्षित होगा।

प्रथम श्रेणी के अनुच्छेद संपूर्ण संविधान में विस्तृत है। दूसरी श्रेणी के वह अनुच्छेद हैं जिनका वर्णन स्पष्ट रूप से अनुच्छेद ३६८ में नहीं किया गया है। तीसरी श्रेणी के अनुच्छेदों का वर्णन अनुच्छेद ३६८ में किया गया है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय संविधान की संशोधन विधि कुछ विषयों के लिए लचीली तथा कुछ विषयों के लिए क्लिष्ट है और संसद संशोधन कर सकती है, तथा राज्यों के विधान-मंडलों को भी उनसे सम्बन्धित विषयों में संविधानिक परिवर्तन का अधिकार प्रदान करता है।

संविधान के लागू हो जाने के पश्चात् सन् १९६३ तक १६ संशोधन हो चुके हैं। इन संशोधनों में सबसे महत्वपूर्ण सातवाँ संशोधन (१९५६ का) है जिसके द्वारा उपराज्यों का पुनर्निर्माण हुआ, ख और ग वर्ग के राज्यों का विलयन अन्य बड़े राज्यों में कर दिया गया।

अध्याय १६

संघवाद का भविष्य

सम्भवतः संसार के मनुष्य प्राणी में शान्ति की स्थापना बड़े-बड़े धर्म प्रवर्तकों तथा धर्मोपदेशों द्वारा ही हुई है और वास्तविकता में इन्हीं लोगों ने संसार को वसुधैव कूटुम्बकम् के रूप में रहने की शिक्षा दी है। यदि यह मान लिया जाय कि विश्व के सभी प्राणी एक ही ईश्वर की सन्तानें हैं तो वे आपस में फिर क्यों एक दूसरे से लड़ते हैं ? क्योंकि सभी धर्मों की यही शिक्षा रही है कि विश्व का प्रत्येक व्यक्ति एक ही ईश्वर की सन्तान है और उसे आपस में मिलकर रहना चाहिये। महात्मा गौतम बुद्ध ने अहिंसा की शिक्षा दी और यह शिक्षा न केवल भारत में बल्कि अन्य देशों भी बड़ी तेजी से फैली। परन्तु थोड़े दिनों के पश्चात् ही बौद्ध राजाओं ने युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया और हजारों की संख्या में हत्यायें कीं उस समय अपने धर्मप्रवर्तक भगवान बुद्ध को भूल गये। दो हजार वर्ष पूर्व ज्यूसुस क्राइस्ट ने संसार को शांति एवं प्रेम की शिक्षा दी उनकी शिक्षा सम्पूर्ण योरुप में फैली परन्तु कुछ दिनों के बाद ही ईसाई राजाओं ने धर्म को लेकर युद्ध करना प्रारम्भ किया और जिन लोगों ने ईसाई धर्म मानने को अस्वीकार कर दिया उन पर अत्याचार किया। यह अत्याचार यहाँ तक बढ़ा कि लोग काइस्ट को बिना धर्म के ही याद किया करते थे। इस प्रकार योरुप का ईसाई राष्ट्र अपने पापों के लिये, रंगीन जातियों के दासत्व तथा निर्धन एवं निःसहाय लोगों के शोषण और युद्ध में निकृष्ट तरीकों के प्रयोग के लिये आधुनिक इतिहास में याद किया जाता है।

प्रत्येक युद्ध में विजेता को केवल लड़ाकू योद्धा को विनाश करने के अतिरिक्त कुछ न मिला था। युद्धों ने युद्धों को जन्म दिया। युद्धों को केवल दोषी ठहराया गया और पुनः युद्ध हुए, धर्म उनको न रोक सका। मित्रीय संधियाँ भी हुई लेकिन यह संधियाँ भी युद्धों को न रोक सकीं। अतः युद्धों को तेजी से बन्द करने का प्रयत्न किया गया और आपस में मिलजुल कर रहने के सिद्धान्त को अपनाया गया।

हेनरी चतुर्थ का सम्पूर्ण परिकल्प (The Grand Design of Henery IV)— १५ वीं एवं १६ वीं शताब्दी में योरुप में कैथोलिक तथा प्रोटेस्टैन्ट नामक

दो शक्तियाँ धर्म को लेकर आपस में लड़ रही थीं। इसी समय फ्रांस के राजा हेनरी चतुर्थ (१५८९-१६१०) ने सर्वप्रथम धार्मिक युद्ध समाप्त करने का प्रयत्न किया। उन्होंने धर्म को लेकर युद्ध करने के लिये प्रोटेस्टैन्ट तथा कैथोलिक में घृणा पैदा कर दी और योरुप की विभिन्न शक्तियों में मित्रभाव पैदा करने का प्रयत्न किया।

उपरोक्त ध्येय को प्राप्त करने के लिये हेनरी चतुर्थ ने उस समय के समयाकालीन राजाओं की सहायता से प्रसिद्ध सम्पूर्ण परिकल्प (Famous Grand Design) तैयार किया, जिसके द्वारा सम्पूर्ण योरुप में युद्ध समाप्त करने तथा आपस में प्रेम भाव-उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया। इस योजना का ध्येय सम्पूर्ण योरुप को कई भागों में विभाजित करना था ताकि वे आपस में समानता को लेकर कोई ईर्ष्या न रखें और न शक्तियों के संतुलन को लेकर कोई भय भी उत्पन्न करें। जिसके परिणामस्वरूप उन राज्यों में से ६ गणतंत्र राज्यों ने मिलकर योरुप के ईसाई गणतन्त्र (Christian Republic) की स्थापना की। इनमें ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन, स्वीडन, डेन्मार्क तथा लम्बरडाई सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त पाँच निर्वाचित राजतन्त्र जिसमें पवित्र रोमन राज्य, पेपसी (Papacy), पोलैण्ड, हंगरी और बोहिमिया सम्मिलित थे, अपना साम्राज्य स्थापित किया और चार राजतन्त्रों जिसमें वेनिसी, इटली, स्विट्जरलैण्ड और डच गणतन्त्र सम्मिलित थे इतने गणतन्त्र राज्य सम्मिलित थे।

ईसाई गणतन्त्र की शक्तियाँ, कानून तथा संविधि (Statutes) के निर्माण में निहित थीं जिसके द्वारा संघ राज्य शान्ति स्थापित कर सकते थे। धर्म तथा राजनीतिक शपथ एवं प्रतिज्ञा, व्यापार की स्वतन्त्रता का आपसी आश्वासन सभी दलों के अन्तर्वस्त द्वारा निर्धारित होता था। विधायिनी सभा ग्रांड कौंसिल (Grand Council) कहलाती थी जो प्राचीन ग्रीक की ऐम्फीटानिक कौंसिल (Amphyctyonic Council) के आधार पर बनायी गयी थी। कौंसिल या तो एक निश्चित स्थान पर मिलती थी या समय-समय पर अन्य स्थानों पर।

ईसाई गणतंत्र के पास अपनी सेना तथा नौ सेना थी जो प्रत्येक राज्य के सिपाहियों की निश्चित संख्या द्वारा संगठित होती थी। सम्पति सम्बन्धी सहायता भी प्रत्येक राज्य को अपने निश्चित अनुपात से देना पड़ता था। हेनरी ने ७०,००० पैदल, ५३,००० घोड़े, २०३ तोपें तथा १२० युद्ध-जहाजों को एक फौज के लिये अनिवार्य बताया था। थल तथा नौ सेना के व्यय के लिये हेनरी चतुर्थ ने अपनी योजना में कहा था कि राज्य स्वयं मिलकर करारोपित करें और दूसरे खर्चों के लिये जनरल कौंसिल स्वयं धन को निर्धारित करे।

यद्यपि यह योजना सम्पूर्ण थी और बहुत से योरुपीय राजाओं ने इसकी प्रशंसा भी की थी, परन्तु कार्यान्वित न हो सकी। इसका कारण यह था कि उसमें त्रुटियाँ अधिक थी इसीलिये वह लागू न हो सकी। सर्वप्रथम यदि वह स्थापित की जाती तो वह तो केवल ईसाई राज्यों के लिये ही बनी थी अतः जो राज्य इसाई न थे वह उसका विरोध करते। द्वितीय वह योजना केवल योरुपीय शक्तियों के लिये ही बनाई गयी थी।

इमैनुयेल कांट की शाश्वत शान्ति (Immanuel Kant on Perpetual Peace)

योरुप में शान्ति स्थापित करने के लिये दूसरा कदम उठाया गया। यह कदम किसी राजा द्वारा न उठाकर बल्कि एक दार्शिनिक द्वारा उठाया गया था जो किसी भी प्रकार से राजनीति में भाग न लेता था। इन्हीं कांट महोदय ने सन् १७२४ में अपने निबन्ध शाश्वत शान्ति (Perpetual Peace) द्वारा योरुप के विभिन्न देशों में शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया। कांट समाज के प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता तथा स्वयं निर्भरता में विश्वास करता था। उसका मुख्य ध्येय था कि संसार के सभी राजनैतिक दल सभी देशों में शान्ति स्थापित करें। वह विश्वास करता था कि सभी राष्ट्रों का एक संघ हो तभी युद्ध समाप्त हो सकता है, मनुष्य प्राणी को सुख मिल सकता है।

विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिये उसने निम्नलिखित प्रस्ताव रखे थे जो इस प्रकार हैं :—

(१) शान्ति की जिस संधि में भविष्य में युद्ध का मसाला रखने का प्रयोजन होगा वह ठीक नहीं समझी जावेगी।

(२) किसी भी राज्य की अपनी स्वतन्त्रता न होगी और न ही कोई राज्य, परिवर्तन, दान अथवा खरीददारी से दूसरे राज्य को ग्रहण कर सकेगा।

(३) सेना को कुछ समय के लिये समाप्त कर देना चाहिये।

(४) कोई भी राष्ट्रीय ऋण राज्य के विदेशी मामले से सम्बन्ध न रखेगा।

(५) कोई भी राज्य दूसरे राज्य के संविधान में बाधा न डालेगा।

(६) कोई भी राज्य भविष्य की शान्ति को भंग करने के लिये दूसरे राज्य से अपने सम्बन्ध न रखेगा। क्योंकि वह उसी प्रकार होगा कि यदि किसी भी घातक तथा विष सम्बन्धी ज्ञान रखनेवाले व्यक्ति को नौकरी न देना, शत्रु के हाथ सम्मर्पण होने की शर्त को तोड़ना तथा युद्धवाले राज्य के खिलाफ राजद्रोह का अन्वेषण करना आदि।

कांट ने कुछ दशायें भी निर्धारित की थीं।

(१) प्रत्येक राज्य का संविधान प्रजातन्त्रात्मक होना चाहिये।

(२) राष्ट्रों के कानून स्वतंत्र राज्यों के संघवाद के सिद्धान्त पर बनाना चाहिये।

मनुष्यों के अधिकार संसार के नागरिक होने के नाते सांसारिक अतिथि सरकार की दशाओं द्वारा सीमित होना चाहिये।

संसार में शान्ति स्थापित करनेवाले कांट के उन उत्तेजक विचारों का व्यवहार रूप में कोई प्रभाव न पड़ा। केवल १९१९ में विश्व-शान्ति स्थापित करने के लिये लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना की गयी। यह लीग आँफ नेशन्स संघवाद के आरम्भ होने वाले ध्येयों पर बनाया गया। लीग ऑफ नेशन्स अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में सहयोग की भावना स्थापित कर सका लेकिन अन्त में वह भी असफल रहा। तत्पश्चात् द्वितीय विश्वमहायुद्ध ने अपना कदम रखा। इसके संगठन, ध्येय तथा कार्य प्रणाली के अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि संसार के कितने राष्ट्रों ने शान्ति स्थापित करने के ध्येय से अपनी प्रभुसत्ता को इसके हाथों में दे दिया।

लीग के नियमों में २६ अनुच्छेद थे जो लीग के ध्येय तथा संगठन, सदस्य बनाने की दशायें एवं अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के तय करने के तरीकों पर प्रकाश डालते थे।

सर्वप्रथम इसमें २४ सदस्य थे जो १९ राष्ट्रों के वरसाइल संधि के हस्ताक्षर करने के बाद बने थे, इनमें आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, बोलिवा, वार्जिल, कनाडा, योगोस्लाविया, फ्रांस, गौटेनमाला, भारत, इटली, जापान, न्यूजीलैण्ड, पनामा पेरु, पोलैण्ड, स्याम, दक्षिणी अफ्रीका और उरुगुवे (Uruguay) सम्मिलित थे और ५ तटस्थ राज्य जिसमें अर्जेन्टायना, चिली, पैरागुए, परसिया तथा स्पेन सम्मिलित थे।

लीग ऑफ नेशन्स दो कार्यों के लिये स्थापित किया गया था। सर्वप्रथम विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के कुछ नियमों तथा कानूनों द्वारा शान्ति स्थापित करना। द्वितीय भविष्य में कोई युद्ध न हो। लीग के यह ध्येय उसके प्रथम पैराग्राफ से ही स्पष्ट हो गया था जिस पर हस्ताक्षरकर्त्ताओं ने यह मान लिया था कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के लिये एवं न्याय स्थापित करने के लिये यह लीग ऑफ नेशन्स बनाया गया है।

प्रारम्भ में संधि पर हस्ताक्षरकर्त्ताओं के अतिरिक्त तटस्थ राज्य जो युद्ध से अलग रहे थे तथा अन्य राष्ट्र भी लीग ऑफ नेशन्स में सम्मिलित हुए और लीग के नियमों पर हस्ताक्षर किये। लीग की सदस्यता के लिये लीग के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया था कि "यदि संसद के २।३ सदस्य चाहें तो कोई भी स्वशासित राज्य अथवा उपनिवेश जो किसी राज्य में सम्मिलित नहीं है, लीग का सदस्य हो सकता है।

प्रतिबन्ध केवल यह था कि ऐसा राज्य जो लीग में सम्मिलित होना चाहता था उसे अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व, लीग के सैनिक, नाविक तथा हवाई शक्तियों एवं आयुद्ध सम्बन्धी नियमों को मानना पड़ता था। यदि कोई राष्ट्र लीग से अलग होना चाहता था तो उसके लिये आवश्यकीय था कि दो वर्ष पहले लीग को सूचित करना पड़ता था तथा सम्बन्ध विच्छेद के समय लीग के सभी नियमों को मानना पड़ता था।

लीग के नियमों को कार्यान्वित करने के लिये लीग में एक संसद, परिषद् तथा स्थायी सचिवालय का प्रयोजन किया गया था। लीग के कार्यालय स्विट्जरलैण्ड में जिनेवा में स्थापित किये गये थे। हेग में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की गयी थी। यह अन्तर्राष्ट्रीय मामलों को सुलझाने का उच्चतम न्यायालय था। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ की भी स्थापना की गयी थी। लीग में बहुत से प्राविधिक तथा सलाहकारी कमेटियाँ भी थीं।

संसद में सदस्य राज्य अपने तीन सदस्य प्रतिनिधि के रूप में भेजते थे। यह एक ऐसी संस्था थी जो राज्यों के विधानमण्डलों से बहुत कुछ मिलती जुलती थी। किसी भी राज्य के चाहे जितने सदस्य संसद की कार्यवाही में भाग लेते थे परन्तु उनका मत एक ही गिना जाता था। इस प्रकार लीग के सदस्य राज्य को चाहे छोटा हो अथवा बड़ा सभी को बराबर मान्यता प्राप्त थी।

जिस देश का सदस्य संसद में प्रतिनिधित्व करता था वह उस देश का मत माना जाता था।

संसद को बहुत सी शक्तियाँ प्राप्त थीं। लीग के विधान के अनुसार अनुच्छेद ३ में कहा गया था कि "संसद विश्व में शान्ति स्थापित करनेवाले किसी भी कार्य पर विचार कर सकती है।" वह लीग के नियमों में संशोधन कर सकती थी, नये सदस्यों को भर्ती कर सकती थी और परिषद् के अस्थायी सदस्यों का चुनाव करती थी; लीग के बजट पर नियंत्रण रखती थी। सदस्य राज्यों के बीच धन का विभाजन करना, विश्व की शान्ति के लिये किसी संधि पर विचार करना, परिषद् तथा सचिवालय के कार्यों पर दृष्टि रखना तथा भविष्य में कार्यों के लिये निर्देशन देना था।

संसद में ६ उपकमेटियाँ थीं जो राजनैतिक प्रश्नों जिसमें लीग में नवीन राज्यों का प्रवेश, आयुद्ध, लीग के नियमों में संशोधन, प्राविधिक, वित्त, बजट, अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासन तथा सामाजिक कल्याण जिसमें रोगों की रोक-थाम, अफीम पर नियंत्रण तथा दूसरी विपदाजनक बातें, स्त्रियों तथा बच्चे, यातायात भी सम्मिलित था, करती थीं।

संसद के निर्णय साधारणतयः सदस्य राज्यों के एकमत द्वारा तय किये जाते

थे। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि लीग के सदस्य राज्य चाहे छोटे थे अथवा बड़े सभी को समान अधिकार प्राप्त थे। यदि कोई मामला एक मत से पारित नहीं होता था तो संसद मताधिक्य से पारित कर देती थी परन्तु सदस्यराज्यों को पूर्ण अधिकार प्राप्त था कि उसे माने या न माने। इसके अतिरिक्त परिषद्, संविधान के अनुच्छेद ४ के अनुसार विश्व में शान्ति स्थापित करने के किसी भी मामले पर कोई भी मीटिंग बुला सकती थी। परिषद् को कुछ विशेष शक्तियाँ भी प्राप्त थीं।

अनुच्छेद ६ के अन्तर्गत लीग के कार्य संचालन के हेतु एक स्थायी सचिवालय की स्थापना का भी प्रयोजन किया गया था। यह सचिवालय जेनेवा में स्थित था तथा लीग के अन्य कार्यालय भी वहीं थे। सचिवालय का सबसे बड़ा आफीसर मुख्य सचिव होता था उसकी सहायता के लिये एक उपसचिव और ३ अनुसचिव होते थे। लीग के सर्वप्रथम मुख्य सचिव सरजेम्स एरिक ड्रूमण्ड (Sir James Eric Drummond) हुए थे।

कार्यों के अनुसार सचिवालय कई भागों में विभाजित था प्रत्येक विभाग में विभिन्न देशों के कर्मचारी रहते थे। सचिवालय का प्रत्येक भाग कमेटी के कार्यों से सम्बन्धित था।

मनुष्य प्राणी की उन्नति में लीग को बड़ी सफलता मिली। उसने टर्की तथा ग्रीक के रिफ्यूजियों की समस्या को बड़ी सावधानी से सुलझाया। युद्ध के बन्दियों के परिवर्तन में बड़ी सहायता की, इसने अफीम कमीशन द्वारा अफीम की उत्पत्ति तथा उसके प्रयोग तथा खतरनाक औषधियों पर नियंत्रण किया। इसने हेल्थ आरगनाइजेशन (Health Organization) द्वारा मलेरिया, प्लेग आदि नामक बीमारियों पर नियंत्रण किया। इसने बहुत से राज्यों के आपसी झगड़ों का निपटारा किया।

लीग ने राजनैतिक क्षेत्र में जो सबसे बड़ा सुधार किया वह था शासन प्रणाली में सुधार। युद्ध के पश्चात् जर्मनी ने अपने सभी उपनिवेश तथा समुद्री अधिकार खो दिये, इसी प्रकार टर्की का कुछ भाग योरुप में चला गया। लीग के अनुच्छेद २२ में इन राज्यों के भविष्य के प्रशासन के लिये इन्हें प्रशासन राज्य (Mandated Territories) कहा गया।

इन प्रशासन राज्यों के प्रशासन के लिए लीग ने एक कमीशन की नियुक्ति की जिममें विभिन्न राज्यों के ७ सदस्य थे। यह सदस्य पिछड़े हुए राज्यों के प्रशासन की देखभाल करते थे।

परिषद् में तीन प्रकार के सदस्य राज्य होते थे, स्थायी, अस्थायी तथा

अनास्थायी। प्रारम्भ में ग्रेटब्रिटेन, फ्रांस, इटली तथा जापान स्थायी सदस्य थे। यह राष्ट्र विश्व की शान्ति के इच्छुक थे इसलिये इनको लीग का स्थायी सदस्य बनाया गया। प्रारम्भ में जब लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना की गयी थी उस समय यह तय किया गया था कि अमरीका इस परिषद् का स्थायी सदस्य होगा।[1] नौ अनास्थायी सदस्य थे जो ३ वर्ष के लिये नियुक्त किये जाते थे। यह अनास्थायी सदस्य प्रत्येक ३ वर्ष के बाद अवकाश ग्रहण कर लेते थे। इस समय के अन्तर्गत कोई भी अवकाश ग्रहण सदस्य राज्य पुनः नियुक्त नहीं किया जा सकता था जब तक संसद दो तिहायी मताधिक्य से यह पारित न कर देती थी कि अमुक राज्य को पुनः निर्वाचित किया जाय। परिषद् के सभी आवश्यकीय कार्यों में अनास्थायी सदस्य प्रतिनिधित्व करते थे। सन् १९२० में ४ ही अनास्थायी सदस्य थे परन्तु परिषद् के कार्यों का अवलोकन कर १९२२ में इनकी संख्या ६ हो गयी और १९२६ तक इनकी संख्या बढ़कर ९ हो गयी।

परिषद की मीटिंग वर्ष में तीन बार अर्थात् जनवरी, मई और सितम्बर के माह में होती थी। यह मीटिंग जेनेवा में हुआ करती थी परन्तु आवश्यकतानुसार दूसरे स्थान पर भी हो सकती थी। परिषद् की आपतकालीन मीटिंग किसी भी समय हो सकती थी। परिषद् के प्रेसीडेण्ट क्रमशः प्रत्येक सत्र के लिये नियुक्त किये जाते थे। वर्णमाला के अनुसार प्रत्येक सदस्य राज्य को राष्ट्रपति का पद सम्भालने का समय मिलता था। इस प्रकार प्रत्येक राज्य को बारी बारी से ऐसे महत्वपूर्ण पद पर रहने का समय मिलता था। परिषद् की मीटिंग सार्वजनिक हुआ करती थी परन्तु आवश्यकता पड़ने पर गोपनीय भी हो सकती थी। लीग यदि विश्व के दो प्रमुख मामलों के ऊपर सफलता पा ली होती तो वह अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की वास्तविक आवश्यकता की पूर्ति करती। विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिये आयुद्ध की घोषणा जो उस समय की विशेष आवश्यकता थी तथा राज्यों के आपसी झगड़ों का निपटारा जो उसके सदस्य थे। परन्तु इन दोनों विषयों में लीग सफलता न प्राप्त कर सकी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आयुद्ध सम्मेलन एक दूसरे के बाद हुए, आयुद्ध के प्रस्ताव भी रखे गये परन्तु बड़ी शक्तियों के सामने कोई भी राज्य एकमत से इसे स्वीकार न कर सके। लीग, इटली को अबीसीनिया (Abyssinia) के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने को रोक न सकी और अन्त में अबीसीनिया को इटली के हाथों में जाना पड़ा। यद्यपि जर्मनी लीग का स्थायी सदस्य था परन्तु वह लीग की अनुमति मानने को तैयार न हुआ। लीग जापान को जो परिषद् का स्थायी सदस्य था, मन्चू-

१. संयुक्त राज्य अमरीका लीग ऑफ नेशन्स का सदस्य न बना था।

रिया को जीतने के लिये मना न कर सका। लीग ने जापान को एक लड़ाकू राज्य घोषित कर दिया इससे अधिक वह न कर सकी। इन दो मामलों द्वारा लीग ने जो अपने प्रारम्भिक काल के राज्यों के आपसी झगड़ों को तय करके ख्याति प्राप्त की थी सदा के लिये समाप्त हो गयी।

यद्यपि जर्मनी वरसाइल की संधि द्वारा पूर्णरूप से आयुद्ध घोषित कर दिया गया था, परन्तु इंग्लैण्ड तथा फ्रांस अपने विशेष मामलों में कड़ाई की नीति के संचालन में असफल रहे। नाविक शक्ति की माँगपर जर्मनी तथा रूस में पहला भेद उत्पन्न हुआ। योरुपीय राजनीति में हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी की सर्वप्रथम इच्छा थी कि वह अपनी शक्ति पुनः ग्रहण करे। हिटलर ने फ्रांस तथा ब्रिटिश को बीच की खाड़ी समझ कर वरसाइल की संधि को एक एक करके समाप्त कर दिया। यहाँ तक कि फ्रांस सितम्बर १९३८ के मुनिच पैक्ट (Munich Pact) का एक दलहीनों की स्वीकृत दे दी।

साम्यवाद के विरोध में रोम, बर्लिन, टोकियो का एक संगठन बनाया गया तत्पश्चात् सम्पूर्ण विश्व फासिस्ट तथा साम्यवाद नामक दो दलों में विभाजित हो गया संयुक्त राज्य अमरीका पहले से ही लीग का सदस्य न था। इंग्लैण्ड अपनी पुरानी नीति, शक्तियों की समता को बनाये रखने का प्रयत्न करता रहा। जिसका परिणाम यह हुआ कि जर्मनी ने पोलैण्ड पर चढ़ाई कर दी और द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया और एक वर्ष के अन्दर ही लीग की जो योजना विश्व में शान्ति स्थापित करने की बनी थी सदा के लिये समाप्त हो गयी और पूर्ण रूप से युद्ध की ज्वाला प्रज्वलित होने लगी। युद्ध समाप्त होने के कुछ महीनों बाद सन् १९३९ में विश्व संघवाद के सुझाव दिये गये। यह विचार तो अच्छे थे परन्तु विश्व संघ की स्थापना करना कठिन था।

संभागीय ज्ञान शक्तियाँ अथवा पित्त सम्बन्धी संधियाँ (Bilateral Treaties) भी लीग के अतिरिक्त बनी थीं जिससे स्पष्ट हो जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय रक्षा एक डोरे द्वारा लटका रखी गयी थी। इस वास्तविकता का केलाग समझौता (Kellog Pact) ही सही प्रमाण था। योरुपीय संघीय संघ के ब्रेन्ड के समझौते को (Briand's Pact) उच्च शिखर पर पहुँचा दिया। १७ मई सन् १९३० के प्रसिद्ध ज्ञापन (Memorandum) ने यह पूर्ण रूप से यह मान लिया कि योरुपीय सामग्री तथा नैतिक शक्तियों के संयोग की कमी के कारण राजनैतिक एवं न्याय क्षेत्र की उन्नति में बाधायें पड़ी जिसके ऊपर शान्ति का संगठन निर्भर था। ज्ञापन में कहा गया था कि सम्पूर्ण प्रभुसत्ता और सम्पूर्ण राजनैतिक स्वतन्त्रता केवल योजना द्वारा ही योरुपीय देशों के मध्य स्थापित की जा सकती है। इन सब बातों से अन्य देशों के निवासियों तथा एशिया

एवं अफ्रीका के लोगों में संदेह उत्पन्न हो रहा था कि योरुपीय राजनीतिज्ञ संगठन बनाने के लिये इसलिये अधिक उत्सुक हैं कि वह एशिया तथा अफ्रीका के सामग्री से लाभ उठायेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता योरुपीय राजनीतिज्ञों के लिये कुछ समझौते तथा नियम थे जो योरुपीय देशों को वाधित करते थे कि वे दूसरे राष्ट्रों को अधिकारों तथा इच्छा से प्रभावित करें। शक्तिहीन राज्योंकोयोरुप में मिलने के लिये कोई नैतिक आधार न था। यूरोपीय राजनीतिज्ञ विश्व में शान्ति तथा सुरक्षा की स्थापना करना चाहते थे। इन विचारों के आधार पर जापान ने मन्चूरिया को और इटली ने अबीसीनिया के प्रति अच्छे व्यवहार किये। योरुप में युद्ध बन्द हो गया।

यदि वरसाइल की संधि तथा उसके सिद्धान्त तथा कार्यरूप को स्वतन्त्र राष्ट्र मान लेते और प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं सोचने का अधिकार होता तो विश्व को द्वितीय महायुद्ध में अति ही कष्टों का सामना करना न पड़ता। जिसमें मनुष्यता को प्रजा-तन्त्र तथा विश्वरक्षा के नाम पर साम्राज्यवाद की वेदी पर चढ़ा दिया गया।

द्वितीय महायुद्ध ने योरुप को विश्वशान्ति पर सोचने के लिये आँखें खोल दीं। राज्य के नये सिद्धान्त के अनुसार जब टोटलीटेरियन (Totalitarian States) ने अपनी फौजें तैयार की और रोम, बर्लिन, टोकियो नामक समुदाय का संगठन किया गया तब कुछ अंग्रेज़ों ने ब्रेंड प्रोजेक्ट (Briand Project) के विचार पर विचार करके विश्व संघ के स्थापना करने की सोची। सी० के० स्ट्रीट (C. K. Streit) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'यूनियन नाऊ' (Union Now) प्रकाशित की जिसमें उसने नवीन राजनीतिक विचारों पर प्रकाश डाला था। लंदन में, विश्व में शान्ति स्थापित करने वाले मित्रों ने एक संघीय संघ का संगठन किया और राष्ट्रीय प्रभुसत्ता को समाप्त कर नवीन संघ की स्थापना पर जोर दिया गया।

डब्लू, बी० करी जो संघीय संघ के सदस्य भी थे उसने विश्व के मौलिक आज्ञायों पर बहस द्वारा विश्व संघ की स्थापना पर जोर दिया। उसने विदेशी कार्यालयों को समाप्त करके एकमात्र अन्तर्राष्ट्रीय नीति की स्थापना पर बल दिया, क्योंकि उसका विश्वास था कि इस प्रकार विश्व के राजनीतिज्ञों से मुक्ति मिल जावेगी और मनुष्य-प्राणी की सेवा हो सकेगी। द्वितीय उसकी इच्छा थी कि यदि विश्व की सभी सेनायें एक में संगठित हों तभी विश्व संघ कार्यान्वित हो सकेगा। तृतीय विश्व की आर्थिक प्रणाली संघ के एक अंग द्वारा कार्यान्वित हो सकेगी। चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी मामले पर संघ का नियंत्रण रहेगा।

संघीय संघ की इस विचारधारा ने कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों को जैसे अर्ल एटली (Earl Attlee) और पं० जवाहरलाल नेहरू की विचार धाराओं को अब

जकड़ रखा है। क्योंकि यह लोग राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की सम्पूर्ण निरर्थकता की वास्तविकता से परिचित हैं। यह लोग कम से कम सिद्धान्त: यह जानते हैं कि कोई भी राष्ट्र शक्तिहीन राष्ट्र के भाग्य निर्माण में सहायता नहीं दे सकता। इन लोगों ने यह भी अनुभव किया है कि मानव की मौलिक एकता और रंग, जाति तथा भौगोलिक दशाओं के अनुसार मनुष्य प्राणी में भेद पाये जाने की निरर्थकता से परिचित हैं। इन लोगों ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि युद्ध विजेता को कोई हानि नहीं होती है। इन्होंने यह भी अनुमान लगा लिया है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व के सम्बन्धों को भली प्रकार बना रखा है।

विश्व-संघ की व्यावहारिकता का वर्णन करने के पूर्व हमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या विश्व की ऐसी परिस्थितियाँ है जिनके आधार पर विश्व संघ की स्थापना हो सकती है। सर्वप्रथम सब से प्रमुख बात यह है कि राज्यों की बीच समानता की स्थिति हो। निःसंदेह सीमा तथा जनसंख्या के आधार पर सभी देशों में विभिन्नतायें पायी जाती हैं परन्तु यहाँ पर समानता का अर्थ अधिकारों की समानता से है। लीग ऑफ नेशन्स ने इस समानता को बनाये रखने का प्रयत्न किया था, परन्तु इंग्लैण्ड तथा फ्रांस ने योरुप के अन्य देशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर रखा था। इस प्रकार देश की शक्ति जनशक्ति तथा अन्य बातों द्वारा ही आँकी जाती है तो ऐसी दशा में अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता किस प्रकार से स्थापित की जा सकती है लीग ऑफ नेशन्स अपने कार्यों में तब तक असफलता न प्राप्त कर सकी जब तक राष्ट्रों की विचारधारा में परिवर्तन न हुआ था यद्यपि उसके विधान में त्रुटियाँ थीं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने यद्यपि सभी राज्यों को समान स्थान दिया है, परन्तु सुरक्षा परिषद में वीटो की शक्ति द्वारा समता पर प्रत्याघात किया गया है।

यद्यपि जिस विचारधारा के अनुसार संघीय संघ की स्थापना प्रस्तावित की गयी है वह आपसी समझौते द्वारा ही कार्यान्वित हो सकती है परन्तु यह विचारधारा आजकल नहीं पायी जाती है। जब तक मनुष्य का स्वभाव स्वयं नहीं बदलेगा तब तक यह विचारधारा नहीं आ सकती। विश्व की महान् शक्तियाँ अपनी शक्तियों को किस प्रकार विश्व संघ के हाथों में दे सकती हैं। उदाहरणार्थ क्या इंग्लैण्ड यह चाहेगा कि जिबराल्टर (Gibralter), माल्टा (Malta), एडेन (Aden) और सिंगापुर विश्वसंघ द्वारा शासित हो? ब्रिटिश इतिहास तथा राजनय इस सम्पूर्ण आशाओं की निरर्थकता पर प्रकाश डालती हैं। तृतीय जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय न्याय का प्रश्न है संघ के अन्तर्गत दिन प्रतिदिन कुछ न कुछ झगड़े उत्पन्न होते ही रहते हैं। ऐसी दशा में यदि कोई राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं है तो किस प्रकार वह अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

के निर्णय को मानने के लिए बाध्य होगा ? चतुर्थ जब तक बड़े-बड़े राष्ट्रों के पास लड़ाकू शक्तियाँ, सेनायें, नौसेनायें तथा नभसेनायें एवं अणु शक्तियाँ हैं तब तक विश्व संघ की स्थापना करना कठिन है क्योंकि यदि यह आशा की जाय कि यह शक्तियाँ शक्तिशाली राष्ट्र विश्वसंघ को दे देंगी तो दिन का स्वप्न ही होगा ।

संघीय विचारधारा के लिये भाषा सम्बन्धी समस्या ही सबसे कठिन समस्या है । स्विट्ज़रलैण्ड में चार, कनाडा तथा आस्ट्रेलिया में दो-दो सरकारी भाषाएँ हैं । अत: यदि संघ के अन्तर्गत विश्व की सभी भाषाओं को न अपनाकर बल्कि प्रमुख भाषाओं को ही अपनाया जाय तो संघ की कार्यप्रणाली में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ेंगी । संघ के विधान मण्डल की स्थिति, कार्यकारणी के संविधान तथा न्यायपालिका सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने में ही बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा । जहाँ तक सेना के विभाजन का प्रश्न है क्या विश्व के शक्तिशाली राज्य चाहेंगे कि उनकी सेना का विभाजन हो ? क्या अमरीका तथा रूस जो संघ की शक्तियाँ हैं समय पड़ने पर बिना एटम बम के क्षेत्र में आवेंगी ? उपरोक्त बातों से स्पष्ट होता है कि विश्वशान्ति की समस्या को सुलझाने के लिए विश्व संघ की स्थापना दूसरी कल्पित कथाओं के अनुसार ही रहेगी ।

संयुक्तराष्ट्र-संघ

विश्व के मैत्री राज्य जब नाज़ी शक्ति से लड़ रहे थे उस समय उन्होंने विश्व में शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित करने के लिये लीग ऑफ नेशन्स के स्थान पर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की ताकि भविष्य में युद्ध होने की संभावना का अन्त हो जाय। इन राष्ट्रों ने विश्व संघ की स्थापना के लिये कोई प्रचार नहीं किया बल्कि बहुत से शान्ति चाहनेवाले देशों ने संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की ।

कुछ लड़नेवाले देशों ने इस संघ में भाग लिया । १२ जून सन् १९४१ की सभा में जो जेम्स के महल में हुई थी कहा गया था कि संसार के सभी स्वतन्त्र मनुष्य सहयोग की भावना रखनेवाले इस संघ में सम्मिलित हो सकते हैं। उन सभी की शान्ति तथा युद्धकाल में आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा की जावेगी ।

दो माह के बाद अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री ने मिलकर १४ अगस्त को एक घोषणा प्रकाशित की जो बाद को अटलांटिक चार्टर के नाम से प्रसिद्ध हुई । उसमें युद्ध में गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों के प्रति नीति का वर्णन किया गया था जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ ने १ जनवरी, १९४२ को स्वीकार कर लिया ।

एक वर्ष बाद संयुक्त राज्य अमरीका, इंग्लैण्ड, सोवियत संघ और चीन ने अक्टू-

बर, १९३० सन् १९४३ को मास्को में एक सम्मेलन किया तत्पश्चात् एक घोषणा की कि वह एक ऐसी तिथि स्थापित करना चाहते हैं जिसके अन्तर्गत सभी शान्ति चाहने वाले देश, अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त के आधार पर चाहे वह छोटे हों अथवा बड़े, विश्व में शान्ति स्थापित रखने के लिये सदस्य बनाये जावेंगे।

१ दिसम्बर सन् १९४३ को रूजवेल्ट, स्टैलिन तथा चर्चिल ने मिलकर तेहरान में दूसरी घोषणा पर हस्ताक्षर किये जिसके अन्तर्गत कहा गया था कि विश्व में शान्ति की स्थापना की जावेगी और सभी राज्यों का चाहे वह छोटे हों अथवा बड़े सहयोग प्राप्त किया जावेगा, जिसके द्वारा हम दासत्व की भावना को समाप्त करेंगे और हम उन राज्यों का स्वागत करेंगे जो राज्य इस विश्व परिवार में सम्मिलित होंगे।

संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिनिधि पुनः अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के संविधान पर वाद-विवाद करने के लिये सेनफ्रांसिसको में मिले और तत्पश्चात् २६ जून सन् १९४५ को संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्त पर हस्ताक्षर किये। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ कई नवीन आशाओं को लेकर शान्ति चाहनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना कदम रखा और १ वर्ष बाद लीग ऑफ नेशन्स ने अपना भार संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंप दिया।

संयुक्त राष्ट्र संघ के ध्येय तथा उद्देश्य

संयुक्त राष्ट्र संघ के राजपत्र के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ का उद्देश्य : (१) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखना, (२) राष्ट्रों के मध्य मैत्रीभाव का उत्थान करना, (३) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा सामाजिक, आर्थिक समस्याओं तथा मनुष्यों के अधिकारों तथा स्वतन्त्रता की देखभाल करना और (४) राष्ट्रों के कार्यों को करने के लिए आपसी सम्बन्धों को बनाये रखना है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का संगठन सात सिद्धान्तों पर आधारित है; सभी राज्यों की प्रभुसत्ता में समानता; सभी सदस्यों के कार्यों को करना; सभी सदस्यों द्वारा शान्तिपूर्ण तरीकों से उनके झगड़ों को निपटाना; शक्तियों के प्रयोग का आत्मत्याग; राजपत्र के प्रत्येक कार्य में प्रत्येक राज्य से सहायता, संगठन में सम्मिलित होने वाले सभी राज्य उसके सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करेंगे; संगठन किसी भी राज्य सदस्य के व्यक्तिगत कार्यों में बाधा न डालेगा जब तक कि उस कार्य से शांति न भंग होती हो तथा अन्य सिद्धान्त लीग ऑफ नेशन्स के सिद्धान्तों पर ही आधारित थे।

सदस्यता

संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई भी राज्य सदस्य हो सकता है यदि सुरक्षा परिषद् महासभा को सिफारिश कर दे कि अमुक राज्य को संघ का सदस्य बना लिया जावे।

इसी प्रकार यदि सुरक्षा परिषद् महासभा को इस बात की सिफारिश कर दे कि अमुक राज्य ने संघ के नियमों की अवहेलना की है तो वह राज्य संघ से अलग किया जा सकता है ।

महासभा

महासभा के सभी राज्य सदस्य होते हैं, परन्तु प्रत्येक राज्य का एक ही मत गिना जाता है । संसद में शान्ति तथा परिषद् के चुनाव सभी प्रश्न दो तिहाई मताधिक्य से पारित किये जाते हैं । और साधारण प्रश्न साधारण मताधिक्य से पारित किये जाते हैं ।

महासभा का प्रतिवर्ष एक अधिवेशन होता है । यह वर्तमान राजपत्रीय क्षेत्र में आने वाले सभी विषयों पर विचार करती है और सिफारिशें देती है । प्रतिबन्ध केवल इतना है कि महासभा से जब तक सुरक्षा परिषद् किसी विषय पर राय न माँगे वह किसी भी प्रकार अपनी राय नहीं दे सकती है ।

अन्तर्राष्ट्रीय शांति या सुरक्षा सम्बन्धी कोई भी प्रश्न या तो वादविवाद के पूर्व या बाद को महासभा सुरक्षा परिषद् के पास भेज देती है । इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि महासभा को सुरक्षा परिषद् से सिफारिश करने की बहुत कम शक्तियाँ प्राप्त हैं । परन्तु महासभा सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की उन्नति पर अध्ययन कर सकती है तथा सिफारिशें दे सकती हैं ।

महासभा प्रतिवर्ष सुरक्षा परिषद् के विशेष विवरण तथा अंगों के विवरणों को ग्रहण करती है और विभिन्न निर्वाचित सदस्यों के वित्त सम्बन्धी प्रश्नों को तय करती है ।

सुरक्षा परिषद्

इसमें, चीन, फ्रांस, सोवियत संघ, ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमरीका ५ स्थायी सदस्य हैं । इसके अतिरिक्त ६ अस्थायी सदस्य होते हैं जो दो वर्ष के लिए चुने जाते हैं इसमें से ३ प्रतिवर्ष अपना अवकाश ग्रहण कर लेते हैं और पुनः नहीं चुने जाते हैं ।

प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है और परिषद् के सभी मामले ७ सदस्यों द्वारा स्वीकार करने पर मान्य होते हैं और अन्य सभी मामले भी ७ सदस्यों की मान्यता पर ही मान्य समझे जाते हैं इसमें स्थायी सदस्यों के मत भी सम्मिलित होते हैं । केवल प्रतिबन्ध इतना है कि झगड़े वाले सदस्यों का मत नहीं लिया जाता है । सुरक्षा परिषद् में प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है यह समय समय पर मिला करती है । यह किसी भी राज्य को जो उसका सदस्य न हो, परन्तु किसी मामले से सम्बन्धित हो तो उसे

बुला सकती है। ऐसा राज्य सुरक्षा परिषद् की कार्यप्रणाली में भाग ले सकता है, परन्तु अपना मत नहीं दे सकता है। इसके दो प्रमुख कर्तव्य हैं। सर्वप्रथम सभी झगड़ों को शान्तिपूर्वक निपटाना और यदि कोई राष्ट्र शांति को भंग करता है तो उसके विरुद्ध कार्यवाही करना। यह किसी भी झगड़े के बारे में खोज कर सकती है और झगड़ा करनेवाले दलों को बुलाकर कह सकती है कि वह शांतिपूर्वक झगड़े को तय करें या वह स्वयं झगड़े तय करनेवाले तरीकों की सिफारिश कर सकती है।

(अ) यदि कोई शान्ति भंग करने की धमकी देता है तो वह झगड़ा करनेवाले दलों की अन्तःकालीन कार्यवाही को ग्रहण करने के लिये कह सकती है।

(ब) अपने निर्णय लागू करने के लिए संघ के किसी भी सदस्य को बुला कर सम्पूर्ण राजनीति तथा आर्थिक पूर्ति को लागू करने के लिए कह सकती है।

(स) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के लिए वायु, समुद्र तथा थल सेनाओं द्वारा कार्यवाही कर सकती है।

शान्ति स्थापित करने के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य सुरक्षा परिषद् के बुलाने पर एक आवाज रखेंगे और इसके लिए किसी भी एक देश को हवाई शक्ति दी जा सकती है। विधान में यह भी कहा गया है कि एक सैनिक कर्मचारी कमेटी होगी जिसमें स्थायी सदस्यों या उनके प्रतिनिधियों के प्रमुख परिषद् को अपना सहयोग तथा परामर्श देंगे और शक्तियों पर नियंत्रण रखने के उत्तरदायी होंगे।

संभागीय प्रबन्ध (Regional Arrangements)

राजपत्र में व्यक्तिगत राज्य के व्यक्तिगत सुरक्षा के अधिकार के बारे में आंशिक रूप में कहा गया है कि जब तक सुरक्षा परिषद् शान्ति स्थापित करने का कोई उपाय न करे। राजपत्र में संभागीय प्रबन्ध के बारे में कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा है। यह स्थानीय झगड़ों को तय करने के लिये प्रत्येक प्रकार के कार्य करता है, परन्तु बिना सुरक्षा परिषद् की सम्मति के किसी भी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता, परन्तु द्वितीय महायुद्ध के शत्रु राज्यों के विरोध में शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक परिषद्

संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व मानवीय ढंग के विश्व समस्याओं के निराकरण में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना व मानव मात्र के लिये मानव अधिकारों एवं आधारभूत स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान को प्रोत्साहित करना है।

जैसे जैसे आर्थिक दृष्टि से कम विकसित देशों के निवासियों की आवश्यकताएँ

और अधिक स्पष्ट होती गयीं परिषद् उन क्षेत्रों में रहन-सहन की स्थिति को उन्नति करने, सम्बन्धी जातियों को अधिक बढ़ावा देने पर केन्द्रित कर रही है। उसने अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही के लिये अनुकूल विश्वमत स्थापित करने में भारी सहायता पहुँचायी है।

परिषद् के १८ सदस्यों का चुनाव महासभा द्वारा किया जाता है। परिषद् के कार्यों की सततता बनाये रखने के लिए प्रतिवर्ष ६ का निर्वाचन ३ वर्ष की अवधि के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त परिषद् संयुक्त राष्ट्र के किसी भी सदस्य को उस मामले में जिसका उससे विशेष सरोकार है, पर विचार-विनिमय में बिना मताधिकार के भाग लेने के लिए आमंत्रित कर सकती है। आर्थिक परिषद् के प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है और निर्णय साधारणतः मताधिक्य द्वारा तय किये जाते हैं।

उपनिवेश तथा निपेक्षाधारी (Colonies and Trusteeship)

शासन पत्र के दो अनुच्छेद उपनिवेशों के ऊपर प्रकाश डालते हैं प्रथम अनुच्छेद उपनिवेशों से सम्बन्धित सार्वजनिक सिद्धान्तों के बारे में बताता है। संयुक्त राष्ट्र के सदस्य इन उपनिवेशों के निवासियों के हित का ध्यान रखते हैं और इन निवासियों के स्व-सरकार के उत्थान तथा राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक उन्नति का ध्यान उनके हित में सम्मिलित है यह उपनिवेश अपने पड़ोसियों के हितों की सूचना मुख्य सचिव को देते रहते हैं।

दूसरे अनुच्छेद में अन्तर्राष्ट्रीय निपेक्षाधारी प्रणाली के बारे में कहा गया है। वे राज्य जो द्वितीय विश्व महायुद्ध द्वारा शत्रुओं ने हड़प लिये थे उनका शासन संयुक्त राष्ट्र संघ की निपेक्षाधारी प्रणाली द्वारा होगा।

इस प्रणाली का ध्येय शान्ति, स्वशासन तथा स्वतन्त्रता की रक्षा करना है इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ के जितने भी सदस्य हैं उनके निवासियों के अधिकारों तथा व्यापारिक मामलों में समता स्थापित करना है।

निपेक्षाधारी परिषद् में प्रशासित निपेक्षाधारी प्रादेशिक सदस्य तथा जो महासभा द्वारा सुरक्षा परिषद् के सदस्य न चुने गये हों, वह इसके सदस्य होते हैं। इसका मुख्य कार्य यह है कि वह झगड़ों का निपटारा करे तथा ग्रहण करें। विश्वासित प्रदेशों में भ्रमण करना तथा प्रशासकीय शक्तियों के पास प्रश्न भेजना एवं महासभा को कार्यों की रिपोर्ट देना भी इसका कार्य है।

संशोधन

वर्तमान प्रशासन-पत्र का संशोधन महासभा के २।३ मताधिक्य से हो सकता

है। २।३ मताधिक्य सदस्य एक सम्मेलन भी बुला सकते हैं जिसमें सम्पूर्ण प्रशासन पत्र के संशोधन पर विचार किया जा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

विश्व के झगड़ों का निपटारा करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की व्यवस्था की गयी है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्यों को इसके निर्णय को मानना पड़ता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के बारे में लोगों के दो विचार हैं। कुछ लोगों का कहना है कि संयुक्त राष्ट्र संघ कुछ नहीं है केवल पुरानी शराब को नई बोतल में भर देना है केवल लीग ऑफ नेशन्स का नाम ही बदल कर संयुक्त राष्ट्र संघ रख दिया गया है ताकि उससे प्रतिकूल भाव न रखे। दूसरे लोगों का विचार है कि संयुक्त राष्ट्र संघ लीग ऑफ नेशन्स का वास्तविक सुधार है क्योंकि सुरक्षा परिषद् विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए तुरन्त कार्यवाही कर सकती है। इसके अतिरिक्ति निपेक्षाधारी प्रणाली के द्वारा भी संयुक्त राष्ट्र संघ ने समुचित उन्नति की है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अमेरिका तथा सोवियट रूस के सदस्य होने के नाते विश्व में इसका अधिक प्रभाव है।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ अपने बहुत से अंगों द्वारा कार्य करता है जैसे खाद्य व कृषि संगठन (F. A. O.), अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I. M. F.), विश्व बैंक, विश्व स्वास्थ्य संघ (W. H. O.); संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान व संस्कृति संगठन (U. N. E. S. C. O.) विश्व डाक संघ (U. P. U,)।

इन एजेन्सियों द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को एक दूसरे से निकट लाता जा रहा है और विश्व के मनुष्य तथा स्त्रियाँ एक दूसरे से निकट आती जा रही हैं परन्तु विश्व संघ की स्थापना व्यवहारिक रूप में होना कठिन है क्योंकि सर्वप्रथम इसमें राष्ट्रीय प्रभुसत्ता का प्रश्न है, द्वितीय विश्व की दो महान् शक्तियों की विचारधारा में अन्तर होने के कारण विश्व दो भागों में विभाजित हो गया है। तृतीय सुरक्षा परिषद् में ५ स्थायी सदस्यों में से दोनों शक्तियों को शक्तियाँ प्राप्त हैं अत: शेष लोगों का निर्णय खतरनाक साबित होगा।

जैसा कि वेण्डेल विललाइके (Wendell Willikie) और अन्य लोगों ने कहा है कि विश्व एक है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इस विश्व में १०० से अधिक ऐसे राज्य हैं जो अपनी प्रभुसत्ता देने के लिये तैयार नहीं हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई युद्ध का खतरा है। युद्ध के खतरे को भी कम किया जा सकता है, शान्ति भी स्थापित की जा सकती है, परन्तु विश्व की एक सरकार होना असम्भावित

है। जब तक सम्पूर्ण विश्व के स्त्री तथा पुरुष अपने प्रत्यक्ष मत द्वारा एक विश्व राज्य की स्थापना नहीं करते तब तक विश्व की एक सरकार नहीं हो सकती है। विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि तलवार में दो मुठियाँ हैं और जब तक यह मनुष्य के हाथ में रहेगी तब वह विश्व संघ की स्थापना नहीं कर सकता है अतः विश्व संघ की स्थापना कभी नहीं हो सकती है यद्यपि विश्व में शांति की स्थापना सरलतापूर्वक की जा सकती है परन्तु विश्व संघ की नहीं ।

परिशिष्ट (क)

भारतीय संघवाद में केन्द्रीय शासन और उपराज्यों के सम्बन्धों को इतना घनिष्ठ कर दिया गया है कि संविधान के भाग ११ में धारा२४५-२५५ में उनके विधायी सम्बन्ध, धारा २५६-२६३ में प्रशासन सम्बन्ध साधारण और जल-सम्बन्धी विवाद और सामान्य समन्वय की प्रक्रियाओं तथा भाग १८ की ३५२-३६० धारा में आपात-उपबन्धों का स्पष्टीकरण कर दिया गया है। इनके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संघवाद में संघात्मक प्रणाली का रूप राष्ट्रीय एकता को दृढ़ करता है। इनके अनुसार सामान्यतया भारतीय गणराज्य संघात्मक ही है, किन्तु आपत्तिकाल में केन्द्रीय शासन को ऐसी विशिष्ट शक्तियाँ और अधिकार प्राप्त हैं कि गणराज्य का रूप ऐकिक-राज्य (Unitary State) का जैसा हो जाता है।

उपरोक्त धारायें संविधान में निम्न हैं :—

भाग ११

संघ राज्यों के सम्बन्ध

अध्याय १—विधायी सम्बन्ध

विधायिनी शक्तियों का वितरण

धारा २४५ : (१) इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए संसद भारत के संपूर्ण राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगी, तथा किसी राज्य का विधान मण्डल उस सम्पूर्ण राज्य के अथवा उसके किसी भाग के लिये विधि बना सकेगा।

(२) संसद द्वारा निर्मित कोई विधि, इस कारण से कि उसका राज्य क्षेत्रातीत प्रवर्तन होगा, अमान्य नहीं समझी जायेगी।

[१]धारा २४६ : (१) खंड, (२) और (३) में किसी बात के होते हुए भी संसद को

---

१. जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू होने में अनु० २४६ में खंड (१) "खंड (२) और (३) में किसी बात के होते हुए भी" शब्द, कोष्ठक और अंक तथा "खंड (२), (३) और (४) लुप्त कर दिये जायेंगे।

सप्तम अनुसूची की सूची (१) में (जो इस संविधान में "संघ सूची" के नाम से निर्दिष्ट है) प्रगणित विषयों में से किसी के बारे में विधि बनाने की अनन्य शक्ति है।

(२) खंड (३) में किसी बात के होते हुए भी संसद को, तथा खंड (१) के अधीन रहते हुए,[1] किसी राज्य के विधान मंडल को भी, सप्तम अनुसूची की सूची (३) में (जो इस संविधान में "समवर्ती-सूची" के नाम से निर्दिष्ट है) प्रगणित विषयों में से किसी के बारे में विधि बनाने की शक्ति है।

(३) खंड (१) और (२) के अधीन रहते हुए[2] किसी राज्य के विधान मंडल को सप्तम अनुसूची की सूची (२) में (जो इस संविधान में "राज्य-सूची" के नाम से निर्दिष्ट है) प्रगणित विषयों में से किसी के बारे में ऐसे राज्य अथवा उसके किसी भाग के लिये विधि बनाने की अनन्य शक्ति है।

(४) संसद को भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग के लिए, [3] [जो किसी राज्य] के अन्तर्गत नहीं है, किसी भी विषय के बारे में विधि बनाने की शक्ति है चाहे फिर वह विषय "राज्य-सूची" में प्रगणित क्यों न हो।

धारा २४७ : इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी संसद-निर्मित विधियों के, अथवा किसी वर्तमान विधि के, जो संघ-सूची में प्रगणित विषय के बारे में है, अधिक अच्छे प्रशासन के लिए संसद किन्हीं अपर न्यायालयों की स्थापना का विधि द्वारा उपबन्ध कर सकेगी।

धारा[3] २४८ : (१) संसद को ऐसे किसी विषय के बारे में, जो "समवर्ती-सूची" अथवा "राज्य-सूची" में प्रगणित नहीं है, विधि बनाने की अनन्य शक्ति है।

(२) ऐसी शक्ति के अन्तर्गत ऐसे करों के, जो उन सूचियों में से किसी में वर्णित नहीं है, आरोपण करने के लिए कोई विधि बनाने की शक्ति भी है।

धारा २४९ : (१) इस अध्याय के पूर्वगामी उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्य-सभा ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की दो-तिहाई से अन्यून संख्या द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित किया है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक तथा इष्टकर है कि संसद राज्य-सूची में प्रगणित और उस संकल्प में उल्लिखित किसी

---

१. "प्रथम अनसूची के भाग (क) या भाग (ख) में उल्लिखित" शब्द और अक्षर संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम, १९५६, धारा २९ और अनुसूची द्वारा लुप्त कर दिये गये।

२. संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम, १९५६, धारा २९ और अनुसूची द्वारा "जो प्रथम अनुसूची के भाग (क) या भाग (ख)" के स्थान पर रखे गये।

३. अनु० २४८ और २४९ जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू न होंगे।

विषय के बारे में विधि बनाये तो जब तक यह संकल्प प्रवृत्त है संसद के लिए उस विषय के बारे में भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिये विधि बनाना विधिसंगत होगा ।

(२) खंड (१) के अधीन पारित संकल्प एक वर्ष से अनधिक ऐसी कालावधि के लिये प्रवृत्त रहेगा जैसी कि उसमें उल्लिखित हो ।

परन्तु यदि, और जितनी बार, किसी ऐसे संकल्प को प्रवृत्त बनाये रखने का अनुमोदन करनेवाला संकल्प खंड (१) में उपबन्धित रीति से पारित हो जाये तो ऐसा संकल्प उस तारीख से आगे, जिसको कि वह इस खंड के अधीन अन्यथा प्रवृत्त न रहता, एक वर्ष की और कालावधि तक प्रवृत्त रहेगा ।

(३) संसद द्वारा निर्मित कोई विधि, जिसे संसद खंड (१) के अधीन संकल्प के पारण के अभाव में बनाने में सक्षम न होती, संकल्प के प्रवृत्त न रहने से छः मास की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक उन बातों के अतिरिक्त प्रभावी न होगी जो उक्त कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गई या की जाने से छोड़ दी गई है ।

धारा[1] २५० : (१) इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी संसद को, जब तक आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र के अथवा उसके किसी भाग के लिये राज्य-सूची में प्रगणित विषयों में से किसी के बारे में विधि बनाने की शक्ति होगी ।

(२) संसद् द्वारा निर्मित विधि, जिसे संसद् आपात की उद्घोषणा के अभाव में बनाने में सक्षम न होती, उद्घोषणा के प्रवर्तन की समाप्ति के पश्चात् छः मास की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक उन सब बातों के अतिरिक्त प्रवर्तनहीन होगी जो उस कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गई या की जाने से छोड़ दी गयी है ।

धारा[2] २५१ : इस संविधान के अनु० २४९ और २५० की कोई बात किसी राज्य

---

१. जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू होने में अनु० २५० में "राज्य-सूची में प्रगणित विषयों में से किसी के बारे में" शब्दों के स्थान पर "संघ-सूची में प्रगणित न किये गये विषयों के बारे में भी" शब्द रख दिये जाएंगे ।

२. जम्मू और काश्मीर राज्य को लागू होने में अनु० २५१ में "अनुछेद २४९ और २५०" शब्दों और अंकों के स्थान पर "अनु० २५०" शब्द रख दिये जायेंगे, और "इस संविधान के अधीन" शब्द लुप्त कर दिये जायेगे, और "उक्त दोनों में से किसी अनु० के अधीन" शब्द के स्थान पर "उक्त अनुछेद के अधीन" शब्द रख दिये जायेंगे ।

के विधान मण्डल की कोई विधि बनाने की शक्ति को, जिसे इस संविधान के अधीन बनाने की शक्ति उसे है, निर्बन्धित न करेगी, किन्तु यदि किसी राज्य के विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि का कोई उपबन्ध, संसद् द्वारा निर्मित विधि के, जिसे संसद् उक्त दोनों में से किसी अनुच्छेद के अधीन बनाने की शक्ति रखती है, किसी उपबन्ध के विरुद्ध है तो, संसद् द्वारा निर्मित विधि अभिभावी होगी चाहे वह राज्य के विधान मण्डल द्वारा निर्मित विधि से पहिले या पीछे पारित हुई हो तथा राज्य के विधान मण्डल द्वारा निर्मित विधि विरोध की मात्रा तक प्रवर्तन शून्य होगी, किन्तु तभी तक जब तक कि संसद द्वारा निर्मित विधि प्रभावी रहे।

धारा २५२ : (१) यदि किन्हीं दो अथवा अधिक राज्यों के विधान मण्डलों को यह वांछनीय प्रतीत हो कि उन विषयों में से जिनके बारे में संसद को अनु० २४९ और २५० में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त, उन राज्यों के लिये विधि बनाने की शक्ति नहीं है, किसी विषय का विनियमन ऐसे राज्यों में संसद विधि द्वारा करे तथा यदि उन राज्यों के विधान मंडलों के सब सदनों ने उस लिये संकल्पों का पारण किया है तो उस विषय का तद्नुकूल विनियमन करने के लिए किसी अधिनियम का पारण करना संसद के लिये विधिसंगत होगा, तथा इस प्रकार पारित कोई अधिनियम ऐसे राज्यों को लागू होगा तथा किसी अन्य राज्य को, जो तत्पश्चात् अपने विधान मण्डल के सदन अथवा जहाँ दो सदन हों, वहाँ दोनों सदनों में से प्रत्येक से उस लिये पारित संकल्प द्वारा उसको अंगीकार करे, लागू होगा।

(२) संसद् द्वारा इस प्रकार पारित कोई अधिनियम इसी रीति से पारित या अंगीकृत संसद के अधिनियम से संशोधित या निरसित किया जा सकेगा, किन्तु किसी राज्य के संबंध में, जहाँ कि वह लागू होता है उस राज्य के विधान मंडल के अधिनियम से संशोधित या निरसित न किया जायेगा।

धारा[1] २५३ : इस अध्याय के पूर्वगामी उपबन्धों में से किसी बात के होते हुए भी, संसद को किसी अन्य देश या देशों के साथ की हुई संधि, करार या अभिसमय अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, संस्था या अन्य निकाय में किये गये किसी विनिश्चय

---

१. जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू होने में अनु० २५३ में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जायेगा, अर्थात्—

"परन्तु संविधान (जम्मू और कश्मीर को लागू होना) आदेश १९५४ के आरम्भ के पश्चात् जम्मू और कश्मीर राज्य के व्ययन को प्रभावित करनेवाला कोई विनिश्चय भारत सरकार द्वारा उस राज्यों की सरकार की सम्मति के बिना नहीं किया जाएगा।"

के परिपालन के लिये भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिये कोई विधि बनाने की शक्ति है ।

धारा[1] २५४:(१) यदि किसी राज्य के विधान मण्डल द्वारा निर्मित विधि का कोई उपबन्ध अथवा समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों में से एक के बारे में वर्तमान विधि के, किसी उपबन्ध के विरुद्ध है तो खंड (२) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए यथास्थिति संसद द्वारा निर्मित विधि, चाहे वह ऐसे राज्य के विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि के पहिले या पीछे पारित हुई हो या वर्तमान विधि अभिभावी होगी, तथा उस राज्य के विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि विरोध की मात्रा तक शून्य होगी ।

(२) जहाँ[2] राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि में, जो समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों में से एक के बारे में है, कोई ऐसा उपबन्ध अन्तर्विष्ट हो जो संसद् द्वारा पहिले निर्मित की गई विधि के, अथवा उस विषय के बारे में किसी वर्तमान विधि के विरुद्ध है तो ऐसे राज्य के विधानमंडल द्वारा उस प्रकार निर्मित विधि उस राज्य में अभिभावी होगी यदि उसको राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित किया गया है और उस पर उसकी अनुमति मिल चुकी है ।

परन्तु इस खंड की कोई बात संसद को किसी समय उसी विषय के सम्बन्ध में कोई विधि, जिसके अन्तर्गत ऐसी विधि भी है जो राज्य के विधानमंडल द्वारा इस प्रकार निर्मित विधि का परिवर्धन, संशोधन, परिवर्तन या निरसन करती है, अधिनियमित करने से न रोकेगी ।

धारा[3] २५५ : यदि संसद के अथवा .... किसी राज्य के विधान मंडल के किसी अधिनियम को—

(क) जहाँ राज्यपाल की सिफारिश अपेक्षित थी वहाँ राज्यपाल या राष्ट्रपति ने,

(ख) जहाँ राज्यप्रमुख की सिफारिश अपेक्षित थी वहाँ राज्यप्रमुख या राष्ट्रपति ने,

---

१. जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू होने में अनु० २५४ के खंड (१) में "किसी उपबंध अथवा समीपवर्ती-सूची में प्रगणित विषयों में से एक के बारे में वर्तमान विधि के, किसी उपबन्ध के विरुद्ध है तो खंड (२) के उपबंधों के अधीन रहते हुए यथास्थिति" शब्द, कोष्ठक और अंकों के स्थान पर "किसी उपबंध के विरुद्ध है तो" शब्द रख दिये जायेंगे और "या वर्तमान" शब्द लुप्त कर दिये जायेंगे और सम्पूर्ण खंड (२) लुप्त कर दिया जायेगा ।

२. प्रथम अनुसूची के भाग (क) या भाग (ख) में उल्लिखित शब्द और अक्षर संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम १९५६, धारा २९ और अनुसूची द्वारा लुप्त कर दिये गये ।

३. अनुच्छेद २५५ जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू न होगा ।

(ग) जहाँ राष्ट्रपति की सिफारिश या पूर्ण मंजूरी अपेक्षित थी वहाँ राष्ट्रपति ने, अनुमति दी तो ऐसा अधिनियम तथा ऐसे किसी अधिनियम का उपबन्ध केवल इस कारण अमान्य न होगा कि इस संविधान द्वारा अपेक्षित कोई सिफारिश न की गई या पूर्व मंजूरी न दी गई थी।

धारा[1] २५६. प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग होगा, कि जिससे संसद् द्वारा निर्मित विधियों का, तथा किन्हीं वर्तमान विधियों का, जो उस राज्य में लागू है, पालन सुनिश्चित रहे तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निदेश देने तक विस्तृत होगा जो कि भारत सरकार को उस प्रयोजन के लिये आवश्यक दिखाई दें।

धारा २५७ : (१) प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग होगा कि जिससे संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई अड़चन या प्रतिकूल प्रभाव न हो तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निदेश देने तक विस्तृत होगा जो भारत सरकार को उस प्रयोजन के लिये आवश्यक दिखाई दे।

(२) संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार राज्य को किसी ऐसे संचार साधनों के निर्माण करने और बनाये रखने के लिये निर्देश देने तक भी विस्तृत होगा जिनका राष्ट्रीय या सैनिक महत्व का होना उस निर्देश में घोषित किया गया हो।

परन्तु इस खंड की कोई बात राजपथों या जलपथों को राष्ट्रीय राजपथ या राष्ट्रीय जलपथ घोषित करने की संसद की शक्तियों की, अथवा इस प्रकार घोषित राजपथ या जलपथ के बारें में संघ की शक्ति को अथवा नौ-बल, स्थलबल और विमान-बल कर्मशालाओं विषयक अपने कृत्यों का भाग मानकर संचार साधनों के निर्माण और बनाये रखने की संघ की शक्ति को निर्बन्धित करने वाली न मानी जायेगी।

---

१. जम्मू और कश्मीर राज्य लागू होने में अनु० २५६ को अपने खंड (१) के रूप में पुनः संख्याङ्कित किया जायेगा और उसमें निम्नलिखित नया खंड जोड़ दिया जायेगा, अर्थात्—"(२) जम्मू और कश्मीर राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का ऐसे प्रयोग करेगा जिससे कि उस राज्य के संबंध में संविधान के अधीन संघ के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का संघ द्वारा निर्वहन सुगम हो; और विशेषतयः उक्त राज्य, संघ द्वारा वैसी अपेक्षा किये जाने पर, संघ की ओर से और उसके व्यय पर सम्पति का अर्जन या अधिग्रहण करेगा अथवा यदि सम्पत्ति उस राज्य की है तो ऐसे निबन्धनों पर, जैसे कि करार पाये जाये, या करार के अभाव में जैसे कि भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नियुक्ति मध्यस्थ द्वारा निर्धारित किये जाये, संघ को हस्तान्तरित करेगा।"

(३) किसी राज्य में की रेलों की रक्षा के लिये किये जाने वाले उपायों के बारे में उस राज्य को निर्देश देने तक भी संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार होगा।

(४) जहाँ खंड (२) के अधीन संचार साधनों के निर्माण अथवा उनको बनाये रखने के बारे में अथवा खंड (३) के अधीन किसी रेल की रक्षा के लिये किये जाने वाले उपायों के बारे में, किसी राज्य को दिये गये किसी निर्देश के पालन में उससे अधिक खर्च होता है जो, यदि ऐसा निर्देश नहीं दिया गया होता जो, राज्य के मामूली कर्तव्यों के पालन में खर्च होता, वहाँ उस राज्य द्वारा किये गये अतिरिक्त खर्चों के बारे में भारत सरकार द्वारा उस राज्य को ऐसी राशि दी जायेगी जो करार पायी जाये अथवा, करार के अभाव में, जिसे भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नियुक्त मध्यस्थ निर्धारित करे।

धारा २५८ : (१) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी किसी राज्य की सरकार की सम्मति से राष्ट्रपति, उस सरकार को या उसके पदाधिकारियों को ऐसे किसी विषय संबंधी कृत्य, जिन पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, शर्त के साथ या बिना शर्त सौंप सकेगा।

(२) ऐसे विषय से, जिसके बारे में राज्य के विधानमंडल को विधि बनाने की शक्ति नहीं है, सम्बद्ध होने पर भी संसद निर्मित विधि, जो किसी राज्य में लागू है, उस राज्य अथवा उसके पदाधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्ति दे सकेगी और कर्तव्य आरोपित कर सकेगी अथवा शक्तियाँ दिया जाना और कर्तव्य आरोपित किया जाना प्राधिकृत कर सकेगी।

(३) जहाँ इस अनुच्छेद के आधार पर किसी राज्य अथवा उसके पदाधिकारियों या प्राधिकारियों को शक्तियाँ दी गई हैं, अथवा कर्तव्य आरोपित कर दिये गये हैं वहाँ उन शक्तियों और कर्तव्यों के प्रयोग के बारे में राज्य द्वारा प्रशासन में किये गये अतिरिक्त खर्चों के बारे में भारत सरकार द्वारा उस राज्य को ऐसी राशि दी जायेगी जो करार पाई जाये, अथवा करार के अभाव में, जिसे भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नियुक्त मध्यस्थ निर्धारित करे।

धारा[१] २५८ : (क) उस संविधान में किसी बात के होते हुए भी भारत सरकार की सम्मति से किसी राज्य का राज्यपाल उस सरकार को या उसके पदाधिकारियों को ऐसे किसी विषय सम्बन्धी कृत्य जिन पर, उस राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, शर्तों के साथ या शर्त बिना सौप सकेगा।

---

१. संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम १९५६, धारा १८ द्वारा अन्तः स्थापित।

धारा २५९: [प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में के राज्यों के सहस्त्र बल] संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम, १९५६, धारा २९ और अनुसूची द्वारा निरसित।

धारा २६० : भारत सरकार किसी ऐसे राज्य-क्षेत्र की सरकार से, जो भारत राज्य-क्षेत्र का भाग नहीं, करार करके ऐसे राज्य-क्षेत्र की सरकार में निहित किसी कार्य-पालक, विधायी या न्यायिक कृत्यों को ग्रहण कर सकेगी, किन्तु प्रत्येक ऐसा करार विदेशी क्षेत्राधिकार के प्रयोग से सम्बद्ध किसी तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन रहेगा और उससे शासित होगा

धारा २६१ : (१) भारत के राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र, संघ की और प्रत्येक राज्य की, सार्वजनिक क्रियाओं, अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाहियों को पूरा विश्वास और पूरी मान्यता दी जायेगी।

[१](२) खंड (१) में निर्दिष्ट क्रियाओं, अभिलेखों और कार्यवाहियों की सिद्धि की रीति और शर्तें तथा उनके प्रभाव का निर्धारण संसद निर्मित विधि द्वारा उप-बन्धित रीति के अनुसार होगा।

(३) भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग के में व्यवहार न्यायालयों द्वारा दिये गये अन्तिम निर्णय या आदेश उस राज्य-क्षेत्र के अन्दर कहीं भी विधि अनुसार निष्पादन योग्य होंगे।

धारा २६२ :(१) संसद विधि द्वारा किसी अन्तर्राज्यिक नदी या नदी-दून के या में, जलों के प्रयोग, वितरण या नियंत्रण के बारे में किसी विवाद या फरियाद के न्याय-निर्णयन के लिये उपबन्ध कर सकेगी।

(२) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी संसद विधि द्वारा उपबन्ध कर सकेगी कि न तो उच्चतम न्यायालय और न अन्य कोई न्यायालय खंड (१) में निर्दिष्ट किसी विवाद या फरियाद के बारे में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा।

धारा २६३ : यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह प्रतीत हो कि ऐसी परिषद् की स्थापना से लोक-हितों की सिद्धि होगी, जिस पर

(क) राज्यों के बीच जो विवाद उत्पन्न हो चुके हों उन की जाँच करने और उन पर मंत्रणा देने;

(ख) कुछ या सब राज्यों के, अथवा संघ और एक या अधिक राज्यों के, पारस्परिक हित से सम्बद्ध विषयों का अनुसंधान और चर्चा करने का; अथवा

---

१. जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू होने में अनु० २६१ के खंड (२) में "संसद निर्मित" शब्द लुप्त कर दिये जायेंगे।

(ग) ऐसे किसी विषय पर सिफारिश करने, और विशेषत: उस विषय के बारे में नीति और कार्यवाही के अधिकतर अच्छे समन्वय के हेतु सिफारिश करने, का भार हो तो राष्ट्रपति के लिये यह विधि-संगत होगा कि वह आदेश द्वारा ऐसी परिषद् की स्थापना करे तथा उस परिषद् के द्वारा किये जाने वाले कर्तव्यों के स्वरूप को और उसके संघटन और प्रक्रिया को परिभाषित करे।

भाग १८

आपात—उपबन्ध

अनुच्छेद ३५२[1]:(१) यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि गम्भीर आपात विद्यमान है जिससे कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति भारत या उसके राज्यक्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है तो वह उद्घोषणा द्वारा उस आशय की घोषणा कर सकेगा ।

(२) खंड (१) के अधीन की गई उद्घोषणा—

(क) उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत की जा सकेगी ।

(ख) संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जायेगी;

(ग) दो मास की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि संसद के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा वह उस कालावधि की समाप्ति से पहिले अनुमोदित न कर दी जाये;

परन्तु यदि ऐसी कोई उद्घोषणा उस समय निकाली गई है जब कि लोकसभा का विघटन हो चुका है अथवा लोकसभा का विघटन इस खंड के उपखंड (ग) में निर्दिष्ट दो मास की कालावधि के भीतर हो जाता है तथा यदि उद्घोषणा का अनुमोदन करनेवाला संकल्प राज्य-सभा द्वारा पारित हो चुका है किन्तु ऐसी उद्घोषणा के विषय में लोक-सभा द्वारा उस कालावधि की समाप्ति से पहिले कोई संकल्प पारित नहीं किया गया है तो उद्घोषणा उस तारीख से, जिसमें कि लोकसभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि उक्त तीस दिन की कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा को अनुमोदन करनेवाला संकल्प लोकसभा द्वारा भी पारित नहीं हो जाता ।

---

१. जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू होने में अनु० ३५२ में निम्नलिखित नया खंड जोड़ दिया जायेगा, अर्थात—"(४) केवल आभ्यान्तरिक अशान्ति या उसके सन्निकट संकट के ही आधार पर की गयी आपात की उद्घोषणा (अनु० ३५४ के विषय के सिवाय) जम्मू और कश्मीर राज्य के सम्बन्ध में तब तक लागू न होगी जब तक कि वह उस राज्य की सरकार की प्रार्थना पर या उसकी सहमति से नहीं की गई है ।"

(३) यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति का संकट सन्निकट है तो चाहे वास्तव में युद्ध अथवा ऐसा कोई आक्रमण या अशान्ति नहीं हुई तो भी भारत की अथवा भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा इस प्रकार से संकट में है ऐसे घोषित करनेवाली आपात की उद्घोषणा की जा सकेगी।

अनु० ३५३ : जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है तब—

(क) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी संघ की कार्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को इस विषय में निदेश देने तक होगा कि वह राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का किस रीति से प्रयोग करे;

(ख) किसी विषय के संबंध में विधि बनाने की संसद की शक्ति के अन्तर्गत ऐसी विधियाँ बनाने की शक्ति भी होगी जो उस विषय के बारे में संघ अथवा संघ के पदाधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्तियाँ देती तथा कर्तव्य सौंपती हो अथवा शक्तियों का दिया जाना और कर्तव्य सौंपा जाना प्राधिकृत करती हो चाहे फिर वह विषय ऐसा हो जो संघ सूची में प्रगणित नहीं है।

अनु० ३५४ : (१) जब कि आपात की उद्घोषण प्रवर्तन में है, तब राष्ट्र आदेश द्वारा निर्देश दे सकेगा कि संविधान के अनुच्छेद २६८ से २७९ तक के सब या कोई उपबन्ध ऐसी किसी कालावधि में, जैसी कि उस आदेश में उल्लिखित की जाये और जो किसी अवस्था में भी उस वित्तीय वर्ष की समाप्ति से आगे विस्तृत न होगी, जिसमें कि उद्घोषणा प्रवर्तन में नहीं रहती, ऐसे अपवादों या रूप भेदों के अधीन प्रभावी होंगे जैसा कि वह उचित समझे।

(२) खंड (१) के अधीन दिया प्रत्येक आदेश उसके दिये जाने के पश्चात् यथासंभव संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जायेगा।

अनु० ३५५ : बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से प्रत्येक राज्य का संरक्षण करना, तथा प्रत्येक राज्य की सरकार इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जाये, यह सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।

अनु० ३५६[1] : (१) यदि किसी राज्य के राज्यपाल[2] से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें

---

१. अनु० ३५६ जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू न होगा।

२. "या राजप्रमुख" शब्द संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम, १९५६, धारा २९ और अनुसूची द्वारा लुप्त कर दिये गये।

कि उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा—

(क) उस राज्य की सरकार के सब या कोई कृत्य, तथा [राज्यपाल][१] में, अथवा राज्य के विधान मंडल को छोड़ कर राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी में निहित, या एतद् द्वारा प्रयोक्तव्य सब या कोई शक्तियाँ अपने हाथ में ले सकेगा;

(ख) घोषित कर सकेगा कि राज्य के विधान मंडल की शक्तियाँ संसद के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तव्य होंगी;

(ग) राज्य में के किसी निकाय या प्राधिकारी से संबद्ध इस संविधान के किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णतः या अंशतः निलम्बित करने के लिये उपबन्ध सहित ऐसे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध बना सकेगा जैसे कि राष्ट्रपति को उद्घोषणा के उद्देश्य को प्रभावी करने के लिये आवश्यक या वांछनीय दिखाई दे।

परन्तु इस खंड की किसी बात से राष्ट्रपति को यह प्राधिकार न होगा कि वह उच्च न्यायालय में निहित या एतद् द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियों में से किसी को अपने हाथ में ले अथवा इस संविधान के उच्च न्यायालयों से सम्बद्ध किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णतः या अंशतः निलम्बित कर दे।

(२) ऐसी कोई उद्घोषणा किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत या परिवर्तित की जा सकेगी।

(३) इस अनुच्छेद के अधीन की गई प्रत्येक उद्घोषणा संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जायेगी, तथा जहाँ वह पूर्ववर्ती उद्घोषणा को प्रतिसंहृत करनेवाली उद्घोषणा नहीं है वहाँ वह दो महीने की समाप्ति पर, उस कालावधि की समाप्ति से पूर्व संसद के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा वह अनुमोदित नहीं हो जाती तो, प्रवर्तन में नहीं रहेगी :

परन्तु यदि ऐसी कोई उद्घोषणा (जो पहिले की उद्घोषणा को प्रतिसंहृत करनेवाली नहीं है) उस समय निकाली गई है जब कि लोकसभा का विघटन हो चुका है अथवा लोकसभा का विघटन इस खंड में निर्दिष्ट दो मास की कालावधि के भीतर हो जाता है तथा यदि उद्घोषणा का अनुमोदन करनेवाला संकल्प राज्य-सभा द्वारा पारित हो चुका है किन्तु ऐसी उद्घोषणा के विषय में लोकसभा द्वारा उस कालावधि की समाप्ति से पहिले कोई संकल्प पारित नहीं किया गया है तो उद्घोषणा उस तारीख से, जिसमें कि लोकसभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम

---

१. उपरोक्त के द्वारा "यथास्थिति राज्यपाल या राजप्रमुख" के स्थान पर रखे गये।

बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि उक्त तीस दिन की कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा को अनुमोदन करनेवाला संकल्प लोकसभा से भी पारित नहीं हो जाता।

(४) इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा, यदि प्रतिसंहृत नहीं हो गई हो तो, इस अनुच्छेद के खंड (३) के अधीन उद्घोषणा का अनुमोदन करनेवाले संकल्पों में से दूसरे के पारित हो जाने की तारीख से छः महीने की कालावधि की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी :

परन्तु ऐसी उद्घोषणा के प्रवृत्त रखने के लिये अनुमोदन करनेवाला संकल्प, यदि और जितनी बार संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है तो, और उतनी बार, वह उद्घोषणा, जब तक कि वह प्रतिसंहृत न हो जाये, उस तारीख से जिससे कि वह इस खंड के अधीन अन्यथा प्रवर्तन में नहीं रहती, छः महीने की और कालावधि तक प्रवृत्त बनी रहेगी, किन्तु कोई ऐसी उद्घोषणा किसी अवस्था में भी तीन वर्ष से अधिक प्रवृत्त नहीं रहेगी।

परन्तु यह और भी कि यदि लोकसभा का विघटन छः मास की किसी ऐसी कालावधि के भीतर हो जाता है तथा ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाये रखने का अनुमोदन करनेवाला संकल्प राज्य-सभा द्वारा पारित हो चुका है, किन्तु ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाये रखने के बारे में कोई संकल्प लोकसभा द्वारा उक्त कालावधि में पारित नहीं हुआ है तो उद्घोषणा उस तारीख से जिसमें कि लोकसभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि उक्त तीस दिन की कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा को प्रवर्तन में बनाये रखने का अनुमोदन करनेवाला संकल्प लोकसभा द्वारा भी पारित नहीं हो जाता।

अनु०[१] '३५७:(१) जहाँ अनुच्छेद ३५६ के खंड (१) के अधीन निकाली गई उद्घोषणा द्वारा यह घोषित किया गया है कि राज्य के विधान मंडल की शक्तियाँ संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तव्य होंगी वहाँ—

(क) राज्य के विधानमंडल की विधि बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को देने के लिये तथा ऐसी दी हुई शक्ति को किसी अन्य प्राधिकारी को जिसे राष्ट्रपति, उस लिये उल्लिखित करे, ऐसी शर्तों के अधीन, जिन्हें आरोपित करना वह उचित समझे, प्रत्यायोजन करने के राष्ट्रपति को प्राधिकृत करने की संसद् की,

१. अनु० ३५७ जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू न होगा।

(ख) संघ अथवा उसके पदाधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्ति देने या कर्तव्य आरोपित करने के लिये, अथवा शक्तियों का दिया जाना या कर्तव्यों का आरोपित किया जाना प्राधिकृत करने के लिये विधि बनाने की संसद् की अथवा राष्ट्रपति की या ऐसी विधि बनाने की शक्ति जिसे अन्य प्राधिकारी में उपखंड (क) के अधीन निहित है उसकी,

(ग) जब लोकसभा में न हो तब व्यय के लिये संसद की मंजूरी लंबित रहने तक राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय को प्राधिकृत करने की राष्ट्रपति की, क्षमता होगी ।

(२) राज्य के विधान मंडल की शक्ति के प्रयोग में संसद् द्वारा अथवा राष्ट्रपति अथवा खंड (१) के उपखंड (क) में निर्दिष्ट अन्य अधिकारी द्वारा निर्मित कोई विधि, जिसे अनुच्छेद ३५६ के अधीन की गई उद्घोषणा के अभाव में संसद् या राष्ट्रपति या ऐसा अन्य प्राधिकारी बनाने के लिये सक्षम न होता, उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रहने के पश्चात् एक वर्ष की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक सिवाय उन बातों के प्रभाव में न रहेगी जो उक्त कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गई या की जाने से छोड़ दी गई थी जब तक कि वे उपबन्ध, जो इस प्रकार प्रभावी न रहेंगे, समुचित विधान मंडल के अधिनियम द्वारा उससे पहिले ही या तो निरसित और या रूप भेदों के सहित या बिना पुनः अधिनियमित न कर दिये गये हों ।

अनु० ३५८ : जब आपातकी उद्घोषणा प्रवर्तनमें है तब अनु० १९ की किसी बात से राज्य की कोई ऐसी विधि बनाने की अथवा कोई ऐसी कार्यपालिका कार्य-वाही करने की भाग ३ में परिभाषित शक्ति, जिसे वह राज्य उस भाग में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अभाव में बनाने अथवा करने के लिये सक्षम होता, निर्बन्धित नहीं होगी, किन्तु इस प्रकार निर्मित कोई विधि उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रहने पर अक्षमता की मात्रा तक तुरन्त प्रभावशून्य हो जायेगी सिवाय उन बातों के जो विधि के इस प्रकार प्रभावशून्य होने से पहिले की गई या की जाने से छोड़ दी गई थी ।

अनु० ३५९ : (१) जहाँ कि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हैं वहाँ राष्ट्रपति आदेश द्वारा घोषित कर सकेगा कि भाग ३ द्वारा दिये गये अधिकारों में से ऐसे को प्रवर्तित कराने के लिये, जैसे कि उस आदेश में वर्णित हों, किसी न्यायालय के प्रचालन का अधिकार तथा इस प्रकार वर्णित अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये, जिसमें कि उद्घोषणा लागू रहतीं है, अथवा उससे छोटी ऐसी कलाविधि के लिये, जैसी कि आदेश में उल्लिलिखत की जाये, निलम्बित रहेगी ।

(२) उपरोक्त प्रकार से दिया हुआ आदेश भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में अथवा उसके किसी भाग पर विस्तृत हो सकेगा।

(३) खंड (१) के अधीन दिया प्रत्येक आदेश उसके दिये जाने के पश्चात् यथासंभव शीघ्र संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जायेगा।

[1]३६० : यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है कि उससे भारत अथवा उसके राज्य क्षेत्र के किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय संकट में है तो वह उद्घोषणा द्वारा उस बात की घोषणा कर सकेगा।

(२) अनुच्छेद ३५२ के खंड (२) के उपबन्ध इस अनुच्छेद के अधीन निकाली गई उद्घोषणा के सम्बन्ध में वैसे ही लागू होंगे जैसे कि वे अनुच्छेद ३५२ के अधीन निकाली गई आपात की उद्घोषणा के लिये लागू होते हैं।

(३) उस कालावधि में, जिसमें कि खंड (१) में वर्णित कोई उद्घोषणा प्रवर्तन में रहती है संघ की कार्यपालिका शक्ति किसी राज्य को वित्तीय औचित्य सम्बन्धी ऐसे सिद्धान्तों का पालन करने के लिये निदेश देने तक, जैसे कि निदेशों में उल्लिखित हों, तथा ऐसे अन्य निदेश देने तक, जिन्हें राष्ट्रपति उस प्रयोजन के लिये देना आवश्यक और समुचित समझे, विस्तृत होगा।

(४) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी—

(क) ऐसे किसी निदेश के अन्तर्गत—

(१) राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में सेवा करनेवाले व्यक्तियों के सब या किन्हीं वर्गों के वेतनों और भत्तों में कमी की अपेक्षा करनेवाले उपबन्ध,

(२) धन विधेयकों अथवा अन्य विधेयकों को, जिनको अनुच्छेद २०७ के उपबन्ध लागू हैं, राज्य के विधान मंडल के द्वारा उनके पारित किये जाने के पश्चात् राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित करने के लिये उपबन्ध, भी हो सकेंगे;

(ख) उस कालावधि में, जिसमें कि इस अनुच्छेद के अधीन निकाली गई उद्घोषण प्रवर्तन में है, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के सहित संघ के कार्यों के सम्बन्ध में सेवा करनेवाले व्यक्तियों के सब या किसी वर्ग के वेतनों और भत्तों में कमी के लिये निदेश निकालने के लिये राष्ट्रपति सक्षम होगा।

---

१. अनुच्छेद ३६० जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू न होगा।

BIBLIOGRAPHY

Adarkar, B. P.— THE PRINCIPLES AND PROBLEMS OF FEDERAL FINANCE. (P.S. King and Sons, 1933).

Adams, George.— THE BRITISH EMPIRE AND A LEAGUE OF PEACE TOGETHER WITH AN ANALYSIS OF FEDERAL GOVERNMENT, 1919. (G. P. Putnam and Sons, New York and London).

Adams, R. G.— POLITICAL IDEAS OF THE AMERICAN REVOLUTION. (Durham, N.C. 1922).

Adelaide.— CONVENTION DEBATES.

Aitchison, C. U.— SANADS AND TREATIES WITH THE INDIAN PRINCES. (1862. Bengal Printing Co. Ltd., Calcutta).

Alexander, N.— THE RIGHTS OF ALIENS UNDER THE FEDERAL CONSTITUTIONS. (Montpelier, Vt., 1931).

Allen, C. K.— LAW IN THE MAKING. (1930. Oxford).

Andrews, C. M. THE COLONIAL PERIOD OF AMERICAN HISTORY. (New Heaven, Yale University Press, 1934-1938).

Anderson, William — AMERICAN GOVERNMENT. (Revd., New York, Holt, 1942).

Austin, F. Macdonald — AMERICAN STATE GOVERNMENT AND ADMINISTRATION. (New York, 1934).

Bailey, T.A.— A DIPLOMATIC HISTORY OF THE AMERICAN PEOPLE. (1943).

Banerji, Prem Nath.— FISCAL POLICY IN INDIA. (Macmillan & Co., 1929).

Bartlett, Vernon.— NAZI GERMANY EXPLAINED. (1933).

Barker, Fred A.— THE FUNDAMENTAL LAW OF AMERICAN CONSTITUTION. (Washington 1936).

Batsell, W. R.— SOVIET RULE IN RUSSIA. (1929).

Bates, E. S.— THE STORY OF CONGRESS, 1789-1935. (1936).

Beard, Charles A.— AMERICAN GOVERNMENT AND POLITICS. (1918).

Beard, Charles A.— THE ENDURING FEDERALIST. (New York 1948).

Do. AMERICAN GOVERNMENT AND POLITICS.

Beard. Charles A. S. Marry R.— THE RISE OF AMERICAN CIVILIZATION (1928).

Beard, Charles and Marry.— THE BASIC HISTORY OF THE UNITED STATES.

Beni Prasad— THE STATE IN ANCIENT INDIA. (1928)

Do. THEORY OF THE STATE IN ANCIENT INDIA. (1927).

Berdahl, C.A.— THE POWERS OF THE EXECUTIVE IN THE UNITED STATES. (Urban, III, 1921).

Binkley, W. E.— THE POWERS OF THE PRESIDENT. (Garden City, Doubleday Doran, 1937).

Bishop, J. B.— PRESIDENTIAL NOMINATIONS AND ELECTIONS. (1916).

Bitterman, H. J.— STATE AND FEDERAL GRANTS-IN-AID.

Borden, Sir Robert Laird.— CANADIAN CONSTITUTIONAL STUDIES. (Marfleet Lectures, University of Toronto, October 1921. Oxford).

Bourinot, Sir John.— CANADA. (1947).

Do. CANADA UNDER BRITISH RULE: 1716-1900. (Cambridge University Press).

Do. CONSTITUTIONAL HISTORY OF CANADA.

Do. PARLIAMENTARY PRACTICE AND PROCEDURE IN CANADA.

Black, H. C.— THE RELATION OF THE EXECUTIVE POWER TO LEGISLATION. Princeton University Press, 1919).

Bradley, A. G.— CANADA. (Williams and Norgate. London).

Brooks, Robert C.— GOVERNMENT AND POLITICS OF SWITZERLAND. (1920. George G. Harrap & Co., London).

Brunet, Rene.— THE NEW GERMAN CONSTITUTION (1923, T. Fisher Unwin, London).

Bryce, James (Viscount Bryce).— CONSTITUTIONS. (Oxford University Press).

Bryce, Viscount.— MODERN DEMOCRACIES.

Do. AMERICAN COMMONWEALTH.

Bunyan, J. and H. Fisher.— THE BOLSHEVIK REVOLUTION (1934).

Burdick, C. K.— THE LAW OF THE AMERICAN CONSTITUTION. (New York, Putnam, 1922).

Campbell (P. C.). Mill (R. C.) and Portsus (G. V.).— STUDIES IN AUSTRALIAN AFFAIRS (1928. Melbourn, Macmillion & Co.).

Cameron.— THE CANADIAN CONSTITUTION AND THE JUDICIAL COMMITTEE. (Toronto. 1930).

Canaway, A. P.— THE FAILURE OF FEDERALISM IN AUSTRALIA (London. 1930).

Carr, R. K.— THE SUPREME COURT AND JUDICIAL REVIEW. (New York, 1941).

Carpenter, W. S., and Stafford, P.T.— STATE AND LOCAL GOVERNMENT IN THE UNITED STATES', (New York, Crofts. 1936).

Chamber of Princes, Directorate of.— THE BRITISH CROWN AND THE INDIAN PRINCES. (P.S. King and Sons: 1929).

Channing, Edward.— THE UNITED STATES OF AMERICA 1765-1865. (Cambridge University Press).

Charles, A. Beard.— AMERICAN GOVERNMENT AND POLITICS. (New York. 1935).

Charles, E. Hughes.— THE SUPREME COURT OF THE UNITED STATES. (1928).

Chitwood, O. P.— A HISTORY OF COLONIAL AMERICA New York, Harper. (1931).

Chudgal, P. L.— INDIAN PRINCES UNDER BRITISH PROTECTORATE. (Williams and Norgate, London).

Clark, R. T.— THE FALL OF THE GERMAN REPUBLIC (1935).

Clark, J. P.— THE RISE OF A NEW FEDERALISM. (Princeton University Press, 1936).

Clement, W. H. P.— THE LAW OF THE CANADIAN CONSTITUTION. (Clarendon Press, Toronto. 1916).

Coats, W. P., and Zeldak.— FROM TSARDOM TO THE STALIN CONSTITUTION.

Cockburn, J. A.— AUSTRALIAN FEDERATION. (Marshall and Sons).

Commager, Henry Steele.— DOCUMENT OF AMERICAN HISTORY, 1492-1935. (1948).

Cole, A. C.— THE ERA OF THE CIVIL WAR (Springfield, Illinois, 1919).

Corwin, Edward S.— LIBERTY AGAINST GOVERNMENT. (1948).

Do. COURT OVER CONSTITUTION (Princeton University Press, 1938).

Coupland, R.— THE AMERICAN REVOLUTION AND THE BRITISH EMPIRE. (1930).

Cumming, H. S. and McFarland, Carl. FEDERAL JUSTICE (New York Macmillan, 1937).

Cushman, R. E.— AMERICAN NATIONAL GOVERNMENT (New York, 1931).

Do. LEADING CONSTITUTIONAL DECISIONS (1935, New York).

Dawson, R. N.— CONSTITUTIONAL ISSUE IN CANADA. (1933, Oxford University Press).

Dicey, A. V.— LAW OF THE CONSTITUTION. (8th. Edition, Macmillan Co.).

Dodd, Walter F.— STATE GOVERNMENT. (1923, Century Co., New York).

Dougherty, J. H.— THE POWER OF THE FEDERAL JUDICIARY OVER LEGISLATION. (New York 1912).

Duncan, Elizabeth, and Wilson.— FEDERATION AND WORLD ORDER. (London. 1939).

Durham, Lord.— REPORT ON THE AFFAIRS OF BRITISH NORTH AMERICA. (Edited by Sir C. P. Lucas, 1912. Oxford, Clarendon Press).

Dutt, Palm.— WORLD POLITICS 1918-1936. (Gollanez. 1936).

Edward, S. Crowin— THE PRESIDENT—OFFICE AND POWERS. (New York, University Press, 1948.

Edward, S. Corwin— THE CONSTITUTION AND WHAT IT MEANS TO-DAY. (Princeton University Press. 1948).

Edward, Dumbould— THE DECLARATION OF INDEPENDENCE. (University of Oklahoma Press. 1950).

Egerton, H. E.— THE CAUSES AND CHARACTER OF THE AMERICAN REVOLUTION. (1923, Oxford Clarendon Press).

Egerton, H. E.— FEDERATIONS AND UNIONS IN THE BRITISH EMPIRE.

Emden, C. S.— THE PEOPLE AND THE CONSTITUTION. (1933). Oxford).

Emerson, Rupert.— STATE AND SOVEREIGNTY IN MODERN GERMANY. (Yale University Press).

Encyclopaedia Britannica.— 13TH EDITION.

Evatt, Herbert Vene.— THE UNITED NATIONS. (Oxford 1948).

Eyck, Erich.— BISMARK AND THE GERMAN EMPIRE? (1950).

Fainsod, M. and Lien, A. J.— THE AMERICAN PEOPLE AND THEIR GOVERNMENT. (1934 New York).

Farrand, Max.— THE FRAMING OF THE CONSTITUTION OF THE UNITED STATES. (Yale University Press 1934).

Farrand, Max.— THE RECORDS OF THE FEDERAL CONVENTION (3 Vols. 1911 New Haven).

Farrand, Max.— PHILADELAPHIA CONVENTION DEBATES.

Faulkener, H. U.— A SHORT HISTORY OF THE AMERICAN PEOPLE.

Fergusson, and McHenry.— THE AMERICAN GOVERNMENT.

Field, O. P.— CASES AND AUTHORITIES ON CONSTITUTIONAL LAW. (1930).

Finer, H.— THEORY AND PRACTICE OF MODERN GOVERNMENT.

Fiske, John.— THE CRITICAL PERIOD OF AMERICAN HISTORY. (Macmillan Co.)

Fisher.— THE EVOLUTION OF THE CONSTITUTION OF THE UNITED STATES.

Foremen, S. E.— THE AMERICAN DEMOCRACY. (1936. Appleton, New York).

Frankfurt and Landies.— THE BUSINESS OF THE SUPREME COURT. (1927. New York).

Freeman, Edward A.— HISTORY OF FEDERAL GOVERNMENT. (Macmillan Co.)

Friedrich, C. J.— CONSTITUTIONAL GOVERNMENT AND POLITICS. (New York, Harper 1937).

Greaves, W. B.— STATE GOVERNMENT. (Boston, Heath 1947).

Greaves, W. B.— AMERICAN STATE GOVERNMENT. (3rd Edition. D. C. Heath and Co., Boston)

Griffith, E. S.— THE MODERN GOVERNMENT IN ACTION. (New York, Columbia Univessity Press, 1942)

Gundappa, D. V.— THE PROBLEMS OF THE INDIAN NATIVE STATES. (1917. Karnatak Publishing House, Bangalore).

Gundappa, D. V.— THE NATIVE STATES IN THE INDIAN EMPIRE (1918. K. P. H. Bangalore).

Gundappa, D. V.— THE STATES IN ALL INDIA POLITY. (1fi26 K. P. H. Bangalore).

Gundappa, D. V.— THE INDIAN STATES COMMITTEE. (1928 K. P. H. Bangalore).

Gyan Chand.— THE ESSENTIALS OF FEDERAL FINANCE. (1930. Oxford University Press).

Hakser, Col. K. N. and K. M. Pannikar.— FEDERAL INDIA (Hopkinson London).

Hamilton Alexander.— THE FEDERALIST. (Edited by Cabot Lodge. T. Fisher Unwin, London).

Harper, S. N.— THE GOVERNMENT OF THE SOVIET UNION. (1938).

Harvard University.— LEADING CASES ON THE CONSTITUTION OF THE UNITED STATES (1917 Cambridge, Harward Cooperative Society).

Haynes G. M.— THE SENATE OF THE UNITED STATES. (1938).

Herring, E. P.— PRESIDENTIAL LEADERSHIP. (New York 1940).

Hill, J. P.— THE FEDERAL EXECUTIVE. (Boston).

Hobson, J. A.— TOWARDS INTERNATIONAL GOVERNMENT. (1915 George Allen and Unwin Ltd.).

Hocket, H.C.— THE CONSTITUTION OF THE UNITED STATES 1776-1826. (New York Macmillan 1939).

Holt, W. S.— TREATIES DEFEATED BY THE SENATE. (Baltimore 1933).

Hollis, P. Allen.— FEDERAL GOVERNMENT AND EDUCATION. (McGraw Hill Book Co. 1950).

Hoover, C. B.— GERMANY ENTERS THE THIRD REICH.

Horwill, H. W.— THE USAGES OF THE AMERICAN CONSTITUTION. (London 1925).

Hughes, Hector, K.C.— NATIONAL SOVEREIGNTY AND JUDICIAL AUTONOMY IN THE BRITISH COMMONWEALTH. (1931. P.S. King & Sons, London)

Hunt, E. M.— AMERICAN PRECEDENTS IN AUSTRALIAN COMMONWEALTH. (1930 Columbia University Press).

Hughes, Charles Evans.— THE SUPREME COURT OF THE UNITED STATES. (Garden City Publishing Co. New York 1936).

Ilbert, Sir Courtney.— THE GOVERNMENT OF INDIA (Oxford University Press).

Jackson, R. H.— THE STRUGGLE FOR JUDICIAL SUPREMACY. (New York 1941).

Jameson, J. F.— STUDIES IN THE HISTORY OF THE FEDERAL CONSTITUTION OF 1787. (American Historical Association Report 1902).

James Hart.— THE ORDINANCE MAKING POWERS OF THE PRESIDENT OF THE UNITED STATES. (Baltimore 1925).

Do. TENURE OF OFFICE UNDER THE CONSTITUTION (Baltimore 1930).

Jebb, Richard.— THE IMPERIAL CONFERENCE (Longman's Co. 1911).

Jonson, Merril.— THE ARTICLES OF CONFEDERATION: AN INTERPRETATION OF THE SOCIAL CONSTITUTIONAL HISTORY OF THE AMERICAN REVOLUTION 1774-1971. (Madison, University of Wisconsin Press, 1948).

Jonson, Allen.— READINGS IN AMERICAN CONSTITUTIONAL HISTORY 1776-1876. (Boston 1912).

Karve, D. G.— FEDERATIONS. (Oxford 1932).

Kaith, A. B.— LETTERS ON IMPERIAL RELATIONS, INDIAN REFORMS, CONSTITUTIONAL AND INTERNATIONAL LAW. (1935 Macmillan).

Do. RESPONSIBLE GOVERNMENT IN THE DOMINIONS. (Two Volumes) (Oxford University Press).

Kaith, A. B.—	SOVEREIGNTY OF THE BRITISH DOMINIONS. (1929 Macmillan).
Do.	DOMINION HOME RULE IN PRACTICE. (Oxford University Press).
Do.	SPEECHES AND DOCUMENTS ON COLONIAL POLICY, (Oxford University Press).
Do.	SPEECHES AND DOCUMENTS ON INDIAN POLICY. (2 Volumes Oxford University Press).
Kemmerer, E. W.—	THE A.B.C. OF THE FEDERAL RESERVE SYSTEM. (London. Oxford University Press).
Kennedy, W. P. M.—	SOME ASPECTS OF THE THEORIES AND WORKING OF CONSTITUTIONAL LAW. (1932. Macmillan Co., New York).
Do.	THE NATURE OF CANADIAN FEDERALISM.
Do.	THE CONSTITUTION OF CANADA.
Do.	STATUTES, TREATIES AND DOCUMENTS OF THE CANADIAN CONSTITUTION. (Oxford University Press 1930).
	ESSAYS IN CONSTITUTIONAL LAW.
Kennedy, W. P. M.—	CONSTITUTIONAL DOCUMENT OF CANADA.
Kennedy, W. P. M. and Lefroy, A. H. E.—	TREATISE ON CANADIAN CONSTITUTIONAL LAW.
Kennedy, W. P. M. and Will, D. C.—	THE LAW OF THE TAXING POWER IN CANADA.
Kerr, Donald.—	THE LAW OF THE AUSTRALIAN CONSTITUTION. (Melborne 1925).
Khan, M. Mir.—	FEDERAL FINANCE. (London 1936).
Khan, S. A. Wajid.—	FINANCIAL PROBLEMS OF INDIAN STATES UNDER FEDERATION.
Kublman, A. F.—	OFFICIAL PUBLICATION RELATING TO AMERICAN STATES CONSTITUTIONAL CONVENTIONS. (New York, Wilson 1935).

Laband.—	DENTACHI REICHSTAAT SRICH.
Laski, Harold, J.—	A GRAMMAR OF POLITICS. (2nd. Edition. G. Allen & Unwin, London).
Do.	FOUNDATIONS OF SOVEREIGNTY & OTHER ESSAYS.
Do.	AUTHORITY IN THE MODERN STATE. (Yale University Press).
Latham, J. G.—	AUSTRALIA AND BRITISH COMMONWEALTH OF NATIONS. (Macmillan 1929).
Lauyhlin, J. L.—	THE FEDERAL RESERVE ACT. (New York, Macmillan. 1933).
Lee-Warner, Sir William.—	THE NATIVE STATES OF INDIA. (Macmillan Co. 1910).
Lees-Smith, H. B.—	SECOND CHAMBERS IN THEORY AND PRACTICE. (George Allen and Unwin Ltd., London).
Levine, I. D.—	THE MAN STALIN. (1931).
Lewis, Sir G. C.—	GOVERNMENT OF DEPENDENCIES.
Linienthal, D. C.—	T. V. A. DEMOCRACY ON THE MARCH. (New York. Harper. 1944).
Long, Breekenridge.—	THE GENESIS OF THE CONSTITUTION OF THE UNITED STATES. (New York. Macmillan 1926).
Lodge. Eleaner, C.—	THE END OF THE MIDDLE AGES. (4th Edition. Methuen & Co., London).
Long, D.—	GENESIS OF THE CONSTITUTION OF THE UNITED STATES OF AMERICA.
Long, B.—	CONGRESS. (1926).
Lowell, A. L.—	GOVERNMENT AND PARTIES IN CONTINENTAL EUROPE. (1917. Longmans Green & Sons).
Lucas, Sir C. P.— (Edit.)—	LORD DURHAM'S REPORT ON THE AFFAIRS OF CANADA.
Luce, Robbert.—	LEGISLATIVE PROCEDURE. (Houghton, Miffin Co. 1936).
Lyons, Eugene.—	ASSIGNMENT IN UTOPIA. (1938).

Loughran, P. S.— JUDICIAL REVIEW OF FEDERAL EXECUTIVE ACTION. (1930)

Macdonald, J. A. Murray.— THE CASE FOR FEDERAL REVOLUTION. (1920 P. S. King & Sons).

Do. and Lord Charnwood.— THE FEDERAL SOLUTION. (1914. T. Fisher Unwin. London).

Macdonald, J. Ramsay.— THE GOVERNMENT OF INDIA. (Swarthmore Press).

Macdonald, A. F.— AMERICAN STATE GOVERNMENT AND ADMINISTRATION. (New York, Crowell, 1940).

Macdonald, A.F.— AMERICAN CITY GOVERNMENT AND ADMINISTRATION. (4th. Edition, New York Crowell. 1946).

Mackay, R. A.— THE UNREFORMED SENATE OF CANADA (Oxford. 1926).

Macy, Jesse.— PARTY ORGANISATION AND MACHINERY IN THE UNITED STATES. (1905. T. Fisher Unwin).

Mair, L. P.— THE PROTECTION OF MINORITIES. (Christopher Press, London).

Maine, Henry, S.— EARLY HISTORY OF INSTITUTIONS.

Marriot, J. A.— SECOND CHAMBERS. (1910 Oxford).

Marter, R.— THE EASTERN FRONTIERS OF GERMANY. (1930).

Martin, C. E.— AN INTRODUCTION TO THE STUDY OF THE AMERICAN CONSTITUTION. (Oxford. 1926).

Mathews, J. M. and Berdahl, C. A.— DOCUMENTS AND READINGS IN AMERICAN GOVERNMENT. (1928. Macmillan and Co., New York).

Mattern, J.— PRINCIPLES OF THE CONSTITUTIONAL JURISPRUDENCE OF THE GERMAN REPUBLIC.

Maxson, C. H.— CITIZENSHIP. (London, Oxford University Press. 1930).

Mayers, Lewis.— THE FEDERAL SERVICE. (D. Appleton. 1922).

Mcilwain, G. H.— THE AMERICAN REVOLUTION. (1932. New York).

Mclaughlin, A. C.— A CONSTITUTIONAL HISTORY OF THE UNITED STATES. (1936. New York).

Do. THE CONFEDERATION AND THE CONSTITUTION. 1783-1789. (New York, Harper 1907).

Meighs, W. M.— THE GROWTH OF THE CONSTITUTION IN THE FEDERAL CONVENTION OF 1787. (Philadelphia, 1900).

Do. THE RELATION OF THE JUDICIARY TO THE CONSTITUTION. (New York, 1920).

Molteno, Sir James Tenant.— THE DOMINIONS OF THE AFRIKANDERDOM, (1923, J. Methuen, London).

Moore, W. Harrison.— COMMONWEALTH OF AUSTRALIA (Charles Maxwell Co. Melbourne).

Moore, W. G.— FRANCE AND GERMANY. (1932).

Moore, B. F.— THE SUPREME COURT AND UNCONSTITUTIONAL LEGISLATION. (New York, 1913).

Morison, S. E.— SOURCES AND DOCUMENTS ILLUSTRATING THE AMERICAN REVOLUTION 1764-1788 AND THE FORMATION OF THE FEDERAL CONSTITUTION. 1923, Clarendon Press).

Morison, S. E. and Commager, Henry, S.— THE GROWTH OF THE AMERICAN REPUBLIC London, Oxford University Press).

Mowrer, E. A.— GERMANY PUTS THE CLOCK BACK (1938).

Mukerji, P.— THE INDIAN CONSTITUTION.

Do. THE INDIAN CONSTITUTIONAL DOCUMENTS (Two Volumes).

Munro, W. B.— GOVERNMENTS OF EUROPE. (Macmillan).

Do. GOVERNMENT OF THE UNITED STATES (Macmillan 1946).

Munro, W. B.— AMERICAN INFLUENCES ON CANADIAN GOVERNMENT. Macmillan Co., Toronto, 1929).

Nylor, E. E.— THE FEDERAL BUDGET SYSTEM IN OPERATION. (Washington, Hayworth Printing Co. 1941).

Newton, A.P.— FEDERAL AND UNIFIED CONSTITUTIONS. (1928. Longmans Co.).

Do. THE UNIFICATION OF SOUTH AFRICA. (2 Volumes. Longmans Co. 1924).

Nosek, V.— INDEPENDENT BOHEMIA.

Ogg., F. A., and Ray, P. O.— INTRODUCTION TO AMERICAN GOVERNMENT (1948. Century Co., New York).

Do. ESSENTIALS OF AMERICAN GOVERNMENT (8th Edition. New York, Appleton Century. Co. 1950).

Oliver, F. S.— THE LIFE OF ALEXANDER HAMILTON. (1906. G. P. Putnam & Sons, New York).

Orth, S. P., and Cushman, R. E.— AMERICAN NATIONAL GOVERNMENT. (New York, Crofts. 1931).

Oxford University.— ETNOHOLOGY, LANGUAGES, LITRATURE AND RELIGION OF INDIA.

Palmer, G. E. H.— CONSULTATION AND COOPERATION IN THE BRITISH COMMONWEALTH. (1934. Oxford University Press).

Panikkar, K. M.— INDIAN STATES AND THE GOVERNMENT OF INDIA.

Paskal, R.— THE NAZI DICTATORSHIP, (1934).

Pasquet.— AN ESSAY ON THE ORIGIN OF THE HOUSE OF COMMONS.

Paxton, Frederic L.— THE AMERICAN CIVIL WAR. (Williams Norgate, London).

Peck, H. T.— TWENTY YEARS OF THE REPUBLIC. 1885-1905.

Pennock, J. R.— ADMINISTRATION AND THE RULE OF LAW (1941. New York).

Pike, L. O.— A CONSTITUTIONAL HISTORY OF THE HOUSE OF LORDS.

Pioneer Press.— INDIAN DEFENCE PROBLEM.

Poincare, Raymond.— HOW FRANCE IS GOVERNED.

Poley, A. P.— FEDERAL CONSTITUTIONS OF THE UNITED STATES AND THE BRITISH EMPIRE.

Pollard, A. F.— FACTORS IN AMERICAN HISTORY (Cambridge University Press).

Do. EVOLUTION OF PARLIAMENT.

Pollock, J. K.— THE GOVERNMENT OF GREATER GERMANY. (New York. Macmillan. 1939)

Pope.— CONFEDERATION DOCUMENTS OF CANADA

Porritt, Edward.— EVOLUTION OF THE DOMINION OF CANADA (1918. World Book Co. New York).

Porter, K. H.— STATE ADMINISTRATION. (New York. Crofts 1938).

Portus, G. V.— STUDIES IN THE AUSTRALIAN CONSTITUTION. (1933. London. Australian Co.)

Price, G. W.— I KNOW THESE DICTATORS. (George G. Harrap. 1937).

Punniah. K. V.— INDIA AS A FEDERATION. (B. G. Paul & Co. Madras. 1931).

Quick and Garran.— ANNOTATED CONSTITUTION OF THE COMMONWEALTH OF AUSTRALIA.

Ram & Sharma.— POLITICAL THEORY AND MODERN GOVERNMENTS. (Volumes 2 and 3. U. I. P. H. Lucknow).

Ramaswamy.— LAW OF THE INDIAN CONSTITUTION.

Rao, Hosakoppa Krishna.— SWARAJ CONSTITUTION.

Reed, Thomas Harrison.— FORMS AND FUNCTIONS OF THE AMERICAN GOVERNMENT.

REPORT OF THE ROYAL COMMISSION ON THE CONSTITUTION. (Parliament of Australian Commonwealth, 1929).

Riddel, W. R.— THE CANDIAN CONSTITUTION IN FORM AND IN FACT. (Columbia University Press 1947).

Ross.— THE SENATE IN CANADA.

Rowe, D. N. and Erikson, E. N.— AMERICAN CONSTITUTIONAL HISTORY. (New York. 1933).

Sapru, T. B.— MEMORANDOM ON THE WHITE PAPER. (1933).

Sapru, T. B.— THE INDIAN CONSTITUTION. (1926. Madras).

Schuman, F. L.— THE NAZI DICTATORSHIP. (1935)

Schuschnigg, Dr.— FAREWELL AUSTRALIA. (1935)

Schuyler, R. L.— PARLIAMENT AND THE BRITISH EMPIRE. (1919, New York).

Seidman, J. L.— UNION RIGHTS AND UNION DUTIES. (New York, Harcourt Brace, 1953).

Selko, D. T.— THE FEDERAL FINANCIAL SYSTEM (Washington, Brookings Institution, 1940)

Shah, K. T.— PROVINCIAL AUTONOMY. (Vora-Madras. 1936)

Shah, K. T.— FEDERAL FINANCES IN INDIA (Bombay. 1929)

Sharma, B. M.— INDIAN FEDERATION. (1932).

Do. आधुनिक शासन पद्धतियाँ (१९६०)

Sharma, B. M.— THE INDIAN CONSTITUTIONAL PROBLEM. (1930. Lucknow).

Do. भारत और संघ शासन (१९३८)

Shoup, E. L.— THE GOVERNMENT OF THE AMERICAN PEOPLE. (1946).

Singh, Gurmukh Nihal.— THE INDIAN STATES AND BRITISH INDIA.

Smelie, K.— THE AMERICAN FEDERAL SYSTEM.

Smith, Goldwin.— CANADA AND THE CANADIAN QUESTION.

Smity, J. A.— THE GROWTH AND DECADENCE OF CONSTITUTIONAL GOVERNMENT. (William and Norgage, London).

Stewart, George.— CANADA UNDER THE ADMINISTRATION OF THE EARL OF DUFFERIN.

Stevans, C. E.— SOURCES OF THE CONSTITUTION OF THE UNITED STATES OF AMERICA.

Story, Joseph.— COMMENTARIES ON THE CONSTITUTION OF THE UNITED STATES.

Swisher, C. B.— THE GROWTH OF CONSTITUTIONAL POWER IN THE UNITED STATES.

Synder, L. L.— FROM BISMARK TO HITLER.

Syndey.— SYDNEY CONVENTIONS DEBATES (1918).

Sudaridanam, A. N.— INDIAN STATES REGISTER AND DIRECTORY. (1929. Madras).

Tansill, C. C.— DOCUMENTS ILLUSTRATIVE OF THE FORMATION OF THE UNION OF THE AMERICAN STATES.

Thomas, P. J.— THE EVOLUTION OF FEDERAL FINANCE IN INDIA. (1833-1936). (Oxford)

Thrope, F. N.— THE FEDERAL AND STATE CONSTITUTIONS. (Washington Government Printing Office, 1909)

Treece, R. C.— A COMPARISON BETWEEN THE CONSTITUTIONS OF CANADA AND AUSTRALIA. (Sydney).

Trevelyan, George Otto.— THE AMERICAN REVOLUTION. (3 Volumes. Longmans Co.).

Trotsky, Leon.— THE HISTORY OF THE RUSSIAN REVOLUTION, (1933).

Trotsky, Leon.— THE REVOLUTION RETRAYED. (1938).

Van Doven, Carl.— THE GREAT REHEARSAL: THE STORY OF THE MAKING AND THE RACTIFYING OF THE CONSTITUTION OF THE UNITED STATES. (New York, Viking Press, 1947).

Vincent, J. M.— GOVERNMENT IN SWITZERLAND. (Macmillan Co.).

Walsh, E. A.— THE FALL OF THE RUSSIAN EMPIRE (1928).

Warner, W. Lee.— THE NATIVE STATES OF INDIA. (1910. Macmillan Co.).

Warner, K. O.— AN INTRODUCTION TO SOME PROBLEMS OF THE AUSTRALIAN FEDERATION, (Washington, 1923).

Warren, Charles.— THE SUPREME COURT IN UNITED STATES HISTORY. (1928. Little Brown and Co., Boston).

Warren, Charles— THE MAKING OF THE CONSTITUTION. (Boston. Little Brown, 1928).

West, H. L.— FEDERAL POWER: ITS GROWTH AND NECESSITY. (New York. 1918).

Wedgwood, Col. Josiah, C.— THE INDO-BRITISH COMMONWEALTH. (1921. T.P.M. Madras).

White, L. D.— THE FUTURE OF GOVERNMENT IN THE UNITED STATES. (Chicago, University of Chicago Press, 1942).

Willoughby, W. W.— CONSTITUTIONAL LAW OF THE U.S.A.

Wilson, Woodrow— THE STATE (1919, London).

Wilson, Woodrow— CONGRESSIONAL GOVERNMENT. (Boston 1815).

Wilson, Woodrow— CONSTITUTIONAL GOVERNMENT IN THE UNITED STATES (New York, 1908).

Wise, B. R.— THE MAKING OF THE AUSRTALIAN COMMONWEALTH (1913. Longmans Co.)

Wood, F. L. W.— THE CONSTITUTIONAL DEVELOPMENT OF AUSTRALIA. (George Harrap, 1933)

Whyte, Sir Fredrick.— INDIA A FEDERATION, (Government of India Publication).

Temperley, H. W. V.— SENATES AND UPPER CHAMBERS.

THE EARL OF KIMBERLEY'S DESPATCHES, CANADIAN SESSIONAL PAPERS, 1877 No. 68.

THE REGULATING ACT, 1773.

Temperley, H. W. V.— THE PITT'S INDIA ACT, 1784

THE CHARTER OF 1833.

THE CHARTER OF 1853.

THE INDIAN COUNCILS ACT, 1861.

THE INDIAN COUNCILS ACT, 1874

THE INDIAN COUNCILS ACT, 1892.

THE INDIAN COUNCILS ACT, 1909

THE GOVERNMENT OF INDIA ACT, 1915.

THE GOVERNMENT OF INDIA ACT, 1916.

THE REPORT OF THE JOINT PARLIAMENTARY COMMITTEE, 1919.

THE GOVERNMENT OF INDIA ACTS, 1919 and 1935

THE INDIAN INDEPENDENCE ACT, 1947.